भारतीय संस्कृति

इतिहास विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
विश्वविद्यालय मार्ग, तीनपानी बाईपास
हल्द्वानी-263139
ई-मेल info@uou.ac.in, http@//uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष

कुलपति

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम
प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे , प्रोफेसर इतिहास एवं निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफेसर आर.पी. बहुगुणा, प्रोफेसर इतिहास एवं पूर्व निदेशक, दूरस्थ शिक्षा केन्द्र , जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय,दिल्ली
प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी, पूर्व विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल)
प्रोफेसर वी.डी.एस.नेगी, विभागाध्यक्ष इतिहास, एस.एस.जीना विश्वविद्यालय,अल्मोड़ा
डॉ. एम.एम.जोशी, एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास एवं समन्वयक इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक- डॉ. मदन मोहन जोशी

ब्लाक एक
इकाई एक- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
इकाई दो– उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
इकाई तीन- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
ब्लाक दो
इकाई एक- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
इकाई दो– उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
इकाई तीन- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
ब्लाक तीन
इकाई एक- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
इकाई दो– उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
इकाई तीन- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
ब्लाक चार
इकाई एक- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
इकाई दो– उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
इकाई तीन- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
ब्लाक पांच
इकाई एक- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
इकाई दो– उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार
इकाई तीन- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार

आई.एस.बी.एन. :
कॉपीराइट : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष :

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

Printed at :

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

ब्लॉक एक

इकाई एकः संस्कृति का अर्थ, प्रकृति, तत्व, सभ्यता और संस्कृति

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 संस्कृति का अर्थ

1.3संस्कृति की प्रकृति

1.3.1 संस्कृति की प्रकृति को समझने में सहायक तत्व

1.4संस्कृति के तत्व

1.4.1 सांस्कृतिक तत्व

1.4.2 संस्कृति संकुल

1.4.3 संस्कृति प्रतिमान

1.4.4 संस्कृति क्षेत्र

1.5सभ्यता और संस्कृति

1.5.1 सभ्यता का अर्थ

1.5.2 सभ्यता और संस्कृति में अन्तर

1.5.3 सभ्यता और संस्कृति का संबन्ध

1.6 सारांश

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.0 प्रस्तावना

संस्कृति का वर्तमान रूप किसी समाज की दीर्घकाल तक अपनाई गई पद्वतियों का परिणाम होता है और समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य की सभी उपलब्धियां उसकी संस्कृति से प्रेरित मानी जा सकती हैं। संस्कृति की सहायता से ही उसने निरन्तर प्रगति की है और विकास के विभिन्न सोपानों को तय किया है। वह भाषा व प्रतीकों के माध्यम से विचारों का संप्रेषण तथा ज्ञान.विज्ञान का विकासएवं अपने चिन्तन के परिणामों को भावी पीढ़ियों को हस्तांतरित कर सका है। उसका मस्तिष्क कार्य और कारण के तार्किक आधार को स्थापित कर सकता है। संपूर्ण जीवधारियों में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसमें संस्कृति का

निर्माण और उसको परंपरागत रूप से बनाए रखने की क्षमता है। इसी कारण मनुष्य को संस्कृति का निर्माता भी कहा जाता है। सामाजिक घटनाओं के विश्लेषण में व्यक्तित्व, समाज और संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मनुष्य को कुछ निश्चित व्यवहार जन्म से या आनुवांशिक रूप से प्राप्त होते हैं, लेकिन सामाजिक व सांस्कृतिक व्यवहार वह परिवार, समूह व समाज से, जिसमें वह निवास करता है, सीखता है।सांस्कृतिक क्रियाकलापों से सभ्यता का विकास होता है। संस्कृति के अभाव में सभ्यता अपना अस्तित्व बनाए नहीं रख सकती। संस्कृति और सभ्यता की प्रगति अधिकतर एक साथ होती है और दोनों का एक.दूसरे पर प्रभाव भी पड़ता है।

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपके अध्ययन क्षेत्र में संस्कृति के शाब्दिक अर्थ, उसके स्वरूप, तत्वों तथा सभ्यता और संस्कृति को व्याख्यायित करना है, ताकि विषय पर आपकी वस्तुनिष्ठ समझ का विकास हो और आपके मस्तिष्क में संस्कृति की अवधारणा स्पष्ट हो सके।

1.2 संस्कृति का अर्थ

संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा की 'कृ' (करना) धातु से बना है। अंग्रेजी में संस्कृति के लिए प्रयुक्त कल्चर शब्द लैटिन भाषा के 'कल्ट' या 'कल्टस से लिया गया है, जिसका अर्थ है जोतना, विकसित करना या परिष्कृत करना। नालन्दा विशाल शब्द सागर के अनुसार ''किसी व्यक्ति, जाति, राष्ट्र आदि की वे सब बातें, जो उसके मन, रुचि, आचार.विचार, कला.कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक होती हैं, संस्कृति का अंग हैं''। कैम्ब्रिज इंग्लिश डिक्शनरी में संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है–'The way of life,especially the general customs and beliefs of a particular group of people at a particular time." अर्थात किसी विशेष कालावधि में एक विशेष मानव समूह के द्वारा अपनाई गई जीवन शैली, विशेष रूप से उनकी परंपराएं और अवधारणाएं तथा विश्वास को संस्कृति कहा जा सकता है। इस परिभाषा से आप यह समझ सकते हैं कि संस्कृति वह जीवन पद्धति है, जिसका निर्माण मानव व्यक्ति तथा समूह के रूप में करता है, यह उन आविष्कारों का संग्रह है, जिनका अन्वेषण मानव ने अपने जीवन को सफल बनाने के लिए किया है। जवाहर लाल नेहरू ने रामधारी सिंह दिनकर के ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' की प्रस्तावना में विभिन्न लेखकों के हवाले से लिखा है कि ''संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढ़ीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है।'' यह ''मन, आचार अथवा रुचियों की परिष्कृति या शुद्धि है।''''यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है।'' इन कथनों के आधार पर उनका मत है कि ''इस अर्थ में , संस्कृति कुछ ऐसी चीज का नाम हो जाता है , जो बुनियादी और अन्तर्राष्ट्रीय है। फिर संस्कृति के कुछ राष्ट्रीय पहलू भी होते हैं। '' औसगुड ने संस्कृति को इस प्रकार परिभाषित किया है– ''संस्कृति कारीगरी के सभी विचार,व्यवहार और मनुष्य समूहों के उन सभी विचारों से बनी है, जिन्हें मनुष्य ने प्रत्यक्ष रूप में देखा है या जो उसके मस्तिष्क को दिए गए हैं तथा जिनके बारे में वह चेतन है।'' डेविड बिडनी का कथन है ''संस्कृति उन संपूर्ण बौद्धिक आदर्शों की परंपरा है, जिसे मनुष्य जाति ने प्राप्त किया है।''टायलर ने अपनी पुस्तक प्रिमिटिव कल्चर में लिखा है, '' संस्कृति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान , विश्वास, कला,आचार, कानून प्रथा ऐसी ही अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है, जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के नाते प्राप्त करता है, अर्थात संस्कृति मानव की सामाजिक विरासत है, जिसे मनुष्य जन्म लेने के बाद प्राप्त करता है और समाज की सदस्यता की स्थिति में सीखता है।''संस्कृति से हमारा तात्पर्य उस सब से है जिसे मनुष्य अपने सामाजिक जीवन में सीखता है या समाज के सदस्य के नाते प्राप्त करता है। मनुष्य स्वयं पूर्ण रूप में संस्कृति की उपज है और दूसरी ओर संस्कृति मनुष्य की रचना है। लैंडिस के अनुसार ''संस्कृति वह दुनिया है, जिसमें एक व्यक्ति जन्म से

लेकर मृत्यु तक निवास करता है, चलता.फिरता है और अपने अस्तित्व को बनाए रखता है।'' रैल्फ पिडिंगटन का मत हैकि ''संस्कृति उन भौतिक तथा बौद्धिक साधनों या उपकरणों का सम्पूर्ण योग है , जिनके द्वारा मानव अपनी प्राणिशास्त्रीय तथा सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि तथा अपने पर्यावरण से अनुकूलन करता है।''इसे आप इस प्रकार समझ सकते हैं कि किसी भी मानव की संस्कृति में दो प्रकार की घटनाओं का समावेश होता है, पहला भौतिक वस्तुएं, जिन्हें मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पन्न करता व बनाता है,दूसरा, ज्ञान, विश्वास, मूल्य(वैल्यूज) आदि अमूर्त घटनाओं का भी समावेश संस्कृति में होता है। संस्कृति के ये दोनों पक्ष एक दूसरे से सम्बन्धित तथा एक दूसरे के पूरक होते हैं।बिडनी ने लिखा है कि ''संस्कृति कृषि सम्बन्धी, प्राविधिक, सामाजिक तथा मानसिक तथ्यों की उपज है।'' दूसरे शब्दों में संस्कृति में कृषि, प्रौद्योगिकी, सामाजिक संगठन, भाषा, धर्म, कला आदि का समावेश होता है। रूथ बेनेडिक्ट ने कहा है कि ''व्यक्ति की भांति संस्कृति भी विचार और क्रिया का एक बहुत सुस्थिर प्रतिमान है। संस्कृति कोई अव्यवस्थित, असंबद्ध या बिखरी हुई व्यवस्था नहीं है, बल्कि इसके विभिन्न तत्व या अंग एक दूसरे से संबद्ध रहते हुए इस प्रकार क्रियाशील होते हैं किवे एक प्रतिमान(पैटर्न) की रचना करते हैं।'' मैलिनोव्स्की ने संस्कृति को विचारों का एक समूह मानते हुए कहा है '' संस्कृति प्राप्त आवश्यकताओं की एक व्यवस्था तथा उद्देश्यमूलक क्रियाओं की एक संगठित व्यवस्था है।'' अर्थात संस्कृति के अन्तर्गत जीवन के समग्र तरीके या ढंग आ जाते हैं जो व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।वे संस्कृति के अन्तर्गत सभी शिल्प तथ्यों (।तजपंबिजे), वस्तुओं, तकनीकी प्रक्रियाओं,विचारों, आदतों और मूल्यों को सम्मिलित करते हैं। हॉबेल के अनुसार ''उन सब व्यवहार प्रतिमानों की समग्रता को संस्कृति कहते हैं, जिन्हें मानव अपने सामाजिक जीवन में सीखता है।'' उन्होंने संस्कृति को वंशानुक्रम द्वारा निर्धारित न मानकर उसे पूर्णतः सामाजिक आविष्कारों का परिणाम माना है। इसी कारण यह विचारों के आदान.प्रदान तथा शिक्षा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है और इस प्रकार इसकी निरंतरता बनी रहती है। हर्सकोविट्ज का मत है '' कोई भी प्रजाति या समाज हो, संसार के किसी भी भूभाग में हो, सभी की कुछ समान मूल आवश्यकताएं होती हैं और इनको पूरा करने के लिए कुछ समान सांस्कृतिक प्रत्युत्तर भी होते हैं।.....संस्कृति मनुष्य और उसकी कृतियां हैं।'' मनुष्य की संस्कृति में भौतिक और अभौतिक दोनों ही तत्व हैं, जिन्हें हर्सकोविट्ज संस्कृति कहते हैं। मानव जीवन पर प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है। मानव का संपूर्ण सामाजिक पर्यावरण ही उसकी संस्कृति है। बील्स तथा हॉइजर का कथन है कि ''संस्कृति शब्द का प्रयोग कुछ निश्चित अर्थों में करते हैं, जैसे संस्कृति (क) समस्त मानव जाति में एक समय विशेष में सामान्य जीवन के तरीके या जीवन यापन या रहन.सहन के नमूने हैं या (ख) समाजों के एक समूह, जिनमें थोड़ी.बहुत अन्तःक्रिया होती रहती है, के रहन.सहन के तरीके हैं या (ग) व्यवहार के प्रतिमान हैं जो एक समाज विशेष में विशिष्ट रूप में पाए जाते हैं या (घ) व्यवहार करने के वे विशिष्ट तरीके हैं जो बड़े और जटिल रूप में संगठित समाज के विभिन्न भागों में विशेष रूप से पाए जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) संस्कृति से आप क्या समझते हैं?

(ख) संस्कृति के सम्बन्ध में विभिन्न परिभाषाओं का उल्लेख कीजिए।

2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

(क) संस्कृति वह जीवन पद्धति है, जिसका निर्माण मानव व्यक्ति तथा समूह के रूप में करता है।

(ख) 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक पुस्तक के लेखक जवाहर लाल नेहरू हैं।

1.3 संस्कृति की प्रकृति

संस्कृति की प्रकृति का अध्ययन करते हुए आप समझ पाएंगे कि संस्कृति एक समाज से दूसरे समाज तथा एक देश से दूसरे देश में बदलती रहती है। इसका विकास एक सामाजिक अथवा राष्ट्रीय संदर्भ में होने वाली ऐतिहासिक एवं ज्ञान संबन्धी प्रक्रिया व प्रगति पर आधारित होता है। किसी भी देश के लोग अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं द्वारा ही पहचाने जाते हैं। भगवत शरण उपाध्याय के अनुसार ''जब से मनुष्य ने चकमक से आग पैदा की और संयत उंगलियों ने वर्णपरक ध्वनियां निर्मित कीं, तब से वह जिज्ञासा के भय से, जानने की अधीरता से और अंधेरे से प्रकाश की ओर बढ़ने की प्रेरणा से उद्विग्न रहा है। प्रणय कामना ने उसके साहित्य का सर्जन किया, ज्ञानपिपासा ने उसे अपने जगत का बोध कराया और प्राणियों से सहानुभूति ने उसे दोलायमान जीवन का वह सुख दिया जो हंसता है, नाचता.गाता है, हास. परिहास मुहैया करता है। जीवन समग्र है, कम से कम उसकी सम्भावनाएं समग्र हैं..........संस्कृति समग्र है, अनवरत और सार्वभौमिक है, क्षैतिज (horizontal) और ऊर्ध्वाधर(vertical) है।....परिवर्तन संस्कृति के अवयवों का निर्माता नियामक है। इस प्रकार संस्कृति समान प्रयत्नों से उत्पन्न समान विरासत है, संयुक्त और समन्वित प्रयासों का प्रतिफलन है। संस्कृति समस्त के लिए समस्त का योगदान है। जल.कणों की भांति इकाइयां एक.दूसरे से जुड़ती हैं और एक प्रवहमान जलराशि बनाती हैं। धाराएं जो कभी विदेशी समझी जाती थीं, उसके जल में जा गिरती हैं और ऐसे खो जाती हैं कि पहचानी नहीं जा सकतीं। स्थानीय की अपनी विशेषताएं होती हैं। विजातीय संस्कृति के आगमन पर स्थानीय संस्कृति की उसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया होती है, किन्तु वह शीघ्र ही अपने को संयुक्त में लयकर शान्त हो जाती है। फिर जो कुछ उसने प्राप्त किया है उसे अपनी प्रकृति के अनुरूप ढाल नई संकेन्द्रित इकाई में अपनी विशेषताओं को समेकित तथा सुरक्षित बनाती है। यह प्रक्रिया एक इकाई से दूसरी इकाई में जारी रहती है और प्रत्येक परवर्ती इकाई अपनी पूर्ववर्ती इकाई से समृद्धतर हो निखर उठती है।''

हॉवेल का कथन है कि ''संस्कृति अनोखे रूप में मानव घटना है (human phenomenon) है और वह इस अर्थ में कि पशु जगत में, अन्य सभी प्राणियों में मनुष्य ही अकेला एक ऐसा प्राणी है, जो संस्कृति को बनाने और बनाए रखने की क्षमता रखता है। इसी संस्कृति की अवधारणा की सहायता से मानव के संबन्ध में अनेक रहस्यों का उद्घाटन होता है।'' बिडनी के मतानुसार ''मानव संस्कृति ऐतिहासिक है, क्योंकि इसमें परिवर्तन और नैरन्तर्य, नई वस्तुओं की बनावट और खोज तथा परंपराओं को आत्मसात करने की प्रक्रिया है। ''बी. एन. लूनिया का मत है'' संस्कृति को दो भिन्न.भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किएजाने के आधार पर इसके दो उपविभाग कहे जा सकते हैं, भौतिक और अभौतिक। मानव के जिन क्रियाकलापों में बाह्य विश्व के उपयोग या भौतिक प्रगति की प्रधानता है, उसे भौतिक संस्कृति कहा जा सकता है। कृषि, पशुपालन, यन्त्र निर्माण, विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन आदि भौतिक संस्कृति है। अभौतिक संस्कृति का संबन्ध विचारों, भावनाओं, आदर्शों और विश्वासों से है अर्थात मानव की मानसिक उन्नति के व्यापक अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है। इसमें धर्म, नीति, विधि.विधान, विद्याएं, कला.कौशल, साहित्य, मानव के समस्त सद्गुण और शिष्टाचार निहित हैं।''मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार संस्कृति का सम्बन्ध सामाजिक चेतना से है और सामाजिक चेतना तथा उससे उत्पन्न संस्कृति सामाजिक सत्ता पर निर्भर रहती है। अर्थात उत्पादन पद्धति और उससे उत्पन्न सामाजिक सम्बन्ध ही संस्कृति की आधारशिला है। उत्पादन के साधनों पर समाज के जिस वर्ग का अधिकार होता है, उसके आदर्शों की छाप उस संस्कृति पर होती है। वर्ग के अधिकार और सत्ता के बदलने से संस्कृति भी बदलती है। जब तक किसी संस्कृति को उत्पन्न करने वाला वर्ग स्वयं प्रगतिशील रहता है, तब तक उसकी संस्कृति भी प्रगतिशील रहती है। जब वह प्रगतिशील नहीं रहता, तब उसकी संस्कृति भी प्रगतिशील नहीं रहती। मूल्यहीन हो जाती है।

1.3.1 संस्कृति की प्रकृति को समझने में सहायक विशेषताएं

संस्कृति की प्रकृति को आप उसकी निम्न विशेषताओं के अध्ययन से समझ सकते हैं

1. संस्कृति सीखी जाती है– आपने पढ़ा कि सीखे हुए व्यवहार प्रतिमानों के संपूर्ण योग को संस्कृति कहते हैं। मनुष्य जिस संस्कृति में जन्म लेता है, उससे वह सीखता है। मानव की भाषा व प्रतीकों के माध्यम से विचारों के आदान.प्रदान की शक्ति इस बात की द्योतक है कि वह दूसरों से संस्कृति के तत्वों को सीख सकता है। जन्म के समय बच्चों में संस्कृति संगत व्यवहार करने का कोई भी तरीका नहीं होता है, इन्हें वह बड़े होने के साथ.साथ सीखने की जटिल प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त करता है।संस्कृति वह है जिसको समाज में आने के बाद व्यक्ति परिवार, जाति, बंधुत्व आदि. समूहों द्वारा सीखता है। पशुओं द्वारा सीखे हुए व्यवहार और मानव के संस्कृति पर आधारित व्यवहारों में जो अन्तर है, उसे समझे बिना संस्कृति की वास्तविक प्रकृति को नहीं समझा जा सकता। पशुओं द्वारा सीखे हुए व्यवहार वैयक्तिक होते हैं, इसलिए उसे संस्कृति नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत मानव की सांस्कृतिक व्यवस्था के व्यवहार, तरीके या आदतें सामूहिक आदतें होती हैं, जिन्हें हम जन रीति (folk ways), रूढ़ि (mores) या प्रथा (costums) कहते हैं।

2. संस्कृति में संचारित या हस्तांतरित होने का गुण है– मानव अपनी भाषा और प्रतीकों के माध्यम से संस्कृति में सम्मिलित विशेषताओं व ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित करता है। साथ ही अपनी पिछली पीढ़ियों की कृतियों के आधार पर वर्तमान जीवन पद्धति भी प्रारंभ करता है और प्रत्येक पीढ़ी को फिर आरंभ से सब कुछ सीखना या आविष्कार नहीं करना पड़ता, बल्कि वह प्राप्त अनुभवों और ज्ञान के आधार पर पहले से बेहतर तकनीक का विकास कर सकती है। इस प्रकार आप समझ सकते हैं कि संस्कृति अपने विकास, विस्तार तथा निरंतरता के लिए किसी एक व्यक्ति या समूह पर निर्भर नहीं रहती, क्योंकि यह अनेक व्यक्तियों की अन्तःक्रिया तथा एकाधिक पीढ़ियों की उपलब्धियों का फल होती है। कोई भी संस्कृति जड़ नहीं होती। वहपरिवर्तनशील और गतिशील होती है। उदाहरण के लिए भारतीय संस्कृति जो गुप्त काल में थी, वह आज नहीं है। लोगों के रहन. सहन, खान.पान और व्यवहार के तरीकों में काफी अन्तर आ गया है। इसी को हम सांस्कृतिक गतिशीलता कहते हैं। समय के साथ.साथ अधिक से अधिक ज्ञान, नए विचार तथा नए कौशल एवं परंपराएं संस्कृति के साथ जुड़ते चले जाते हैं और एक अन्तराल के बाद किसी विशिष्ट संस्कृति में सांस्कृतिक परिवर्तन संभव होते जाते हैं।

3. प्रत्येक समाज/समूहकी अपनी एक पृथकसंस्कृति होती है– प्रत्येक समाज की भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियां अलग.अलग होने के कारण उसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है।सामाजिक आवश्यकताएं भी प्रत्येक समाज मेंभिन्न.भिन्न होती हैं, जिससे संस्कृति का स्वरूप भी प्रत्येक समाज में अलग होता है। इन सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण एक समाज के सदस्यों के व्यवहारों की विशेषताएं दूसरे समाज के सदस्यों के व्यवहारों से पृथक होती हैं। संस्कृति में परिवर्तन भी तभी होता है, जब उस समाज के विशिष्ट व्यवहारों में परिवर्तन होता है। फिर भी संस्कृति के कुछ तत्व सभी समाजों में एक से या सामान्य होते हैं, जिन्हें मुरडॉक ने 'संस्कृति का सामान्य हर' (the common denominator of culture) कहा है। विभिन्न समाजों की संस्कृतियों में भिन्नताएं और समानताएं दोनों ही होती हैं।

4. संस्कृति में सामाजिक गुण निहित होता है– संस्कृति समाज के समस्त या अधिकतर सदस्यों का सीखा हुआ व्यवहार प्रतिमान होती है, इसलिए वह एक समाज की संपूर्ण सामाजिक जीवन विधि का प्रतिनिधित्व करती है। इस कारण इसमें व्यक्तिगत व्यवहारों पर सामाजिक दबाव डालने की शक्ति भी होती है। इसी सामाजिक दबाव के कारण सदस्यों की व्यवहार विधि में अधिक अंतर या भिन्नता उत्पन्न नहीं हो पाती। इसके फलस्वरूप समाज के व्यवहार प्रतिमानों (behavior pattern) में एकरूपता होती है और संस्कृति के

स्वरूप में भी एक प्रकार की स्थिरता बनी रहती है। इस स्थिरता का तात्पर्य यह नहीं है कि संस्कृति में परिवर्तन नहीं होता,बल्कि यह है कि संस्कृति एक अव्यवस्थित अवधारणा नहीं है।संस्कृति का मूल आधार जैविक न होकर सामाजिक है, क्योंकि शारीरिक लक्षण हमें आनुवांशिक धरोहर के रूप में प्राप्त होते हैं, पर हमारी आदतें, काम करने के तरीके सभी हम अपने समूह से सीखते हैं।

5. समूह के लिए संस्कृति आदर्श होती है – मुरडॉक के अनुसार ''काफी हद तक सामूहिक आदतों को , जिनसे संस्कृति का निर्माण होता है, व्यवहार के आदर्श नियम या प्रतिमान माना जाता है।'' विशेषकर जब अपनी संस्कृति की तुलना दूसरी संस्कृति से करने की आवश्यकता होती है, तो अपनी संस्कृति को आदर्श रूप में प्रस्तुत करने का मनोभाव उस समाज के अधितर लोगों में पाया जाता है। व्यवहार प्रतिमान सारे समूह का व्यवहार होने के कारण आदर्श व्यवहार माने जाते हैं। सैद्धान्तिक रूप से समूह के सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी संस्कृति के मानकों का पालन करेंगे। इसीलिए इन आदर्श सांस्कृतिक प्रतिमानों से संबन्धित सामूहिक अभिव्यक्तियों के बारे में व्यक्ति बहुत कुछ सचेत रहता है।

6. संस्कृति मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करती है–संस्कृति मानव की प्राणिशास्त्रीय तथा सामाजिक दोनों ही प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटाती है। संस्कृति के अन्तर्गत अनेक भाग और उपविभाग होते हैं, जो संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में संगठित होते हैं, यद्यपि इनमें से प्रत्येक भाग का एक विशिष्ट स्वरूप होता है। इनमें से प्रत्येक का संपूर्ण जीवन विधि में या सामाजिक जीवन में कोई न कोई कार्य होता है। इन समस्त भागों और उपविभागों में जो पारस्परिक संबन्ध तथा प्रभाव होता है, उनके संपूर्ण योग से ही संस्कृति के ढांचे का निर्माण होता है और प्रत्येक भाग की संपूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था में जो योगदान होता है, उसे उस भाग का कार्य (function) कहते हैं, जो उसके स्वरूप (form) से पृथक होता है। जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक अंग का संपूर्ण शरीर को जीवित रखने में महत्वपूर्ण योगदान होता है, उसी प्रकार प्रत्येक प्रथा या प्रत्येक संस्था का संपूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था की जीवन विधि को कायम रखने में महत्वपूर्ण योगदान होता है। संस्कृति के अध्ययन में प्रकार्यवादियों (functionalist) ने, जिनमें रैडक्लिफ ब्राउन तथा मैलिनोव्स्की का नाम विशेष उल्लेखनीय है, संस्कृति के इस प्रकार्यात्मक (functional) पक्ष पर विशेष बल दिया है।

7. संस्कृति में अनुकूलन करने का गुण होता है – ऊपर आपनेपढ़ा कि संस्कृति जड़ या स्थिर नहीं होती। गतिशीलता या समय.समय पर होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप इसका अनुकूलन बाहरी शक्तियों से होता रहता है। इसमें संस्कृति का भौगोलिक पर्यावरण से अनुकूलन विशेष रूप से उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए वनों में रहने वाला समुदाय अपनी सांस्कृतिक व्यवस्था का अनुकूलन वन की परिस्थितियों से करता है, परंतु भौगोलिक पर्यावरण संस्कृति को नहीं बल्कि सांस्कृतिक विकास की कृछ सीमाओं को निश्चित करता है, जिससे आगे एक निश्चित सांस्कृतिक स्तर के लोग नहीं जा सकते। ज्यों. ज्यों मानव की संस्कृति का विकास होता है, उसी के साथ भौगोलिक पर्यावरण का प्रभाव कम होता जाता है। संपूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था के विभिन्न अंगों या इकाइयों में विभिन्न समय में परिवर्तन होता रहता है और इन परिवर्तनों के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि दूसरे अंग या इकाइयां भी अपना अनुकूलन परिवर्तित भागों या इकाइयों के अनुरूप करते रहें। चूंकि अपनी विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए मनुष्य संस्कृति या इसकी विभिन्न इकाइयों को काम में लाता है, इसलिए मनुष्य को भी इन निरंतर परिवर्तनशील इकाइयों के साथ अपना अनुकूलन करना पड़ता है।

8 संस्कृति में संतुलन तथा संगठन होता है – संस्कृति के अन्तर्गत अनेक खण्ड या इकाइयां होती हैं, परंतु ये सब आकस्मिक और अव्यवस्थित नहीं होतीं। संस्कृति के इन खण्डों या इकाइयों में एक पारस्परिक संबन्ध तथा अन्तःनिर्भरता होती है, जिसके कारण ये बिल्कुल पृथक होकर कार्य नहीं करतीं। प्रायः वे दूसरी इकाइयों के साथ मिलकर कार्य करती हैं। इस सबके परिणामस्वरूप संस्कृति के संपूर्ण ढांचे में सन्तुलन

और संगठन बना रहता है। विभिन्न इकाइयों के एक दूसरे से सम्बन्धित तथा एक दूसरे पर आधारित होने के कारण संस्कृति के एक भाग में कोई परिवर्तन होने पर उसका कुछ न कुछ प्रभाव दूसरे भागों पर भी अवश्य पड़ता है। समनर के अनुसार''संस्कृति के विभिन्न भागों या इकाइयों में एकरूपता की ओर एक खिंचाव होता है, जिसके फलरूवरूप ये विभिन्न भाग एक साथ मिलते हैं और एक बहुत कुछ पूर्णतया संगठित समग्रता का निर्माण करते हैं। यह संपूर्ण समग्रता ही संस्कृति है। संस्कृति की यह विशेषता सादे, छोटे तथा पृथक समाजों में स्पष्ट रूप में देखने को मिलती है, क्योंकि ऐसे समाजों में तनाव उत्पन्न करने वाली शक्तियां कम होती हैं और संस्कृति के विभिन्न पक्षों तथा तत्वों में अधिक शीघ्रता से परिवर्तन भी नहीं होते।''

9. सांस्कृतिक विशेषताएं–संस्कृति में कुछ लक्षण ऐसे होते हैं जो एक विशेष वर्ग पर ही लागू होते हैं। उदाहरणार्थ भारतीय समाज में स्त्रियों के लिए तय साड़ी आदि कुछ परिधान, पुरुष धारण नहीं कर सकते । इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं। समाज की संरचना संस्कृति में ऐसी होती है कि जिस समूह की जो सांस्कृतिक विशेषताएं होती हैं, उसको वही समूह अपनाता है।

10. संस्कृति पराजैविक और परावैयक्तिक होती है– संस्कृति की प्रकृति पराजैविक होती है। कोई भी व्यक्ति संस्कृति के सभी तत्वों को नहीं अपना सकता, उनका पालन नहीं कर सकता। समूह के अलग.अलग व्यक्तियों की मृत्यु के बाद भी संस्कृति की निरन्तरता बनी रहती है। व्यक्ति के जीवन काल से संस्कृति का जीवन कहीं अधिक लम्बा होता है। संस्कृति में कई नए तत्व आते रहते हैं।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) संस्कृति किस प्रकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती है?
   (ख) किसी क्षेत्र विशेष की संस्कृति को उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियां किस प्रकार प्रभावित करती हैं?

2. **निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए**
   (क) संस्कृति सीखी जाती है।
   (ख) संस्कृति परिवर्तनशील और गतिशील नहीं होती।

1.4 संस्कृति के तत्व

आपने पढ़ा कि संस्कृति में सन्तुलन और संगठन होता है। यह संगठन अनेक तत्वों, इकाइयों, भागों और उपभागों को मिलाकर बनता है। ये तत्व या भाग छोटे से छोटे या बड़े से बड़े हो सकते हैं। इनमें जो पारस्परिक संबन्ध तथा अन्तर्निर्भरता पाई जाती है, उसी के कारण संस्कृति के ढांचे में सन्तुलन और संगठन उत्पन्न होता है। संस्कृतिके विभिन्न उपादानों को, जिनसे उसके ढांचे का निर्माण होता है, सांस्कृतिक तत्व, संस्कृति संकुल, संस्कृति प्रतिमान और सांस्कृतिक क्षेत्र कहा जाता है। ये सभी क्रमशः संस्कृति के बढ़ने वाले उपादान हैं और वह इस अर्थ में कि संस्कृति के तत्व/लक्षणसंस्कृति की सबसे छोटी इकाई है, जो परस्पर मिलकर एक संस्कृति संकुल(culture complex) का निर्माण करती है। ये संस्कृति संकुल , संस्कृति के ढांचे में एक विशेष ढंग से व्यवस्थित रहते हैं, जिससे संस्कृति को एक विशिष्ट स्वरूप प्राप्त होता है। संस्कृति के इस विशिष्ट स्वरूप को संस्कृति प्रतिमान कहते हैं।इस संस्कृति प्रतिमान अर्थात एक प्रकार की जीवन विधियों का फैलाव जिस विशिष्ट क्षेत्र में पाया जाता है, उसे सांस्कृतिक क्षेत्र कहते हैं।

1.4.1 सांस्कृतिकतत्व–(Culture Trait or Element)

संस्कृति के अन्तर्गत सम्पूर्ण जीवन विधियों का समावेश होता है। एक.एक विधि संस्कृति की एक. एक इकाई या तत्व है। संस्कृति की इन इकाइयों या तत्वों को सांस्कृतिक तत्व कहते हैं और ये तत्व

भौतिक और अभौतिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। इस प्रकार के असंख्यतत्वों को मिलाकर सम्पूर्ण सांस्कृतिक ढांचे का निर्माण होता हैऔर इसकी सबसे छोटी इकाई को सांस्कृतिक तत्व कहा जा सकता है। किसी भी संस्कृति के विश्लेषण और निरूपण में इन इकाइयों या सांस्कृतिक तत्वों को पहले एकत्रित करना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि इसके बिना संस्कृति के आधारभूत तत्वों या उपादानों को नहीं समझा जा सकता। प्रत्येक सांस्कृतिक तत्व का सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था में एक निश्चित स्थान तथा कार्य होता है। हॉबेल के अनुसार''एक सांस्कृतिक तत्व व्यवहार का एक प्रकार या इस प्रकार के व्यवहार से उत्पन्न एक भौतिक वस्तु है, जिसे सांस्कृतिक व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई माना जा सकता है।'' हर्सकोविट्ज ने सांस्कृतिक तत्व को एक संस्कृति विशेष में सबसे छोटी पहचानी जा सकने वाली इकाई कहा है और क्रोबर ने इसे ' संस्कृति का अति सूक्ष्म परिभाषित करने योग्य तत्व' के रूप में स्वीकार किया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक तत्व सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था की सबसे छोटी वह इकाई है, जिसका मानव जीवन में काम आने की दृष्टि से और विभाजन नहीं हो सकता।

सांस्कृतिक तत्व की तीन प्रमुख विशेषताएं हैं–

1. प्रत्येक सांस्कृतिक तत्व का उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक इतिहास होता है, चाहे वह इतिहास छोटा हो या बड़ा। उदाहरणार्थ सर्वप्रथम घड़ी का आविष्कार किसने किया और कब किया, आधुनिक एवं स्वयं क्रियाशील या अपने.आप चलने वाली घड़ी का विकास कैसे हुआ, आदि के सम्बन्ध में एक इतिहास है। इसी प्रकार एक विशेष प्रकार के विश्वास का या किसी पशु या पौधे का टोटेम के रूप में स्वीकार करने का एक इतिहास ढूंढा जा सकता है।ऐसे ही भारत में 'जय हिन्द' अभिवादन या सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। 'जय हिन्द' सांस्कृतिक तत्व है। सांस्कृतिक तत्वों का निजी अस्तित्व होते हुए भी वे सम्पूर्ण संस्कृति में घुले मिले रहते हैं। एक तत्व अन्य तत्वों पर आश्रित रहता है।

2.गतिशीलता सांस्कृतिक तत्व की एक उल्लेखनीय विशेषता है। इनकी संख्या में भी वृद्धि होती है। सांस्कृतिक तत्व से सम्बन्धित व्यक्ति जैसे.जैसे एक स्थान से दूसरे स्थान को फैलते हैं या दूसरे लोगों के सम्पर्क में आते हैं, वैसे.वैसे सांस्कृतिक तत्व भी फैलते रहते हैं। एक संस्कृति समूह दूसरे संस्कृति समूह से मिलता है तो सांस्कृतिक तत्वों का आदान.प्रदान होता है। आधुनिक युग में यातायात तथा संचार के साधनों में उन्नति होने के फलस्वरूप सांस्कृतिक तत्वों की गतिशीलता और भी बढ़ गई है। अनेक जनजातियों के सांस्कृतिक तत्व भी सभ्य समाजों में तेजी से फैलते जा रहे हैं। यह विशेषता अन्त तक सांस्कृतिक परिवर्तन का एक कारण बन जाती है और संस्कृति के ढांचे में परिवर्तन भी लाती है।

3.सांस्कृतिक तत्वों में पृथक.पृथक रहने की प्रवृत्ति नहीं होती है। ये सभीएक साथ मिलकर संस्कृति की एक या विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इन तत्वों को समझे बिना किसी भी संस्कृति को पूर्णतया समझना संभव नहीं है। किसी भी संस्कृति के अध्ययन, विश्लेषण तथा निरूपण में ये सांस्कृतिक तत्व वे प्राथमिक चरण या आधार हैं, जिन पर संपूर्ण सांस्कृतिक ढांचा निर्भर रहता है। गिफोर्ड तथा क्रोबर ने संस्कृति का अध्ययन सांस्कृतिक तत्व सम्बन्धी प्रश्नावली की सहायता से किया था। इन तत्वों के अध्ययन से एक और लाभ यह होता है कि इनके आधार पर दो या अधिक संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन संभव हो जाता है। टायलर ने भी इसी आधार पर विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन किया। इसी प्रकार बोआस ने यह अध्ययन करने के लिए कि पौराणिक कथाओं का मानव जीवन के तरीकों पर क्या प्रभाव पड़ता है, विभिन्न संस्कृतियों के सांस्कृतिक तत्वों को तुलनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है।

1.4.2 संस्कृति संकुल (culture complex)

मानव संस्कृति या समाज में एक सांस्कृतिक तत्व का कोई अर्थ नहीं होता है। प्रायः अनेक सांस्कृतिक तत्व एक साथ गुँथे रहकर मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।इसे ही संस्कृति संकुल

कहा जाता है। हॉबेल के अनुसार ''संस्कृति संकुल घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित प्रतिमानों का एक जाल है।'' उदाहरण के लिए भाषा एक संस्कृति संकुल है, क्योंकि इसके अन्तर्गत अनेक शब्दों, वाक्यों, कहावतों, व्याकरण आदि का , जो एक.एक सांस्कृतिक तत्व है, समावेश होता है । भाषा इन सबका अर्थपूर्ण संग्रह है जिसके द्वारा विचारों का आदान.प्रदान संभव होता है। इसी प्रकार भारत में खेती एक सांस्कृतिक तत्व है, परंतु इससे संबन्धित अन्य तत्व हैं, जैसे खेत जोतने के पहले हल और बैल की पूजा, यज्ञ आदि करना,चिड़ियों से फसल की रक्षा के लिए बिजूका लगाना, फसल काटकर खलिहान में रखना, अनेक प्रकार के अनाजों से भोजन बनाना आदि। किसी प्रतियोगिता में प्रयोग की जाने वाली हर एक वस्तु, नियम, दर्शकों द्वारा दिया जाने वाला प्रोत्साहन, विजय तथा पुरस्कार एवं विजय समारोह सभी एक तत्व है। इन सब तत्वों के योगको ही संबन्धित प्रतियोगिता का संकुल कहा जाएगा। संस्कृति संकुल के अनेक उदाहरण हमें अपने तथा आदिम समाज दोनों में ही मिल सकते हैं। कुछ संस्कृति संकुलों को सह संकुलों में भी विभाजित किया जा सकता है।

1.4.3 संस्कृति प्रतिमान (**Culture Pattern**)

हर्सकोविट्ज के अनुसार '' संस्कृति प्रतिमान एक संस्कृति के तत्वों का वह डिजाइन है, जो उस समाज के सदस्यों के व्यक्तिगत व्यवहार प्रतिमान के माध्यम से व्यक्त होता हुआ जीवन को सम्बद्धता , निरन्तरता तथा विशिष्ट स्वरूप प्रदान करता है।'' प्रत्येक संस्कृति में चाहे वह आदिम समाज की हो या सभ्य समाज की, एक संगठन होता है। संस्कृति इन तत्वों या संकुलों से इस प्रकार बनी होती है , जिस प्रकार पत्थरों से एक मकान। संस्कृति संकुलों के एक विशिष्ट ढंग से व्यवस्थित हो जाने से संस्कृति प्रतिमान बनता है और इन संस्कृति प्रतिमानों की सम्पूर्ण व्यवस्था को संस्कृति कहते हैं। अतः स्पष्ट है कि सम्पूर्ण सांस्कृतिकढांचे के अन्दर एक विशिष्ट ढंग या क्रम से सजे हुए संस्कृति संकुलों के सम्मिलित रूप को संस्कृति प्रतिमान कहते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत पाए जाने वाले संस्कृति प्रतिमान, जैसे जाति प्रथा, संयुक्त परिवार, धार्मिक भिन्नता, अध्यात्म, जीवन दर्शन,गांधीवाद आदि इस संस्कृति की विशेषताओं और आधारों को बताते हैं।

1.4.4 संस्कृति क्षेत्र (**Culture Area**)

वह भौगोलिक क्षेत्र जिसमें संस्कृति के एक से तत्व या संकुल विशेष रूप से पाए जाते हैं, सांस्कृतिक क्षेत्र कहलाता है। हर्सकोविट्ज के अनुसार ''उस क्षेत्र को जिसमें एक सी संस्कृतियां पाई जाती हैं, एक सांस्कृतिक क्षेत्र कहा जाता है।'' संस्कृति को चूंकि सीखा जाता है, इस कारण कोई भी व्यक्ति किसी भी संस्कृति को सीख सकता है। परंतु अपने पास.पड़ोस की संस्कृति को सीखना जितना सरल है, उतनी सरलता से दूर की संस्कृतियों को नहीं सीखा जा सकता। इस कारण सांस्कृतिक तत्वों में गतिशीलता का गुण होते हुए भी एक निश्चित भूभाग में हीवे विशेष रूप से पाए जाते हैं।ऐसा भी हो सकता है कि एक ही सांस्कृतिक तत्व विभिन्न क्षेत्रों में समान या एक से हों, फिर भी संपूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था या संस्कृति संकुल में उनका स्थान या विशेषता भिन्न.भिन्न क्षेत्रों में भिन्न होती है। क्लार्क विसलर के अनुसार ''सांस्कृतिक तत्व और संकुल , विशेषकर वे अगर अभौतिक हैं, दूसरे संस्कृति के तत्वों और संकुलों के साथ मिश्रित हुए बिना अधिक दूर तक नहीं फैल सकते। इसका प्रभाव यह होता है कि ये सांस्कृतिक तत्व और संकुल अपने मूल रूप में केवल एक सीमित क्षेत्र में ही पाए जाते हैं।'' विजलर ने ने लिखा है ''सांस्कृतिक क्षेत्र वह भौगोलिक प्रदेश है, जिसमें काफी संख्या में एक सी संस्कृति वाली बहुत कुछ स्वतंत्र जनजातियां निवास करती हैं।'' जैसा कि क्षेत्र शब्द से पता चलता है कि सांस्कृतिक क्षेत्र की कोई निश्चित सीमा रेखा नहीं होती है और वह इस अर्थ में स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि किसी स्थान पर एक सांस्कृतिक क्षेत्र समाप्त हुआ और दूसरा सांस्कृतिक क्षेत्र आरंभ हुआ।एक सांस्कृतिक क्षेत्र के आस.पास के जितने भी क्षेत्र या

प्रदेश होंगे, उन सब में उस सांस्कृतिक क्षेत्र की विशेषताएं अनेक रूपों में देखने को मिल सकती हैं। परंतु उसका यह फैलाव अनेक बातों पर निर्भर करेगा, जैसे यातायात और संचार के उपलब्ध साधन, सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित करने में प्राकृतिक बाधाएं, उस प्रदेश की अन्य भौगोलिक परिस्थितियां आदि।वास्तव में संस्कृतियों के विभिन्न स्वरूपों के निर्माण का मूल कारण है, उनको अपनाने और ग्रहण करने वाले विभिन्न मानव अंशों के समूहों की विशिष्ट मौलिक शक्ति। इतिहासकारों का कथन है कि एक संस्कृति के तत्वों को दूसरी संस्कृति वाले मानव समूह पूर्ण रूप से कभी नहीं अपना सकते। अन्य मानव समूह अपने से भिन्न संस्कृति का अनुकरण केवल बाहरी रूप में ही कर पाता है और अन्य संस्कृतियों की विशेषताओं को अपनाते हुए उनमें अपनी मौलिक प्रवृत्ति के अनुसार परिवर्तन कर देता है। यूनान की संस्कृति को यूरोप के रोमन लोगों ने परिवर्तित करके अपना लिया। इसी प्रकार भारत में आर्य संस्कृति ने संपर्क में आने पर लिंग पूजा और शिव पूजा अपना ली, अरब संस्कृति ने भारत की चिकित्सा प्रणाली और बीजगणित को अपनाया तो यूनान की संस्कृति ने भारतीय संस्कृति के दार्शनिक सिद्धांतों को अपनाया। आधुनिक यूरोप की संस्कृति में यहूदी, यूनानी और रोमन संस्कृतियों की विशेषताएं सम्मिलित हैं।

आधुनिक युग में यातायात और संचार के साधनों में उत्तरोत्तर प्रगति होने के कारण सांस्कृतिक आदान.प्रदान तथा अवसर के साधन बढ़ते जाने के कारण सांस्कृतिक क्षेत्र की सीमा रेखाएं और भी अनिश्चित होती जा रही हैं। आधुनिक समाज की संस्कृति का वास्तविक भौगोलिक क्षेत्र या सांस्कृतिक क्षेत्र तो सारी दुनिया है, जिसे भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) सांस्कृतिक तत्व की व्याख्या कीजिए।
   (ख) संस्कृति संकुल से आप क्या समझते हैं?
   (ग) सांस्कृतिक क्षेत्र के बारे में बताइये।
2. **निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए**
   (क) सांस्कृतिक ढांचे की सबसे छोटी इकाई सांस्कृतिक तत्व है।
   (ख) गतिशीलता सांस्कृतिक तत्व की एक प्रमुख विशेषता है।
   (ग) भाषा एक संस्कृति संकुल नहीं है।
   (घ)संस्कृति संकुलों के विशिष्ट ढंग से व्यवस्थित हो जाने से संस्कृति प्रतिमान बनता है।

1.5 सभ्यता और संस्कृति

सभ्यता (सिविलाइजेशन) और संस्कृति (कल्चर) दोनों शब्द प्रायः पर्याय के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं, फिर भी दोनों में मौलिक भिन्नता है। संस्कृति का संबन्ध व्यक्ति एवं समाज में निहित संस्कारों से है और उसका निवास उसके मानस में होता है। दूसरी ओर सभ्यता का क्षेत्र व्यक्ति और समाज के बाह्य रूप से है। इसलिए सभ्यता समाज के सामूहिक स्वरूप को आकार देती है। टायलर के अनुसार सभ्यता और संस्कृति पर्यायवाची शब्द हैं। वह लिखते हैं ''संस्कृति अथवा सभ्यता वह जटिल तत्व है, जिसमें ज्ञान, नीति, कानून, रीति.रिवाजों तथा दूसरी उन योग्यताओं और आदतों का समावेश है, जिन्हें मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते प्राप्त करता है।'' हर्सकोविट्ज के अनुसार ''सभ्यता और संस्कृति एक दूसरे के पर्याय हैं और संस्कृति के लिए एक शब्द है ''परम्परा'' और दूसरा ''सभ्यता''। इसके विपरीत मैलिनोव्स्की का मत है कि ''सभ्यता और संस्कृति शब्दों का प्रयोग भिन्न अर्थों में होना चाहिए। उनका कथन है कि ''ऊँची संस्कृति के एक खास पहलू को सभ्यता कहते हैं।....संस्कृति सामाजिक विरासत है जिसमें परंपरा से पाया हुआ कला. कौशल, वास्तु सामग्री, यांत्रिक क्रियाएं , विचार, आदतें और मूल्यों का समावेश होता है।'' हुमायूं कबीर के

मत में ''संस्कृति सभ्यता की उपलब्धि है। संस्कृति का जन्म तभी हुआ जब सभ्यता ने मानव अस्तित्व की समस्या हल कर ली या जब सभ्यता ने मनुष्य को दैनिक जीवन की आवश्यकताओं से मुक्ति दे दी।'' ओसवाल्ड स्पेंगलर ने संस्कृति और सभ्यता में विभेद माना है। उनका मत है कि सभ्यता किसी संस्कृति की चरम अवस्था और अनिवार्य परिणति है। हर संस्कृति की अपनी सभ्यता होती है। संस्कृति विस्तार है तो सभ्यता कठोर स्थिरता।'' ट्वायनबी ने संस्कृति शब्द का प्रयोग नहीं किया, बल्कि सभ्यता शब्द का प्रयोग किया। यांत्रिक व्यवस्था और सभ्यता में अन्तर मानते हुए उन्होंने कहा है कि ''यांत्रिक उन्नति न तो सांस्कृतिक उन्नति के लिए आवश्यक है और न उसकी सहकारी ही है। कभी.कभी यांत्रिक प्रगति सभ्यता के अवरोध तथा अवनति के सहयोग से होती है,उसके साथ.साथ होती है।'' इतिहास में ऐसे अवसर हुए हैं जबकि यांत्रिक प्रगति हो रही है और सभ्यता की प्रगति या तो नहीं हो रही है अथवा उसमें अवनति हो रही है। उदाहरण के लिए कई स्थानों में कृषि शिल्प की उन्नति सभ्यता की अवनति के साथ देखी गई है। टी. एस. इलियट के अनुसार ''शिष्ट व्यवहार, ज्ञानार्जन, कलाओं का सेवन आदि के अतिरिक्त किसी जाति अथवा राष्ट्र की वे समस्त क्रियाएं व कार्य, जो उसे विशिष्ट बनाते हैं, उसकी संस्कृति के अंग हैं, जैसे घुड़दौड़, नावों की प्रतियोगिता, खान.पान का प्रकार, संगीत नृत्य आदि।'' उन्होंने अपनी पुस्तक 'नोट्स टुवर्ड्स डेफिनिशन ऑफ कल्चर' में लिखा है कि '' व्यक्ति की संस्कृति समूह या वर्ग की संस्कृति पर और वर्ग की संस्कृति उससे पूर्ण समाज की संस्कृति पर, जिसका वह अंग है, निर्भर करती है। परिवार संस्कृति के विकास में बड़ा कार्य करता है। यह व्यक्ति को मुख्य रूप से दैनिक शिष्टाचार, खान.पान एवं रहन.सहन के तरीकों की शिक्षा देता है और अपने सदस्यों में विभिन्न तरीकों का भी विकास करता है।''ये सब संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग हैं।

1.5.1 सभ्यता का अर्थ

मनुष्य की समस्त प्रगति सभ्यता (सिविलाइजेशन) कहलाती है। अंग्रेजी भाषा के Civilization शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के ब्पअपजें और ब्पअपे शब्द से हुई है जिसका अर्थ 'नगर' या 'नगर निवासी' है। जे. एच.फिचर के अनुसार '' एक सभ्य समाज के लोग यायावर जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा बड़ी संख्या में स्थायी निवास बनाकर रहते हैं। उनकी लिखित भाषा होती है, उसमें कार्य विभाजन और विशेषीकरण पाया जाता है। उसका व्यवहार औपचारिक रूप से आदिम समाजों की अपेक्षा संस्थाकृत एवं जटिल होता है।'' टायलर का मत है कि ''सभ्यता मानव जाति की वह विकसित अवस्था है, जिसमें उच्च श्रेणी के वैयक्तिक एवं सामाजिक संगठन पाए जाते हैं, जिसका उद्देश्य मानव के गुणों, शक्ति और प्रसन्नता में वृद्धि करना है।'' गिलिन और गिलिन ने संस्कृति के अधिक जटिल और विकसित रूप को ही सभ्यता कहा है। मैकाइवर एंड पेज के अनुसार ''सभ्यता का तात्पर्य उस समग्र प्रक्रिया और संगठन से है, जिसे मनुष्य ने अपनी जीवन की परिस्थितियों को नियंत्रित करने के लिए निर्मित किया है। एस. एम. फेयरचाइल्ड का तर्क है कि ''यह सांस्कृतिक विकास की एक उच्चतर अवस्था है, जिसकी विशेषता बौद्धिक, सौन्दर्यात्मक, तकनीकी एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों के कारण है।''बी. एन.लूनिया 'प्राचीन भारतीय संस्कृति' में लिखते हैं''सभ्यता से तात्पर्य उन सब उपकरणों, कला.कौशल के तंत्र, भौतिक सामग्री, संस्थाओं और तरीकों से है, जिनके द्वारा मनुष्य उन जीवन स्थितियों का सृजन करता है, जिनमें रहकर वह अपनी मूल आवश्यकताओं को स्वतंत्रतापूर्वक और सरलतापूर्वक पूरा कर सके। सभ्यता द्वारा मनुष्य अपनी परिस्थितियों को इस प्रकार नियंत्रित और परिवर्तित करता है कि वह अधिकाधिक व्यक्तियों के लिए स्वतंत्रतापूर्वक रहने की स्थितियां प्रस्तुत कर सके। सभ्यता मानव क्रिया.कलापों से उत्पन्न होने वाली उन वस्तुओं का नाम है जो मनुष्य की सुरक्षा और स्वतंत्रता का कारण होती हैं। सभ्यता का निर्माण करके मनुष्य ने जीवित रहने की कठिन

क्रिया को रोचक तथा संपूर्ण बना लिया है और उन आवश्यकताओं को , जो उसके कष्ट का कारण थीं , आनन्द तथा रस का स्रोत बना दिया है।''

1.5.2 सभ्यता और संस्कृति में अन्तर

मनुष्य तीन स्तरों पर जीता और व्यवहार करता है– भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक। जबकि सामाजिक और राजनीतिक रूप से जीवन जीने के उत्तरोत्तर उत्तम तरीकों को तथा चारों ओर की प्रकृति के बेहतर उपयोग को 'सभ्यता' कहा सकता है और जब एक व्यक्ति की बुद्धि और अंतरात्मा के गहन स्तरों की अभिव्यक्ति होती है, तब उसे संस्कृति कहा जा सकता है। सभ्यता से मनुष्य के भौतिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है, जबकि संस्कृति से मानसिक क्षेत्र की। मनुष्य की जिज्ञासा का परिणाम धर्म और दर्शन हैं। सौन्दर्य की खोज करते हुए वह संगीत, साहित्य, मूर्ति, चित्र, वास्तु आदि अनेक कलाओं व शिल्पों को उन्नत करता है। सामाजिक और राजनीतिक संगठनों का निर्माण करता है। इस प्रकार मानसिक क्षेत्र में उन्नति की सूचक उसकी प्रत्येक सम्यक कृति संस्कृति का अंग बनती है। इसमें प्रमुख रूप से धर्म, दर्शन, सभी ज्ञान विज्ञानों व कलाओं, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं और प्रथाओं का समावेश होता है।

मैकाइवर और पेज ने इन दोनों के विभेद को इस प्रकार प्रकट किया है–1. सभ्यता को मापना सरल है, क्योंकि उसका सम्बन्ध वस्तुओं की भौतिक उपयोगिता से है। पर संस्कृति को नहीं, क्योंकि प्रत्येक समाज की अपनी मूल्य व्यवस्था होती है। मूल्यों में भिन्नता के कारण कोई ऐसा सर्वमान्य पैमाना नहीं जिसके आधार किसी संस्कृति को मापा जा सके और एक की तुलना में दूसरी को अच्छी या बुरी कहा जा सके। 2. सभ्यता उन्नतिशील है और वह एक दिशा में उस समय तक निरन्तर प्रगति करती है, जब तक उसके मार्ग में कोई बाधा न आए। आविष्कारों और नई खोजों के कारण सभ्यता में कई नए तत्व जुड़े हैं और पहले की अपेक्षा वह अधिक समृद्ध है। किन्तु संस्कृति के बारे में यह बात नहीं कही जा सकती। 3. एक समाज सेदूसरे समाज में सभ्यता का हस्तांतरण बिना किसी परिवर्तन के किया जा सकता है, किन्तु संस्कृति का नहीं। उदाहरण के लिए रेल, वायुयान, मोटर, टाइपराइटर, कम्प्यूटर, उत्पादन की मशीनें आदि का एक समाज से दूसरे समाज में यथावत हस्तांतरण हो सकता है, परंतु एक समाज के रीति.रिवाजों, धर्म, दर्शन, मूल्यों, कला, विचारों और विश्वासों को बिल्कुल उसी रूप में हस्तांतरित नहीं किया जा सकता। उनमें थोड़ा. बहुत परिवर्तन आ जाता है। 4. सभ्यता साधन है और संस्कृति साध्य। उदाहरणार्थ कला एवं संगीत हमें मानसिक शान्ति एवं आनन्द प्रदान करते हैं तो इन्हें प्राप्त करने के लिए हम कई उपकरणों व वाद्य यंत्रों का प्रयोग करते हैं जो सभ्यता के अंग हैं। 5. सभ्यता का संबन्ध जीवन की भौतिक वस्तुओं से है, जो मानव के बाह्य जीवन और व्यवहार से संबन्धित हैं। इस कारण इसमें परिवर्तन और सुधार संस्कृति की अपेक्षा सरल है।संस्कृति का संबन्ध मानव के आन्तरिक गुणों, विचारों, विश्वासों, मूल्यों, भावनाओं एवं आदर्शों से है। अतः कठिन परिश्रम के बिना संस्कृति में परिवर्तन एवं सुधार संभव नहीं है। सभ्यता की भांति संस्कृति में प्रतिस्पर्धा नहीं पाई जाती। गिसबर्ट (ळपेइमतज) का कथन है कि सभ्यता यह बताती है कि हमारे पास क्या है, जबकि संस्कृति यह बताती है कि हम क्या हैं। 6. सभ्यता मूर्त है, जबकि संस्कृति अमूर्त है।

1.5.3 सभ्यता और संस्कृति का संबन्ध

सभ्यता के द्वारा ही संस्कृति एक समाज से दूसरे समाज को एवं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित की जाती है। सभ्यता का निर्माण करके ही मनुष्य सांस्कृतिक विकास के पथ पर अग्रसर होता है। प्रायः मनुष्य की उपयोगिता से संबन्ध रखने वाली तथा निरुपयोगी रुचियां एक.दूसरे से मिली रहती हैं। जब मनुष्य खेतों में काम करता है, तबवह गीत भी गाता है। उपयोगी वस्तुओं को बनाते हुए वह प्रयास करता है किवे वस्तुएं सुन्दर भी हों। जब मनुष्य भवनों का निर्माण करता है, तब उन्हें उपयोगी बनाते हुए सुन्दर बनाने का प्रयत्न भी करता है। मनुष्य के उपयोगी क्रिया.कलापों पर उसके नैतिक तथा दार्शनिक

विचारों और निष्ठाओं का प्रभाव पड़ता है। वास्तविक जीवन में मनुष्य के उपयोगी और सांस्कृतिक क्रिया. कलाप परस्पर मिश्रित हो जाते हैं।

प्रत्येक सभ्यता, प्रत्येक संस्कृति अपने आप में पूर्ण होती है। उसके सभी अंशएक.दूसरे पर अवलम्बित और किसी एक केन्द्र से संलग्न होते हैं। सभ्यता का संबन्ध उपयोगिता के क्षेत्र से है और संस्कृति का मूल्यों के क्षेत्र से है। मैकाइवर तथा हुमायूं कबीर के मतानुसार सभ्यता और संस्कृति में वही संबन्ध है , जो साध्य और साधनों में होता है। परंतु जिस प्रकार साध्य और साधनों को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार सभ्यता तथा संस्कृति को भी एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। मनुष्य की कल्पना के कुछ क्षेत्र जैसे कला, काव्य और साहित्य , जहां सौन्दर्य और उपयोगिता के पहलू एक दूसरे से अनिवार्य रूप से सम्मिश्रित हो जाते हैं, वहां सभ्यता और संस्कृति दोनों का ही समन्वय हो जाता है। डी.डी. कोसंबी का कथन है कि ''कुछ लोग संस्कृति को धर्म, दर्शन, कानून व्यवस्था, साहित्य, कला, संगीत आदि के साथ जोड़कर नितांत बौद्धिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के रूप में ही ग्रहण करते हैं। कभी.कभी इसका विस्तार करके शासक वर्ग के शिष्टाचारों का भी इसमें समावेश कर लिया जाता है। परंतु इस प्रकार की संस्कृति को इतिहास का प्रेरणास्रोत मानने में अनेक कठिनाइयां हैं। किसी भी समुन्नत संस्कृति का मूलाधार है अनाज की सुलभता और वह भी वास्तविक अनाज उत्पादक की अपनी निजी आवश्यकता की पूर्ति के बाद बचे हुए अनाज की सुलभता। मेसोपोटामिया के भव्य जिक्कुरात मन्दिर, चीन की महान दीवार, मिस्र के पिरामिड या आधुनिक गगनचुम्बी इमारतें खड़ी करने के लिए उस काल में अतिरिक्त अनाज की उतनी ही अधिक सुलभता भी अवश्य रही होगी।''

सभ्यता और संस्कृति मनुष्य के सृजनात्मक क्रियाकलापों के ही परिणाम हैं। जब ये क्रियाकलाप मूलभावना ,चेतना और कल्पना को प्रबुद्ध करते हैं, तब संस्कृति का उदय होता है। किन्तु वैज्ञानिक चिन्तन तथा सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में उपयोगिता , मूल भावना, चेतना और कल्पना के पहलू परस्पर मिल जाते हैं। जब एक वैज्ञानिक अपने प्रयोगों और अन्वेषणों में सत्य की खोज करता है , तब उसके क्रियाकलाप सांस्कृतिक हैं। परंतु जबवह एक आविष्कारक और निर्माता के रूप में प्राकृतिक शक्तियों को मनुष्य की उपयोगिता के लिए नियंत्रित करता है, तब वह सभ्यता का सृजन करता है। मनुष्य स्वभावतः प्रगतिशील प्राणी है। वह बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की प्राकृतिक परिस्थिति को निरंतर सुधारता और उन्नत करता रहता है।ऐसे समाज, जाति या वर्ग जो सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नत या श्रेष्ठ नहीं हैं, उच्च कोटि की सभ्यता को जन्म नहीं दे सकते हैं। जब तक लोग संस्कृति के एक विशिष्ट स्तर तक नहीं आ जाते, तब तक वे लोकतंत्र, समाजवाद और साम्यवाद जैसे जटिल सामाजिक और आर्थिक संगठनों तथा संस्थाओं को आयोजित या विकसित नहीं कर सकते।

इस प्रकार आप समझ पाए होंगे कि सांस्कृतिक क्रियाकलापों से सभ्यता विकसित होती है। संस्कृति के अभाव में सभ्यता अपना अस्तित्व बनाए नहीं रख सकती। संस्कृति और सभ्यता की प्रगति अधिकतर एक साथ होती है और दोनों का एक.दूसरे पर प्रभाव भी पड़ता है। संस्कृति मनुष्य के जीवन और अस्तित्व को अधिक सचेतन, व्यापक और समृद्ध बनाती है, उसकी आध्यात्मिकता में वृद्धि करती है, धर्म और दर्शन का विकास करती है, संस्कृति की यह सार्थकता है।अक्सर हम सभ्यता और संस्कृति शब्दों का प्रयोग अपने व्यवहार में प्रायः एक ही अर्थ में करते हैं।पर समाजशास्त्रियों ने इन दोनों में विभेद भी किया है। सभ्यता का तात्पर्य प्रायः उच्च आदर्शों और मूल्यों से युक्त समाज के अर्थ में किया जाता है।पर कई मानवशास्त्रीय अध्ययनों से यह निष्कर्ष भी निकले हैं कि बहुत से आदिम समाजों के अपने जीवन मूल्य , धारणाएं, विश्वास, नियम, धर्म तथा परंपराएं रही हैं। समय के साथ.साथ उन्होंने भी प्रकृति के सापेक्ष्य अपनी जीवन पद्धति में कुछ परिवर्तन किए, जो आधुनिक संदर्भों में उनकी संस्कृति की विशेषता थी।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) सभ्यता से आप क्या समझते हैं?

(ख) सभ्यता और संस्कृति में अन्तर बताइये।

2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

(क) टायलर के अनुसार 'सभ्यता और संस्कृति पर्यायवाची शब्द हैं'।

(ख) हर्सकोविट्ज ने संस्कृति और सभ्यता को एक दूसरे का पर्याय बताया है।

1.6 सारांश

इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययन से आप समझ पाए होगे कि संस्कृति किसी समाज में गहराई से व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने, खाने.पीने, बोलने, संगीत, नृत्य, गायन, साहित्य, कला, वास्तु शिल्प, दर्शन, धर्म और विज्ञान, रीति.रिवाज, परंपराओं , पर्व, जीने के तरीके और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष के अपने दृष्टिकोण आदि में परिलक्षित होते हैं। मानव का शारीरिक.मानसिक अस्तित्व जिन साधनों से बना रहता है, उन साधनों की समग्रता को ही संस्कृति कहते हैं।वास्तव में जहां व्यक्ति सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का परिणाम है, वहां संस्कृति भी व्यक्ति की प्रक्रियाओं का परिणाम है। इसके अन्तर्गत वे बौद्धिक, कलात्मक और सामाजिक आदर्श तथा संस्थाएं सम्मिलित हैं, जिन्हें समाज के सदस्य अपनाते हैं। संक्षेप में आप यह समझ सकते हैं कि संस्कृति किसी समाज के वे सूक्ष्म संस्कार हैं, जिनके माध्यम से लोग परस्पर संप्रेषण करते हैं, विचार करते हैं और जीवन के विषय में अपनी अभिवृत्तियों और ज्ञान को दिशा देते हैं। प्रत्येक संस्कृति के कुछ जीवन मूल्य होते हैं, जिनका पालन करने की अपेक्षा उस सांस्कृतिक परिवेश से जुड़े समाज के सदस्यों द्वारा की जाती है। इसी प्रकार विभिन्न संस्कृतियों में विभिन्न प्रकार की धारणाएं और विश्वास भी प्रचलित होते हैं।संस्कृति में जो सन्तुलन और संगठन होता है, वह अनेक छोटे.बड़े तत्वों, इकाइयों, भागों और उपभागों के पारस्परिक संबन्ध तथा अन्तर्निर्भरता के कारण बनता है। विभिन्न संस्कृतियों में निहित तत्वों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि विभिन्न समूहों में एक दूसरे के विचारों और परंपराओं का आदान.प्रदान भी होता रहा है। संस्कृति के विभिन्न उपादानों को, जिनसे उसके ढांचे का निर्माण होता है, सांस्कृतिक तत्व, संस्कृति संकुल, संस्कृति प्रतिमान और सांस्कृतिक क्षेत्र कहा जाता है।

संस्कृति अर्जित व्यवहार तथा समाज में रहने वाले व्यक्तियों का विचार है। संस्कृति की विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्कृति अमूर्त है। इसका संबन्ध समाज और व्यक्ति से है।दूसरी ओर सभ्यता में हम मानव निर्मित भौतिक वस्तुओं को सम्मिलित करते हैं। सभ्यता शब्द का प्रयोग मानव समाज के एक सकारात्मक, प्रगतिशील और समावेशी विकास को इंगित करने के लिए किया जाता है।सभ्यता और संस्कृति में विभेद होते हुए भी दोनों की प्रगति अधिकतर एक साथ होती है। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करती हैं और परस्पर प्रभावित भी होती हैं। प्रायः प्रत्येक समाज में राजनीतिक और आर्थिक रूप से प्रभुत्व सम्पन्न समूह ही सभ्यता का प्रतीक होता है। लोग अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार उनके रहन.सहन, आचार.विचार, वेश.भूषा आदि का अनुकरण करने लगते हैं। उनकी भाषा सभ्य और सुशिक्षित होने की पहचान का मानक और शिक्षा ज्ञान, विधान और प्रशासन का माध्यम बन जाती है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

खण्ड 1.2 के उत्तर

1. (क) व (ख) देखें 1.2

2. (क)देखें 1.2(सही) (ख) देखें 1.2 (गलत)

खण्ड 1.3 के उत्तर

1.(क) देखें 1.3.1 (ख) देखें 1.3.1

2. (क) देखें 1.3.1 (सही) (ख) देखें 1.4.1 (गलत)

खण्ड 1.4 के उत्तर

1. (क) देखें 1.4.1 (ख) देखें 1.4.1 (ग) देखें 1.4.4

2. (क) देखें 1.4.1 (सही) (ख) देखें 1.4.1 (सही)

(क) देखें 1.4.2 (गलत) (ख) देखें 1.4.3 (सही)

खण्ड 1.5 के उत्तर

1. (क) देखें 1.5 (ख) देखें 1.5.2

2. (क) देखें 1.5 (सही) (ख) देखें 1.5 (सही)

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.संस्कृति का अर्थ स्पष्ट करते हुए बताइये कि संस्कृति से आप क्या समझते हैं?

2.संस्कृति की प्रकृति की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

3.संस्कृति के तत्वों की विवेचना कीजिए।

4.सभ्यता और संस्कृति पर एक निबन्ध लिखिए।

1.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री एवं संदर्भ ग्रन्थ

1 मैकाइवर–पेज, सोसायटी एन इंट्रोडक्टरी एनेलिसिस, न्यूयॉर्क 1909

2 रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा, दिल्ली 2007

4 एन. के. बोस, कल्चर एंड सोसाइटी इन इण्डिया,1967, बॉम्बे

5 बी. एन. लूनिया, प्राचीन भारतीय संस्कृति, आगरा, 1966, 1977

6 टी. एस. इलियट, नोट्स टुवर्ड्स द डेफिनिशन ऑफ कल्चर, 1948, इंग्लैण्ड,

7 मेनस्प्रिंग्स ऑफ सिविलाइजेशन, ई. हंटिंग्टन, न्यूयॉर्क, 1945

8 रुथ बेनेडिक्ट, पैटर्न्स ऑफ कल्चर, बोस्टन, 1934

9 रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पटना, 1956

ब्लॉक एक

इकाई दोः भारतीय संस्कृति की विशेषताएं

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 भारतीय संस्कृति और भौगोलिक परिदृश्य

2.3 समन्वयवादी संस्कृति

2.3.1 भारतीय संस्कृति पर विभिन्न जातियों और संस्कृतियों का प्रभाव

2.4 बहुदेववाद एवं अवतारवाद

2.5 कर्म व पुनर्जन्म का सिद्धान्त

2.6 वर्ण एवं जाति प्रथा

2.7 भाषागत विशेषताएं

2.8 हिन्दू धर्म व संस्कृति

2.9 सारांश

2.10 तकनीकी शब्दावली

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.12 सहायक पाठ्य सामग्री

2.13 निबंधात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

प्रत्येक संस्कृति का विकास एक निश्चित भौगोलिक.आर्थिक परिवेश में होता है। अपने परिवेश से अनुकूलन करने अथवा उसे अपने अनुकूल बनाने और जीवन के लिए आवश्यक सुविधाओं को जुटाने के प्रयास में मानव समुदायों में विशेष प्रकार की जीवन पद्धति का विकास होता है। उनका खान.पान, सन्निवेशों का स्वरूप, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक व्यवस्था, संस्थाएं, धारणाएं सब की सब एक निश्चित भौगोलिक परिस्थिति की देन होती हैं। भौगोलिक परिस्थितियों में परिवर्तन आने पर सभ्यताओं का अवसान होने लगता है अथवा वहां रहने वाले लोग अपने क्षेत्र को छोड़कर अन्य क्षेत्रों की ओर संक्रमित

होने के लिए बाध्य होते हैं। संक्रमण की यह प्रक्रिया सभ्यताओं के अभ्युदय और अवसान दोनों में चलती रहती है। इस संक्रमण या संस्कृतियों के बीच संपर्क के कारण विभिन्न समुदायों की भाषा, धर्म, रीति.रिवाज, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। कार्ल सौएर के अनुसार प्रत्येक सांस्कृतिक क्षेत्र मूलतः एक आर्थिक क्षेत्र होता है और उसका गठन तथा ऐतिहासिक विकास क्षेत्र के भौतिक संसाधनों द्वारा निर्धारित होता है (इंसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशियल साइंसेज , न्यूयॉर्क, 1953, खण्ड 5)। भारतीय भूभाग को देखें तो यह एक विशिष्ट भौगोलिक, प्राकृतिक और उनसे निर्मित सामाजिक. सांस्कृतिक क्षेत्र है। दूसरे शब्दों में कहें तो किसी देश के इतिहास और उसके निवासियों के जीवन को उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियां प्रभावित करने वाला कारक होती हैं। यह भूगोल उन निवासियों की शारीरिक बनावट, मानसिक तथा शारीरिक विकास एवं कार्यों, रहन.सहन, रीति.रिवाज, वेश.भूषा, भोजन, उद्योग.धंधे, सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं पर भी प्रभाव डालता है।

2.1 उद्देश्य

•पिछले अध्याय में आप संस्कृति के अर्थ और प्रकृति के बारे में विस्तार से पढ़ चुके हैं। यहां आप भारतीय संस्कृति की विशेषताओं का अवगाहन करेंगे। साथ ही अन्य संस्कृतियों के साथ इसके सम्पर्क से होने वाले परस्पर प्रभाव की भी समीक्षा करने में सक्षम होंगे।

•सांस्कृतिक परंपराओं पर ऐतिहासिक एवं वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाकर ही आप भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को समुचित ढंग से परिभाषित कर सकेंगे।

•आप यह भी समझ पाएंगे कि प्रत्येक संस्कृति में कुछ तत्व ऐसे होते हैं, जो किसी काल.विशेष में किसी भू. भाग के समाज के लिए देशकाल और परिस्थिति के अनुरूप सम्मिलित किए गए, पर वर्तमान में अप्रासंगिक हो गए हैं। उदाहरण के लिए वर्ण और जाति व्यवस्था एक समय शायद स्वाभाविक थी और आज भारतीय संस्कृति की मानववादी परंपराओं के लिए अनुचित भी है।

•आप यह भी समझेंगे कि भारतीय संस्कृति किसी एक धर्म या संप्रदाय की संस्कृति का प्रतिनिधित्व नहीं करती, अपितु प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान तक इस संस्कृति में विभिन्न धाराओं का समावेश हुआ और इन सभी की विशेषताओं से मिलकर इस बहुरंगी संस्कृति ने जन्म लिया।

2.2 भारतीय संस्कृति और भौगोलिक परिदृश्य

भारत की भौगोलिक परिस्थितियों ने उसके ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्वरूप को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को समझने से पूर्व आपके लिए भारत की भौगोलिक संरचना को समझना आवश्यक है। उसी के प्रकाश में आप समझ पाएंगे इस विशाल भूभाग में भौगोलिक संरचनात्मक विविधता के साथ ही सांस्कृतिक रूप से भी विविधता दिखाई देती है।

उत्तर में महाहिमालय की विस्तीर्ण पर्वतमालाओं से लेकर दक्षिण के समुद्रतटीय क्षेत्र और पश्चिम में राजस्थान के मरुस्थलीय इलाकों से लेकर पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक भारतीय संस्कृति में विविधताओं का निदर्शन होता है। इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों ने अपने क्षेत्र की परिस्थितियों के अनुरूप ही विशिष्ट जीवन पद्धति का विकास किया है। प्रायः सभी आरंभिक सन्निवेशों का विकास उन नदी घाटियों में हुआ जहां जमीन अधिक उपजाऊ थी और सिंचाई तथा आवागमन के साधन सुलभ थे। इसीलिए प्राचीन काल के

नागर सन्निवेशों के अवशेष प्रायः इन्हीं क्षेत्रों में मिलते हैं। जनसंख्या में वृद्धि होने के साथ ही अन्य उपजाऊ क्षेत्रों की तलाश में संक्रमण प्रारंभ हुआ। फलतः जिन क्षेत्रों में जमीन अधिक उपजाऊ थी, वहां जनसंख्या का घनत्व अधिक हुआ। दुर्गम एवं भौगोलिक जटिलताओं तथा विषम जलवायु वाले क्षेत्रों में कृषि विस्तार की संभावनाएं काफी कम होने से स्थायी जीवन पद्धति का विकास नहीं हो पाया। उन क्षेत्रों में व्यापार वाणिज्य का अधिक विकास हुआ और प्रव्रजनशीलता बनी रही। इस संचरणशील जीवन की छाया संबन्धित क्षेत्र के लोकगीतों में भी मिलती है। भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप ही छोटे और बड़े राज्यों का भी विकास हुआ। समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिण वाला भूभाग यहां सदा से एक इकाई माना जाता रहा। वायु पुराण में उल्लेख है कि,

''उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम

वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।''

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. भारत के भूगोल ने उसकी संस्कृति को किस प्रकार प्रभावित किया है?

2.3 समन्वयवादी संस्कृति

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है इसका समन्वयवाद। ऐतिहासिक कालक्रम में अनेक सभ्य व बर्बर कबीलों ने भी भारत की सीमाएं लांघ कर यहां प्रवेश किया, चाहे वे आक्रान्ता के रूप में आए या व्यापारी के रूप में, यहां के सामाजिक ताने.बाने में अपनी संस्कृति की छाप छोड़ी और स्वयं इसमें विलीन हो गए। भारतीय संस्कृति ने उनकी सांस्कृतिक उपलब्धियों को अंगीकार कर सबको अपने में समाहित कर लिया और हजारों वर्ष पुरानी इस संस्कृति का निरन्तर विकास किया। डी.डी. कोसंबी ने उचित ही कहा है कि ''भारतीय संस्कृति की संभवतः सबसे बड़ी विशेषता है– अपने ही देश में इसकी निरंतरता।''

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी लिखा है–
''हेथाय आर्य, हेथाय अनार्य, हेथाय द्रविड़ चीन,
शक, हूण, दल,पाठान, मोगल एकदेहेहलोलीन''

भगवत शरण उपाध्याय के अनुसार ''भारतीय संस्कृति अन्तहीन विभिन्न जातीय इकाइयों के सुदीर्घ संलयन का प्रतिफलन है। इसके निर्माण में विभिन्न जातियों का अत्यंत विविध, व्यापक और गहन योग रहा है। विश्व संस्कृति को भारत ने जितना दिया है, उतना संभवतः किसी अन्य अकेले राष्ट्र ने नहीं दिया। लेकिन विभिन्न संस्कृतियों की विशेषताओं को आत्मसात भी किया है, चाहे ऑस्ट्रिक, सुमेरी और असुरी, आर्य और ईरानी, यूनानी और शक, कुषाण और आभीरी, गुर्जरी और हूण, इस्लामी और यूरोपीय, प्रायः सभी ने भारत को विचारों का एक नया समुच्चय प्रदान किया।'' जवाहर लाल नेहरू ने रामधारी सिंह दिनकर के ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' की प्रस्तावना में लिखा है कि ''कुछ लोगों ने हिन्दू , मुस्लिम और ईसाई संस्कृति की चर्चा की है। यद्यपि यह सच है कि जातियों और राष्ट्र की संस्कृतियों पर बड़े बड़े धार्मिक

आन्दोलनों का असर पड़ा है। भारत की ओर देखने पर मुझे लगता है , जैसा कि दिनकर ने भी जोर देकर दिखलाया है कि भारतीय जनता की संस्कृति का रूप सामासिक है और उसका विकास धीरे. धीरे हुआ है। एक ओर इस संस्कृति का मूल आर्यों से पूर्व मोहनजोदारो आदि की सभ्यता तथा द्रविड़ों की महान सभ्यता तक पहुंचता है। दूसरी ओर इस संस्कृति पर आर्यों की बहुत गहरी छाप है, जो भारत में मध्य एशिया से आए थे। पीछे चलकर यह संस्कृति उत्तर पश्चिम से आने वाले तथा फिर समुद्र की राह से पश्चिम से आने वाले लोगों से बार.बार प्रभावित हुई। इस प्रकार हमारी संस्कृति ने धीरे.धीरे बढ़कर अपना आकार ग्रहण किया। इस संस्कृति में समन्वयन तथा नए उपकरणों को पचाकर आत्मसात करने की अद्‌भुत योग्यता थी। जब तक इसका यह गुण शेष रहा , यह संस्कृति जीवित और गतिशील रही। लेकिन बाद में सांमन्तों और मठाधीशों के निहित स्वार्थ और और प्रतिद्वन्द्विता के कारण इसकी गतिशीलता जाती रही, जिससे यह जड़ हो गई और उसके सारे पहलू कमजोर पड़ गए। भारत के समग्र इतिहास में हम दो परस्पर विरोधी और प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों को काम करते देखते हैं। एक तो वह शक्ति है, जो बाहरी उपकरणों को पचाकर समन्वय और सामंजस्य पैदा करने की कोशिश करती है और दूसरी वह जो विभाजन को प्रोत्साहन देती है, जो एक बात को दूसरी से अलग करने की प्रवृत्ति बढ़ाती है।''

इस समन्वयवादी संस्कृति के विकास में अनेक प्रजातियों और उनकी संस्कृतियों का संगम रहा है। ईसा पूर्व की दूसरी सहस्राब्दि के मध्य में आक्रमण कर विजय प्राप्त करने वाले आर्य कबीलों का भारतीय सभ्यता पर तीव्र प्रभाव पड़ा। इन्होंने अपने शत्रुओं को दस्यु, अनासा (चपटी नाक वाले), अदेववादी, यज्ञ विरहित, लिंग पूजक तथा दास जैसी उपाधियां दीं। किन्तु शीघ्र ही आर्यों के सामाजिक ढांचे में द्रविड़ सभ्यता के प्रभाव से तेजी से परिवर्तन हुआ। कालान्तर में हम देखते हैं कि आर्यों ने सिन्धु सभ्यता की अनेक विशेषताओं को अपना लिया। दिनकर के अनुसार '' इस भारत ने केवल उन्हें ही नहीं पचाया, जो आर्यों के बाद आए थे, उसने आर्यों को भी पचाकर उन्हें प्राग्वैदिक भारत का अंग बना दिया।'' वे आगे लिखते हैं ''अगर ईसाइयों और मुसलमानों को छोड़ दें, तब भी इस देश में एक के बाद एक कम से कम ग्यारह प्रजातियों के आगमन और समागम का प्रमाण मिलता है।.....नीग्रो, ऑस्ट्रिक, द्रविड़, आर्य, यूनानी, यूची, शक, आभीर, हूण, मंगोल और मुस्लिम आक्रमण के पूर्व आने वाले तुर्क इन सभी जातियों के लोग कई झुण्डों में इस देश में आए और हिन्दू समाज में दाखिल होकर सब के सब उसके अंग हो गए।'' .कर्मकांड की जटिलता और बहुलता और ब्राह्मण वर्ग के सामाजिक जीवन पर हावी हो जाने के कारण तत्कालीन धार्मिक परंपराओं के भीतर से ही उसके विरुद्ध एक प्रचंड सांस्कृतिक विद्रोह उठा, जिसे एक प्रकार से शास्त्रीय परंपराओं के विरुद्ध लोक परंपराओं का विद्रोह भी कहा जा सकता है। इस विद्रोह ने धार्मिक उपासना का सरलीकरण किया। वेदों की सर्वाच्चता को नकारा, धार्मिक भाषा के रूप में संस्कृत के स्थान पर जनभाषाओं को महत्व दिया। वेदों की सत्ता को नकारने के कारण इन्हें नास्तिक परंपरा भी कहा जाता हैं। इनमें बौद्ध और जैन धर्म प्रमुख हैं। कालान्तर में ब्राह्मण परंपरा ने बुद्ध को अवतार मान लिया और धीरे. धीरे बौद्ध धर्म भी कुछ नये देवरूपों और स्मारकों का योगदान दे कर ब्राह्मण परंपरा में ही समा गया।

उत्तरी क्षेत्र की भौगोलिक दुर्गमता के कारण आर्यों के बाद बाहर से आव्रजन करने वाले लोग इस्लाम की तरह की किसी विशिष्ट धार्मिक परंपरा से जुड़े नहीं थे और वे कालान्तर में भारतीय संस्कृति में ही विलीन हो गये। सिथियन और हूण तथा उसके बाद भारत आने वाली कुछ अन्य जातियों के लोग राजपूतों की शाखाओं में शामिल हो गए। इस सम्मिलन से एक ओर विचारों और सिद्धांतों में उसने उदार होने का दावा किया, तो दूसरी ओर जाति प्रथा, छुआछूत जैसी कुप्रथाओं के चलते संकीर्णता में भी वृद्धि हुई। इस प्रकार न केवल मध्य एशिया के खानाबदोशों ने ,जिनके पास अपनी कोई सामाजिक व्यवस्था या

सभ्यता न थी, भारत में प्रवेश किया और भारतीय जीवन को प्रभावित किया, ईसाई जीवन दर्शन और विश्वासों वाले लोग भी आए और इस देश में बस गए। दिनकर के मतानुसार''यहां तक कि इस्लाम जो अपने को स्वतंत्र रखने का मंसूबा लेकर चला था, वह भी भारत में आकर कुछ परिवर्तित हो गया। यद्यपि भारतीय मुसलमान धर्म के मामले में अपनी सत्ता को स्वतंत्र रखने में बहुत दूर तक कामयाब हुए, लेकिन संस्कृति की दृष्टि से वे भी अब भारतीय हैं।''

2.3.1 भारतीय संस्कृति पर विभिन्न जातियों और संस्कृतियों का प्रभाव

भारत में आकर बसने तथा यायावर जीवन का परित्याग करने के साथ ही आर्यों ने ऋग्वेद में दूसरे देशों के जो साहित्यिक और सांस्कृतिक शब्द सम्मिलित किए, उससे उनकी संस्कृति के समन्वित होने के संकेत मिलते हैं। भगवत शरण उपाध्याय के विवेचन से ज्ञात होता है कि विभिन्न परंपराएं जैसे शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित जल प्रलय की कहानी असुर जाति के जरिए सुमेरी परंपरा से ली गई। असुर जाति जिसने ईराक में फरात और दजला के ऊपरी भागों के अपने आवासों से निकल कर साम्राज्य विस्तार किया, ने वास्तुकला तथा विभिन्न ललित कलाओं के क्षेत्र में प्राचीन भारत को प्रभावित किया। महाभारत तथा पुराणों में असुर मय की चर्चा आचार्य और असाधारण वास्तुकार के रूप में हुई है। असुर, फिनीशियन, सुमेरी आदि के साथ व्यापारिक आदान.प्रदान से आर्थिक क्षेत्र में प्रभाव पड़ा। भारत और ईरान के संबन्ध भी अत्यंत प्राचीन रहे। समान उपासना शब्द बहुत अधिक संख्या में ऋग्वेद में प्रयुक्त हुए हैं। उन्होंने ही पश्चिम में प्राचीन यूनानियों से लेकर पूर्व में शायद भारतीयों तक फैले आर्य कबीलों को वर्णमाला दी। इस संपर्क ने न केवल व्यापारिक क्षेत्र को बल्कि शासन पद्धति को भी प्रभावित किया। द्रविड़ों की अनसिली पोशाकें, धोती और दुपट्टा जैसी पोशाकों ने आर्यों की व्यक्तिगत ऊनी पोशाकों को समृद्ध किया। परवर्ती युगों में ईरानी पद्धति ने न केवल कला एवं वास्तुकला के क्षेत्र में अपितु दरबारी रस्मों , दायें से बायें लिखी जाने वाली खरोष्ठी लिपि, शिलालेखों एवं स्तंभों पर आलेखों के अंकन में भी भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया। एशिया में मिस्र से लेकर पाटलिपुत्र तक चार हजार ईसापूर्व से लेकर तीसरी सदी ई. पू. तक मिस्र.सुमेरिया, असुरिया.फारस, फारस.भारत की कड़ी अविच्छिन्न बनी रही। वास्तुकला के क्षेत्र में स्तूप सुमेर और बाबुल के जग्गुरत तथा मिस्र के पिरामिड और मिनारा आदि में खोद कर निकाले गए मकबरे उन स्तूपों के पर्ववर्ती नमूने थे, जो गांधार, पश्चिमी पंजाब और सिंध में ईरानी प्रभुत्व के समय बने थे। मूर्तिकला के क्षेत्र में और भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। कनिष्क ने अपने सिक्कों में फारस के देवी. देवताओं के नामों का उल्लेख किया। जन्म कुण्डली के लिए संस्कृत में कोई शब्द नहीं है, भारतीय ज्योतिषि इसके लिए होड़ाचक्र का प्रयोग करते थे जो यूनानी शब्द होरस(सूर्य देवता) से बना है। सिकन्दर के अभियान के बाद भारतीय.यूनानी, भारतीय.पह्लव, शक और कुषाणों ने यहां की राजनीति, सामाजिक आचार. व्यवहार तथा दर्शन एवं विचारों , खगोल विद्या, कला, सिक्के ढालने की कला, भारतीय शब्दावली (जैसे यवनिका) पर गहरा प्रभाव डाला। ज्योतिष में यूनानी प्रभाव का पता गार्गी संहिता और वाराहमिहिर से भी लगता है। गांधार कला के रूप में बुद्ध की मूर्तियों पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट है। यूनानी संपर्क से भारत पश्चिमी जगत के संपर्क में आया। गुप्त काल मे ं(चौथी से छठी शताब्दी तक) भारत में रोमन बस्तियां बसने लगीं। भारत के बाजारों में रोमन दीनार का प्रचलन हुआ। ज्योतिष पर रोमन प्रभाव भी है। रोमन सम्राटों के समकालीन प्रारंभिक कुषाण शासकों के सिक्कों पर रोम के मानदण्डों का प्रभाव है। यूनानियों द्वारा आरंभ की गई गांधार शैली को विकसित और प्रचलित करने का कार्य शकों और कुषाणों ने किया। शकों से शक संवत प्राप्त हुआ (जिसकी स्थापना 78 ई. में कनिष्क ने की)। पांचवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में आए आभीर(अहीर) और गुर्जरों ने लोकप्रिय बोलियों प्राकृत और अपभ्रंश को प्रभावित किया और महत्वपूर्ण प्राकृत गुर्जरी से आधुनिक गुजराती भाषा का

जन्म हुआ। गुप्त काल में अनेक ईसाई बस्तियों का भी उदय हो चुका था। अरबों ने यूनानियों के दर्शन और विज्ञान को यूरोप के लिए संरक्षित किया और भारत से गणित तथा औषधि विज्ञान और चीन से कागज तथा छापे की मशीन पश्चिम में ले जाकर उसे प्रबुद्ध किया। अरबों से भारत में खगोलीय गणना का नया तरीका पंचांग और ताजिकिस्तान में फारसी भाषा में तैयार किए गए ताजिकी ग्रंथ के अन्तर्गत ढेर सारे विज्ञान लिए गए। इस्लाम का भाषा, साहित्य, कला, विज्ञान के क्षेत्र में प्रभाव पड़ा। इस्लामी प्रभाव का एक प्रमुख परिणाम था, मुस्लिम सूफी संतों का हिन्दू जनता से संपर्क। सूफी मत इस्लामी मत की कट्टरता के विरुद्ध प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुआ था और उदार संतों ने इस नए आन्दोलन का नेतृत्व किया। इस्लाम ने हिन्दू समारोहों, सामाजिक रीतियों, वेश.भूषा ,भाषा, विचार और आदर्शों, और साहित्य, ललित कलाओं , वास्तु शिल्प तथा संगीत और विज्ञान को गहरे रूप में प्रभावित किया। वास्तुकला में दोनो शैलियों के मिश्रण से एक नई शैली का जन्म हुआ। इसी प्रकार चित्रकला में मुगल कलम का प्रादुर्भाव हुआ और स्थापत्य की तरह ही मुस्लिम तथा हिन्दू संस्कृतियों के मेल से यह पूर्णतः भारतीय हो गई। भाषा में अनेक अरबी, फारसी, तुर्की शब्दों का समावेश हुआ। उर्दू भाषा का जन्म इन्हीं सब का परिणाम था। भारतीय संस्कृति पर यूरोपीय, मुख्यतः अंग्रेजों के संपर्क से राष्ट्रवाद का बोध, राजनैतिक.भौगोलिक एकता, स्वतंत्रता का विचार आया और भारतीय पश्चिमी शिक्षा, ज्ञान.विज्ञान और आधुनिक विचारों से अवगत हुए। अंग्रेजों और इससे पूर्व आए आक्रान्ताओं में एक मूल अंतर यह था कि अंग्रेज यहां बसने नहीं अपितु औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए आए थे। उन्होंने जहां एक ओर भारतीय अर्थव्यवस्था का शोषण किया, वहीं दूसरी ओर उनके प्रयत्नों से अतीत का गौरव भी उद्घाटित हुआ। भारतीय कला, साहित्य, संगीत, शिक्षा, सामाजिक रीति रिवाजों आदि भी यूरोपीय प्रभाव से अछूते नहीं रहे।

कुल मिलाकर आप ये समझ पाए होंगे कि इन सभी ने स्थानीय साहित्य, कला, विज्ञान और संस्कृति को प्रभावित किया और मिली.जुली संस्कृति पर गहरी छाप छोड़ी और उस समन्वयवादी, विविधताओं से भरी संस्कृति को जन्म दिया जिसे आज हम भारतीय संस्कृति के नाम से जानते हैं।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) भारतीय संस्कृति एक समन्वयवादी संस्कृति रही है।

   (ख) भारतीय संस्कृति पर विभिन्न जातियों और संस्कृतियों का प्रभाव।

2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

(क) भारतीय संस्कृति विभिन्न प्रजातियों और उनकी संस्कृतियों के मिश्रण से निर्मित है।

(ख) आर्यों के सामाजिक ढांचे पर द्रविड़ सभ्यता का प्रभाव पड़ा।

(ग) खरोष्ठी लिपि बायें से दायें लिखी जाती थी।

(घ) गांधार कला के रूप में बुद्ध की मूर्तियों पर यूनानी प्रभाव है।

2.4 बहुदेववाद एवं अवतारवाद

धर्म के क्षेत्र में देखें तो हिन्दू मत में बहुदेववाद की अवधारणा हैं, इस्लाम एकेश्वरवादी है, तो बुद्ध अनीश्वरवाद को मानते दिखाई देते हैं। हिन्दू मत में कुछ देवता वे हैं, जिनकी कल्पना वेदों ने की, कुछ प्राक्वैदिक भारत में पूजे जाते थे और बाद में वैदिक धर्म में प्रवेश पा गए। तीसरे प्रकार के देवता आर्य द्रविड़ मिश्रण के बहुत बाद बाहर से आने वाली नई जातियों के साथ आए होंगे। विभिन्न देवी.देवताओं की उपासना के साथ ही यह भी माना गया कि विभिन्न नामों से पुकारे जाने पर भी सब एक ही हैं। यास्क ने कहा कि व्यक्ति रूप से भिन्न होते हुए भी , जैसे असंख्य मनुष्य राष्ट्र रूप में एक हैं, वैसे ही विविध रूपों में प्रकट होने पर भी देवों में एक ही परमात्मा व्याप्त हैं। इन्हीं परमात्मा को याज्ञिकों और ब्राह्मण ग्रंथों ने प्रजापति कहा है। सभी देवता इन्हीं प्रजापति के विशिष्ट अंग माने गए हैं।

खण्ड 2.3 में भारतीय संस्कृति के समन्वयवादी रूप के अध्ययन से आप विभिन्न प्रजातियों की परस्पर अन्तःक्रिया व अन्तर्सम्बन्धों के परिणामस्वरूप विकसित हुए सांस्कृतिक परिदृश्य को समझ पाए होंगे। यह समन्वय हमें धार्मिक क्षेत्र में भी दिखाई देता है। डी.डी.कोसंबी के अनुसार ''ब्राह्मणों ने धीरे धीरे बची. खुची कबीलाई व श्रेणी जातियों में भी प्रवेश किया, यह प्रक्रिया आज तक चालू है। इसका अर्थ था नए देवताओं की पूजा। कबीलाई देवताओं को ब्राह्मण धर्म के प्रतिष्ठित देवताओं के समकक्ष मान लिया गया और जिन कबीलाई देवताओं को आत्मसात करना कठिन था, उन्हें प्रतिष्ठित बनाने के लिए नए ब्राह्मण धर्म ग्रंथों की रचना की गई। इन नए देवताओं के साथ नए अनुष्ठान भी अस्तित्व में आए। इस समूची प्रक्रिया के बारे में महाभारत, रामायण तथा पुराणों में भरपूर सामग्री मिलती है। न केवल कृष्ण को बल्कि बुद्ध और आदिम मत्स्य, कच्छप तथा वराह जैसे टोटेम मूलक देवताओं को भी विष्णु नारायण का अवतार घोषित कर दिया गया। इसी प्रकार हनुमान, शेषनाग, नन्दी आदि को उपासना में स्थान मिला। आदिम देवताओं की पूजा संस्कृतियों के पारस्परिक आदान.प्रदान की प्रक्रिया का ही अंग थी। मातृसत्तायुगीन तत्वों को आत्मसात किया गया तथा मातृदेवियों को किसी न किसी नर देवता की पत्नी के रूप में स्वीकार किया गया।'' लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती आदि के रूप में आप इन्हें देख सकते हैं। शिव की पूजा जिस रूप में हिन्दू समाज में प्रचलित है, वह रूप वेदों में नहीं मिलता। इस पर आर्य समाज के बाहर द्रविड़ और ऑस्ट्रिक प्रभाव स्पष्ट है। कालान्तर में शिव की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और कुछ समय बाद लिंग पूजा को भी मान्यता प्राप्त हो गई। भण्डारकर के अनुसार ''रुद्र शिव का संबन्ध आरंभ में जंगली जातियों से भी रहा होगा या यह भी संभव है कि जंगली जातियों के बीच प्रचलित देवताओं के भी गुण बाद में चलकर रुद्र शिव की कल्पना में आ मिले।'' सुनीति कुमार चटर्जी का मत है कि '' द्रविड़ लोग भारत में मेडीटरेनियन समुद्र के पास से आए थे और संभवतः शिव और शक्ति विषयक दार्शनिक भाव भी वहीं से लाए।'' डी. डी. कोसंबी का कथन है ''वेद के रुद्र और बाद के शिव एक ही हैं।'' आर्यों की पूजा आराधना में योग का समावेश हुआ। इसी प्रकार उमा अर्थात पार्वती की उपासना में परमेश्वरी के रूप से आगे जाकर चामुण्डा, काली आदि विकराल रूपों की कल्पना का भी अपना इतिहास है। सांपों की पूजा, भूत पिशाच का भय, अनेक प्रकार के टोटके आदि के बारे में भी अनुमान है कि वे आर्येतर समाज से हिन्दू धर्म में आकर मिले। आर्यों के प्राकृतिक शक्तियों रूपी देवी.देवताओं के स्थान पर विष्णु और शिव की उपासना के साथ.साथ समाज में ऐसे सैकड़ों व्रत, आचार, अनुष्ठान और रिवाज प्रचलित हुए जिनका उल्लेख वेदों में नहीं मिलता। उत्तर भारत में मुख्य रूप से शिव और उमा की पूजा प्रचलित है, गणेश की प्रतिष्ठा विघ्नहर्ता के रूप में है तो दक्षिण में शिव के पूरे परिवार की पूजा का व्यापक प्रचार है। शिव और उमा के साथ वहां कार्तिकेय और गणेश की पूजा भी बड़े उत्साह के साथ की जाती है। गणेश आर्येतर देवता माने गए हैं। ऋग्वेद में

उल्लिखित विष्णु शब्द 'सूर्य' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सुनीतिकुमार चटर्जी के अनुसार ''आर्यों के सूर्यवाचक देवता विष्णु भारत में आकर द्रविड़ों के एक आकाश देव से मिल गए, जिनका रंग द्रविड़ों के अनुसार आकाश के समान ही नीला अथवा श्याम था।'' भण्डारकर लिखते हैं कि प्राचीन काल में वैष्णव धर्म मुख्यतः तीन तत्वों के योग से उत्पन्न हुआ था। पहला वेद में उल्लिखित विष्णु शब्द सूर्य के अर्थ में , दूसरा महाभारत के शान्तिपर्व के नारायणीय उपाख्यान में उल्लिखित नारायण धर्म और तीसरा वासुदेव मत। इन तीन तत्वों ने मिलकर वैष्णव धर्म को उत्पन्न किया।'' लेकिन उसमें कृष्ण के ग्वाला रूप और राधा के प्रेम की कथाएं बाद में संभवतः आर्येतर प्रभाव से जुड़ीं (दिनकर)। आगे चलकर इसमें 'वासुदेव धर्म' और 'भागवत धर्म' के रूप हमें मिलते हैं। कृष्ण का प्राचीनतम उल्लेख पहले छान्दोग्य उपनिषद में और फिर महाभारत में मिलता है। ए.एल.बाशम के अनुसार ''इन महान देवताओं के अतिरिक्त अल्प महत्व के असंख्य देवता थे। प्रत्येक ग्राम का एक स्थानीय देवी.देवता होता था, जिसे ग्राम देवता कहते थे, जो प्रायः एक अपरिष्कृत आदि देवता की शक्ति के रूप में किसी पूज्य वृक्ष के नीचे स्थापित होता था। स्थानीय देवियों का बहुधा दुर्गा के साथ तादात्म्यीकरण कर दिया गया, किन्तु वे कभी पौराणिक कथाक्रम में सम्पूर्णतः सम्मिलित नहीं की गईं और न ही उन्हें पति प्रदान किए गए थे, जैसे शीतला, मनसा आदि।...इसी प्रकार सर्पात्माएं, यक्ष, गन्धर्व, अप्सराएं, विद्याधर आदि अर्धदेवता थे।...इसके अलावा पीपल, वट, अशोक, तुलसी आदि वृक्ष पूजा के रूप आए।'' डॉ राधाकृष्णन के अनुसार ''हिन्दुत्व के कुछ गिने हुए सिद्धांतों में कट्टरता से विश्वास करने के बदले , अत्यंत व्यापक उदारता का विकास किया। आदिवासी जनता के पास जो अनेक देवी.देवता थे तथा बाद को जो देवता दूसरी जातियों के साथ बाहर से आए उन सबको हिन्दुत्व ने स्वीकार कर लिया एवं कालक्रम में उसने यह भी सिद्ध कर दिखाया कि ये देवी.देवता हिन्दुत्व के ही हैं।'' दिनकर के अनुसार '' अनेक जातियों के देवी.देवताओं के आ मिलने के कारण बहुदेववाद हिन्दुत्व का अनिवार्य अंग बन गया। अतएव सब हिन्दू किसी एक देवी देवता को नहीं पूजते हैं। अनेक देवी देवताओं के आने से उनके महात्म्य की भी अनेक कथाएं पुराणों में आ मिलीं। जिन विभिन्न नृवंशों की संततियों को लेकर हिन्दू जाति की रचना हुई, उनके विभिन्न उपासना मार्ग भी हिन्दुत्व के अपने अंग बन गए, अतः हम नहीं कह सकते कि हिन्दुत्व की अपनी उपासना पद्धति कौन सी है.........जिन ग्राम देवता और देवियों के पूजकों को मनु ने अनेक स्थानों पर पतित कहा है, तो गांवों में अब ब्राह्मण भी भूत प्रेत और ग्राम देवता की पूजा करते हैं। आरंभ में इन देवताओं के पुरोहित भी शूद्र रहे होंगे, किन्तु आमदनी का रास्ता देखकर ब्राह्मणों ने उन्हें भी अपदस्थ कर दिया होगा। आर्येतर परंपराओं से वृक्षों, नदियों की पूजा, होली, वसंतोत्सव आदि अनेक उत्सव आदि हिन्दू समाज में आए।'' डी. डी. कोसंबी के विवरण से स्पष्ट होता है कि आदिम कबीलाई देवताओं में और गाँवों में निम्न कोटि के देवताओं में कुछ साम्य पाया जाता है। आदिम उत्पत्ति का समर्थन ग्रामीण पूजा पद्धतियों के नामों से भी होता है। सहोद्गम के कुछ चिह्न कभी कभी सामूहिक वार्षिक पूजा में प्रकट होते हैं, विशेषकर मातृदेवियों की पूजा में। किसानों द्वारा कुछ दूसरे उच्च श्रेणी के देवताओं की भी पूजा की जाती है, जो स्थानीय देवताओं से एक सीढ़ी ही ऊपर होते हैं। जैसे एक पत्थर पर उच्चित्रित नाग देवता को क्षेत्रपाल माना जाता है। अन्य छोटे देवताओं को जोताई, बुवाई, कटाई आदि के अवसर पर सन्तुष्ट करना होता है। और भी ऊँचे स्तर पर ब्राह्मण देवता हैं। कभी कभी स्थानीय आदिम देवी या देवता को ब्राह्मण धर्म के ग्रंथों में वर्णित किसी देवी.देवता के रूप में भी पहचाना जा सकता है। पुराने देवताओं को समाप्त नहीं किया गया, उन्हें अपनाकर नए रूप में ढाला गया। इस प्रकार ब्राह्मण धर्म में उन सामाजिक समूहों को कुछ हद तक एकजुट किया गया, जिनमें आपस में कोई एकसूत्रता नहीं थी।''कोसंबी लिखते हैं कि '''इस प्रक्रिया का भारतीय इतिहास में निर्णायक महत्व है, क्योंकि प्रथम इसने

देश को कबीले से समाज व्यवस्था की ओर आगे बढ़ाया और फिर इसने देश को अन्धविश्वास के गंदे दलदल में फँसाकर रखा।''

दूसरी ओर अवतारवाद भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता रही है। विष्णु के दस अवतारों की परिकल्पना की गई। विष्णु के वामनावतार की कथा का संकेत ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में पाया जाता है। ईसा से तीन सौ वर्ष पूर्व वासुदेव कृष्ण विष्णु के अवतार माने जाने लगे थे। ''कृष्ण की शिशु से लेकर उदात्त रूप तक अनेक रूपों में उपासना प्रारंभ हुई। इसके बाद बाकी अवतार भी विष्णु के अवतार माने जाने लगे तथा उन्हीं दिनों राम का अवतार होना भी प्रचलित हो गया।....बुद्ध विष्णु के अन्तिम अवतार थे ''(ए.एल.बाशम)। बौद्ध और जैन साहित्य को छोड़कर और सभी भारतीय साहित्य में राम विष्णु के अवतार के रूप में सामने आते हैं। बौद्ध धर्म के साथ राम कथा का जो रूप भारत से बाहर पहुंचा, उसमें वे विष्णु के अवतार नहीं रहे। दिनकर के अनुसार ''राम एक ऐसे चरित्र हैं, जो ब्राह्मण धर्म में विष्णु के अवतार, बौद्ध धर्म में बोधिसत्व तथा जैन धर्म में आठवें बलदेव के रूप में प्रतिष्ठित हुए तथा आगे चलकर जिनकी भक्ति में शिव भक्ति भी समाहित हो गई।'' टी.पी.श्रीनिवास आयंगार के अनुसार ऋग्वेद में उल्लिखित इन्द्र के विरुद्ध लड़ने वाले असुर योद्धा और बाद के भारतीय साहित्य के नायक कृष्ण द्रविड़ों के एक यौवन प्रतीक देवता थे। इसी प्रकार हनुमान और ऋग्वेद के कृषाकपि के आदिरूप वास्तव में द्रविड़ों के नर वानर अनमन्ति थे।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. भारतीय संस्कृति में बहुदेववाद।

2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

(क) शिव की उपासना पर द्रविड़ और ऑस्ट्रिक प्रभाव है।

(ख) भारतीय उपासना पद्धति एकेश्वरवादी है।

(ग)बुद्ध विष्णु के अन्तिम अवतार माने गए।

2.5 कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत

कर्मवाद का सिद्धांत हिन्दू धर्म का एक अभिन्न अंग था। कर्म पूर्वजन्म के कार्यों का अविज्ञात रूप था और यद्यपि जैन धर्म की भांति हिन्दू धर्म के अन्तर्गत यह कोई तात्विक पदार्थ या श्रेणी न था । यह विचार किया जाता था कि उसका संचय होता है और वह व्ययशील है। ए.एल बाशम के अनुसार '' कर्म के द्वारा ही अपर जन्म का दैवी, मानवी, पाशविक अथवा राक्षसी शरीर प्राप्त होता था और कोई पूर्व कर्म मनुष्य के चरित्र, वैभव, सामाजिक वर्ग, सुख और दुख के अधीन नहीं था। प्रत्येक सत्कर्म का सुफल आज हो या कल सुख होता था और प्रत्येक असत्कार्य का परिणाम दुख होता था। हिन्दू धर्म ने पुनर्जन्म से मुक्ति का भाव, जो लगभग समस्त भारतीय विचारधारा में व्यापक है, परंपरा से प्राप्त किया। मुक्ति की अवस्था की कल्पनाएं अथवा मुक्ति और उसे प्राप्त करने के साधनों के सम्बन्ध में विस्तृत भिन्नता थी। यह माना गया कि संसार जो एक शरीर से दूसरे शरीर तक की यात्रा है और बहुधा सतत गतिमान चक्र है।'' दिनकर का

कथन है ''आत्मा, पुनर्जन्म और कर्मफलवाद के विषय में वैदिक ऋषियों ने अधिक नहीं सोचा था। इनका विकास आगे चलकर उपनिषदों में हुआ सा लगता है। आत्मा शरीर से भिन्न वस्तु है, जो मरणोपरांत परलोक को जाती है, इस सिद्धांत का आभास वैदिक ऋचाओं में मिलता है.......एक मंत्र में कहा गया है कि व्यक्ति का एक अंश जन्म रहित और शाश्वत है तो अन्यत्र जीवात्मा को कर्मफल भोक्ता बताया गया है।'' उपनिषदों के आधार पर जो कर्मफलवाद का सिद्धान्त ज्ञात होता है उसके अनुसार मनुष्य जैसा कर्म करता है उसे वैसा फल भोगना पड़ता है। इसलिए मनुष्य को अपने कर्मों को सुधारना चाहिए। कर्म के सुधरने से मनुष्य का अगला जन्म अच्छा होगा और उस जन्म में भी जब वह अच्छे कर्म करेगा, तब उसका तीसरा अगला जन्म और भी अच्छा होगा। इस प्रकार जन्म जन्मान्तर तक साधना करते करते उसकी मुक्ति हो जाएगी अर्थात वह जन्म मरण के बंधन से मुक्त हो जाएगा। बुद्ध ने भी वैदिक धर्म के जन्मान्तरवाद और कर्मफलवाद को यथावत स्वीकार किया। उनका मत था कि जीवन दुख है और मनुष्य को यह दुख भोगने के लिए बार बार जन्म लेना पड़ता है। वह अपने कर्मों के अनुसार उत्तम या अधम योनि में जन्म लेता है और उन जन्मों में जैसा काम करता है, जैसा संस्कार अर्जित करता है, वे संस्कार उसे नया जन्म लेने को विवश करते हैं। इस प्रकार जन्म मरण का प्रवाह लगातार चलता रहता है। बुद्ध ने इसके लिए मोक्ष का मार्ग बताया जिसे वह निर्वाण कहते हैं। डॉ आनन्द कुमारस्वामी का मत है कि ''निर्वाण मृत्यु भी है और जीवन की पूर्णता भी। किन्तु यह कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे हम स्थान विशेष या काल विशेष में देख सकें।''

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1.कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धान्त

2. निम्न कथन के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

वैदिक और बौद्ध धर्म दोनो ने ही जन्मान्तरवाद और कर्मफलवाद को स्वीकार किया।

2.6 वर्ण एवं जाति प्रथा

'भारतीय समाज चार वर्णों वाले विभाजन पर आधारित था, जिसमें जन्म और वंश का महत्व था। अथर्ववेद के रचनाकाल तक चातुर्वण्य व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। चौथा वर्ण शूद्र आर्यों के वर्णक्रम में बड़े पैमाने पर द्रविड़ों के प्रवेश से रूप ग्रहण करने लगा था। बाद में विभिन्न वर्णों के वैवाहिक और अवैवाहिक सम्बन्धों से उत्पन्न होने वाले सिद्धान्त का भी उद्‌भव हुआ। चार वर्णों के अतिरिक्त विभिन्न कामगारों को जातियों के रूप में मान्यता मिली औरविभिन्न व्यवसायों के आधार पर जातियों का निर्धारण हुआ। इन सामाजिक स्थितियों की शास्त्रीय व्याख्याएं ऋग्वेद के पुरुष सूक्त, धर्मसूत्रों और स्मृतियों में व्यापक रूप से की गई। मनु ने लिखा है –

'' वरं स्वधर्मो विगुणो, न पारक्यः स्वनुष्ठितः,
परधर्मेण जीवन हि सद्यः पतति जातितः।''

(अर्थात अपना विगुण धर्म भी (पैत्रिक परंपरा से प्राप्त कठिन व्यवसाय भी) दूसरों के धर्म से श्रेष्ठ है। दूसरों का सुविधाजनक व्यवसाय अपनाकर जीने वाला मनुष्य जाति से च्युत हो जाता है)। धीरे.धीरे जाति प्रथा भारतीय समाज की मुख्य विशेषता बन गई और कालक्रम में जाति के बंधन रूढ़ होते चले गए। शक, यवन, पह्लव, पारदों आदि को हिन्दू वर्णाश्रम में क्षत्रियों के रूप में सम्मिलित किया गया। चूंकि भारत में प्रवेश करने वाली जातियां विजेताओं के रूप में आईं थीं, उनकी अवहेलना अथवा अपमान संभव नहीं था और उनको प्रायः क्षत्रियों के समकक्ष स्थान देना पड़ा। पतंजलि ने शकों को क्षत्रियों के रूप में स्वीकार नहीं किया है और उनको शूद्र कहा है, यद्यपि स्मृतियों में उल्लिखित मूल शूद्रों से भिन्न माना है। वे बौद्ध, शैव और वैष्णव मतों की ओर अधिक आकृष्ट हुए। शक जनसाधारण और शासक वर्ग दोनो ने ही बड़ी संख्या में पूजा की स्थानीय रीतियों और देवी.देवताओं को अपना लिया। किन्तु वास्तविक धरातल पर शास्त्रीय अनुशंसाओं के विपरीत भी अनेक परिस्थितियां थीं। भारतीय संस्कृति में विदेशी प्रभाव बढ़ने के साथ ही (ई. पू. तीसरी सदी में) सामाजिक दृष्टिकोण में अंतर आने लगा। स्मृतियों और आचार संहिताओं की पुनर्व्याख्या करते हुए जातियों की शुद्धता बनाए रखने के लिए जाति के बंधनों को कठोर कर दिया गया। परंपरागत जाति से कटे हुए, जिन्होंने विदेशियों के प्रभावों या जीवन पद्धति से सम्बन्ध रखा था, को वर्णसंकर या अछूत माना गया। मनु ने इसका बड़ा सूक्ष्म वर्गीकरण किया है (देखें मनुस्मृति)। अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न संततियां भी वर्णसंकर मानी जाने लगीं और सब की सब शूद्र जाति में प्रविष्ट हो गईं। इसी प्रकार शक्तिशाली हूणों को अमान्य करना आसान न था और उन्हें भारतीय सामाजिक व्यवस्था में समाविष्ट करने के लिए नए सामाजिक प्रबन्ध किए गए। अग्निदीक्षा के बाद उन्हें क्षत्रिय के रूप में मान्यता दी गई। पृथ्वीराजरासो में उन्हें 36 उच्च राजपूत राजघरानों में बताया गया है। दिनकर लिखते हैं कि ''जो वर्ग सुसंस्कृत थे, जिनकी बुद्धि का भरसक विकास हुआ था, वे साधारणतया औद्योगिक कलाओं से दूर ही रहे। इस बात का भारतीयों के बौद्धिक और आर्थिक विकास की दृष्टि से विपरीत और अनिष्टकारी परिणाम हुआ।''

भगवत शरण उपाध्याय के अनुसार '' हिमालय की उपत्यकाओं से लेकर पूरब में गंगा और पद्मा तक तथा बर्मी शानों और किरातों से लेकर पूर्वी बंगाल के पश्चिमान्त तक सारा मानव समुदाय जातीय रूप से एक हो गया। जातियां भ्रष्ट और संदेहास्पद हो गईं और दकियानूसों ने पुरोहितों द्वारा गंडक के पूर्व के क्षेत्र को आर्यों के रहने के अयोग्य घोषित किया जाना उचित समझा।

डी.डी. कोसंबी का मत है कि ''संस्कृतियों के पारस्परिक आदान प्रदान की इस प्रक्रिया के साथ वर्ग संरचना का , जिसका पहले कोई अस्तित्व नहीं था उदय हुआ।.....बुद्ध और अशोक ने लोगों को सभ्य और सामाजिक बनाने की दिशा में जिस कार्य की शुरुआत की थी, उसे फिर आगे बढ़ाने की कोशिश नहीं हुई। जातिबंधन और जातिगत अलगाव की कठोरता ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि सभी वर्गों, पेशों, जातियों तथा धर्मों के लिए सर्वमान्य न्याय व समानता को लागू करने की संभावना ही समाप्त हो गई।......... भारतीय समाज की मुख्य विशेषता, जो देहाती इलाकों में सबसे अधिक प्रबल है, जाति प्रथा है। इसका अर्थ है, समाज के ऐसे विभक्त समूह, जो पास.पास रहते हुए भी अक्सर मिल.जुलकर रहते हुए नहीं दिखाई देते। यह आसानी से सिद्ध किया जा सकता है कि अनेक जातियों का निम्न सामाजिक और आर्थिक स्तर इस कारण है कि उन्होंने पहले या आधुनिक काल में अन्न उत्पादन और हल की खेती को अपनाने से इन्कार किया है। निम्नतम जातियां अक्सर अपने अनुष्ठानों , संस्कारों और मिथकों को सुरक्षित रखती हैं। थोड़े ऊँचे स्तर में हम इन धार्मिक अनुष्ठानों और आख्यानों को हम संक्रमण की स्थिति में देखते हैं, अक्सर दूसरी परंपराओं में आत्मसात होते देखते हैं। एक सीढ़ी और ऊपर जाने पर दिखाई देता है कि ब्राह्मणों ने अपनी

सुविधा के लिए और पुरोहित वर्ग ने अपनी जाति का प्रभुत्व जमाने के लिए इन्हें फिर से लिखा है .... ब्राह्मण धर्म का मुख्य कार्य यही रहा कि उसने आख्यानों को एकत्र किया, इन्हें कथाचक्रों में बांध कर फैलाया और फिर एक अधिक विकसित सामाजिक चौखट में रखकर प्रस्तुत किया।''

उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में सामाजिक संरचना के तत्वों का उभार देर से हुआ। विशुद्धानंद पाठक ने लिखा है कि ''दक्षिण भारत के अभिलेखों में वर्ण, जाति, कुल और गोत्र जैसे शब्द तो प्राप्त होते हैं, पर उनका सामाजिक संरचना संबन्धी रूप वह नहीं दिखाई देता जो उत्तर भारत में था। वर्ण के संदर्भ में सर्वाधिक उल्लेख ब्राह्मणों से संबद्ध हैं और गोत्रों के साथ राजाओं के उल्लेख ही प्राप्त होते हैं। साधारण समाज में वर्ण , गोत्र और कुल का कोई महत्व नहीं था।'' दोनों के बीच सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आदान.प्रदान और सांस्कृतिक अंतःक्रिया संचरणशील उत्तर भारतीय ब्राह्मणों के माध्यम से हुई, जिसे दक्षिण भारत के प्रारंभिक इतिहास लेखकों ने आर्यीकरण कहा और बाद में इसके स्थान पर संस्कृतीकरण शब्द का प्रयोग प्रारंभ हुआ।

दूसरी ओर हम देखते हैं कि ज्यों.ज्यों जाति के बंधन जटिल हुए समाज में प्रतिक्रिया भी हुई। बुद्ध ने जाति प्रथा को चुनौती दी और कहा ''जाति मत पूछ आचरण पूछ, नीच कुल का मनुष्य भी ज्ञानवान और पापरहित मुनि हो सकता है।'' सूफियों और भक्ति संतों के युग में मानव की समानता पर बल दिया गया। जाति का विरोध करते हुए कबीर ने कहा '' जात पांत पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।''

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. भारतीय संस्कृति और जाति प्रथा

2. निम्न कथन के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

(क) जातिगत अलगाव के कारण भारतीय समाज में समानता और परस्पर मेल.जोल की भावना को आघात पहुंचा।

2.7 भाषागत विशेषताएं

भारत में आर्यों और आर्यों से पहले के भारतवासियों , खासकर द्रविड़ों के समन्वय से जो बड़ी संस्कृति उत्पन्न हुई, उसका प्रतिनिधित्व संस्कृत ने किया। संस्कृत शीघ्र ही उच्च वर्ग की विशेष बोली बन गई, जिसे शिक्षित लोग ही समझ पाते थे। इस भाषा में दी जाने वाली विधिवत शिक्षा पर ब्राह्मणों का ही अधिकार रहा। संस्कृत के विकास में उत्तर और दक्षिण दोनों ने योगदान दिया। बाद में दक्षिण के संतों और भक्त कवियों ने उत्तरी भारत के अन्दर तक प्रवेश किया और सांस्कृतिक रूप से इसे समृद्ध बनाया। तमिल और संस्कृत के बीच शब्दों के आदान.प्रदान के प्रमाण मिलते हैं। किटेल की कन्नड़. इंग्लिश डिक्शनरी में ऐसे अनेक शब्दों का उल्लेख है जो तमिल से निकल कर संस्कृत में पहुंचे। इसी प्रकार संस्कृत ने भी तमिल को प्रभावित किया। द्रविड़ भाषाओं की सभी लिपियां ब्राह्मी से निकलीं। वैदिक धर्म के ग्रन्थ भी केवल उत्तर में नहीं लिखे गए। उनमें से अनेक की रचना दक्षिण में हुई। चिन्तकों, विचारकों और विशिष्ट समाज की भाषा दक्षिण में भी संस्कृत थी। उत्तर भारत की सभी भाषाएं संस्कृत से निकल कर

विकसित हुई हैं। ये भी परस्पर भिन्न हैं, परंतु संस्कृत ने हिन्दी को एक खास ढंग से विकसित करके उत्तर भारत को एक ऐसी भाषा दे दी, जो थोड़ी बहुत सभी भाषा क्षेत्रों में समझ ली जाती है। तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भी प्राचीन तमिल से ही निकली हैं। लेकिन द्रविड़ क्षेत्र में उस परिवार की कोई ऐसी भाषा उत्पन्न नहीं हुई, जो चारों भाषा क्षेत्रों में समझी जा सके। दिनकर के अनुसार ''संस्कृत पर आधारित होने के कारण भारत की सभी भाषाएं एक हैं, क्योंकि उनके शब्द एक हैं, उनकी तर्ज और भंगिमाएं एक हैं तथा वे एक ही सपने का आख्यान अलग अलग लिपियों में करती हैं।.....तमिल जो भारत की अर्वाचीन भाषाओं में सबसे प्राचीन है, संस्कृत उससे भी कम से कम दो हजार वर्ष अधिक पुरानी भाषा है। अतः भारत को पहले जो कुछ भी कहना था उसने संस्कृत में कहा। बहुत बाद में जब अर्वाचीन भाषाओं का उदय हुआ, उनमें भी भावानुभूति और चिन्तन की वही प्रक्रिया उद्‌धृत हो गई, जो संस्कृत में विकसित हुई थी। अतः हिन्दू संस्कृति की मूल भाषा संस्कृत रही।'' यह जनता के विचार और धर्म का प्रतीक भी बनी। यद्यपि बुद्ध के समय से ही जनभाषा के रूप में इसका स्थान नहीं रहा। भारतीय इतिहास में गुप्त युग से पूर्व के सहस्राधिक वर्षों में गंगा यमुना के मैदान में ही नहीं, पश्चिम में महाराष्ट्र से लेकर पूर्व में उड़ीसा तक और दक्षिण में आन्ध्र से लेकर हिमालयी राज्यों तक राजभाषा के रूप में उस जनभाषा का वर्चस्व दिखाई देता है, जो क्षेत्रीय भिन्नताओं के बावजूद पूरे देश में समझी जाती थी। गुप्तों के उदय के बाद ब्राह्मण वर्चस्व की स्थापना के साथ ही संस्कृत राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई। ब्राह्मण ग्रंथ संस्कृत में और बौद्ध ग्रंथ पालि में लिखे गए तो जैनों ने प्राकृत के अनेक रूपों का उपयोग करते हुए प्रत्येक काल एवं क्षेत्र में जब जो भाषा प्रचलन में थी, उसी के माध्यम से अपना प्रचार किया। डी.डी. कोसंबी का कथन है कि ''इंडो आर्य भाषाएं संस्कृत से विकसित हुई हैं। इस प्रकार आरंभ में विकसित हुई भाषाएं हैं पालि, जो मगध में बोली जाने के कारण मागधी भी कहलाती है और अन्य अनेक प्रांतीय प्राकृत भाषाएं। इन्हीं से हिन्दी , पंजाबी, बंगला, मराठी आदि आधुनिक भाषाएं निकलीं। किन्तु भारत में आर्येतर भाषाओं का भी एक विस्तृत और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण वर्ग है, जिसमें द्रविड़ भाषा समूह के अन्तर्गत तमिल, तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम भाषाओं का समावेश होता है। इनके अलावा छोटे छोटे कबीलों की बहुत सारी बोलियां हैं। ''

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. भारतीय संस्कृति की भाषागत विशेषताएं

2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

(क) संस्कृत को जनभाषा के रूप में मान्यता मिली।

(ख) इंडो आर्य भाषाएं संस्कृत से विकसित हुईं(डी.डी. कोसंबी)

(ग) बुद्ध, महावीर आदि ने अपनी शिक्षाओं का प्रसार जनभाषा में किया।

2.8 हिन्दू धर्म और संस्कृति

प्रायः भारतीय संस्कृति को हिन्दू संस्कृति के रूप में मान्यता देने की परंपरा रही है। भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार ''हिन्दू शब्द के उपयोग की शुरुआत 549 तथा 525 ई. पूर्व के बीच हुई। अपने

पुरालेख में ईरान के शासक दारा ने भारत और भारतीयों के अर्थ में पहली बार हिन्दी शब्द का प्रयोग किया, जिसको बहुत बाद में भारतीय साहित्यों ने ग्रहण किया और जिसको हिन्दू के रूप में बार बार दोहराया।'' दिनकर ने लिखा है कि ''हिन्दू धर्म किसी एक विश्वास पर आधारित नहीं है, बल्कि अनेक विश्वासों का समुदाय है। जिस प्रकार भारतीय जनता की रचना उन अनेक जातियों को लेकर हुई, जो समय .समय पर इस देश में आती रहीं, उसी प्रकार हिन्दुत्व भी इन विभिन्न जातियों के धार्मिक विश्वासों के योग से बना है। ....देश के अर्थ में हिन्दू शब्द का चलन इस्लाम के जन्म से कोई हजार डेढ़ हजार वर्ष पहले ही शुरू हो गया था। ईरानी लोग 'स' का उच्चारण 'ह' करते थे, अतः 'सिन्धु ' को उन्होंने 'हिन्दु' कहा। इसी विकृति से आगे चलकर 'हिन्दू' और 'हिन्दुस्तान' दोनो शब्द निकले। यूनानियों के मुंह से 'ह'के बदले 'अ' निकलता था, अतः हिन्दू को उन्होंने इन्दो (प्दकव) कहना शुरू किया। इसी दूसरी विकृति से इंडिया नाम निकला है।'' दिनकर आगे लिखते हैं''ईरानियों द्वारा दिया हुआ हिन्दू नाम संस्कृत भाषियों के द्वारा संपूर्ण भारतवासी जनता के समुच्चय नाम के रूप में स्वीकृत हो गया, इसके भी प्रमाण मिलते हैं। नीग्रो, औस्ट्रिक, द्रविड़ और आर्य इन चार जातियों के समन्वय से उत्पन्न हिन्दू संस्कृति में आगे चलकर अनेक धाराएं मिल गईं। उत्तर में जब बौद्ध मत की प्रबलता हुई, तभी से हिन्दू धर्म अपनी पवित्रता की रक्षा के लिए दक्षिण को अपना गढ़ मानने लगा। बाद में विदेशी आक्रमणों के बाद बहुत से हिन्दू दक्षिण की ओर खिसकने लगे थे।.........असल में हम जिसे हिन्दू संस्कृति कहते है, वह किसी एक जाति की देन नहीं, बल्कि इन सभी जातियों की संस्कृतियों के मिश्रण का परिणाम है।........भारतीय संस्कृति भी इस देश में आकर बसने वाली अनेक जातियों की संस्कृतियों के मेल से तैयार हुई है और अब यह पता लगाना बहुत मुश्किल है कि उसके भीतर किस जाति की संस्कृति का कितना अंश है।'' सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार '' हिन्दू संस्कृति के आधे से अधिक उपादान आर्येतर संस्कृतियों से आए हैं।''

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. हिन्दू धर्म और संस्कृति की अवधारणा

2.9 सारांश

भारतीय संस्कृति वह संस्कृति है जिसने विश्व को न सिर्फ बहुत कुछ दिया, बल्कि दुनिया के विभिन्न कबीलों से , चाहे वे आक्रान्ता के रूप में आए अथवा व्यापारी के रूप में, उनकी सांस्कृतिक उपलब्धियों को ग्रहण किया और अपनी संस्कृति का विकास किया। भगवत शरण उपाध्याय के अनुसार '' अनगिनत कबीलों ने सभ्य भी बर्बर भी भारत की सीमाएं लांघ कर इस देश में प्रवेश किया एवं यहां के सामाजिक ताने.बाने में अपनी नयनाभिराम छवियां डालीं स्वयं इसमें विलीन हो गए........एक ओर भारतीय संस्कृति का मूल आर्यों से पूर्व हड़प्पा तथा द्रविड़ों की सभ्यता तक पहुंचता है, तो दूसरी ओर इस पर आर्य संस्कृति की गहरी छाप है, जो भारत में मध्य एशिया से आए थे। धीरे.धीरे यह संस्कृति उत्तर.पश्चिम से आने वाले तथा फिर समुद्र की राह से पश्चिम से आने वाले लोगों से बार बार प्रभावित हुई और इस प्रकार धीरे.धीरे राष्ट्रीय संस्कृति ने आकार ग्रहण किया। भारतीय संस्कृति में हम दो परस्पर विरोधी और प्रतिद्वन्दी शक्तियों को काम करते देखते हैं। एक तो वह शक्ति है जो बाहरी तत्वों को आत्मसात कर समन्वय और सामंजस्य पैदा करने की कोशिश करती है और दूसरी वह जो विभाजन को प्रोत्साहन देती है।'' विभिन्न संस्कृतियों से संपर्क और अन्तःक्रिया के दौरान ही शास्त्रकारों द्वारा बहुत सी रूढ़ियां भी

भारतीय समाज और परंपरा सम्मिलित हुईं, जो इस संस्कृति का एक निर्बल पक्ष है। जाति के बंधन कठोर हुए। एक ओर विचारों और सिद्धांतों में भारतीय संस्कृति का अधिक से अधिक उदार और सहिष्णु रूप सामने प्रदर्शित किया गया तो दूसरी ओर सामाजिक आचार.विचार अत्यंत संकीर्ण होते चले गए।

डी.डी. कोसांबी के शब्दों में ''भारतीय संस्कृति की संभवतः सबसे बड़ी विशेषता है– अपने ही देश में इसकी निरंतरता।.....देश के सभी भाग एक साथ एक ही अवस्था में नहीं रहे। प्रत्येक अवस्था में , देश के प्रायः हर भाग में , पहले की सभी अवस्थाओं के कई लक्षण जीवित रहे और उनके साथ साथ अनेक पूर्वावस्थाओं के उत्पादन के तरीके और रीति रिवाज भी। ऐसे कुछ लोग हमेशा मौजूद रहे जो पुरानी पद्धति से हठपूर्वक चिपके रहना चाहते थे और चिपके रहे। परंतु हमें उसी एक एक विशिष्ट पद्धति पर ध्यान देना है, जिसका प्रभाव इतना अधिक व्यापक हो गया कि वह देश के अधिकांश हिस्सों पर लागू हो गई।'' भारतीय संस्कृति में धर्म, आध्यात्मवाद, ललित कलाएं, ज्ञान.विज्ञान, विविध विधाएं, नीति, विधि.विधान, जीवन. प्रणालियां और वे समस्त क्रियाएं और कार्य हैं जो उसे विशिष्ट बनाते हैं तथा जिन्होंने भारतीयों के सामाजिक.राजनीतिक विचारों, धार्मिक और आर्थिक जीवन, साहित्य, शिष्टाचार और नैतिकता को ढाला है। इसमें भी विकास क्रम के अनुरूप विविध संस्कृतियों के संघर्ष, मिलन और संपर्क से परिवर्तन और आदान. प्रदान तथा विविध श्रेष्ठ सांस्कृतिक तत्वों का संग्रह होता रहा है। इस संस्कृति में दो परस्पर विरोधी विशेषताएं दिखाई देती हैं– विविधता के साथ.साथ एकता। वेश.भूषा, भाषा, उपासना पद्धति, यहां के निवासियों का शारीरिक रंग.रूप, रीति.रिवाज, जीवन स्तर, भोजन, जलवायु, भौगोलिक विशेषताएं– सभी में अधिक से अधिक भिन्नताएं दिखाई देती हैं। एक ही प्रांत, यहां तक कि एक ही जनपद अथवा नगर के भारतीय निवासियों में उतनी ही अधिक सांस्कृतिक असमानता है, जितनी भारत के विभिन्न भागों में प्राकृतिक असमानता। विविधता में एकता की प्रवृत्ति ने विभिन्नताओं से परिपूर्ण इस देश को शताब्दियों से एक सूत्र में पिरोकर रखा है और इसका सांस्कृतिक ताना.बाना ऐतिहासिक कालक्रम में विघटनकारी शक्तियों के प्रभावी होने के बावजूद भी अक्षुण्ण रह पाया है।

2.10 तकनीकी शब्दावली

• **जग्गुरत**– बाबुल तथा अन्य स्थानों पर बनाए गए एक प्रकार के मन्दिर, जिनमें से कुछ सात सात मंजिल के थे और जिनके ठोस बाहरी भाग के चारों ओर ठोस वर्तलाकार सीढ़ियां ऊपर की ओर उठती चली गईं थीं। इनको जग्गुरत कहा जाता था। बिना कक्षों वाले मन्दिर के लिए संस्कृत शब्द है 'जरुक' , जो जग्गुरत का बिगड़ा हुआ रूप है। महाभारत में इन्हें एदुक कहा गया है। इन्हें स्तूप से समीकृत या जा सकता है।

•बाबुल–बेबीलोन / असुरिया– असीरिया / सुमेरिया– सुमेर

ये सभी प्रचीन मेसोपोटामिया (वर्तमान ईराक) की सभ्यता से सम्बन्धित हैं।

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

खण्ड 2.3 का उत्तर

1. (क) देखें 2.3(ख) देखें 2.3.1
2. (क) देखें 2.3 (सही) (ख) देखें 2.3 (सही)
   (ग) देखें 2.3.1 (गलत) (घ) देखें 2.3.1 (सही)

खण्ड 2.4 के उत्तर

1. 2.4
2. (क) देखें 2.4 (सही) (ख) देखें 2.4 (गलत) (ग) देखें 2.4 (सही)

खण्ड 2.5 के उत्तर

1. देखें 2.5
2. (क) देखें 2.5 (सही)

खण्ड 2.6 के उत्तर

1. देखें 2.6
2. देखें 2.6(सही)

खण्ड 2.7 के उत्तर

1. देखें 2.7
2. (क)देखें 2.7 (गलत) (ख)देखें 2.7 (सही) (ग)देखें 2.7 (सही)

खण्ड 2.8 के उत्तर

1. देखें 2.8

2.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भगवत शरण उपाध्याय, भारतीय संस्कृति के स्रोत, दिल्ली, 1973
2. ए.एल बाशम, अद्भुत भारत, हिन्दी अनुवाद, आगरा 1972
3. दामोदर धर्मानन्द कोसंबी, प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता,नई दिल्ली, पटना, 1964, 1990
4. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पटना, 1956, 20016
5. विशुद्धानन्द पाठक,दक्षिण भारतीय संस्कृति,लखनऊ 2008
6. राधाकुमुद मुखर्जी, हिन्दू सभ्यता, दिल्ली 1990
7. बी.एन. लूनिया, प्राचीन भारतीय संस्कृति , आगरा 1966

2.13 निबंधात्मक प्रश्न

1 भारतीय संस्कृति को आप किस प्रकार समन्वयवादी मानते हैं। विवेचना कीजिए।

2 भारतीय संस्कृति की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

इकाई तीन :प्राचीन भारतीय कला की प्रमुख विशेषताएं

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 प्राचीन भारतीय कला की विशेषताएँ
3.2.1 कला का स्वरूप
3.2.2 कला की अर्थ व्यंजना
3.2.3 अलंकरण
3.2.4 कला में अंकित विषय और जन.जीवन/विश्वास और धारणाएं
3.2.4.1 कला के प्रतीकात्मक विषय
3.2.5 अध्यात्म और सौन्दर्य का समन्वय
3.3 ललित कलाएँ
3.3.1 वास्तुकला
3.3.1.1 स्तूप
3.3.1.2 गुफा मन्दिर और चैत्य
3.3.1.3 मन्दिर
3.3.1.4 मूर्तिकला
3.3.2 चित्रकला
3.3.3मुद्रा निर्माण कला
3.3.4 मृद्भाण्ड
3.3.5 संगीत/वाद्य/नृत्य
3.4 भारतीय कला पर विविध प्रभाव
3.5 कलाकृतियों हेतु प्रयुक्त सामग्री का प्राप्ति स्थान
3.6 सारांश
3.7 तकनीकी शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.10निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

''भारतीय कला भारतवर्ष के जीवन दर्शन, धर्म, तत्वज्ञान और संस्कृति का दर्पण है। भारतीय जनजीवन की व्याख्या कला के माध्यम से हुई है। यहाँ के लोगों का रहन.सहन कैसा था, उनके भाव क्या थे, देव तत्व के विषय में उन्होंने क्या सोचा था, उनकी पूजा विधि कैसी थी, उन्होंने कितना निर्माण किया था, इसका अच्छा लेखा.जोखा भारतीय कला में सुरक्षित है। वास्तु, शिल्प, मूर्ति, चित्र, कांस्य प्रतिमा, मिट्टी की प्रतिमाएँ, हाथी दाँत से संबन्धित कर्म, काष्ठकर्म, मणिकर्म, स्वर्ण.रजतकर्म, वस्त्र आदि के रूप में भारतीय कला की सामग्री प्रभूत मात्रा में पाई जाती है। कला की इस प्रगति में अनेक जातियों ने योगदान किया,

किन्तु इसकी मूल प्रेरणा और अर्थ.व्यंजना मुख्यतः भारतीय ही है। भारतीय कला के सम्पूर्ण अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय धर्म, दर्शन, और संस्कृति के साथ मिलाकर उसे देखा जाय जिसकी सामग्री वेद, पुराण, काव्य, त्रिपिटक, आगम आदि नानाविध भारतीय साहित्य में पाई जाती है।''(वासुदेवशरण अग्रवाल)

भारतीय कला यहाँ के मस्तिष्क और हस्तकौशल का सर्वोत्तम प्रमाण है। इसकी सामग्री वैसी ही समृद्ध है, जैसी भारतीय साहित्य, धर्म और दर्शन की। भारतीय कला के अवगाहन द्वारा हम यहां के शिल्प, मूर्तियों, चित्रों, संगीत, नृत्यआदि विभिन्न विशेषताओं और उनमें छिपी हुई मानसिक कल्पना एवं प्रतिभा सेभी परिचित हो सकते हैं।

3.1 उद्‌देश्य

• प्रस्तुत इकाई का उद्‌देश्य आपको प्राचीन भारतीय कला की विभिन्न विशेषताओं से परिचित कराना है।

• इस इकाई के अध्ययन द्वारा आप समझ पाएंगे कि भारतीय कला में आध्यात्म और सौन्दर्य का अद्‌भुत समन्वय हुआ है।

• आप कला के विभिन्न विषयों एवं प्रतीकों की विविधता का विवेचन भी कर पाएंगे।

• भारतीय कला के अध्येता के रूप में आप कला के स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय सन्दर्भ, रूप , शैली, अलंकरण, प्रभाव और अर्थों को अलग पहचान कर उनकी व्याख्या करने का प्रयास कर सकेंगे।

3.2 प्राचीन भारतीय कला की विशेषताएँ

वासुदेवशरण अग्रवाल ने भारतीय कला का उसकी विशेषताओं के आधार पर निम्नवत कालनिर्धारण किया है– सिन्धु घाटी से लेकर नन्द वंश के पूर्व तक आद्य युग है। उसके बाद मौर्य काल से हर्ष के समय तक मध्य युग,जिसके दो भाग हो जाते हैं– एक के अन्तर्गत मौर्य, शुंग, कण्व और सातवाहन युग की महान कलाकृतियां हैं। इस पूर्व युग में कला के अंकुर भिन्न.भिन्न प्रदेशों में उभार ले रहे थे। सारनाथ, भरहुत, सांची, बोधगया, अमरावती, भाजा उसी के केन्द्र हैं। इसके उत्तरार्द्ध में प्रथम शताब्दी ई. से लेकर लगभग सातवीं शताब्दी तक अर्थात कनिष्क से हर्ष तक की कलाकृतियां आती हैं। इस युग में कला की प्रौढ़ता राष्ट्रीय स्तर पर देश के चारों कोनों में फैल जाती है। न केवल देश में किन्तु विदेशों में भी भारतीय कला का प्रभाव दिखाई देता है। इन सात सौ वर्षों में भारत में कला, साहित्य, दर्शन और जीवन का सर्वोच्च विकास हुआ और पुराणों में धारणा बनी कि–पृथ्वी में भारत के समान कोई देश नहीं है। (न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः'!) हर्ष युग के बाद भारतीय कला का चरम युग आता है, जिसे मध्यकाल (700–1200) भी कहते हैं। उसके भी दो भाग हैं, पूर्व मध्यकाल (700–900ई.) और उत्तर मध्यकाल (900–1200 ई.)।

3.2.1भारतीय कला का स्वरूप

प्राचीन भारतीय कला को उसकी विशेषताओं के आधार पर धार्मिक और लौकिक दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। ए.एल. बाशम के अनुसार ''प्राचीन भारत के लगभग समस्त कलात्मक अवशेषों का स्वरूप धार्मिक है अथवा उनकी रचना धार्मिक उद्‌देश्यों से हुई थी। धर्मनिरपेक्ष कला भी अवश्य ही थी,

क्योंकि हमें साहित्य से ज्ञात होता है कि राजा लोग सुन्दर भित्ति चित्रों एवं मूर्तियों से सुसज्जित उत्तम प्रासादों में निवास करते थे। यद्यपि ये सब नष्ट हो गए हैं। अधिकतर भारतीय एवं यूरोपीय विशेषज्ञों ने भारतीय कला के धार्मिक एवं रहस्यात्मक स्वरूप पर एक समान बल दिया है। प्रारंभिक मूर्तिकला के यथार्थवाद एवं लौकिकता को स्वीकार करते हुए अधिकांश आलोचकों ने हमारे समय के कलात्मक अवशेषों में वेदान्त अथवा बौद्ध धर्म के सत्यों को पढ़ा है और उन्हें गहन धार्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया है।''

कुछ अवशेष तो ऐसी धार्मिक भावना से परिपूर्ण हैं, जो संसार में दुर्लभ है, परंतु वस्तुतः प्राचीन भारत की कला में उस काल का पूर्ण एवं क्रियात्मक जीवन ही मुख्य रूप से प्रतिबिम्बित है। प्रारम्भ में प्रत्यक्ष रूप में जैसे कि भरहुत, सांची और अमरावती में और फिर कुछ आदर्शवादिता के साथ जैसे अजन्ता में और अन्त में मध्ययुगों में अनेक मन्दिरों में निर्मित देवी एवं मानवी असंख्य प्रतिमाओं के रूप मेंएक अत्यधिक चेतन शक्ति है जो हमें परलोक की अपेक्षा इसी लोक का अधिक स्मरण कराती है।मन्दिरों के शिखर यद्यपि लम्बे हैं पर वे दृढ़ता से भूमि पर आधारित हैं। आदर्श रूप अनियमित रूप से लम्बे न होकर नाटे तथा गठीले हैं। देवता एक समान युवा और सुन्दर हैं। उनके शरीर स्वस्थ एवं परिपुष्ट हैं जो प्रायः यूरोपीय मतानुसार नारीवत प्रतीत होते हैं। कभी-कभी वे क्रूर अथवा क्रोधपूर्ण मुद्रा में चित्रित किए जाते हैं, परन्तु सामान्य रूप से मुस्कुराते हैं तथा उनमें दुख का चित्रण बहुत ही कम है। नृत्य करते हुए शिव के अतिरिक्त अन्य पवित्र प्रतिमाओं को बैठे हुए दिखाया गया है। समस्त भारतीय मन्दिरों की मूर्तियों में, चाहे हिन्दू हों, बौद्ध हों या जैन सदैव कम वस्त्रों से युक्त तथा लगभग भारतीय सौन्दर्य के स्तर के अनुरूप नारी रूप का उपयोग साज-सज्जा की सामग्री के लिए किया गया है।

प्राचीन भारत की कला उसके धार्मिक साहित्य से विलक्षण रूप में भिन्न है। एक ओर जहां साहित्य व्यवसायों में संलग्न व्यक्तियों , ब्राह्मणों, मुनियों और सन्यासियों का कार्य है तो दूसरी ओर कला मुख्य रूप से उन धर्मनिरपेक्ष कलाकारों के हाथ से निःस्रित हुई, जिन्होंने यद्यपि पुरोहितों के आदेश तथा बढ़ते हुए मूर्ति निर्माण सम्बन्धी शास्त्रीय मानकों के अनुसार कार्य किया, फिर भी वे उस संसार से प्रेम करते थे जिसे वे इतनी गहराई से जानते थे, जो प्रायः उन धार्मिक रूपों में देखी जाती है, जिनमें उन्होंने आत्माभिव्यक्ति की। बाशम का कहना है कि '' हमारे विचार में भारतीय कला की सामान्य प्रेरणा परमात्मा की खोज में उतनी नहीं है, जितनी कि कलाकार द्वारा प्राप्त संसार के आनन्द में तथा पृथ्वी पर जीवित प्राणियों के विकास के समान नियमित और चेतन शक्ति युक्त विकास और गति की भावना में है।'' वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार ''भारतीय विचारधारा के अनुसार रूप वही अच्छा है जो अपने प्रतिरूप का अधिकतम परिचय दे सके। भारतीय शिल्पी ने व्यक्तियों की प्रतिकृति या रूपों से मोह करना नहीं सीखा। उसके शिल्प का निर्माण बहुधा उस भाव जगत में होता है, जिसमें वह सर्वरूप का ध्यान करता है। युग विशेष में स्त्री. पुरुषों के प्रतिमानित सौन्दर्य का ध्यान करके भारतीय शिल्पी उसे चित्र या शिल्प में प्रयुक्त करता है। व्यक्ति विशेष के रूप को वह अपने चित्र में नहीं उतारता। वह समाज में आदर्शभूत सब रूपों का एक बिम्ब कल्पित करता है। मथुरा की यक्षी प्रतिमाएं स्त्री विशेष की प्रतिकृति नहीं , नारी जगत की आदर्श प्रतिकृति हैं, जो उस देश और उस काल में शिल्पी के मन में निष्पन्न हुआ, वही इन रूपों में मूर्त हुआ है। इसी प्रकार बुद्ध मूर्ति देश काल में जन्मे हुए ऐतिहासिक गौतम की प्रतिकृति नहीं है। वह तो दिव्य भावों से सम्पन्न रूप है। योगी के अध्यात्म गुणों से युक्त पुरुष की जो आदर्श आकृति हो सकती है, वही बुद्ध की मूर्ति है। आदर्श मानव का रूप ही भारतीय शिल्प और चित्र में पूजित हुआ है। गुप्त कला में बाह्य रूप की पूर्ण मात्रा को अनुप्राणित करने वाला जो जो अर्थसौन्दर्य है, वह अद्‌भुत या विलक्षण रूप प्रस्तुत करता है।

कलाकृतियों में जो रमणीयता, सजीवता और आकर्षण है, उसमें मन दिव्य भावों के लोक में विलक्षण आनन्द, शान्ति और प्रकाश का अनुभव करता है।''

3.2.2 भारतीय कला की अर्थ व्यंजना

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार कला के चार अंग माने गए हैं– (1) रस (2) अर्थ (3) छन्द (4) रूप (काव्य के लिए रूप के स्थान पर शब्द का प्रयोग होता है।) भारतीय कला में इन सभी तत्वों का समावेश हुआ है।

रस कला की आत्मा है। यह वह अध्यात्म गुण है जिसमें रचना का स्थायी मूल्य निहित रहता है। मनुष्य के मन में जो अनेक प्रकार के भाव जन्म लेते हैं, उन्हें ही कला और काव्य द्वारा व्यक्त किया जाता है। मन में रस या तन्मयता की अनुभूति होने पर कवि या कलाकार उस अर्थ या विषय को चुनते हैं, जिसके द्वारा रस या भाव स्फुटित होते हैं। भारतीय कला की अर्थ संबन्धी विशेषता के अन्तर्गत विविध देव और देवियों का विस्तार है जो विश्व की दिव्य और भौतिक शक्तियों के प्रतीक हैं। इन देव.देवियों के विषय में वेदों और पुराणों में अनेक आख्यान आए हैं। उनका उद्देश्य ज्योति और तम, सत् और असत्, अमृत और मृत्यु के द्वन्द्व की व्याख्या करना है। प्राचीन परिभाषा में इस द्वन्द्व को दैवासुरम कहा गया है अर्थात देवों और असुरों के शाश्वत संग्राम की परिकल्पना। बुद्ध, महावीर आदि महापुरुष और इन्द्र, शिव, विष्णु आदि देव प्रकाश और सत्य के प्रतीक हैं। इसके विपरीत वृत्र, मार, महिष, त्रिपुरासुर और तारकासुर असत् या अन्धकार के प्रतीक हैं। भारतीय कला का सांस्कृतिक उद्देश्य जानने के लिए उसके अर्थ का परिचय आवश्यक है। अर्थ की जिज्ञासा हमें कला के प्रतीकात्मक स्वरूप के समक्ष ले जाती है, जैसे चक्र, पूर्णघट, स्वस्तिक, पद्म, श्रीलक्ष्मी, अष्टमंगल अथवा अष्टोत्तरशत मंगलचिन्ह एवं गरुड़, नाग, यक्ष आदि कला के प्रतीक द्वारा कलासंबन्धी अध्ययन में सहायक हैं।

3.2.3कला में अलंकरण

वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार ''अलंकरण या साज.सज्जा के अभिप्राय तीन प्रकार के हैं– 1. रेखाकृति प्रधान 2. पत्र-वल्लरी प्रधान और 3. ईहामृग या कल्पनाप्रसूत पशु-पक्षियों की आकृतियां। इन अभिप्रायों के मूल रूप प्राकृतिक जगत से लिए गए हैं, किन्तु कलाकारों ने अपनी कला के बल पर उन्हें अनेक रूपों में विकसित किया है। कहीं गौण आकृति के रूप में, कहीं प्रतिमा को चारों ओर से सुसज्जित करने के लिए, कहीं रिक्त स्थान को रूपाकृति से भर देने के लिए अलंकरणों का विधान किया गया है। उनका उद्देश्य कला में सौन्दर्य की अभिवृद्धि है। किन्तु शोभा के अतिरिक्त अभिप्रायों के दो उद्देश्य और थे– एक तो आरक्षा या मंगल के लिए, दूसरे विशेष अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए। इन अलंकरणों को भारतीय परिभाषा में मांगल्य चिन्ह कहा गया है। भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार शून्य या रिक्त स्थान में असुरों का वास हो जाता है, किन्तु यदि गुहादिक आवास या देवगृह में मांगलिक चिन्ह लिखे जायँ तो देवी श्री और रक्षा उस स्थान में अवतीर्ण होती हैं। स्वस्तिक, पूर्णघट या कमल के फुल्ले (पदुमक) को जब हम देखते हैं तो उनसे नाना प्रकार के मांगलिक अर्थ मन में भर जाते हैं। उदाहरण के लिए एक गजचिन्ह इन्द्र के श्वेत ऐरावत का द्योतक है, अश्व उच्चैःश्रवा अश्व का प्रतीक है, जो समुद्रमंथन से उत्पन्न हुआ था और स्वर्गलोक का मांगलिक पशु है। सूर्य ही वह विराट अश्व है जो काल या संवत्सर के रूप में सबके जीवन में प्रविष्ट है। इस प्रकार भारतीय कला के सुन्दर अभिप्राय धर्म और संस्कृति की पृष्ठभूमि में सार्थक हैं। गुप्त युग में पत्रलता की सरल और पेचीदा आकृतियां बनाने की बहुत प्रथा थी। उनके कई अच्छे नमूने

धमेख स्तूप के आच्छादन शिलापट्टों पर सुरक्षित हैं। इसका मूल भाव यही था कि जो प्रकृति की विराट प्राणात्मक रचना पद्धति है, उसी के अंग.प्रत्यंग पशु.पक्षी, वृक्ष और फल.फूल, यक्ष, वामन, कुब्जक, मनुष्य आदि हैं। बाणभट्ट ने लिखा है कि रानी विलासवती के प्रसूतिगृह की भित्तियों को पत्रलता की मांगलिक आकृतियों से भर दिया गया था, जिन पर दृष्टि डालने से रानी के नेत्रों को सुख मिलता था और जिनके द्वारा आसुरी शून्यता से उसकी रक्षा होती थी। गुप्तकालीन कला, शिल्प, चित्र और स्थापत्य इस प्रकार के अलंकरणों से बहुत भरे हुए हैं। कुषाणकाल की कला ईहामृग या विकट आकृति के पशुओं से भरी हुई है, क्योंकि इस प्रकार के ऐंठे गैंठे शरीर वाले पशुओं में शकों की स्वयं बहुत रुचि थी।''

3.2.4कला में अंकितविषय और जन जीवन/ विश्वास और धारणाएं

भारतीय कला की एक विशेषता उसमें अंकित सांस्कृतिक जीवन की सामग्री है। राजा और प्रजा दोनों के ही जीवन का खुल कर चित्रण किया गया है। कला में भारतीय जीवन और रहन.सहन की स्पष्ट छाप है। भारतीय वेशभूषा, केशविन्यास, आभूषण, शयनासन आदि की सामग्री चित्र, शिल्प आदि में मिलती है। छोटी मिट्टी की मूर्तियां भी इस विषय में सहायक हैं। उनमें तो सामान्य जनता को भी स्थान मिला है। भरहुत, सांची, अमरावती, नागार्जुनीकोण्डा आदि के स्तूपों पर इसकी छाप है। भारतीय कला सदा जीवन को साथ लेकर चली है।

समय.समय पर जो धार्मिक आन्दोलन हुए और जिन्होंने लोकजीवन पर गहरा प्रभाव डाला, उनसे भी कला को प्रेरणा मिली और उनकी कथा कला के मूर्त रूपों में सुरक्षित है। इस विषय में कला की सामग्री कहीं तो साहित्य से भी अधिक सहायक है। यक्षों और नागों का बहुत अच्छा परिचय भरहुत, सांची और मथुरा की कला में मिलता है। इसी प्रकार उत्तरकुरु के विषय में जो लोकविश्वास था, उसका भी उत्साहपूर्ण अंकन भाजा, भरहुत, सांची आदि में हुआ है। मिथुन, कल्पवृक्ष, कल्पलता आदि अलंकरण उसी से सम्बन्धित हैं जिनका वर्णन जातक, महाभारत, रामायण आदि में आया है। दुकूल वस्त्र, पनसाकृति पात्रों में भरा हुआ उत्तम मधु, आम्राकृति पात्रों में भरा हुआ लाक्षारस, सिर, कान, ग्रीवा, बाहु और पैरों के आभूषण एवं स्त्री पुरुषों की मिथुन मूर्तियां– सबका कल्पवृक्ष है जिसकी छाया में वह अपनी इच्छा के अनुसार फूलता. फलता है।इसी प्रकार अजंता के गुफा चित्रों को देखें तो इनका विषय सर्वथा धार्मिक है। इनमें अंकित करुणा बुद्ध की भावना का मूर्त रूप है। चित्रकारों ने मनुष्यों के रूपों के भेद और उनका अभिजात्य बड़ी कुशलता से चित्रित किया है, अर्थात भिक्षुक, ब्राह्मण, वीर सैनिक, सुन्दर राजपरिवार, विश्वसनीय कंचुक और प्रतिहार, निरीह सेवक, क्रूर व्याध, निर्दयी वधिक, शांत तपस्वी, साधुवेशधारी धूर्त, परिचारिका, विरहाकुल राजकुमारी, माता.पुत्र, आदि के भिन्न.भिन्न मुख मुद्राओं आदि की कल्पना उन्होंने बड़ी मार्मिकता से की है। प्रेम, लज्जा, हर्ष, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, घृणा, भय, आश्चर्य, चिन्ता, विरक्ति, शान्ति आदि भाव भी बहुत खूबी से दिखाए गए हैं।रेखाओं और वृत्तों की ज्यामितीय आकृतियों का स्थान.स्थान पर उपयोग किया गया है, किन्तु प्रधानता कमल की है, जो अनेकरूप होकर सर्वत्र व्याप्त है। आप इसी इकाई के खण्ड 3.3.1.4 में मूर्तिकला के अन्तर्गत भी कला के विषयों का विस्तार से अवगाहन करेंगे।

3.2.4.1 कला के प्रतीकात्मक विषय

भारतीय कला के जो वर्ण्य विषय हैं, वस्तुतः उनका महत्व सबसे अधिक है। उनमें भारतीय जीवन और विचारों की ही व्याख्या मिलती है। इसकी एक विशेषता यह थी कि सामान्य जनता के धार्मिक विश्वास कला में बुद्ध, महावीर, शिव और विष्णु के उच्चतर धर्मों के साथ मिलकर परिगृहीत हुए। भारतीय धर्म में

एक ओर बुद्ध, शिव-रुद्र या नारायण-विष्णु का तत्वज्ञान भी है और दूसरी ओर उन अनेक देवताओं की पूजा मान्यता भी है जो मातृभूमि से संबन्धित थे,जैसे– यक्ष, नाग,नदी, सागर, चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, आदि। देवपूजा के वे प्रकार जैसे लोक में थे वैसे ही कला में भी अपनाए गए। इस प्रकार विशिष्ट और सामान्यजन दोनों की मान्यताओं का चित्रण भारतीय कला में हुआ है। यहप्रागैतिहासिक काल से लेकर ऐतिहासिक युगों तक विभिन्न सभ्यताओं में प्रयुक्त विभिन्न प्रतीकों, अभिप्रायों और विषयों को लेकर चली है। विभिन्न धर्मानुयायी इच्छानुसार कई चिन्हों को एक एक प्रतिमा या मूर्ति में स्वीकार करके पुनः उनके महात्म्य का वर्णन करते थे। विभिन्न देवी.देवताओं के साथ जुड़ जाने से प्रतीक चिन्हों का नया महत्व हो जाता था। उदाहरण के लिए वैदिक सुपर्ण विष्णु का वाहन गरुड़ बन गया, चक्र बुद्ध और महावीर का धर्मचक्र और विष्णु का सुदर्शन चक्र हो गया।इन प्राचीन मांगलिक प्रतीकों के अध्ययन से भारतीय कला के अनेक रूपों को समझा जा सकता है। आपके अध्ययन की सुविधा के लिए इनमें से कुछ का उल्लेख निम्नवत है–

(1)बुद्ध– कला में लोकोत्तर बुद्ध का जीवन लिया गया है और उसका घनिष्ठ सम्बन्ध उन प्रतीकों से था जो मानवीय अर्थों से ऊपर दिव्य अर्थों की ओर संकेत करते हैं। उदाहरण के लिए तुषित स्वर्ग से बुद्ध का अधोगमन, श्वेत हस्ति के रूप में मायादेवी को स्वप्न और गर्भप्रवेश , माता की कुक्षि से तिरश्चीन जन्म, सप्तपद, शीतोष्ण जलधाराओं से प्रथम स्नान, बोधिवृक्ष, वानरों द्वारा मधु का उपहार, लोकपालों द्वारा अर्पित चार पात्रों का बुद्ध द्वारा एक पात्र बनाया जाना, अग्नि और जल सम्बन्धी चमत्कार का प्रदर्शन, धर्मचक्रप्रवर्तन, तैंतीस देशों के स्वर्ग में माता को धर्मोपदेश, सोने, चांदी और तांबे की सीढ़ियों से पुनः पृथ्वी पर आना आदि कला के अंकन बुद्ध के स्वरूप के विषय में प्रतीकात्मक कल्पना प्रस्तुत करते हैं, जिसका संबन्ध ऐतिहासिक बुद्ध से न होकर लोकोत्तर अर्थात बुद्ध के दिव्य रूप से है। विष्णु और शिव की दिव्य लीलाओं के समान ही इन लीलाओं का आकलन किया गया। महायान बौद्ध धर्म में इन लीलाओं का विस्तार किया गया।

(2)शिव – सिन्धुघाटी से लेकर ऐतिहासिक युगों तक लिंगविग्रह या पुरुषविग्रह के रूप में शिव का अंकन पाया जाता है। इन दोनों का विशेष अर्थ भारतीय धर्म और तत्वज्ञान के साथ जुड़ा हुआ है। सिंधु घाटी में योगी और पशुपति के रूप में रुद्र शिव कई मुद्राओं पर अंकित मिले हैं। यजुर्वेद के शतरुद्रिय अध्याय 16 के अनुसार रुद्र शिव की पूजा देश के उत्तर.पश्चिम भाग में उस समय बहुत प्रचलित थी। एक ओर लोकवार्ता में प्रचलित शिव के स्वरूपों को ग्रहण किया गया, किन्तु दूसरी ओर उनके साथ नए.नए अर्थों को जोड़कर उन्हें धर्म और दर्शन के क्षेत्र में नई प्रतिष्ठा दी गई। कला में शिव के निम्न रूप मिलते हैं– पशुपति, अर्द्धनारीश्वर, नटराज, कामान्तक, गंगाधर, हरिहर, यमान्तक, चन्द्रशेखर, योगेश्वर, नन्दीश्वर, उमामहेश्वर, ज्योतिर्लिंग, रावणानुग्रह, पंचब्रह्म, दक्षिणमूर्ति, अष्टमूर्ति, एकादशरुद्र, मृगव्याध, मृत्युंजय आदि।

(3)देवता – भारतीय कला देवत्व के चरणों में एक समर्पण है।यूप, स्तूप एवं प्रासाद या देवगृह में सर्वत्र देवता निवास करते हैं। स्तूप की हर्मिका, मन्दिर का गर्भगृह एवं यूप का ऊपरी भाग ये तीनों देवसदन हैं।श्री-लक्ष्मी, सूर्य, चन्द्र, वामन- विराट, त्रिविक्रम विष्णु , सुदर्शन चक्र, अर्धनारीश्वर, कुमार, गणपति, अदिति, समुद्र, हिरण्यगर्भ, नारायण, दक्ष, अग्नि, ब्रह्म, वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विन, गण देवता, सप्तर्षि, नारद, गन्धर्व, अप्सरा, कुम्भाण्ड, नाग, यक्ष, नदी, देवता, सिद्ध, विद्याधर आदि प्रतीक भारतीय संस्कृति व कला में वैदिक युग की जीवन विधि या साहित्य से अपनाए गए।

(4) धार्मिक एवं दार्शनिक भाव– स्वस्तिक, दैवासुर संग्राम, त्रिविक्रम, ज्योतिर्लिंग, वाराह द्वारा पृथ्वी का समुद्र से उद्धरण, सप्तपदी, तिरश्चीन निर्गमन(इन्द्र, बुद्ध और स्कन्द का मातृकुक्षि से तिर्यक जन्म), अग्नि स्कन्ध=ज्योतिर्लिंग (आग का खम्भा) आदि।

(5) पशु पक्षी– एकश्रृंग पशु , महावृषभ, छोटे सींगों वाला नटुआ बैल, महिष, गैंडा, व्याघ्र, हाथी, खरगोश, हिरन, मत्स्य, कूर्म, वराह, मकर, सिंह, नाग, अज, नकुल, व्याल आदि विकट ईहामृग, आदि। धर्म सम्बन्धी काल्पनिक पशु (उदाहरणार्थ एक मुद्रा पर अंकित पुरुष पशु, जिसके पैरों में खुर, सिर पर सींग और पीछे पूंछ है, जो एक काल्पनिक पशु से , जिसके शरीर का अधिकांश व्याघ्र जैसा है, कुश्ती कर रहा है) आदि (हड़प्पा सभ्यता की मुहरों पर अंकित)।दो सिरों वाला बैल, नन्दी, अनन्त (सहस्रशीर्षा शेषनाग), वराह, वृषभधेनु(गाय बैल का जोड़ा), देवजात अश्व,ऐरावत (तुषित स्वर्ग से उतरता हुआ श्वेत हस्ति, जो बुद्ध की माता की कुक्षि में प्रविष्ट हुआ) हंस, गरुड़, सारस आदि।

(6) मानव– मुनि, अष्टकन्याएं, अष्टदिक्कुमारिकाएं, चक्रवर्ती, सात बहिनें, नर (कुबेर के विशेष वाहन), शिशु, देवयोनि।

(7) अर्धदेव–नाग, यक्ष, विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, सुपर्ण, कुम्भाण्ड, लोकपाल, अप्सराएं, वृक्षकाएं, चतुर्महाराजिकदेव।

(8) विविध वस्तुएं और पदार्थ–वेदिका, पूर्णकुम्भ, चक्र, यूप, स्तम्भ, इन्द्रयष्टि (त्रिभुजांकित ध्वज), वेदिका, त्रिशूल, वज्र, केतु (ध्वज), मण्डल (कुण्डल), चमू (बड़ा घट), मांगलिक रत्न, मधुकोश (कपियों द्वारा बुद्ध को प्रदत्त शहद भरा कटोरा), इन्द्रासन (स्वर्ग में इन्द्र का महान आसन), पात्र, मणि, भद्रमणि, कौस्तुभ, शंख, मुक्ता, अष्टनिधिमाला, कण्ठा, हार, छत्र, रथ, विमान, शकट, पर्वत, नदी, वारुणी, घट, पूर्णघट, कार्षापण, मेखला, चामर, आदर्श (दर्पण),यूप(स्तंभ), स्थूणराज(बड़ा खम्भा), स्तूप, देवगृह (या विमान), कुटी या पर्णशाला, कपिशीर्षक (कंगूरे), रत्न, मुकुट, वीणा, वंशी, मृदंग, मजीरे, देववाद्य आदि।

(9) वृक्ष, लता, वनस्पति और पुष्प पौधे– व्याल युक्त पीपल, पद्म या पुष्कर, कल्पवृक्ष, कल्पलता, पीपल, वट, माला, मुचकुन्द, ताल, पुण्डरीक, आदि।

(10) अन्य– मिथुन (नरनारीमय अलंकरण), सुमेरु पर्वत, द्यावापृथ्वी, विमान (देवगृह), पुर, देवसदन (बौद्ध स्तूपों की हर्मिका), गुहा आदि।

(11) शस्त्र आदि– त्रिशूल, शूल, वज्र, चक्र या रथांग, धनुष, बाण, हल, मूसल, गदा, खड्ग, चर्म, ढाल, कवच आदि।

(12) अभिप्राय और प्रतीक– स्वस्तिक, श्रीवत्स, श्रीचक्र, श्रीवृक्ष, त्रिरत्न, नन्दिपद, चक्र आदि।

3.2.5 अध्यात्म और सौन्दर्य का समन्वय

प्राचीन भारतीय कला में आध्यात्म और सौन्दर्य का सम्मिश्रण दिखाई देता है। मनुष्य की आधिभौतिक प्रगति और आनन्द के साथ.साथ उसकी आध्यात्मिक प्रगति पर भी बल दिया गया। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार ''भारतीय कला के दोनों पक्ष इष्ट थे, अर्थात सुन्दर वस्तुओं का बाह्य रूप एवं उनका आन्तरिक अर्थ। कला का उद्देश्य जीवन के लिए है। वह उद्देश्यहीन साधना नहीं। दिव्यावदान के

अनुसार कला के अभिप्राय शोभा एवं जीवनरक्षा दोनो के लिए होते हैं।........प्लेटो के सौन्दर्यतत्व की ही भांति भारतीय सौन्दर्यतत्व में अर्थ का सर्वोपरि महत्व है। बाह्य रूप का भी निजी महत्व है, किन्तु वह भावों की अभिव्यक्ति का साधन मात्र है। अर्थ कला का प्राण है। कला के रूपों के मूल में छिपे हुए सूक्ष्म अर्थ का परिचय प्राप्त करने से कला की सौन्दर्यानुभूति पूर्ण और गंभीर बनती है। अध्यात्म के बिना केवल सौन्दर्य सौभाग्यविहीन है। केवल रूप को कवि ने निन्दित कहा है, किन्तु अध्यात्म अर्थ के साथ वही पूजनीय बन जाता है। कलाकार ध्यान और मन की शक्ति से ही कला के सौन्दर्य का पूरा फल प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक मूर्ति का आदि अन्त धार्मिक या आध्यात्मिक अभिव्यक्ति में है, अर्थात वह देवतत्व की प्रतीक मात्र है।'' आनन्द कुमारस्वामी का कथन है ''‘ीमद ूम ेंल जींज प्दकपंद ।तज पे`चपतपजनंस `तजएपज कवमे दवज उमंद पज पे दवज`मदेनेंण्च्मतींचे पज पे उवतम`मदेनवने जींद`चपतपजनंस''(द डांस ऑफ शिवाचच 147)। अधिकांश भारतीय धार्मिक साहित्य में सन्यास एवं आत्मनिषेध के विभिन्न रूपों की प्रशंसा की गई है, परंतु मूर्तियों में प्रस्तुत सन्यासी सामान्यतः पर्याप्त रूप से भोजन किए हुए एवं प्रसन्न लगते हैं। उदाहरण के लिए मैसूर में श्रवणबेलगोला की चट्टान काटकर बनाई गई गोमतेश्वर की प्रतिमा को देखा जा सकता है। वे ध्यान की कायोत्सर्ग मुद्रा में पृथ्वी पर पैर जमाए , हाथों को नीचे किए जो शरीर को स्पर्श नहीं करते , पूर्ण रूप से सीधे खड़े हैं तथा मृदु मुस्कान से युक्त हैं। कहा जाता है कि सन्त ध्यान में इतने समय तक निमग्न खड़े रहे कि उनके गतिहीन चरणों के चारों ओर लताएं लिपट गईं और ये लताएं मूर्ति में दिखाई गई हैं। परंतु ये लताएं यद्यपि उनकी पवित्रता चित्रित करने के अभिप्राय से हैं, फिर भी वे इसी बात पर बल देती हैं कि वह इसी पृथ्वी का प्राणी है, जिसे पृथ्वी पीछे खींचती है।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) प्राचीन भारतीय कला का स्वरूप

   (ख) प्राचीन भारतीय कला में अंकित विषय

2. **निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए**

   (क) भारतीय कला का स्वरूप पूर्णतः धार्मिक है।

   (ख) भारतीय कला में अध्यात्म और सौन्दर्य का समन्वय हुआ है।

3.3 ललित कलाएं

भारत में ललित कलाओं के विकास के पीछे समय.समय पर यहां की धार्मिक स्थितियों और धार्मिक भावनाओं की समसामयिक छाप स्पष्ट दिखाई देती है। मौर्य और मौर्योत्तर युग में भारत के अधिकतर भागों में बौद्ध धर्म पूरी तरह फल.फूल रहा था और उत्तरी तथा पूर्वी दक्कन में उस काल की जो प्रतिनिधि रूपावलियां प्राप्त होती हैं, वे बुद्ध, बुद्ध के जीवन की घटनाओं और बौद्ध विश्वासों के इर्द.गिर्द ही घूमती हुई दिखाई देती हैं। वास्तुकला को एक ललित कला माना गया है। चित्रकला, मूर्तिकला, साहित्य, संगीत तथा नाट्य अन्य मुख्य ललित कलाएं हैं।

3.3.1 वास्तुकला

वास्तुकला को उसकी विशेषताओं के आधार पर दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है– धार्मिक वास्तु और लौकिक वास्तु। मन्दिर धार्मिक वास्तु के मुख्य प्रतीक हैं। प्राचीन साहित्य तथा पुरातात्विक अवशेषों से कला के लौकिक पक्ष की पुष्टि होती है। ''ग्रामों और पुरों के सन्निवेश तथा विभिन्न प्रकार के भवन, सड़कों, दुर्गों आदि के निर्माण लौकिक स्थापत्य के अन्तर्गत थे।रामायण, महाभारत, बौद्ध और जैन साहित्य, मानसार, समरांगणसूत्रधार आदि ग्रंथों में नगर या पुर निर्माण के विस्तृत विवरण मिलते हैं (कृष्णदत्त बाजपेयी, भारतीय वास्तुकला का इतिहास)। प्रागैतिहासिक वास्तुकला में सिन्धु घाटी सभ्यता के ईंटों से निर्मित भवनों के ध्वंसावशेष, सड़कें, लोथल का बन्दरगाह, मोहेंजोदारो का बृहत् स्नानागार एवं परकोटे, गोपुरद्वार और अट्टालिकाओं से युक्त दुर्ग, हड़प्पा का अन्नागार आदि प्रमुख हैं। हड़प्पा सभ्यता के बाद एक अन्तराल मिलता है। राधाकुमुद मुखर्जी के अनुसार ''325 ई. पू. के उत्तरकाल के अवशेष संख्या में कम और अन्य ऐतिहासिक सामग्री की अपेक्षा महत्व में भी न्यून हैं। वास्तु के अवशेषों की कम संख्या का कारण यह है कि उनकी निर्माण सामग्री विनाशशील थी, क्योंकि उनमें से अधिकांश मिट्टी, लकड़ी, चूना, बांस या लट्ठों से बनाए जाते थे। वैदिक यज्ञों के लिए आवश्यक यज्ञवेदी और यज्ञशालाओं के निर्माण के साथ स्थापत्य का मूलारंभ हुआ'' ।वैदिक साहित्य में वास्तुकला संबन्धी अनेक शब्द मिलते हैं, जैसे स्कम्भ (स्तंभ), गृह, महाशाला(उपनिषद), सहस्रस्थूण घर(ऋग्वेद) आदि। प्राचीन पाटलिपुत्र या कुमराहार में चन्द्रगुप्त सभा के जो अवशेष मिले हैं, उनमें अस्सी खम्भों वाला मण्डप लगभग वैदिक साहित्य के शतभुजी सदन के अनुरूप है। इनमें अन्तर यह है कि ये खम्भे मौर्यकालीन चमकीले पत्थर के हैं। मण्डप के दक्षिण की ओर सात काष्ठ मंच भी प्राप्त हुए हैं। मौर्य युगीन काष्ठ निर्मित राजप्रसाद एवं ठोस पाषाण निर्मित स्तंभ कला के उत्तम नमूने हैं, पर अवशेष रूप में हैं।

अशोककालीन कला का उत्कृष्ट नमूना हम स्तंभों के रूप में देखते हैं। फाहियान ने छः तथा ह्वेनत्सांग ने पन्द्रह स्तंभों का उल्लेख किया है। इन स्तंभों के पाँच भाग हैं– 1. ऊपर की फुनगी पर धर्मचक्र 2. चार सहपृष्ठ सिंह 3. चार चक्र और चार पशुओं से अंकित गोल अंड 4. पद्मपत्र युक्त पूर्णघट और 5. ऊर्ध्व यष्टि। इनकी रचना में एक ऊँची मध्य यष्टि या डंडी और ऊपर शीर्षक लगाया गया है। लाट की ऊँचाई 40 से 50 फुट के लगभग है। लाट के ऊपर पशु की आकृति का शीर्षक है। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार '' रामपुरवा के सिंहशीर्षक स्तंभ और सांची के स्तंभ तक पहुंचते-पहुंचते शिल्पियों के हाथ मंज गए थे । उसके बाद सारनाथ के सिंह स्तंभ में शिल्पियों ने अपनी कला की पराकाष्ठा प्राप्त कर ली।'' इस संबन्ध में मार्शल ने लिखा है '' ईसवी शती पूर्व के संसार में सारनाथ के सिंह स्तंभ जैसी श्रेष्ठ कलाकृति कहीं नहीं मिलती। शिल्पी ने समझ बूझकर सिंहों के निर्माण में ऐसी गुणवत्ता भर दी है कि वे पूरे स्तंभ का अविभाज्य अंग जान पड़ते हैं।''

स्तूप, गुफा मन्दिर और चैत्य तथा विभिन्न कालों में निर्मित मन्दिरों की कला के अध्ययन से आप प्राचीन भारतीय वास्तुकला की विशेषताओं को समझ सकते हैं।

3.3.1.1 स्तूप

स्तूप का प्रारंभ शव को गाड़ने वाले मृत्तिका निर्मित के टीले के रूप में हुआ, जिसका स्थानीय जनता द्वारा आदर होता था। प्राचीन भारतीय वास्तुकला के क्षेत्र में बुद्ध के सम्मान में स्तूप निर्माण हुआ। स्तूप दो प्रकार के हैं– एक तो स्मारक के रूप में ईंट और पत्थरों के बने ठोस ढांचे, जो बुद्ध या महावीर

के जीवन की किसी घटना के किसी स्मारक में खड़े किए गए थेऔर दूसरे अस्थि संचायक अन्दर से खोखले आकार के स्तूप, जहां अवशेष रखे जाते थे। प्राारंभिक स्तूप विशाल गोलार्द्ध गुम्बदों के रूप में थे, जिनमें एक केन्द्रीय कक्ष में बुद्ध के स्मारक चिन्ह प्रायः सुन्दरता से स्फटिक जड़ित एक छोटी मंजूषा में रखे रहते थे। स्तूप का हीर कच्ची ईंट का था और बाहरी भाग पक्की ईंटों का, जिस पर पलस्तर की गहरी तह होती थी। स्तूप के ऊपर काष्ठ अथवा पाषाण का छत्र रहता था और वह लकड़ी की चाहरदीवारी से घिरा रहता था, जिसमें विधिपूर्वक प्रदक्षिणा के लिए स्थान रहता था। अब तक मिले हुए स्तूपों में नेपाल की सीमा में लगा हुआ ईंटों से निर्मित पिपरहवा का स्तूप सबसे प्राचीन है। इसके भीतर की मंजूषा पर यह लेख उत्कीर्ण था ''भगवान बुद्ध की शरीर धातुओं का यह पवित्र स्मारक शाक्यों ने , उनके भ्राताओं ने अपनी भगिनी और पुत्र दाराओं के साथ मिलकर बनवाया।''शुंगकालीन स्तूपों में भरहुत और और सांची उल्लेखनीय हैं। भरहुत स्तूप अपनी मूर्तिकला के लिए प्रसिद्ध है। 1873 में जब कनिंघम ने उसे देखा तो लगभग पूरा स्तूप नष्ट हो चुका था। इसकी तोरण वेदिका पर लगभग 20 जातक दृश्य, 6 ऐतिहासिक दृश्य, 30 से ऊपर यक्ष-यक्षी, देवता, नागराजाओं आदि की कढ़ी हुई बड़ी मूर्तियां और अनेक प्रकार के वृक्ष और पशुओं की मूर्तियां हैं। इनमें से बहुतों पर उनके नाम खुदे हैं। इनके अतिरिक्त नौका, अश्वरथ, गोरथ और कई प्रकार के वाद्य, कई प्रकार की ध्वजाएं तथा अन्य राजचिन्ह अंकित हैं। सांची का स्तूप वास्तुविद्या के एक उत्कृष्ट अवशेषों में से है। इसके द्वार प्रवेशों की एक प्रमुख विशेषता इसके चार तोरण द्वार हैं। स्तूप में बुद्ध के जीवन की चार घटनाएं, यक्ष मूर्तियां, पशु पक्षियों की मूर्तियां और फूल पत्तियों के अंकन हैं। बुद्ध के जीवन दृश्यों में उनका जन्म, संबोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन और महापरिनिर्वाण हैं। विशुद्धानन्द पाठक ने लिखा है कि ''सांची के स्तूप के निर्माण हेतु दक्षिणापथ से प्रशिक्षित कारीगर बुलाए गए थे, इसके आभिलेखिक प्रमाण भी प्राप्त हैं।''स्तूप की हर्मिका के ऊपर निर्मित छत्र के संबन्ध में मार्शल ने लिखा है कि ''किसी भी देश के शिल्प कर्म में इससे बढ़कर उत्तम काम नहीं पाया गया।'' धीरे.धीरे स्तूपों की वास्तुकला अधिक अलंकृत होती चली गई। आन्ध्र सातवाहन युग के स्तूपों में अमरावती और नागार्जुनीकोण्ड के स्तूप प्रमुख हैं। आन्ध्र स्तूपों की तीन विशेषताएं थीं– संगमरमर जैसा मक्खन के रंग का श्वेत पाषाण, अनेक प्रकार से उत्कीर्ण शिलापट्टों पर रूप और अलंकरण तथा धातुगर्भ से निकलते हुई मंजूषा सदृश चार आयक(आयागपट्ट के समान) मंच, जिनसे कालान्तर में ब्राह्मण देव मन्दिरों की रथिकाओं का विकास हुआ। आन्ध्र कला में शरीर की बहुसंख्यक विभिन्न मुद्राओं का विन्यास उसकी विशेषता है। अमरावती का स्तूप सांची के स्तूप से बड़ा और नक्काशीदार था। इस स्तूप से बची हुई मूर्तियों की संख्या आन्ध्र स्तूपों में सबसे अधिक है। कला की दृष्टि से ये अत्यंत सुन्दर और विभिन्न अभिप्रायों से युक्त हैं, जिनमें लगभग पाँच सौ वर्षों के विकास की साक्षी उपलब्ध है। सारनाथ और नालन्दा उत्तरकालीन भारतीय स्तूपों में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

3.3.1.2गुफा मन्दिर और चैत्य

वास्तुकला का दूसरा नमूना थे गुफा मन्दिर और चैत्य।सौराष्ट्र से लेकर कलिंग तक और अजन्ता से बराबर पहाड़ी तक की गुफाओं के रूप में इसका प्रसार देखा जाता है। इस विशाल क्षेत्र में चट्टान काटकर गुफाओं के बनाने की एक जैसी प्रक्रिया सर्वत्र प्राााप्त हुई है। केवल शैली के स्थानीय भेद अवश्य हैं, जो उनके मुखपट्ट,अलंकरण, स्तम्भ, मूर्तियों, भीतरी मण्डप की आकृति और परिमाण, छत एवं गर्भगृहों के क्रम में दिखाई देते हैं। लगभग तीसरी शती ई. पू. में अशोककालीन हीनयान युग से लेकर महायान युग की सातवीं शताब्दी तक पर्वत में गुफाओं का तक्षण होता रहा और इस दीर्घकाल में लगभग 1200 गुफाएं निर्मित की गईं। स्तूपों, उनके चारों ओर के प्रवेश द्वारों एवं चहारदीवारी के अतिरिक्त गुप्त वंश से शताब्दियों पूर्व के वास्तु विद्या के मुख्य अवशेष कृत्रिम गुफाएं हैं, जो धार्मिक कार्यों के लिए खोदी गईं थीं।

इनमें अशोक द्वारा आजीविक भिक्षुओं को समर्पित गया के समीप बराबर की पहाड़ी की गुफाएं तथा नागार्जुनी पहाड़ियों की गुफाएं प्रमुख हैं।गुफाओं की भित्तियों पर भली.भांति पॉलिश की गई है। बराबर की सुदामा गुफा का अशोक के राज्यकाल के बारहवें वर्ष में तथा कर्णचौपड़ गुफा 19वें राज्य वर्ष में निर्माण किया गया था। तीसरी लोमस ऋषि गुफा तथा चौथी विश्वझोपड़ी गुफा कहलाती है। नागार्जुनी समूह में गोपी गुफा और एक अन्य गुफा का निर्माण अशोक के पौत्र दशरथ ने करवाया। इनमें अशोककालीन गुहाशिल्प परम्परा की पूर्णतः रक्षा की गई है।उत्तरकालीन गुफा मन्दिरों में सातवाहन राज्य और उसके उत्तराधिकारियों के समय में सबसे अधिक और प्रसिद्ध कृत्रिम गुफाएं खोदी गई हैं। इनमें पूना के निकट भाजा की प्राचीनतम दक्षिण की गुफा में ठोस चट्टान से कटा हुआ एक गहरा अर्धवृत्ताकार विशाल कक्ष है, जिसमें भित्तियों के समीप सादे अष्टभुजी स्तंभों की पंक्ति है, जो एक काष्ठ भवन की ढोलाकार छत को प्रदर्शित करने के लिए खुदी हुई वक्राकार पटरियों को संभाले हुए है। विशाल कक्ष के सिरे पर ठोस चट्टान से कटा एक छोटा स्तूप है। शुंग काल में निर्मित उड़ीसा के उदयगिरि की पहाड़ी में 19 (रानी गुम्फा, हाथी गुम्फा आदि) और खंडगिरि में 16 (नवमुनि गुम्फा, देवसभा आदि) गुफाएं हैं। ये गुम्फाएं जैन भिक्षुओं के लिए बनाई गई थीं। इनके संरक्षक कलिंग के सम्राट खारवेल थे। इन गुम्फाओं में सुन्दर आकृति की और वास्तु सम्बन्धी कई विशेषताओं से युक्त स्तंभों पर आश्रित सामने की ओर निकली हुई ऊँची खुली छतें हैं। महाराष्ट्र में चट्टान में काट कर निर्मित कार्ले का चैत्य, अजन्ता की प्रसिद्ध 27 गुफाएं, एलोरा के उत्तरकालीन गुफा मन्दिर, जिसमें पांचवीं से आठवीं शताब्दी तक निर्मित कम से कम 64 गुफाए ं(अधिकांश हिन्दुओं की तथा कुछ बौद्धों की और कुछ जैनियों की हैं) आदि प्रमुख गुफाएं हैं। सभी गुफाओं का निर्माण चट्टानों को काटकर किया गया है। अजन्ता में उत्कीर्ण चैत्यगृह और विहार वास्तु सम्बन्धी कला के उत्कृष्ट रूप हैं। इनमें चित्र, शिल्प और वास्तु विद्या सम्बन्धी दीर्घकालीन प्रयत्न व्यक्त हुआ है , जिसकी अवधि दूसरी शती ई. पू. से लगभग एक सहस्र वर्षों की है। अजंता में कुल 29 गुफाएं हैं, जिनमें चार चैत्यगृह और शेष 25 विहार गुफाएं हैं। इसके अलावा महाराष्ट्र में नासिक, बेडसा, जुन्नार व कार्ले के चैत्य तथा कन्हेरी की गुफाएं विशेष उल्लेखनीय हैं। कार्ले के चैत्यगृह के भीतर और बाहर कई लेख उत्कीर्ण हैं। दो लम्बे प्रदक्षिणापथ तथा दो ऊँचे चतुर्मुख दर्शन वाले स्तंभ या लाट, जिनके सिरे पर सिंह शीर्षक हैं, प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त पल्लवकालीन मामल्लपुरम के मन्दिर तथा मुंबई के समीप एलीफेंटा के गुफा मन्दिर प्रमुख हैं। इन गुफा मन्दिरों में प्रायः सभी निर्मितियां चट्टानों को काटकर उत्कीर्ण की गई हैं, यद्यपि प्रारंभिक नमूनों में काष्ठकला का प्रयोग हुआ है। इनमें उत्कृष्ट मूर्तिकला, सुन्दर चित्रकारी एवं अलंकरण हैं।

3.3.1.3 मन्दिर

''मन्दिर भारतीय स्थापत्य कला के सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्मारक हैं। मन्दिरों के वास्तुशिल्प में परिवर्धन, मूर्ति पूजा तथा संबन्धित पूजार्चन कर्मकाण्ड के संस्थापन के बाद ही संभव हुआ''(के.आर. श्रीनिवासन, दक्षिण भारत के मन्दिर)। प्राचीनतम स्वतंत्र रूप से स्थित धार्मिक भवन, जिसके चिन्ह मिलते हैं, तीसरी शताब्दी ई.पू. में ईंटों व काष्ठ से निर्मित जयपुर के निकट बैराट में एक छोटा वृत्ताकार कक्ष है।गुप्तकाल से पूर्व स्वतंत्ररूप से निर्मित हिन्दू मन्दिरों के कोई अवशेष नहीं हैं, यद्यपि इस काल तक उनका काष्ठ, मिट्टी तथा ईंटों से अवश्य ही निर्माण हुआ होगा। गुप्तकाल से मन्दिरों के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं, विशेष रूप से पश्चिमी भारत में, जिनमें सबमें एक सी सामान्य शैली है। सामान्यतः स्तंभ अलंकृत होते थे जिनके शीर्ष भारी घण्टी के आकार के होते थे, जिनके ऊपर पशुओं की आकृतियां बनी रहती थीं और प्रवेशद्वारों पर पौराणिक दृश्य एवं आकृतियां खुदी रहती थीं। समस्त गुप्कालीन मन्दिर छोटे थे और उनमें से अधिकतर की छतें समतल थीं। उनके ईंट और पत्थर के भवन बिना गारे के रुके हुए थे और उनमें प्रयुक्त

ईंट पत्थर अपेक्षाकृत छोटे भवनों के लिए आवश्यक सामग्री से कहीं अधिक और मोटे थे। संभवतः छठी शताब्दी में निर्मित झांसी के निकट देवगढ़ का मन्दिर गुप्तकाल का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है। बाशम के अनुसार '' छठी शताब्दी से आज तक प्रचलित हिन्दू मन्दिर का आदर्श रूप प्राचीन यूनानी मन्दिरों के रूप से सिद्धांततः भिन्न न था।'' मन्दिर का मध्य भाग एक छोटा अंधकारपूर्ण पूजागृह या गर्भगृह होता था, जिसमें मुख्य मूर्ति स्थित रहती थी। यह एक विशाल कक्ष अथवा मण्डप में खुलता था। विशाल कक्ष तक पहुंचने के लिए एक अर्धमण्डप से होकर जाना होता था। गर्भगृह के ऊर एक मीनार होती थी तथा भवन के अन्य भागों से छोटी छोटी मीनारें उठी रहती थीं। पूरा मन्दिर एक आयताकार आंगन में स्थित रहता था , जिसमें छोटे मन्दिर भी होते थे और प्रायः वह एक उठे हुए चबूतरे पर बना रहता था।कश्मीर में यूनानी वास्तु से प्रभावित स्तंभ तथा विशिष्ट पिरामिड आकार की नुकीली वलभी छतों और मेहराबों का मध्ययुग में निरंतर उपयोग होता था। बाशम के अनुसार 'कश्मीर शैली लगभग गोथिक शैली सी प्रतीत होती है। कश्मीर के प्रारंभिक मन्दिरों में आठवीं शताब्दी का मार्तण्ड स्थित सूर्य मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

भूमि के आकार की दृष्टि से भारतीय मन्दिर की वास्तुकला विशेष रूप से एक समान है। मन्दिर स्थापत्य के क्षेत्र में उत्तर भारत में नागर शैली तथा दक्षिण भारत द्रविड़ शैली का विकास हुआ औरइन दोनों के मेल से बेसर शैली विकसित हुई।नागर शैली के मन्दिरों की पहचान आधार से लेकर सर्वोच्च अंश तक इसका चतुष्कोण होना है। विकसित नागर मन्दिर में गर्भगृह, उसके समक्ष क्रमशः अन्तराल, मण्डप तथा अर्द्धमण्डप प्राप्त होते हैं। द्रविड़ शैली में मन्दिर का आधार भाग वर्गाकार होता है तथा गर्भगृह के ऊपर का भाग पिरामिडनुमा सीधा होता है, जिसमें अनेक मंजिलें होती हैं। इस शैली के मन्दिरों की प्रमुख विशेषता यह है कि ये काफी ऊँचे तथा विशाल प्रांगण से घिरे होते हैं। बेसर शैली विन्यास में द्रविड़ शैली तथा रूप में नागर जैसी होती है। इस शैली के मन्दिर विन्ध्य पर्वतमाला से कृष्णा नदी के बीच निर्मित हैं। छठी से आठवीं शताब्दी के बीच मन्दिर निर्माण को पल्लव तथा चालुक्य वंश के राजाओं का पर्याप्त संरक्षण प्राप्त हुआ। दोनों शैलियों से काष्ठकला तथा गुफा वास्तुकला से क्रमशः मुक्ति स्पष्ट दिखाई देती है। पल्लव शैली आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में निर्मित मामल्लपुरम के शोर मन्दिर तथा कांची के कैलाशनाथ मन्दिर में सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गई। 10 वीं से 12वीं शताब्दी के बीच चोल राजाओं के समय पल्लवों की शैली का और अधिक विकास हुआ। 10 वीं से 13 वीं शताब्दी तक उड़ीसा शैली प्रस्फुटित हुई, जिसमें पुरी का जगन्नाथ मन्दिर तथा कोणार्क का सूर्य मन्दिर प्रमुख हैं। इसी प्रकार 10वीं 12वीं शताब्दियों में बुन्देलखण्ड के चन्देल राजाओं के समय में निर्मित खजुराहो मन्दिर समूह है, जिसमें कण्डरिया महादेव मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध है। कोणार्क व खजुराहो में मन्दिर वास्तु की अन्य विशेषताओं के साथ-साथ अत्यधिक स्पष्ट श्रृंगारिक चित्रण भी हुआ है।

3.3.1.4 मूर्तिकला

जिस वस्तु का हमें ज्ञान होता है अथवा जिसकी रचना की जाती है, उस सबको मूर्ति कहते हैं। मूर्त विश्व ही कला का क्षेत्र है।ऐतिहासिक काल की प्रारंभिक मूर्तिकला में हड़प्पा की मूर्तिकला से व्यापक समानता मिलती है। सिन्धु घाटी में पाषाण शिल्प की 11 मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। इनमें त्रिफुलिया अलंकरण से युक्त उत्तरीय ओढ़े हुए पुजारी की प्रतिमा से सभी परिचित हैं। ताम्र मूर्तियों में नर्तकी की प्रसिद्ध मूर्ति है। सिंधु घाटी की मानव मूर्तियों की अपनी अलग विशेषता है। सुमेर से प्राप्त मूर्तियों में नेत्रों की आकृति गोल है तो हड़प्पा में लम्बी और अधमुंदी पलकों वाली हैं। मिट्टी की मूर्तियों में मनुष्यों और पशुओं की अनेक मूर्तियां हैं। सिन्धु घाटी के नगरों के बाद अशोक स्तंभों के शीर्ष मूर्तिकला के प्रारंभिक उदाहरण हैं।

सारनाथ के स्तंभ के प्रसिद्ध सिंह तथा रामपुरवा के स्तंभ का कम प्रसिद्ध परंतु अधिक सुंदर वृषभ, यथार्थवादी मूर्तिकारों की कृतियां हैं, जो कुछ न कुछ ईरानी और यूनानी परंपरा के ऋणी हैं। बाशम के अनुसार ''स्तंभों पर बनी हुई पशु आकृतियां सिन्धु घाटी की मुद्राएं खोदने वालों की शैली से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित थी, जिनमें एक यथार्थवादी दृष्टिकोण भी मिलता है।''सजीव स्थिति में पशु, बुद्ध तथा मौर्य विश्व सम्राट का प्रतिनिधित्व करने वाले चक्र, फूल पत्तियों से बनी चित्राकृतियां, जिनमें आदर्शभूत भारतीय विचार पश्चिम से लिए गए विचारों के साथ प्रकट किए गए हैं। स्तंभों के अतिरिक्त मौर्य शैली के कुछ अन्य स्मारक हैं, जिनमें उत्कृष्ट पॉलिश और फिनिशिंग है। हाथ में चंवर से युक्त दीदारगंज की यक्षी में मौर्य शैली की विशिष्ट चमकदार पॉलिश है। लोककला की परंपरा का प्रमाण उन महाकाय यक्ष मूर्तियों द्वारा प्राप्त होता है, जो मथुरा से उड़ीसा, वाराणसी से विदिशा और पाटलिपुत्र से शूर्पारक तक के विस्तृत क्षेत्र में पाई जाती हैं। मथुरा से प्राप्त परखम यक्ष की मूर्ति तथा पटना के दीदारगंज से मिली आदमकद यक्षी प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय हैं। सबसे महत्वपूर्ण परखम यक्ष जैसी महाप्राण और बलशाली मूर्तियां थीं। कुमारस्वामी का मत है कि ''मथुरा की महाकाय बोधिसत्व मूर्तियों का विकास परखम यक्ष जैसी महाप्राण यक्ष मूर्तियों से हुआ। कला की दृष्टि से भी परखम यक्ष और सारनाथ बोधिसत्व की शैली में बहुत सादृश्य है।'' यक्ष मूर्तियों के कलात्मक सौन्दर्य के विषय में कुमारस्वामी लिखते हैं कि ''ये आश्चर्यजनक शारीरिक बल की प्रतीक हैं, जिनका प्रभाव इनकी शिल्पगत अपरिष्कृतता से कुंठित नहीं होता। इनकी कला पुरुष प्राकृतिक है, जिसमें पशुओं जैसी दृढ़ता है, कहीं भी आध्यात्मिकता या अन्तर्मुखी वृत्ति नहीं है और न इनमें विचार प्रवणता या आन्तरिक भावों की कोई झलक है। शैली की दृष्टि ये मूर्तियां महाप्राण या महाकाय हैं।'' राधाकुमुद मुखर्जी के अनुसार ''यही आदर्श बाद में कुषाणकालीन महाविशाल प्रतिमाओं में आविर्भूत हुआ, जैसे लखनऊ संग्रहालय की मथुरा से प्राप्त बोधिसत्व प्रतिमाएं अथवा बोधिसत्व शाक्यमुनि की सारनाथ मूर्ति में, जिसे लेख के अनुसार मथुरा के भिक्षु बल ने प्रतिष्ठापित किया था।''उत्तरी भारत में मथुरा कला का बड़ा केन्द्र था। सांची, सारनाथ, कौशाम्बी, श्रावस्ती, पंजाब, राजस्थान का बैराट प्रदेश, बंगाल, अहिच्छत्र, कोसम आदि स्थानों में मथुरा के लाल चकत्तेदार पत्थर की मूर्तियां पाई गई हैं। मथुरा बौद्ध, जैन और ब्राह्मण तीनों धर्मों का केन्द्र था, अतः तीनों कलाओं के अवशेष वहां मिले हैं। उत्तर मौर्यकाल में भरहुत, गया और सांची के बौद्ध स्थलों की पाषाण वेष्टिनियां और प्रवेश द्वारों पर खुदी यक्षों.यक्षिणियों की मूर्तियां हैं। सांची स्तूप में हाथी दांत पर कार्य कुशलता, बुद्ध एवं जातक कथाओं के चित्र, हाथी व घोड़ों पर सवार निकलते जुलूस, मन्दिर में पूजा करते स्त्री पुरुष, जंगलों में घूमते हाथी, शेर, मोर, यक्षी, नाग, पौराणिक कथाओं में वर्णित पशु और अलंकारों से युक्त पुष्पों की चित्रकारी है, आदि प्रमुख हैं। भरहुत, गया और सांची में और वस्तुतः इस समय की समस्त बौद्ध मूर्तिकला में स्वयं बुद्ध का प्रदर्शन कभी नहीं किया गया है। एक चक्र, रिक्त राजसिंहासन, चरण चिन्हों अथवा एक पीपल वृक्ष जैसे संकेतों द्वारा उन्हें प्रकट किया गया है।

कुषाण राजाओं के समय में विकसित गांधार और मथुरा शैली के अन्तर्गत बुद्ध और बोधिसत्वों की सुंदर मूर्तियों का निर्माण हुआ। जैन तीर्थंकरों की भी अनेक मूर्तियां बनीं। ये दो प्रकार की हैं– एक खड़ी हुईऔर दूसरी बैठी मुद्रा में। मथुरा शैली की उत्तरकालीन मूर्तियों में सौन्दर्य और धार्मिक भावना का विकास दिखाई देता है। मथुरा शैली नेप्रारंभिक शताब्दियों की हृष्ट-पुष्ट यक्ष मूर्तियों तथा ध्यानावस्थित जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों से प्रेरणा प्राप्त की। मथुरा की जैन कला की एक प्रमुख विशेषता थी आयागपट्ट (पूजा शिलाएं)। स्तूप के चतुर्दिक इस प्रकार की पूजा शिलाएं स्थापित की जाती थीं। कला की दृष्टि से ये अत्यंत सुन्दर हैं। मथुरा कला के वेदिका स्तंभों की शालभंजिकाएं उद्यान क्रीड़ा और सलिल क्रीड़ा की विविध

मुद्राओं में दिखाई गई हैं। जैन वेदिका स्तंभों पर बनी हुई शालभंजिका मूर्तियां वैसी ही मुद्राओं में हैं, जैसी बौद्ध स्तूपों में।

गांधार और मथुरा से प्राप्त बुद्ध की बहुसंख्यक मूर्तियों में एकभी कनिष्क से पूर्वकाल की नहीं है। कुषाण काल के आरंभ में ब्राह्मण धर्म के देवताओं की अनेक मूर्तियां मथुरा शिल्प में बनाई जाने लगीं। धीरे. धीरे इनकी संख्या बढ़ी और गुप्त काल में अपने पूरे विकास पर पहुंच गई। गांधार शैली रोमन कला से प्रभावित है। स्वात, काबुल और सिंधु इन तीन नदियों की द्रोणियों में घिरा हुआ प्रदेश गांधार था। इसके सात केन्द्र थे– तक्षशिला, पुष्कलावती, नगरहार, स्वात घाटी, कपिशा, बामियां, वाह्लीक या बैक्ट्रिया। गांधार कला की मूर्तियों की विशेषताएं हैं– बुद्ध के जीवन की घटनाएं, बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्तियां, जातक कथाएं, यूनानी देवी देवताओं और गाथाओं के दृश्य, भारतीय देवता और देवियां, वास्तु सम्बन्धी विदेशी विन्यास, भारतीय अलंकरण एवं यूनानी, ईरानी और भारतीय अभिप्राय एवं अलंकरण। गांधार कला में बुद्ध की जीवन घटनाओं के शिलापट्ट अत्यधिक हैं। बुद्ध की जीवन लीला और जातक कथाओं का अंकन मध्यदेश की कला से ग्रहण करने के साथ.साथ गांधार के शिल्पियों ने ईरानी और यूनानी कला के अनेक प्रभाव और अलंकरण स्वीकार किए। स्वभावतः इसमें भारत, ईरान एवं यूनान, रोम की कलाओं के प्रभावों का सम्मिलन हुआ। इस कला में मथुरा कला से कुछ अभिप्राय लेते हुए शालभंजिका मुद्रा में खड़ी वृक्षका स्त्रियों का भी अंकन किया गया। गचकारी के मस्तक और बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियां बहुत प्रशंसित हुईं। उनमें से कुछ उतनी ही श्रेष्ठ हैं, जितनी बुद्ध कला की सर्वोत्तम मूर्तियां। गांधार शैली के इस स्वरूप का उत्थान चौथी.पांचवीं शताब्दी में हुआ। अग्रवाल के अनुसार'' यह स्वीकार करना आवश्यक है कि गान्धारकला में बुद्ध और बोधिसत्व के मुख अध्यात्म भावना से शून्य हैं और उनमें योगीश्वर बुद्ध की उस छवि का अभाव है, जो मथुरा की अन्तर्मुखी बुद्ध मूर्तियों में पाई जाती हैं। (कला पर विविध प्रभावों का अध्ययन आप इसी इकाई में खण्ड 3.4 के अंतर्गत करेंगे।) इनके अलावा भाजा की गुफा में और उड़ीसा में उदयगिरि में प्राप्त अत्यंत प्राचीन मूर्तियां हैं। सातवाहन काल (दूसरी से तीसरी शताब्दी) में अमरावती के स्तूप में उत्कीर्ण बुद्ध के जीवन के दृश्य हैं और उनके चारों ओर मुक्त रूप से खड़ी हुई बुद्ध की आकृतियां हैं। चौथी से छठी तथा सातवीं शताब्दियों का उत्तरार्द्ध गुप्तकाल में सम्मिलित किया जाता है। बाशम के अनुसार ''यदि भरहुत, सांची और मथुरा की शैलियों से ऐन्द्रिय पार्थिवता प्रकट होती है तथा अमरावती की शैली से शक्ति एवं तीव्र गति, तो गुप्तकालीन मूर्तिकला निर्मलता, सुरक्षा एवं निश्चितता की भावना प्रकट करती है। इसी समय भारत ने अपनी कुछ वास्तविक धार्मिक कलाकृतियों की रचना की, विशेष रूप से सारनाथ की सुन्दर बुद्ध मूर्तियों की।'' इनके अलावा गुप्त कालीन ग्वालियर, झांसी की उत्कृष्ट शैली, हिन्दू देवता तथा पौराणिक दृश्यों से युक्त देवगढ़ के मन्दिर की नक्काशीदार मूर्तियां, उदयगिरि की एक गुफा के प्रवेशद्वार पर नक्काशीदार रूप में उत्कीर्ण बाराह की मूर्ति, आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक बिहार और बंगाल के पाल व सेन राजाओं के शासन में स्थानीय काले पत्थर से निर्मित सुन्दर मूर्तियां, उड़ीसा में भुवनेश्वर तथा कोणार्क की सुन्दर मूर्तियां, खजुराहो के मन्दिरों की युगल मूर्तियां प्रमुख हैं। दक्षिण में ऐहोल और बादामी के मन्दिरों में पांचवीं शताब्दी और उसके आगे की उत्कृष्ट कलाकृतियां हैं। कांची के पल्लव राजाओं द्वारा निर्मित मामल्लपुरम की मूर्तियां, जिनमें सबसे अद्भुत गंगावतरण की विशाल उभरी हुई आकृति है तथा अन्य सुन्दर उभरी हुई मूर्तियां हैं। मामल्लपुरम, एलोरा और एलीफैंटा के बाद पाषाण की अनेक मूर्तियां निर्मित हुईं, परंतु प्रायः अधिक श्रेष्ठ होते हुए भी उनमें प्रारंभिक शैलियों की गंभीरता एवं सौन्दर्य का अभाव है।

भारतीय कला में मिट्टी की मूर्तियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी सामग्री बहुत है और प्राचीन भी है तथा मूर्तियों में ढाले गए विषय भी विविध प्रकार के हैं। सिन्धु सभ्यता से लेकर विभिन्न कालों में इन मूर्तियों और खिलौनों का प्रचलन रहा है। उत्तरी भारत के कई ऐतिहासिक स्थानों की खुदाई में मनुष्य और पशुओं की आकृति के बहुत से खिलौने और बड़ी मूर्तियां भी मिली हैं। महाभारत औरउत्तरकालीन साहित्य में मृण्मय मूर्तियों के उल्लेख पाए जाते हैं। मार्कण्डेय पुराण में दुर्गा की मिट्टी की मूर्ति का उल्लेख है। गुप्त काल में कला की दृष्टि से सुन्दर खिलौने बनते थे। पत्थर की प्रतिमाओं के समान ही बड़े आकार की मिट्टी की मूर्तियां भी बनाई जाने लगीं। मिट्टी के सबसे प्राचीन खिलौने लगभग 2500 ई.पू. हड़प्पा सभ्यता में पाए गए हैं, जिनके निर्माण में साँचों का प्रयोग नहीं हुआ है। इनमें स्त्री मूर्तियाँ और पशु.पक्षी के रूप हैं। स्त्री मूर्तियाँ मातृदेवी की हैं। मातृ मूर्तियों की यह परंपरा सिन्धु युग के बाद भी चलती रही। मथुरा, अहिच्छत्र, कौशाम्बी, तक्षशिला आदि स्थानों से मौर्य.शुंग युग की पुरानी मातृ मूर्तियाँ मिली हैं, वे उसी परंपरा में हैं। ऐतिहासिक युग के खिलौने सिन्धु काल से लगभग दो सहस्र वर्ष बाद के हैं, फिर भी शैली और विषय की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती खिलौनों से सम्बन्धित हैं। मौर्य युग के वास्तविक खिलौनों की प्रामाणिक सामग्री सीमित है। इनमें सबसे विशिष्ट वे मूर्तियाँ हैं जो पाटलिपुत्र से मिली थीं और विशेष प्रकार की प्रभावशाली नर्तकी या नाट्य स्त्रियों की मुद्रा में हैं। शुंग काल से साँचे मिलते हैं और तीसरी दूसरी शताब्दी ई. पू. के लगभग साँचे काम में आने लगे थे। बसाढ़ (वैशाली), कोसम(कौशाम्बी) शुंग कालीन खिलौनों केप्रमुख केन्द्र थे। शक.सातवाहन युग (प्रथम द्वितीय शताब्दी) में दक्षिणापथ में मिट्टी की मूर्तियों में विशेष सौन्दर्य दिखाई देता है।गुप्त युग के आरंभ से उत्तर भारत के अनेक केन्दों में कलात्मक मूर्तियां बनने लगीं। इनमें ब्राह्मण धर्म संबन्धी देवी देवताओं की मूर्तियां, सुन्दर स्त्री.पुरुषों की मूर्तियों से अंकित टिकरे या मस्तक जो सांचों से बने हैं तथा पौराणिक आख्यानों और अलंकरण के विषय से संबन्धित फलक प्रमुख हैं।

3.3.2 चित्रकला

रायकृष्ण दास के अनुसार'' चित्रण की प्रवृत्ति मनुष्य में वन्य अवस्था से ही थी। अपना सांस्कृतिक विकास करने के लिए उसने संस्कृति के जिन अंगों से श्रीगणेश किया, उनमें चित्रकला भी एक थी। संसार भर में आदिम मनुष्य के अंकित चित्र मिलते हैं। ये विषय, शैली तथा सामग्री की दृष्टि से उस समय के मानव जीवन के प्रतीक हैं। इनके विषय मुख्यतः जानवर, उनका आखेट करते हुए मनुष्य, आपस में युद्ध करते हुए मनुष्य एवं पूजनीय आकृतियां हैं।'' ये रेखाचित्र प्रायः तत्कालीन मानव का निवास स्थल बनी प्राकृतिक कन्दराओंजिन्हें लोकभाषा में आज भी दरी कहा जाता है, की दीवारों पर लाल गेरू या धाऊ पत्थर (हेमेटाइट) से बनाए गए हैं और लोकभाषा में उन्हीं के लिए रकत की पुतरियां शब्द प्रचलित है। इन स्थलों में भोपाल के समीप भीमबेटका, महादेव पहाड़ी के पचमढ़ी नामक स्थान के इर्द.गिर्द, रायगढ़ के समीप सिंघनपुर और काबरा पहाड़ के चित्र, मिर्जापुर क्षेत्र में लिखुनिया दरी, कोहबर दरी, मेहरिया दरी आदि मुख्य हैं। प्रागैतिहासिक काल में ही आगे चलकर हड़प्पा सभ्यता अर्थात सिन्धु घाटी की सभ्यता के अन्तर्गत हमें विविध चित्रांकनों का निदर्शन होता है।दिनकर लिखते हैं कि ''सिन्धु सभ्यता में रंगे भाण्डों और ठीकरों पर जो चित्रकारी हुई है, वह प्रायः पांच हजार वर्ष पहले के पूर्वजों के चित्र प्रेम की साख भरती है। इन भाण्डों और ठीकरों पर अनेक प्रकार की ज्यामितिक आकृतियां मिलती हैं, जो मुख्यतः काले और फीरोजी रंगों से बनी हैं।''

हड़प्पा सभ्यता में उपलब्ध लगभग 1200 से अधिक घीया पत्थर की बनाई हुई मुहरें कला और लेखों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। अधिकांश पर एकश्रृंग पशु अंकित है, जिसकी पहचान ऋग्वेद के

श्रृंगवृष से की जा सकती है। अन्य पशुओं में महावृषभ, छोटे सींगों वाला नटुआ बैल, महिष, गैंडा, व्याघ्र, हाथी, खरगोश, हिरन, गरुड़, मगरमच्छ आदि हैं। इनमें अंकित आकृतियों मेंएकश्रृंग मुद्राओं पर स्तंभ भी प्रमुख हैं। स्तंभ के ऊपर कटोरा या वीरपात्र और उसके ऊपर वेदिका की खुली वेष्टनी या अण्डाकृति गूमठ– इन सबकी सम्मिलित कल्पना किसी देवता के ध्वजचिन्ह के रूप में की गई होगी। ऐतिहासिक युग के स्तंभों में सबसे ऊपर का भाग धर्मचक्र या सिंह, हाथी जैसे पशुओं से अलंकृत है। हड़प्पा सभ्यता की मुद्राओं में वह स्थान वेदिकामय भाग का है, संभवतः इन स्तंभों पर भी वह भाग परवर्ती युगों की भांति वह देवसदन या विश्वदेवों का स्थान माना जाता था। स्तंभ के कई भागों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए ज्ञात होता है कि उसका सर्वप्रथम रूप सिन्धुघाटी की मुद्राओं पर है। स्तंभ पूजा की धार्मिक प्रथा का संबन्ध इन्द्र, प्रजापति एवं अन्य कई देवों से था (वासुदेवशरण अग्रवाल)। डॉ आनन्द कुमार स्वामी के अनुसार ''वेदों के समय भी चित्रों का चलन भारतवर्ष में था। ऋग्वेद में अग्नि के चित्र का हवाला है, जो चमड़े पर बना रहा होगा। उत्तर वैदिक वाङमय में हम ऐसे शब्दों को पाने लगते हैं, जो पीछे चलकर चित्र के प्रसंग में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें से एक शब्द छायातप है जो जगत के द्वन्द्व को परिलक्षित कराने में प्रयुक्त हुआ है। जातकों में जिस समाज का वर्णन है उसे हम चित्रकला में पूर्ण रूप से व्याप्त पाते हैं। जातकों में शिक्षा के अट्ठारह विषयों का उल्लेख है, जिनमें चित्रकला भी एक थी। बुद्ध के समय चित्र इतने मोहक बनते थे कि बुद्ध ने भिक्षुओं को चित्र देखने की मनाही कर दी थी।''तीसरी चौथी शताब्दी ई.पू. के बौद्ध ग्रंथ विनय पिटक तथा थेरी गाथा में चित्रों का उल्लेख है।

वात्स्यायन के कामसूत्र में चित्र के छः अंग माने गए हैं, जो निम्न श्लोक में वर्णित हैं–

'' रूपभेदाः प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम।
सदृश्यं वर्णिकाभंगं इति चित्र षडंगकम''

(इन छः अंगों की व्याख्या के लिए देखें, रायकृष्णदास, भारतीय चित्रकला)

मानसोल्लास, कुमार विहार, शिल्परत्न, उत्तररामचरित, जैन ग्रंथ नायधम्मकला में चित्रकला के संकेत हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में तो चित्रकला की विधिवत सांगोपांग व्यख्या ही उपलब्ध है।

प्रत्येक घर चित्र से अलंकृत होता था और उसकी भित्ति पर चित्र बने होते थे। भित्ति चित्र का इस देश में इतना अधिक प्रचार था कि भित्ति शब्द ही यहां चित्रों के आधार के लिए रूढ़ हो गया, जैसे यूरोप में चित्रों का आधार कैनवस समझा जाता है। चित्र तीन प्रकार के फलकों पर बनाए जाते थे। प्रथम फलक भित्ति या दीवार थी। दूसरा फलक धर्म या वस्त्र था और तीसरा फलक लकड़ी, तालपत्र, पत्थर और हाथी के दांत होते थे। भारत में पुराने चित्रों के उदाहरण दीवारों पर मिलते हैं एवं उनकी अपेक्षा नवीन चित्र ताल पत्रों और कागज पर। भित्ति चित्र के जो उदाहरण भारत में उपलब्ध हैं, उनका वातावरण धार्मिक है। पहाड़ों को काटकर यहां चैत्य, विहार और मन्दिर बनाने की प्रथा थी एवं उन्हीं की दीवारों पर पलस्तर लगाकर चूने जैसे किसी पदार्थ की घुटाई करके उस पर चित्र बनाए जाते थे। ऐसी गुफाओं में सबसे प्राचीन जोगीमारा की गुफा है। अजन्ता की गुफाओं के चित्रों के विषय बौद्ध धर्म से संबन्धित हैं। गौतम बुद्ध की जीवन घटनाएं, मातृ पोषक जातक, विश्वान्तर जातक, षडदन्त जातक, रूह जातक और महाहंस जातक आदि बारह जातकों में वर्णित गौतम बुद्ध की पूर्वजन्म की कथाएं, धार्मिक इतिहास तथा बुद्ध के दृश्य और राजकीय एवं लौकिक चित्र अंकित हैं। अजंता के समान ही उदाहरण सिगिरिया(श्रीलंका) तथा बाध की गुफाओं में भी उपलब्ध हैं। दिनकर के अनुसार ''अजन्ता, सिगिरिया और बाघ में जो चित्र उपलब्ध है, उन्हीं में हम भारतीय चित्रकला की परिणति के प्रमाण देखते हैं। बौद्ध धर्म के साथ.साथ भारत की संस्कृति

और कला भी भारत के बाहर पहुंचने के कारण सीलोन, जावा, स्याम, बर्मा, नेपाल, तिब्बत, जापान, हिन्द चीन और चीन में भी भारतीय चित्रकारी के नमूने उपलब्ध हैं एवं उनके अध्ययन के बिना भारतीय कला का अध्ययन पूरा नहीं कहा जा सकता।''गुप्त काल के बाद से चित्रकला का धीरे. धीरे ह्रास प्रारंभ हो हुआ। पाल शासन में बने चित्र अपेक्षाकृत उत्तम कोटि के थे।

दक्षिणापथ के चित्रों को देखें तो प्रारंभिक चित्रकला में जो मानव आकृतियां अथवा देवी.देवताओं के चित्र बनाए गए हैं, वे पूरी तरह वहां की नृतात्विक विशेषताओं के अनुरूप वहां के आदिवासियों की शारीरिक बनावट वाली हैं। शकों और पहलवों की जो आकृतियां दानदाताओं के रूप में चित्रित हैं, वे अपने उष्णीषों , कपड़ों और जूतों के कारण पूरी तरह पहचानी जा सकती हैं। किन्तु आंध्रों का शासनकाल समाप्त होते ही जब दक्षिणापथ में वाकाटकों का युग प्रारंभ हुआ तो उनके समय ये स्थानीय प्रभाव नहीं दिखाई देते। वाकाटक उत्तरी भारत के गुप्त सम्राटों से वैवाहिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों में बंधे हुए थे।

3.3.3 मुद्रा निर्माण कला

प्रागैतिहासिक कालीन मुद्राओं/मोहरों की कला के संबन्ध में आप इसी खण्ड के उपखण्ड 3.3.2 में हड़प्पा सभ्यता की मोहरों के चित्रांकन में पढ़ चुके हैं। मुद्राओं के दूसरे नमूने हमें आहत मुद्राओं (पंचमार्क कॉइन्स)के रूप में मिलते हैं। भारत के सबसे प्राचीन सिक्के निशान लगाने के कारण ही पंचमार्क के नाम से पुकारे जाते थे। चाँदी की प्राचीन आहत मुद्राएं तक्षशिला से मैसूर तक मिली हैं। इन पर लगभग 500 चिन्ह बने हैं, जिन्हें रूप कहा जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में आहत मुद्राओं का वर्णन मिलता है। इनमें सूर्य, षडभुजी चिन्ह, चतुश्पद पंक्ति जिनमें हाथी, सिंह, वृषभ और कहीं.कहीं तुरग है, चोटी पर अर्धचन्द्र से युक्त मेरु पर्वत, चक्र, वेदिका से घिरा हुआ चैत्य वृक्ष, जिस पर पक्षियों के घोंसले हैं या नहीं भी हैं, मछलियों से भरा हुआ सरोवर, शशक, मोर , मेंढक, कछुआ, धनुष बाण, नन्दिपद, स्वस्तिक गर्भित चौकोरे, त्रिभुज, चौखटे में अंकित तीन मानवाकृति आदि। चिन्हों में एक ओर वैदिक प्रतीक हैं, दूसरी ओर ज्यामितीय रेखाओं से बने हुए पशु.पक्षी और फूल.पत्तियों के अनेक अलंकरण हैं। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में विदेशियों के अनुकरण पर लेख सिक्कों पर अंकित किए जाने लगे।कुषाण शासकों ने स्वयं सिक्कों को तैयार कराया और उपाधि सहित अपना नाम खुदवाया। कुषाण शासक विम कडफिस के सिक्कों पर केवल शिव और नन्दी बैल की मूर्ति थी। कनिष्क ने ईरानी, यूनानी ,ब्राह्मण और बौद्ध धर्म के देवताओं को अपने सिक्कों में स्थान दिया। ''ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से सांचे में ढालकर सिक्के बनाने का पता चलता है। सांचे मिट्टी को पकाकर तैयार किए जाते थे। सांचे बनाने से पूर्व मिट्टी में अक्सर धान का छिलका मिलाया जाता था। टप्पे से भी सिक्के तैयार किए जाते थे। इस रीति से गरम धातु के टुकड़े पर टप्पे के दबाव से चिन्ह तथा लेख गहराई में अंकित हो जाते थे। एक ओर टप्पे के निशान से सिक्के तैयार करने की प्रथा ढालने के काम में लाई गई। ईरानी सिक्कों के आधार पर दोनो तरफ टप्पा मारने का दोहरा प्रयोग किया गया। कुणिन्द, औदुम्बर, नाग तथा यौधेय गणों के गोलाकार सिक्के पाए जाते हैं। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से ही आहत (पंचमार्क) सिक्के तैयार करने की पुरानी रीति का टप्पा ने अंत कर दिया। गुप्त कालीन सिक्कों में कला का सूक्ष्म प्रदर्शन किया गया। राजलक्ष्मी, शेर, घोड़े, कमल आदि को उनके प्राकृतिक रूप में दिखलाया गया है। समुद्रगुप्त को स्वाभाविक ढंग से वीणा बजाते हुए अंकित किया गया है। स्कन्दगुप्त के समय में हूण आक्रमण के कारण साम्राज्य के अवनति की ओर अग्रसर होने के कारण सिक्कों की कला में भी ह्रास दिखाई देता है।''(वासुदेव उपाध्याय, भारतीय सिक्के)।

3.3.4 मृद्भाण्ड

हड़प्पा सभ्यता में कुम्हार की चाक पर बने कुछ बर्तन सादे हैं और कुछ पर लाल पोत देकर काली रेखाओं से चित्र बनाए गए हैं। इन पर रंग चढ़ाने के लिए लाल गेरू या हिरमिजी मिट्टी का प्रयोग हुआ है। इनमें कुछ विशेष प्रकार के बर्तन उल्लेखनीय हैं, जैसे नारियल की आकृति के नुकीली पेंदी के मिट्टी के कुल्हड़, दो इंच से लेकर चालीस इंच तक के उठान वाले बहुछिद्र युक्त भांड, संभवतः सुगंधित तेल व श्रृंगार सामग्री रखने के लिए बनाए गए आधे इंच से डेढ़ दो इंच तक के वामनाकृति भाण्ड, खुदे हुए बर्तन भाण्ड, पशु आकृति के बर्तन, नुकीली आकृति के अनाज रखने के बर्तन, शव निखात पात्र आदि। इन पर अंकित चित्रों में भंगिमा युक्त टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं, लहरिया रेखाएं, कंघा, सूर्य, तारे, बाणमुख, चौफुलियाज्यामितिक आकृतियां, फूल.पत्तियों की पंक्तियां, पशु. पक्षी, मछली, पीपल का वृक्ष, मोर,मृगया का चित्र आदि प्रमुख हैं।हमें तीन प्रकार के मृद्भाण्डों का परिचय मिलता है 1. गेरू या लाल रंग से रंगे बर्तन 2. भूरे रंग के बर्तन जिन पर काली रेखाओं के चित्र हैं (1200ई. पू. से 600 ई. पू.) 3. उत्तरी काली पॉलिश वाले बर्तन (नॉर्दर्न ब्लैक पेंटेड वेयर) (600 से 200 ई. पू.)। इनमें से तीसरे प्रकार के चमकीले भाण्ड सारे भारत में प्राक्मौर्य और लगभग मौर्यकालीन स्थानों पर पाए गए हैं।

3.3.5 संगीत, वाद्य,नृत्य

कुछ प्रमाण मिलता है ,जिससे ज्ञात होता है कि आर्य लोग सप्त स्वरों (सरगम) से परिचित थे और सामवेद की ऋचाओं के गायन के निर्देश यह बताते हैं कि वैदिक काल में भक्ति संबन्धी गायन शैली मध्यकालीन सरल स्त्रोत पाठ शैली की भांति थी। ''स्त्री. पुरुष दोनों ही झांझ. मजीरे के वाद्यों के साथ नृत्य में भाग लेते थे। उस समय तीनों ही प्रकार के वाद्यों का आविष्कार हो चुका था– अवनद्ध वाद्य जैसे दुन्दुभि, तंतुवाद्य जैसे कर्करि अथवा वाण या वीणा, जिसके सप्त स्वरों की ठीक पहचान हो चुकी थी और सुषिर वाद्य जिसे नाव्ठी कहा जाता था (राधाकुमुद मुखर्जी, हिन्दू सभ्यता)।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में तीस से ऊपर रागों का उल्लेख है। प्रमुख वाद्य यंत्र वीणा था। गुप्त काल के अन्त तक इस वाद्य यंत्र का प्रचलन समाप्त होना प्रारंभ हो गया और उसका स्थान एक नारंगी के आकार की सारंगी ने ले लिया जो या तो उंगलियों से अथवा गज से बजाई जाती थी। इसका स्थान क्रमशः आठवीं शताब्दी में वर्तमान वीणा के प्रारंभिक रूप ने लिया, जिसमें एक लम्बा अंगुलीय पट तथा छोटी गोलाकार आकृति होती थी , जो प्रायः सूखी लौकी से बनाई जाती थी। विभिन्न प्रकार की बांसुरी तथा नरकुल के वाद्ययंत्रों का प्रचार था परंतु तुरही के यन्त्रों का प्रयोग संदेशोंएवं घोषणाओं के अतिरिक्त प्रायः नहीं होता था। सबसे अधिक वर्णन शंख का प्राप्त होता है, जो युद्ध से पूर्व घिसे हुए सिरे द्वारा देवता के आह्वान के रूप में और प्रायः आवश्यक अवसरों पर बजाया जाता था। संगीत की भांति भारतीय नृत्य का भी नाट्य से घनिष्ठ संबन्ध था। नृत्य और नाट्य एक ही कला अर्थात अभिनय के रूप हैं। नाट्य ने मुख्यतः शब्द एवं मुद्रा का प्रयोग किया, जबकि नृत्य ने मुख्यतः संगीत एवं मुद्रा का।बाघ के गुफा चित्र में एक दृश्य नृत्य समाज का है, जिसमें नर्तकी मंडल बांधकर छोटे. छोटे डंडे लड़ाकर नृत्य कर रही है।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) स्तूप की विशेषताएं

(ख) गुफा मन्दिर व चैत्य स्तूपों से किस प्रकार भिन्न हैं?

(ग) प्राचीन भारतीय कला में मन्दिरों का स्वरूप

(घ) मूर्तिकला की विशेषताएं

(च) प्राचीन भारतीय चित्रकला की विशेषताएं

2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

(क) सांची व सारनाथ के स्तूप जैन धर्म की कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

(ख) मन्दिर वास्तु की नागर शैली का विकास दक्षिण भारत में हुआ।

(ग) कोणार्क का सूर्य मन्दिर उड़ीसा में है।

(घ) हड़प्पा सभ्यता से प्राप्त मुहरों पर अंकित एकश्रृंग पशु की पहचान ऋग्वेद के श्रृंगवृष से की जा सकती है।

(च) अजंता की गुफा में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्र अधिक हैं।

(छ) कौटिल्य के अर्थशास्त्र में आहत मुद्राओं का उल्लेख मिलता है।

3.4 भारतीय कला पर विविध प्रभाव

भारत और पश्चिमी एशिया के पारस्परिक संबन्धों के साक्ष्य हड़प्पा सभ्यता के साथ ही मिलने लगते हैं। आरंभयुगीन संपर्कों का प्रभाव कला के रूपों में पाया जाता है, जो पश्चिमी एशिया से भारत तक फैले हुए थे और जिनकी कल्पना में दोनों संस्कृतियों ने भाग लिया (वासुदेव शरण अग्रवाल)। दोनों के सहयोग से उत्पन्न अभिप्राय थे– सपक्ष सिंह, महोरग (समुद्री व्याल/अंग्रेजी ट्राइटन), दो सिर और चार सींगों वाला भैंसा (ऋग्वेद), एक सिर और दस शरीरों वाले वत्स (अथर्ववेद), पशु पक्षियों के मुख वाले रूप, कल्पनाजन्य पशु (ईहामृग) आदि। इनके समानान्तर या मिलते.जुलते बहुत से रूप सुमेर, खत्ती, असीरिया , मेसोपोटामिया, क्रीट, ट्राय, फीनिशिया, हखमनी और शक संस्कृतियों आदि की कलाओं में प्राप्त होते हैं। भरहुत, सांची और मथुरा की कला में ईहामृग पशुओं की सजावट है।मथुरा में लम्बे खिंचे हुए टेढ़े. मेढ़े शरीरों वाले पशुओं का बहुतायत से चित्रण पाया जाता है। भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार ''भारत में शिलाओं और स्तंभों पर आलेख अंकित करने की कला ईरान होकर भारत पहुंची। वास्तुकला के संस्कृत ग्रंथों और महाभारत तथा पुराणों में असुर मय की चर्चा आचार्य और असाधारण वास्तुकार के रूप में हुई है। ई. बी.हेवेल ने कुछ पुराने असीरियन मन्दिरों के जो पुनर्निर्मितचित्र प्रस्तुत किये हैं, उनसे हमारे मन्दिर के शिखरों का सम्बन्ध सीधे उनसे स्थापित हो जाता है।इसी प्रकार उनकेद्वारा स्तम्भ निर्माण में किए गए

प्रयोगों से फारसियों और यूनानियों के आयोनीय खम्भों का विकास हुआ और आगे चलकर वे तक्षशिला पहुंचे। वे महान कारीगर थे तथा ललित कलाओं के उदाहरण उपस्थित करने में अनुपम थे। उनकी कलात्मक उपलब्धियां महलों के इर्द.गिर्द केन्द्रित थीं। फर्श बनाने की उनकी विशेषता उस चमक में थी, जिसके कारण जहां जल था वहां थल प्रतीत होता था और जहां थल था, वहां जल। असुर कलाकार मय ने महाभारत के युधिष्ठिर के महल में यही चमत्कार उत्पन्न किया था। इसी प्रकार स्पूनर ने आधुनिक पटना के निकट एक गांव कुमरहार में चन्द्रगुप्त मौर्य के राजमहल के अवशेष खोजे, जिसमें ढाई फुट गोलाई वाले , दस फुट ऊँचे स्तंभों की दो पंक्तियों के ऊपर बनाया गया एक स्तंभ कक्ष था। पर्सिपोलिस में दारा और क्षयार्ष (जेरेक्सीज) के महल में भी सौ स्तंभ दस पंक्तियों में खड़े किए गए थे। मेगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त मौर्य के महल की समानता शुषा और एकबताना के महलों से की थी।'' वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि '' हखमनी कला के स्तंभों और मौर्य कला के स्तंभों में आकाश पाताल का अन्तर है। ईरान के राजप्रासादों की अपेक्षा पाटलिपुत्र का राजप्रासाद कहीं अधिक उत्कृष्ट था। ईलियन के अनुसार ''सूसा और एकबताना के राजप्रसाद किसी भांति पाटलिपुत्र के राजप्रासाद से स्पर्द्धा नहीं कर सकते थे।''

भगवतशरण उपाध्याय ने आगे लिखा है कि ''अशोक के काल से पहले भारत में शिलाओं और स्तंभों पर आलेख कभी अंकित नहीं किए गए थे। बुद्ध के अवशेषों वाले पात्रों पर कुछ इंच लम्बे आलेख, जैसा एक पिपरहवा के स्तूप में प्राप्त हुए हैं, बुद्ध काल के नहीं हैं, क्योंकि उनको अशोक काल की ब्राह्मी लिपि में अंकित किया गया है। अपनी विजय के आलेख चट्टानों और स्तंभों पर अंकित करना फारस के सम्राटों में आम प्रथा थी। उससे पहले असीरिया में , उससे पहले मिस्र, सुमेरिया और बेबीलोनिया में थी।''इसके विपरीत अग्रवाल का मत है कि '' अशोक ने अपना मौलिक विचार स्तंभ शीर्षकों के रूप में प्रकट किया। स्तूप, वेदिका, छत्र, बोधिमंड, एकाश्मक स्तंभ शीर्षक, पर्वत में उत्कीर्ण गुफाएं और धौली में उत्कीर्ण गजतम– ये सब कला के रूप भारतीय भूमि की उपज थे। इस बृहत सूची से केवल स्तंभों को अलग करके उन्हें विदेशी प्रभाव से प्रभावित मानना युक्तिसंगत नहीं है।''वे आगे लिखते हैं ''पर्सी ब्राउन ने लिखा है कि 3000 ई. पू. में ऊर नामक स्थान में चन्द्र मन्दिर के सामने ऐसे स्तम्भ थे।(चट्टान में उत्कीर्ण गुफाओं के सामने के कीर्ति स्तम्भ)उनका मानना है कि मिस्र के मन्दिरों के सामने भी ऐसी ही लाटें थीं और येरूसलम के सोलोमन के मन्दिर के सामने भी दो पीतल के स्तम्भ थे, जिनका प्रभाव कार्ले के कीर्तिस्तम्भों पर पड़ा। किन्तु ऐसे स्तम्भों की कल्पना के लिए भारत से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। यज्ञीय भूमि में और श्मशानों में इस प्रकार के स्तम्भों को स्थापित करने का रिवाज बहुत पुराने समय से था। ऋग्वेद में ही इसका उल्लेख है और लौरियानन्दनगढ़ के मिट्टी के थूहों में ऐसे स्तंभों के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। सांची के महाचैत्य में तोरण के सामने ऐसा ही स्तंभ है।''

''भारतीय वास्तुकला में स्तूप एक विदेशी देन थी। स्तूप जैसे दोनों प्रकार के ढांचे पश्चिमी एशिया और मिस्र में कब के खड़े किए जा चुके थे। बेबीलोन तथा अन्य स्थानों पर एक प्रकार के मन्दिर बनाए गए थे, जिनमें से कुछ सात सात मंजिल के थे और जिनके ठोस बाहरी भाग के चारों ओर वर्तुलाकार सीढ़ियां ऊपर की ओर उठती चली गई थीं। इनको जग्गुरत कहा जाता था। बिना कक्षों वाले मन्दिर के लिए संस्कृत शब्द है जरूक, जो जग्गुरत का बिगड़ा हुआ रूप है। महाभारत में इसे एदुक कहा गया है। अवशेष संचय के लिए निर्मित दूसरे प्रकार के स्तूप की तुलना और संबन्ध मिस्र के पिरामिडों से किया जा सकता है। डॉ आनन्द कुमारस्वामी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय और इंडोनेशियाई कला का इतिहास' में लिखा है और उसकी पुष्टि लौरिया में ब्लॉख द्वारा की गई खुदाई से हुई है कि उत्तरी बिहार में लौरियानन्दनगढ़ में आठवीं सातवीं सदी ई.पू. के समय के एक मकबरे का अस्तित्व था। डॉ. कुमारस्वामी ने भारत में चट्टानों में

काटकर बनाए गए बड़े प्राचीन चैत्य कक्षों और एशिया माइनर के दक्षिणी तट के किनारे पिनारा और जेन्थस नगरों के पहाड़ों में तराश कर बनाए गए मकबरों के बीच समानता बताई है। ''इस प्रकार स्पष्ट है कि सुमेरिया और बाबुल (बेबीलोन) के जग्गुरत और मिस्र के पिरामिड तथा पिनारा और जेन्थस में खोद कर निकाले गए मकबरे उन स्तूपों के पूर्ववर्ती नमूने थे जो गांधार, पश्चिमी पंजाब और सिंध में ईरानियों के प्रभुत्व के समय बने थे''(भगवतशरण उपाध्याय)।के. आर.श्रीनिवासन का मत है कि ''वैदिक, बौद्ध तथा जैन धर्म मूलतः भारतीय होने के कारण उनके मन्दिरों के आकार.प्रकार में उन पर कोई बाहरी प्रभाव नहीं है। जो कुछ भी उन्होंने लिया है, वह अपने ही देश की परंपरा से प्राप्त किया है। यही कारण है कि तीनों प्रकार के मन्दिरों की बनावट और उनका स्थापत्य शुद्ध देशीय सिद्धांतों और स्थापत्य की परंपरागत शैली के अनुसार ही है। अपनी विभिन्न आस्था और विश्वासों के अनुसार पहचान की दृष्टि से अपने मतों के लिए विशिष्ट महत्व रखने वाले कुछ परिवर्तन अवश्य किए गए''।

मूर्तिकला के क्षेत्र में यह प्रभाव और भी महत्वपूर्ण है। अशोक से पन्द्रह शताब्दी पहले की सुदूर सिन्धु सभ्यता की मूर्तियों और परखम यक्ष जैसे कुछ अन्य 'क्रूड' नमूनों को छोड़कर जो अशोक से थोड़े ही पहले के हैं, अशोक से पहले की कोई मूर्ति नहीं मिलती। अशोक के स्मारकों की चमत्कारी पॉलिश जिससे वे धातु के बने प्रतीत होते हैं और जिसका उन्हीं के साथ अन्त भी हो जाता है, परखम, पवाया और बड़ौदा में प्राप्त किस्म के स्थानीय नमूनों से भिन्न है। भगवतशरण उपाध्याय का मानना है कि ''वह पॉलिश भी और स्तंभों तथा उनके शिखरस्थ पशुओं की परिकल्पना वहीं से आई जहां से अरमई लिपि, अशोक के शिलालेखों के प्रारंभिक अंश आए थे। अशोक के स्मारकों के तात्कालिक पूर्ववर्तियों का भी हम्मूराबी के स्तंभों से असुरबनीपाल तथा उसके असीरियाई उत्तराधिकारियों के पाषाण स्तंभों तथा हखमनी सम्राट दारा तक और दारा से अशोक के सिंह स्तंभों तक एक अविच्छिन्न सातत्य था। सांची और भरहुत के स्तंभों कीशुंगकालीन रेलिंग उत्कृष्ट हैं। मौर्यकालीन स्तूपों के इर्द.गिर्द सांची और भरहुत की रेलिंगें, जिन पर बड़े सजीव पशु पक्षी अंकित हैं, परवर्ती शुंग युग की उपलब्धियां हैं। शुंगकालीन कला में बौद्ध प्रतीकों के ऊपर भी छत्र लगाए जाने लगे थे। मस्तक के पीछे तेजोचक्र या प्रभामण्डल आरंभ से ही बुद्ध मूर्ति का लक्षण माना गया। इस लक्षण को ईरान के धार्मिक देवताओं से अपनाया गया, जहां सिक्कों पर उन देवों की मूर्तियों में मस्तक के पीछे प्रभामण्डल पाया जाता है। इसी प्रकार यूनानी मूर्तिकारों ने भारतीय जीवन और गाथाओं को , विशेषकर बुद्ध के जीवन को छोटे.बड़े कई रूपों में अंकित किया। मथुरा के लाल चकत्तेदार पत्थर पर बनी कुछ मूर्तियों में गांधार शैली की बुद्ध मूर्तियों के कई लक्षण हैं, जैसे– कुछ मूर्तियों के चेहरे पर मूंछें हैं। छाती पर जनेऊ की तरह रक्षासूत्र या ताबीजी गण्डे हैं और जो बेंत के ऊँचे मूढ़े पर बैठी हैं। वे पैरों में यूनानी ढंग की चप्पल पहने हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार बुद्ध के चेहरे पर मूंछें कभी नहीं दिखाई जाती। यह लक्षण ईरान की मूर्तियों से लिया गया। ताबीजी माला भी ईरानी या पश्चिमी परंपरा से ली गई। कालान्तर में पंजाब और काबुल घाटी में गांधार, भारतीय .यूनानी, भारतीय.हेलेनी या यूनानी.रोमन कलाके रूप हम देखते हैं। गांधार की प्राचीन राजधानी तक्षशिला में आयोनियाई खम्भों वाले अनेक भवन और मन्दिर मिले हैं। यूनानी कारीगरों और वास्तुशिल्पियों ने अनेक मन्दिर बनाए और कश्मीर के मन्दिरों पर हेलेनी वास्तुशिल्प की अनेक छाप छोडीं। । हिन्द यूनानियों के बाद ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के लगभग भारत में प्रवेश करने वाले शक, पहलव, कुषाण, आभीर और गुर्जरों ने भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया, जिनमें मध्य एशिया से आई खानाबदोश शक जाति ने भारत में बड़ी संख्या में पूजा की स्थानीय रीतियों व देवी. देवताओं को अपनाया। मथुरा के संग्रहालय में लाल पत्थर की अनेक ऐसी प्रतिमाएं रखी हैं, जो पहली से तीसरी शताब्दी ई. तक की हैं, जिनमें कुछ ं चार अश्वों के रथ में बैठी दिखाई गई सूर्य की हैं। सूर्य की

उपासना के लिए तैयार इस प्रकार की प्रतिमाएं भारत में इस काल से पहले नहीं दिखाई देतीं। ऋग्वेद में भी सूर्य को प्राकृतिक रूप में पूज्य माना गया कुषाणों से पहले सूर्य की कोई प्रतिमा नहीं मिली है। धोती पहने, उत्तरीय ओढ़े, मुकुट धारी खड़े सूर्य की प्रतिमाएं, (जिनमें उन्हें कमलदल धारण किए हुए अथवा कुहनियों पर से बाहुएं मोड़े दोनो हाथ ऊपर उठाए हुए कमलदलों का स्पर्श करते हुए दिखाया गया है), बाद के मध्यकाल में आईं। भविष्य, शाम्ब तथा अन्य पुराणों में सूर्य की उपासना तथा सूर्य के प्रथम मन्दिर की स्थापना शकद्वीप अर्थात सिंध के मुल्तान स्थान में बताई गई है, जहां शकों ने भारत में प्रवेश करके अपनी बस्तियांबसाईं थीं। शक और कुषाण सूर्य पूजक थे। कनिष्क के सिक्कों पर सूर्य और चन्द्र की आकृतियां मिलती हैं। भारत में उन्होंने ही सूर्य की उपासना का चलन आरंभ किया और अपने अनुरूप वेशभूषा भी दी। भारत में पहले कुछ एक ही थे। कश्मीर में मार्तण्ड मन्दिर, उड़ीसा में कोणार्क, उत्तर प्रदेश में बहराइच में सूर्य मन्दिर आदि।

प्रसिद्ध ग्रीको भारतीय शैलीगांधार शैली का आरंभ यूनानियों ने किया था, परंतु उसको विकसित करके प्रचलित करने का कार्य शकों और कुषाणों ने किया। फलतः सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियां पहली से तीसरी सदी ई. के दौरान बनी। स्तूपों के स्तंभ, रेलिंग, बुद्ध की मूर्तियों में सिलवटों की लकीरें और सूक्ष्म हुईं। भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार ''कुषाणों की उपलब्धियों में गांधार कला ने एक स्पष्ट समान शैली को जन्म दिया और महायान के दार्शनिक सिद्धांतों द्वारा समर्थित बुद्ध की मूर्ति के प्रकट होने से बौद्ध मत पश्चिम और पूर्व में समान रूप से विचारकों तथा आम जनता के स्वीकार योग्य बन गया। कला को आम रूप में एक विशिष्ट कुषाण शैली प्राप्त हुई और नाग.नागिनियों, अप्सराओं और यक्षिणियों, सप्तमातृकाओं, मगरमच्छ और कछुए पर सवार गंगा और यमुना, बोधिसत्वों और आयागपटों की मूर्तियों ने मथुरा कला को समृद्ध किया। वासुदेव कृष्ण पहली बार मूर्तिमान हुए। अगर कुषाण तकनीक पहले प्रकट न हुई होती तो गुप्त युग की कला की उपलब्धियां और सूक्ष्मता मात्र स्वप्न बनी रहती।''

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) प्राचीन भारतीय कला पर विभिन्न प्रभाव

   (ख) गांधार कला का स्वरूप

2. **निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए**

   (क) चन्द्रगुप्त के राजमहल के अवशेष पटना के निकट कुमरहार में प्राप्त हुए हैं।

   (ख) गांधार कला पर यूनानी प्रभाव है।

3.5 कलाकृतियों हेतु प्रयुक्त सामग्री तथा उसका प्राप्तिस्थान

कला की वस्तु के अध्ययन के लिए अवशेषों प्राप्ति स्थान और तिथिक्रम दोनों से सहायता मिलती है। सिन्धु घाटी में कीरथर पहाड़ी की खदानों का सफेद खड़िया पत्थर (लाइमस्टोन) काम में लाया जाता था। मौर्य कला के लिए चुनार की खदानों का हल्के गुलाबी रंग का ठोस बलुआ पत्थर काम आता था। मथुरा कला में मंजीठी रंग का चित्तीदार बलुआ पत्थर जो सीकरी, बयाना आदि स्थानों में मिलता है, प्रयुक्त

किया गया। गान्धार कला में नीली झलक का सलेटी पत्थर, तथा गुप्त कला में स्थानीय ललछौंह या महावरी पत्थर का प्रयोग होता था। पाल युग में गहरे नीले या काले रंग का पत्थर (ब्लैक बेसाल्ट) , चालुक्य कला में पीले रंग का बलुआ पत्थर, अमराववती एवं नागार्जुनीकोण्डा आदि के स्तूपों में विशेष प्रकार का श्वेत खड़िया पत्थर काम में आता था , जिसे वहां की भाषा में अमृतशिला कहते हैं और जो हमारे यहां के संगमरमर से मिलता है। इसी प्रकार उड़ीसा के मन्दिरों में राजारनिया या मुगनी(क्लोराइट) पत्थर, कहहीं कुरथा (ग्रेनाइट) और कहीं ढुसरिया पत्थर (लेटराइट) और कहीं सेलखड़ी या संगजराहत (एसबेस्टस) और कहीं संगमरमर काम में लाया गया। इस प्रकार कला में प्रयुक्त सामग्री को देखकर आपको कलात्मक सामग्री के स्थानीय भेदों का निर्देश मिल जाता है।चित्रों की सामग्री को देखें तो आदिम चित्रों की सामग्री में धातु (= खनिज, रंग, मुख्यतः गेरू, रामरज, हिरौंजी) है तथा उत्कीर्णन के स्थान गुहागृह तथा खुली चट्टानें हैं। अजंता के चित्रण विधान में दीवार या चित्रण हेतु प्रयुक्त स्थल का पत्थर टपर कर खुरदुरा बना दिया जाता था, जिय पर गोबर, पत्थर के चूर्ण और कभी कभी धान की भूसी मिले हुए गारे का कलेवा चढ़ाया जाता था। यह कलेवा चूने के पतले पलस्तर से ढका जाता था और इस पर जमीन बांधकर लाल रंग की रेखाओं से चित्र टीपे जाते थे, जो रंग लगाकर तैयार किए जाते थे।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) विभिन्न कलाकृतियों के निर्माण हेतु प्रयुक्त सामग्री पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

3.6 सारांश

प्राचीन भारतीय कला को उसकी विशेषताओं के आधार पर धार्मिक और लौकिक दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। कला में जिन धारणाओं और धार्मिक विश्वासों का निरूपण हुआ है, उनमें बुद्ध और बुद्ध के जीवन से जुड़ी घटनाएं, शिव-रुद्र व नारायण-विष्णु को प्रमुख स्थान दिया गया है, तो दूसरी ओर यक्ष, नाग, नदी, सागर, चन्द्र, सूर्य, नदी, स्कन्द आदि मातृभूमि से सम्बन्धित देवताओं व उपासना के प्रतीकों का अंकन हुआ है। देवपूजा के वे प्रकार जैसे लोक में थे, वैसे ही कला में भी अपनाए गए। भारतीय कला के वर्ण्य विषयों में भारतीय जीवन और विचारों की विशद व्याख्या मिलती है। इसमें विशिष्ट और सामान्य जन दोनों का ही अंकन हुआ है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर ऐतिहासिक युगों तक यह कला विभिन्न सभ्यताओं में प्रयुक्त विभिन्न प्रतीकों, अभिप्रायों और विषयों को लेकर चली है। अध्यात्म और सौन्दर्य के सम्मिश्रण ने इसे कलात्मक रूप से और अधिक समृद्ध बनाया है।

मन्दिर, स्तूप आदि धार्मिक वास्तु के प्रतीक हैं।गुप्त काल के स्तंभों पर आधारित बिना छत वाले प्रारंभिक मन्दिरों का स्थान धीरे. धीरे छत वाले मन्दिरों ने लिया और कालान्तर में मन्दिर वास्तुकला की तीन शैलियों का विकास हुआ– नागर, बेसर तथा द्रविड़। प्रारंभिक काल में गुफा मन्दिरों और चैत्यों का भी निर्माण हुआ। इन सभी में उत्कृष्ट मूर्तिकला, सुन्दर चित्रकारी एवं अलंकरण हैं। अजंता की चित्रकला विश्वप्रसिद्ध है। इसी प्रकार प्राचीन भारतीय वास्तुकला के क्षेत्र में बुद्ध के सम्मान में स्तूप निर्माण हुआ। ये दो प्रकार के हैं– स्मारक के रूप में बने स्तूप ईंट और पत्थरों के बने ठोस ढांचे थे, जो बुद्ध या महावीर के जीवन की किसी घटना के किसी स्मारक में खड़े किए गए थे। दूसरे अस्थि संचायक स्तूप खोखले आकार के थे, जहां अवशेष रखे जाते थे। प्राारंभिक स्तूप विशाल गोलार्द्ध गुम्बदों के रूप में थे, जिनमें एक केन्द्रीय

कक्ष में बुद्ध के स्मारक चिन्ह प्रायः सुन्दरता से स्फटिक जड़ित एक छोटी मंजूषा में रखे रहते थे। धीरे-धीरे स्तूपों के अलंकरण में भी वृद्धि हुई। कला के लौकिक पक्ष के अन्तर्गत ग्रामों और पुरों के सन्निवेश, विभिन्न प्रकार के भवन, दुर्ग आदि का निर्माण, पशु पक्षियों (सिंह, हिरन, मोर आदि), पुष्प (जैसे कमल) वृक्ष(वट, अश्वत्थ आदि), मनुष्यों एवं जनजीवन से सम्बन्धित विभिन्न अंकन हुए हैं और ये अत्यंत सजीव हैं। इस समग्र इकाई के अध्ययन से आप समझ पाए होंगे कि भारतीय कला का स्वरूप जितना स्थानीय था, बाह्य प्रभाव से भी वह अछूती नहीं रही। समय समय पर विभिन्न मानव समूह भारतवर्ष की सीमाएं लांघकर इस भूभाग में प्रविष्ट हुए उनकी कला का प्रभाव भी यहां पड़ा (यद्यपि विद्वानों में इस प्रभाव के बारे में विभिन्न मत हैं)और उनके परस्पर समन्वय से भी भारतीय कला में विविधता का समावेश हुआ।गांधार और मथुरा कला इसका एक प्रमुख उदाहरण हैं।

3.7 तकनीकी शब्दावली

1 पत्रवल्लरी / पत्रलता – पत्तों की बेल

2 ईहामृग–काल्पनिक मृग

3 अभिप्राय– कला में मोटिफ

4 ऐरावत– इन्द्र का हाथी

5 भित्तिचित्र – दीवारों पर बनाए जाते थे।इसके अलावा कपड़े और संभवतः चमड़े पर बनाए जाने वाले 'चित्रपट' एवं लकड़ी, कीमती पत्थरों और हाथी दांत पर बनाए जाने वाले ''चित्रफलक प्रमुख थे।

6 तुषित स्वर्ग– एक स्वर्ग का नाम

7कुक्षि– कोख, गर्भ

8 तिरश्चीन– कुटिल,टेढ़ा

9 धर्मचक्रप्रवर्तन–ज्ञान प्राप्ति के बाद बुद्ध ने सारनाथ में अपना प्रथम उपदेश दिया, जिसे धर्मचक्रप्रवर्तन कहा जाता है। कला में इसे चक्र के रूप में अंकित किया गया है।

14 यूप– यज्ञ का स्तंभ। दिव्यावदान ने यूप को धर्म का चिन्ह कहा है।

15 हर्मिका– स्तूप का एक भाग, जिसे शिखर के अस्थिपात्र की रक्षा हेतु निर्मित किया जाता है

16 मन्दिर का गर्भगृह–मुख्य पूजा स्थल, जहां उपास्य देव मूर्ति होती है

17 कुम्भाण्ड– एक असुर

18 प्रदक्षिणा– परिक्रमा

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

खण्ड3.2 के उत्तर

1. (क) देखें 3.2.1(ख) देखें 3.2.4 व 3.2.4.1

2. (क) देखें 3.2.1(गलत) (ख) देखें 3.2.5 (सही)

खण्ड 3.3 के उत्तर

1. (क) देखें 3.3.1.1 (ख) देखें 3.3.1.1 व 3.3.1.2

(ग) देखें 3.3.1.3 (घ) देखें 3.3.1.4

(च) देखें 3.3.2

2. (क) देखें 3.3.1.1 (गलत) (ख) देखें 3.3.1.3 (गलत)

(ग) देखें 3.3.1.3 (सही) (घ) देखें 3.3.2 (सही)

(च) देखें 3.3.2 (सही) (छ) देखें 3.3.3 (सही)

खण्ड3.4 के उत्तर

1. (क) देखें 3.4 (ख) देखें 3.4

2. (क) देखें 3.4 (सही) (ख) देखें 3.4 (सही)

खण्ड 3.5 के उत्तर

1. (क) देखें 3.5

3.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1 वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला, वाराणसी, 1966

2. राधाकुमुद मुखर्जी, हिन्दू सभ्यता, दिल्ली, 1990

2. आनन्द कुमारस्वामी, इंट्रोडक्शन टु इण्डियन एंड इंडोनेशियन आर्ट, केस्सिंगर पब्लिकेशन, 2003

3 आनन्द कुमारस्वामी,द डांस ऑफ शिवा– फोर्टीन इण्डियन एसेज न्यूयॉर्क 2003,

4 आनन्द कुमारस्वामी, द ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ नेचर इन इण्डियन आर्ट, स्टर्लिंग पब्लिकेशन, 1996

5ए.एल बाशम, अद्भुत भारत, हिन्दी अनुवाद, आगरा 1972

6भगवत शरण उपाध्याय, भारतीय संस्कृति के स्रोत, दिल्ली, 1973

7 वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर , 1972

8 कृष्णदत्त बाजपेयी, भारतीय वास्तुकला का इतिहास, लखनऊ,1972

10 राय कृष्णदास, भारत की चित्रकला, इलाहाबाद,1976 (छठा संस्करण)

8. विशुद्धानन्द पाठक, दक्षिण भारतीय संस्कृति, लखनऊ, 2008

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1 प्राचीन भारतीय कला की विशेषताओं पर एक निबन्ध लिखिए।

2 प्राचीन भारत में वास्तुकला की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

3 प्राचीन भारत में चित्रकला के स्वरूप तथा उसके अन्तर्गत चित्रित विविध विषयों समीक्षा कीजिए।

4 प्राचीन भारत में ललित कलाओं के स्वरूप पर एक टिप्पणी लिखिए।

ब्लॉक दो

इकाई –एकः सिन्धु–सभ्यता की साँस्कृतिक विशेषताएँ

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 नगर नियोजन
1.3.1 भवन नियोजन
1.3.2 विशाल अन्नागार
1.3.3 महास्नानागार
1.3.4 सड़कें
1.3.5 नालियाँ
स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.4 सैन्धव कला
1.4.1 प्रस्तर मूर्ति कला
1.4.2 धातु मूर्तियाँ
1.4.3 मृण्मूर्तियाँ
1.4.4 मुहरें
1.4.5 मनके
1.4.6 मृदभाण्ड
स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.5 सामाजिक स्थिति
1.5.1 सामाजिक संगठन
1.5.2 स्त्रियों की स्थिति
1.5.3 भोजन
1.5.4 वस्त्राभूषण
1.5.5 श्रृंगार प्रसाधन
1.5.6 मनोरंजन के साधन
1.5.7 अस्त्र – शस्त्र
1.5.8 चिकित्सा एवं औषधिया
स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.6 धार्मिक – अवस्था
1.6.1 मातृदेवी की पूजा
1.6.2 शिव पूजा
1.6.3 लिंग और योनि पूजा
1.6.4 पशु पूजा
1.6.5 वृक्ष पूजा
1.6.6 जल – पूजा

1.6.7 सूर्य पूजा
1.6.8 अंतिम संस्कार
स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.7 आर्थिक स्थिति
1.7.1 कृषि
1.7.2 पशुपालन
1.7.3 प्रौद्योगिकी
1.7.4 व्यापार – वाणिज्य
स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.8 राजनीतिक – दशा
1.9 सारांश
1.10 तकनीकी शब्दावली
1.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.13 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

सिन्धु – सभ्यता की खोज ने भारतीय इतिहास में एक सुनहरा अध्याय जोड़ा है। सैन्धव संस्कृति, भारतीय संस्कृति का इतिहास के पन्नों में अंकित गौरवशाली अध्याय है। सिन्धु – सभ्यता के बारे में सर्वप्रथम चार्ल्स मसौन ने ध्यान दिलाया था। जब उन्होंने 1826 ई० में हड़प्पा के बारे में लिखा। इसके बाद जब 1856 ई० में कराची और लाहौर के बीच रेल्वे मार्ग बनाया जा रहा था, तब रावी नदी के तट पर स्थित हड़प्पा के खण्डरों से ईटें लायी जा रहीं थीं। तभी इसी प्रक्रिया में प्राप्त अवशेषों के कारण हड़प्पा नामक पुरास्थल प्रकाश में आया। 1856 एवं 1873 ई० में कनिंघम ने हड़प्पा का निरीक्षण किया। किन्तु हड़प्पा की खोज का श्रेय रायबहादुर दयाराम साहनी को दिया जाता है, जब उन्होंने 1921 ई० में सर्वप्रथम हड़प्पा के महत्वपूर्ण अवशेषों का पता लगाया। सन् 1922 ई० में राखलदास बनर्जी ने 'मोहनजोदड़ो' की खोज की। हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो के उत्खननों एवं संबंधित अन्य पुरास्थलों की खोज से एक समान साँस्कृतिक तत्वों की साम्यता के कारण पुरातत्वविदों ने इसे 'सिन्धु – सभ्यता' का नाम दिया। सिन्धु – सभ्यता का विस्तार उत्तर में जम्मू से लेकर दक्षिण में नर्मदा के मुहाने तक और पश्चिम में बलूचिस्तान के मकरान समुद्र तट से लेकर उत्तर – पूर्व में मेरठ तक विस्तृत था।

1.2 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है –

1. विद्यार्थी सिन्धु – सभ्यता का इतिहास समझ सकेगें।
2. विद्यार्थी हड़प्पा के इतिहास को जान सकेंगे ।
3. विद्यार्थी मोहनजोदड़ो के इतिहास को समझेंगें।
4. विद्यार्थी सिन्धु – सभ्यता के पुरातात्विक महत्व को समझ सकेगें।
5. विद्यार्थी सिन्धु – सभ्यता के विभिन्न नगरों के उत्खनन एवं प्राप्त भौतिक सामग्री के ऐतिहासिक महत्व को समझ सकेगें।
6. विद्यार्थी सिन्धु – सभ्यता की उत्पक्ति एवं विनाश को जान सकेंगे।
7. विद्यार्थी सिन्धु – सभ्यता के नगर नियोजन, विज्ञान – प्रौद्योगिकी, कला, धर्म, आदि को जान सकेंगे।
8. विद्यार्थी सिन्धु – सभ्यता की सॉंस्कृतिक विशेषताओं को समझ सकेगें।

1.3 नगर नियोजन

सिन्धु – सभ्यता की प्रमुख विशेषता अत्यन्त सुनियोजित नगरों का निर्माण किया जाना है। सिन्धु सभ्यता नगरीय तथा व्यापार प्रधान थी। सिन्धु सभ्यता के प्रमुख नगरों की नगर योजना प्रायः समान है। सिन्धु सभ्यता के प्रमुख नगरों में सुनियोजित सड़कें, नालियों की व्यवस्था एवं सफाई व्यवस्था नगर नियोजन की प्रमुख विशेषताएँ थी। सिन्धु सभ्यता नगर प्रायः दो मुख्य भागों में विभक्त पाये गये है, गढ़ी क्षेत्र तथा आवासीय क्षेत्र। गढ़ी क्षेत्र, पश्चिमी टीले पर ऊँचाई पर स्थित आकार में छोटा तथा आवासीय क्षेत्र, पूर्वी टीले पर निचाई पर स्थित आकार में अपेक्षाकृत बड़ा पाया गया है। गढ़ी या दुर्ग क्षेत्र में प्रमुखतः महत्वपूर्ण संस्थान, प्रशासनिक कार्यालय आदि स्थित थे तथा प्रशासनिक प्रमुख, प्रशासनिक अधिकारी, रक्षा एवं प्रमुख सैन्य अधिकारी, पुरोहित वर्ग का निवास स्थित था। आवासीय क्षेत्र में बहु संख्यक सामान्य जन, कामगार वर्ग, शिल्पकार, व्यापारिक वर्ग निवास करता था। सिन्धु सभ्यता के प्रमुख नगरों के गढ़ी क्षेत्र प्रायः रक्षा प्राचीरों से घिरे हुए थे। धौलावीरा, कालीबंगा, लोथल, सुरकोटदा में संपूर्ण क्षेत्र रक्षा प्राचीर से घिरा हुआ था। सिन्धु सभ्यता का चन्हूदड़ों केवल एक ऐसा नगर है, जो दुर्गीकृत नहीं था।

इस उच्चकोटी की नगरीय व्यवस्था का निर्माण कुशल नगर नियोजकों एवं तकनीशियनों द्वारा ही किया गया होगा। सिन्धु सभ्यता के नगर नियोजन की आधार पीठिका सड़कें थी। जो पूर्व से पश्चिम की ओर और उत्तर से दक्षिण की ओर समकोण बनाते हुए एक – दूसरे को काटती थी। इस प्रकार प्रत्येक नगर शतरंज के खानों की तरह कई खंड़ों में विभक्त हो जाता था। इन खानों के खण्ड 800′ ग 1200′ के मापन में प्रमुखतः विभक्त होते थे। सिन्धु सभ्यता के प्रमुख नगरों की इस 'जाल पद्धति' जैसी नगर संरचना को विद्वानों ने 'ऑक्सफोर्ड सरकश' ;वगवितक बपतबेंद्ध की संज्ञा दी है। डॉ० आर० सी० मजूमदार ने सिन्धु सभ्यता के नगर नियोजन के बारे में लिखा है कि, ''मोहनजोदड़ो के खण्डहरों को देखकर प्राचीन नगरों के आयोजन की कारीगरी एवं सफाई प्रबंध से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता।'' ई० जे० एस० मैके ने सिन्धु सभ्यता के नगर नियोजन के बारे में लिखा है कि, ''यह आधुनिक लंकाशायर के नगर अवशेष से देखते हैं।''

1.3.1 भवन नियोजन :

सिन्धु – सभ्यता में अत्यन्त सुनियोजित तरीके से भवनों का निर्माण किया गया था। इस नगरीय सभ्यता के भवनों को साकार रूप कुशल भवन नियोजकों, तकनीशियनों एवं प्रशिक्षित कामगार द्वारा ही दिया गया

होगा। सिन्धु सभ्यता के भवनों में प्रायः आँगन, अतिथिगृह, रशोईघर, स्नानघर, शौचालय और कुँए की व्यवस्था रहती थी। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि, मोहनजोदडों के भवनों में प्रायः 'कुएँ' मिले है, पुरातत्वविदों का अनुमान है कि, मोहनजोदड़ों में करीब 700 'कुएँ' रहे होगें। किन्तु 'हड़प्पा' के घरों में एक भी 'कुँआ' नहीं मिला है। सिन्धु – सभ्यता में मकान साधारणतः सड़क के दोनों ओर निर्मित है। सिन्धु – सभ्यता के भवन मुख्यतः पक्की ईंटों के बने होते थे। ईंटे अधिकांशतः आयताकार होती थीं, जिनकी माप में लम्बाई, चौड़ाई एवं ऊँचाई का अनुपात 4 : 2 : 1 था। डॉ० आर० एस० शर्मा का कहना है कि, 'जिस समय मिस्त्र निवासी पक्की ईंटों से अनभिज्ञ थे और मेसोपोटामिया में यह प्रयोग अत्यल्प मात्रा में होता था, उस समय सिन्धु निवासी कच्ची और पक्की दोंनों प्रकार की ईंटों का प्रयोग कुशलता से कर रहे थे।' सिन्धु – सभ्यता के मकान की दीवारें बहुत मोटी होती थीं। ई० जे० एस० मैके का मानना है कि, 'मकानों की दीवारों पर पलस्तर किया जाता था।' अधिकांश मकान एक मंजिल के होते थे। एक से अधिक मंजिल के मकान भी प्राप्त हुए है। मकानों की छत सम्भवतः लकड़ी की होती थी। मकानों की ऊपरी मंजिल पर जाने के लिए पत्थरों या ईटों की ऊँची और तंग सीढ़ियाँ होती थी। सिन्धु – सभ्यता के दो मकानों के मध्य खाली जगह रखी जाती थी। मकानों के दरवाजे एवं खिड़कियाँ तंग गलियों में खुलते थे। किन्तु लोथल एकमात्र सिन्धु – सभ्यता का ऐसा नगर है, जिसके मकानों के दरवाजे एवं खिड़कियाँ मुख्य सड़कों की ओर खुलते थे।

मकान के द्वारों की माप प्रायः लगभग 3 फुट 4 इंच से 7 फुट 10 इंच तक होती थी। सिन्धु – सभ्यता के मकानों की नींव प्रायः कच्ची अथवा टूटीं – फूंटीं ईंटों की भरी होती थी। मकानों की दीवारों में अलमारी का निर्माण किया जाता था। मकानों में कपड़े एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं को टाँगने के लिए दीवारों में खूँटियों को लगाया जाता था। ये खूँटियाँ शंख, हड्डीयों एवं लकड़ी से निर्मित होती थी। मकान में रसोईघर किसी कोने में होता था, जिसका पानी सड़क की नालियों में गिरता था। स्नानगृह का फर्श प्रायः पक्की ईटों से निर्मित से होता था। फर्श मिट्टी और खड़िया के पलस्तर से निर्मित किया जाता था। भवनों में शौचालय प्रायः नीचे की मंजिल में होता था, किन्तु कहीं – कहीं दूसरी मंजिल पर भी शौचालय के प्रमाण प्राप्त हुए है। मकान की छतों की जल निकासी के लिए मिट्टी या लकड़ी के परनाले बनाऐ जाते थे।

सिन्धु – सभ्यता के भवन दो श्रेणियों व्यक्तिगत निवास गृह और सार्वजानिक एवं राजकीय भवनों में विभक्त थे। व्यक्तिगत निवास गृह प्रायः छोटे आकार के मिलते है। छोटे भवनों की माप लगभग 30 फुट लंबी एवं 27 फुट चौड़ी मिलती है, जिनमें छोटे – छोट लगभग 4 – 5 कमरे होते थे। ये मकान संभवतः साधारण जनता या श्रमिक वर्ग से संबंधित हो सकते है। सिन्धु सभ्यता के नगर – नियोजन में सार्वजनिक एवं राजकीय भवनों का निर्माण गढ़ी वाले क्षेत्र में किया गया था। गढ़ी क्षेत्र सुरक्षा दीवार से सुरक्षित होता था तथा आम जनता से पृथक होता था, इसमें शासक वर्ग निवास करता था। मोहनजोदड़ो के गढ़ी वाले क्षेत्र में एक भवन लगभग 80 फुट लम्बा एवं 80 फुट चौड़ा मिला है, इस भवन में 20 स्तम्भ लगे हुए थे। अधिकांतः विद्वान इसे 'सार्वजनिक परिषद् सभागृह' ;ेमउइसल भ्संसस्द्ध मानते हैं। मोहनजोदड़ो में एक भवन लगभग 230 फुट लम्बा एवं 78 फुट चौड़ा मिला है, जिसकी बाहरी दीवारें 6 फुट 9 इंच तक मोटी हैं। इस भवन का आँगन लगभग 33 फुट लम्बा एवं 33 फुट चौड़ा का है। अधिकांतः विद्वान इसे 'उच्च राज्याधिकारी' अथवा 'धर्माध्यक्ष' का भवन मानते है। मोहनजोदड़ों के एच० आर० क्षेत्र में एक लगभग 52 फुट लम्बा एवं 40 फुट चौड़ा एक भवन मिला है, इस भवन से उत्खनन के समय एक 'दाढ़ीयुक्त पुरूष' की

बैठी हुई मूर्ति प्राप्त हुई है। व्हीलर इसे मन्दिर मानते है और इसके नजदीक प्राप्त लम्बी मूर्ति को पुजारी की मानते है।

1.3.2 विशाल अन्नागार :

सिन्धु सभ्यता के हड़प्पा के दुर्ग क्षेत्र से 'विशाल अन्नागार' प्राप्त हुआ है। विशाल अन्नागार सिन्धु सभ्यता के निवासियों की दूरदृष्टिता एवं शासन प्रबंध का अद्‌भुत स्मारक है। इस विशाल अन्न के संग्रहालय में आपातकाल के लिए अनाज संग्रहित किया जाता था। ज्ञातव्य रहे कि, हड़प्पा का विशाल अन्नागार सिन्धु सभ्यता का सबसे बड़ा भवन है। इस विशाल अन्नागार के परिसर में अनेक भवनों का निर्माण किया गया है, जिनमें छोटे – छोटे अनाज के संग्रहालय, श्रमिकों के निवास स्थान तथा अनाज पीसने के गोलाकार चबूतरे बने हुए है। हड़प्पा के दुर्ग क्षेत्र के विशाल अन्नागार को 150 फुट लम्बी एवं 200 फुट चौड़ी समतल भूमि पर निर्मित किया गया है। इस विशाल अन्नागार को 50 फुट लम्बे एवं 20 फुट चौड़े छोटे – छोटे संग्रहालयों में विभाजित किया गया है, ये छोटे – छोटे संग्रहालय छः – छः कमरों की दो पंक्तियों में बनाये गये है। ये छः – छः की बारह इकाइयों का संपूर्ण तलक्षेत्र लगभग 838.1025 वर्गमीटर का है। इन छः – छः की दो पंक्तियों के बीच से 23 फीट चौड़ी एक सड़क निर्मित की गयी है, जिससे अनाज का आसानी से संग्रहालयों से परिवहन हो सके। इन अनाज भंडागारों का प्रवेश द्वार 'सिन्धु नदी' की ओर खुलता था। इससे प्रतीत होता है कि, संभवतः अनाज का जल परिवहन भी होता था। मैसोपोटामिया से भी ऐसे भंडागार प्राप्त हुए है। विशाल अन्नागार में दक्षिण दिशा में 100 गज की दूरी पर अनाज पीसने के लिए 'गोलाकार चबूतरे' बने हुए है। इन गोलाकार चबूतरों के बीच में 'छेद' (गड्डा) मिले है, जिनमें संभवतः अनाज डालकर पीसा जाता था। इन गोलाकार चबूतरों की दक्षिण दिशा में 56 फुट लम्बे एवं 24 फुट चौड़े अनेक भवन मिले है, जिनमें दो – दो कमरे मिले हैं। किसी – किसी में एक आँगन भी मिला होता है। इन भवनों के चारों आरे एक दीवार निर्मित की गयी है। पुरातत्वविद्वों की धारणा है कि, ये भवन विशाल अन्नागार में कार्य करने वाले मजदूरों के निवास के लिये बनाये गये होगें।

1.3.3 महास्नानागार :

सिन्धु सभ्यता के मोहनजोदड़ो के दुर्ग क्षेत्र में बृहत् स्नानागार प्राप्त हुआ है। महास्नानागार सिन्धु सभ्यता की सर्वाधिक अद्‌भुत संरचनाओं में से एक है। मोहनजोदड़ो का महास्नानागार बाह्य (बाहरी) रूप से लगभग 180 फुट लम्बा तथा 108 फुट चौड़ा है। महास्नानागार आकार में आयताकार जलाशय है, जिसका क्षेत्रफल 39′ ग 23′ ग 8′ का है। इसकी बाह्य (बाहरी) दीवारें लगभग 2.4 मीटर मोटी हैं। जलाशय के चारों ओर बरामदे, स्नान हेतु चबूतरे तथा अंदर पहुँचने के लिए 9 इंच चौड़ी तथा 8 इंच ऊँची सीढियाँ बनी हुई हैं। स्नानकुण्ड के अन्दर बनी अंतिम सीढ़ी 16 इंच ऊँची तथा 2 फुट चौड़ी है, जिस पर लोग बैठकर स्नान करते थे। महास्नानागार के दक्षिण – पश्चिम में छोटे – छोटे कमरे बने है, जोकि 9.5 फीट लम्बे तथा 6 फीट चौड़े हैं। इन कमरों में से एक कमरे में कुँआ भी था। इसमें सम्भवतः गर्म पानी का प्रबंध रहा होगा। ई० जे० एस० मैके के अनुसार, यह 'पुरोहितों' के स्नान का स्थान था। स्नानागार में प्रवेश हेतु 6 द्वार बनाए गए थे। कुण्ड के किनारे ;स्पदपदह व िजीम ज्दाद्ध चार फुट मोटे हैं। स्नानागार की ईंटे खड़िया मिट्‌टी के साथ लगाई गई हैं। स्नानागार की बाहरी दीवार पर 'गिरिपुष्पक' का एक इंच मोटा प्लास्टर किया गया था। स्नानागार की फर्श का ढाल दक्षिण – पश्चिम की ओर था। स्नानागार से जल की निकासी के लिए विशाल नालियों का निर्माण किया गया है। स्नानागार के एक कोने पर 6 फीट चौड़ी तथा 6 इंच ऊँची नाली बनी हुई है। कार्लेटन ने 'महास्नानागार की तुलना समुद्र के किनारे स्थित किसी आधुनिक होटल से की है।' ए० एल० बाशम का मानना है कि, ''हिन्दू मंदिरों के जलाशय की भाँति सम्भवतः महास्नानागार का भी धार्मिक महत्व रहा होगा तथा छोटे – छोटे कक्ष महन्तों के निवास स्थान रहे

होगें।'' वर्तमान हिन्दू धर्म में भी पवित्र जलाशयों में स्नान करना धर्म – कर्म का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है।

1.3.4 सड़कें :

सिन्धु सभ्यता जैसी उच्चकोटी की नगरीय सभ्यता का निर्माण कुशल नगर नियोजकों एवं तकनीशियनों द्वारा किया गया होगा। इस नगरीय सभ्यता के नगर नियोजन की आधार पीठिका सड़कें थी। नगरों की सड़कों का निर्माण सुनियोजित योजन के तहत् आधुनिक व्यावसायिक शैली पर किया गया था। नगरों की सड़कें लम्बी – चौड़ी और सीधीं थी, जो एक – दूसरे को समकोण पर काटते हुई पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण की ओर निर्मित की गयीं थी। सिन्धु – सभ्यता के नगरों की सड़कें प्रायः 9 फुट से 33 फुट तक चौड़ी थीं। गलियाँ 9 फुट से 12 फुट तक चौड़ी होती थी। कुछ गलियाँ 4 फुट चौड़ी मिलीं है। मोहनजोदड़ो में एक सड़क 9.15 मीटर चौड़ी मिली है, जो विद्वानों के अनुसार सम्भवतः 'राजपथ' थी। सिन्धु – सभ्यता के नगरों में गलियों का विशेष महत्व था, प्रायः भवनों को गलियों द्वारा मुख्य सड़क से जोड़ा गया था। सड़कें मुख्यतः कच्ची ईंटों के द्वारा निर्मित मिलीं हैं। किन्तु कालीबंगा में पक्की ईटों द्वारा सड़कों को निर्मित करने के प्रमाण मिलते हैं। सिन्धु – सभ्यता में सड़कों की साफ – सफाई का विशेष ध्यान दिया जाता था। इसके लिए सड़कों के किनारे कूड़दान रखे होते थे या गड्ढे बने होते थे। सड़कों के किनारे भोजनाय होने के प्रमाण मिलते है। मोहनजोदड़ो की दो सड़कों के किनारे भोजनाय होने के प्रमाण मिले है।

1.3.5 नालियाँ :

सिन्धु सभ्यता में नालियों की उत्कृष्ट व्यवस्था थी। जो कि, समकालीन विश्व के नगरों में सर्वश्रेष्ठ थी। विश्व की समकालीन किसी भी सभ्यता में ऐसी 'जल निकासी' प्रणाली नहीं थी। अर्नेस्ट मैके का मानना है कि, ''यह अब तक की खोजी गयी विश्व की सबसे प्राचीन प्रणाली है।'' प्रायः प्रत्येक सड़क और गली के दोनों ओर पक्की नालियाँ बनाई गई थी। पक्की नालियों को बनाने मे पत्थरों, ईंटों एवं चूने का प्रयोग किया गया था। नालियों की जुड़ाई और प्लास्टर में मिट्टी, चूने तथा जिप्सम का प्रयोग किया गया है। मकानों से आने वाली नालियाँ अथवा परनाले सड़क, गली की नालियों मे मिल जाते थे। नालियाँ ईटें अथवा पत्थरों से ढंकी रहती थी। नालियों को साफ करने हेतु 'मेनहोल्स' ;डंदीवसमेद्ध बनाये गये थे। नालियों में थोड़ी दूरी पर 'मलकुंड' ̄;वां चपजेद्ध बने थे, ताकि इन्हें साफ किया जा सके और कूड़े से पानी का बहाव न रूक सकें। डॉ० आर० एस० शर्मा का मानना है कि, 'इस प्रकार की सुव्यवस्था 18 वीं शताब्दी तक पेरिस और लन्दन के प्रसिद्ध नगरों में भी न थी।' बहुत संभव है कि, ऐसी व्यवस्था के संचालन हेतु कोई नगरीय परिषद रही हो। गार्डन चाइल्ड एवं ए० एल० बाशम का मानना है कि, 'सिन्धु प्रदेश की इस योजना को देखने से स्पष्ट होता है कि, वहाँ के प्रत्येक नगर में कोई न कोई स्थानीय सरकार अवश्य कार्य करती होगी।' किन्तु यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि, ऐसी जल निकासी प्रणाली सिन्धु सभ्यता की अनेक छोटी बस्तियों में भी विद्यमान थी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. सिन्धु सभ्यता थी ?
   (क) नगरीय सभ्यता (ख) ग्रामीण सभ्यता
   (ग) जनजातीय सभ्यता (घ) इनमें से कोई नहीं
2. नगरों की सड़कें एक – दूसरे को कैसे समकोण पर काटती थी ?

(क) त्रिभुज पर (ख) चतुर्भुज पर

(ग) समकोण पर (घ) इनमें से कोई नहीं

3. विशाल अन्नागार स्थित है ?

(क) हड़प्पा में (ख) मोहनजोदड़ो में

(ग) कालीबंगा में (घ) इनमें से कोई नहीं

4. महास्नानागार स्थित है ?

(क) हड़प्पा में (ख) मोहनजोदड़ो में

(ग) कालीबंगा में (घ) इनमें से कोई नहीं

5. सिन्धु सभ्यता का कौनसा नगर दुर्गीकृत नहीं था ?

(क) हड़प्पा में (ख) मोहनजोदड़ो में

(ग) कालीबंगा में (घ) चन्हूदड़ों

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) विशाल अन्नागार ।

(ख) महास्नानागार ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) सिन्धु सभ्यता के भवन नियोजन का विवरण दीजिये ?

1.4 सैन्धव कला :

प्राचीनतम् भारतीय सभ्यता के सभ्य मानवों ने उत्कृष्ट कला का सृजन किया। कला के जिस क्षेत्र में भी सिन्धु–सभ्यता के लोगों ने प्रयोग किये। उन क्षेत्रों में अपनी सर्वोच्च कलात्मक सृजनात्मकता का उदाहरण उन्होंने दिये हैं। वस्तुतः सिन्धु घाटी की सभ्यता एक परिपक्व साँस्कृतिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करती है। वे लोग उच्च साँस्कृतिक गतिविधियों में संलग्न रहे। उन्होंने विश्व प्रसिद्ध कलात्मक कृतियों का सृजन किया। जो अपने समकालीन सभ्यताओं में न केवल सर्वश्रेष्ठ थीं, साथ ही, विशिष्ठ भी थीं।

1.4.1 प्रस्तर मूर्ति कला :

सिन्धु सभ्यता के लोगों ने प्रस्तर मूर्तिकला में सिद्धहस्त थे। सिन्धु घाटी से प्रस्तर (पत्थर) से बनी कुल तेरह लघु (छोटी) मूर्तियां मिली हैं, जिनमें ग्यारह मोहनजोदड़ों से तथा दो हड़प्पा से मिली है, मूर्तियों को बनाने में 'लाईम स्टोन' ;स्पउम `जवदमद्ध, 'अल्बेस्टर' ;।संइेंजमतद्ध, तथा 'सेलखड़ी' ';जमंजपजमद्ध का प्रयोग किया गया है। मोहनजोदड़ों से प्राप्त मूर्तियों में चार में मनुष्य के सिर की आकृति, पाँच मे बैंठी हुई आकृति एवं दो मूर्तियाँ पशुओं की हैं। हड़प्पा से मिली दो पत्थर की मूर्तियों में एक मनुष्य (पुरुष) तथा एक स्त्री की है, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, ये दोनों मूर्तियाँ लगभग 4 इंच ऊँचें केवल कबंध मात्र हैं। मोहनजोदड़ों से खण्डित अवस्था में प्राप्त एक मूर्ति में पुरूष नक्काशीदार अलंकृत शाल ओड़े हुए है। पुरूष के दाढ़ी एवं सिर के बालों को उत्कृष्ट केशसज्जा से सजाया गया है। हड़प्पा से प्राप्त तीन प्रस्तर मूर्तियों में नृत्यरत पुरूष या नारी की मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। मोहनजोदड़ों से संयुक्त पशु मूर्तियाँ भी मिली हैं।

1.4.2 धातु मूर्तियाँ :

सिन्धु सभ्यता वासी धातुकला में प्रवीण थे। धातु की विविध प्रकार की मूर्तियाँ उत्खनन से प्राप्त हुई है। उन्होंने धातुओं को मिश्रित करके कला का रूप देने में सफलता प्राप्त कर ली थी। सैधन्व वासियों ने धातु से मानव मूर्तियाँ, पशु मूर्तियाँ एवं अन्य भौतिक वस्तुओं की कलात्मक मूर्तियों का निर्माण किया। चन्हूदड़ों से काँसे की बैलगाड़ी, इक्कागाड़ी, पीतल की बतख मिली है। लोथल से ताँबे का कुत्ता, बैल, चिड़िया, खरगोश, मोहनजोदड़ों से भेड़, भैंसा, हड़प्पा से बैलगाड़ी आदि धातु मूर्तियां प्राप्त हुई हैं, इनका निर्माण 'मोम सांचा विधि' से किया गया है। सैन्धव सभ्यता के अनेक स्थलों से ताँबे की मुहरें मिली हैं, जिनपर बैल, बाघ, हाथी, गैंड़ा आदि पशुओं के चित्र अंकित हैं। मोहनजोदड़ों से प्राप्त नर्तकी की कांस्य प्रतिमा अद्‌भुत है। यह मूर्ति 'मधुच्छिष्ट विधि' से बनायी गयी है। मोहनजोदड़ों से प्राप्त यह कांस्य की विश्व प्रसिद्ध नर्तकी की प्रतिमा आभूषणों से अलंकृत नग्नावस्था में नृत्य की मुद्रा में है। प्रतिमा का बाँया हाथ बाँयें घुटने की ओर झुकी हुई अवस्था में घुटने से टिका है तथा कंधे से लेकर हाथों तक चूड़ियों से भरा हुआ है। दाँया हाथ कमर पर लगा हुआ है, जिसमें बाजूबंद तथा कलाई में दो–दो चूड़ियाँ अंकित है। मोहनजोदड़ों के डी० के० क्षेत्र में एक अन्य स्त्री कांस्य मूर्ति भी मिली है।

1.4.3 मृण्मूर्तियाँ :

सैन्धव सभ्यता से उच्चकोटि की मृण्मूर्तियाँ मिली है। मृण्मूर्तियाँ स्त्री – पुरूष, पशु – पक्षी, जलीय जीवों एवं खिलौनों की मिली है। पुरूषों की अपेक्षा स्त्री मूर्तियाँ बहुसंख्या में मिली हैं। अधिकांश मूर्तियाँ हाथ से बना कर आग से पकायी गयी हैं। स्त्री मूर्तियाँ मोहनजोदड़ों, हड़प्पा एवं चन्हूदड़ों से बहुसंख्या में मिली हैं। भारत में केवल हरियाणा के बनावली से दो स्त्री मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। स्त्री मूर्तियाँ अलंकृत, आभूषणों से युक्त हैं। सैन्धव सभ्यता से सर्वाधिक मृण्मूर्तियाँ खिलौनों के रूप में बनी पशु–पक्षियों की है। पशु मृण्मूर्तियों में सर्वाधिक वृषभ प्रतिमाएँ हैं। गाय की प्रतिमा नहीं मिली है। पशुओं में बैल, ऊँट, भेड़ा, बकरा, भैंसा, कुत्ता, खरगोश, बन्दर, सुअर, भालू, हाथी, बाघ, गैंड़ा, गिलहरी, आदि की खिलौना प्रतिमाएँ मिली हैं। सर्प, कछुआ, घड़ियाल, मछली आदि जलीय जीवों की प्रतिमाएँ मिली हैं। पक्षियों में तोता, बतख, मुर्गा, हंस, चील, उल्लू, मोर आदि की प्रतिमाऐं मिली है। सैन्धव सभ्यता से खिलौने, पहिये युक्त खिलौना गाड़ियाँ, इक्के एवं सीटियाँ भी मिली है। सैन्धव सभ्यता के बनवाली (बणावली, हरियाणा) एवं चोलिस्तान (पाकिस्तान) से मिट्‌टी के हल का प्रतिरूप मिला है।

1.4.4 मुहरें :

सैन्धव सभ्यता की कला की सर्वोत्तम कलाकृतियाँ मुहरें हैं, अभी तक लगभग 3000 से अधिक मुहरें प्राप्त हो चुकी हैं, सर्वाधिक मुहरें सेलखड़ी ";जमंजपजमद्ध से निर्मित है। इसके साथ ही मिट्‌टी, काचली मिट्‌टी, चर्ट, गोमेद एवं ताँबे की बनी मुहरें भी सैन्धव स्थलों से प्राप्त हुई हैं। लोथल एवं देसलपुर से तांबे की मुहरें मिली हैं। सैन्धव सभ्यता की मुहरें आयताकार, वर्गाकार, गोलाकार, घनाकार, अण्डाकार आदि आकार में मिली हैं। सैन्धव सभ्यता में 'वर्गाकार मुहरें' सर्वाधिक मिली हैं। मुहरों पर कूबड़दार बैल, एक श्रृंगी पशु, हाथी, भैंसा, नीलगाय, बाघ, गैंडा, हिरण आदि का अंकन मिला है। सैन्धव सभ्यता की कतिपय मुहरें विशेष उल्लेखनीय है। नागधारी योगीश्वर शिव की आकृति, पशुओं के मध्य योगीश्वर शिव की मुद्रा, बाघ से लड़ते मानव का अंकन, सामुहिक समारोह में ढोल बजाते व्यक्ति और मनुष्यों का अंकन आदि प्रमुख मुहरें हैं। मोहनजोदड़ों से प्राप्त पशुपति शिव की मुहर पर अंकित प्रतिमा सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इस मुहर पर पद्‌मासन मुद्रा पर त्रिमुखी शिव चौकी पर बिराजमान हैं तथा उनके आसपास हाथी, बाघ, गैंड़ा, भैंसा, हिरण

अंकित है, मुहर के ऊपर सात अक्षरों का लेख विद्यमान है। मार्शल महोद्य इसे आदि शिव का प्रथम अंकन मानते हैं। सैन्धव सभ्यता में सर्वाधिक मुहरें मोहनजोदड़ों से मिली हैं।

1.4.5 मनके :

सैन्धव सभ्यता के कलाकार विश्व के उत्कृष्ठ मनके निर्माता थे। लोथल एवं चन्हूदड़ा से मनके (ठमंके) बनाने के कारखाने मिले हैं। बहुत संभव है कि, लोथल एवं चन्हूदड़ा से मनके सैन्धव सभ्यता के अन्य नगरों को भेजे जाते होगें। मनके पकी मिट्टी सेलखड़ी, हाथी दाँत, सोने – चाँदी, ताँबे, गोमेद, शंख, सीप, फयॉन्स आदि से बनाये जाते थे। सैन्धव सभ्यता से सर्वाधिक सेलखड़ी के मनके मिले हैं। घिसाई, पॉलिश एवं छेद करके मनकों से विविध आकर्षक आभूषण एवं अन्य वस्तुएँ बनायीं जाती थीं। मनकों में छेद करने के उपकरण धौलावीरा, लोथल एवं चन्हुदड़ों से प्राप्त हुए है। मनके अण्डाकार, बेलनाकार गोलाकार, चक्राकार, अर्द्ध – वृत्ताकार, ढोलकार आदि आकार के मिले हैं। बेलनाकार मनके सर्वाधिक प्रचलन में थे।

1.4.6 मृदभाण्ड :

सैन्धव सभ्यता के लोग मृदभाण्ड निर्माण में सिद्धहस्त थे। उन्होंने उत्कृष्ट अलंकरण एवं लिपि को मृद्भाण्डों पर अंकित किया। सैन्धव सभ्यता के मृद्भाण्ड चाक पर निर्मित हैं तथा इन्हें अच्छी तरह से पकाया गया है। मृद्भाण्ड लाल या गुलाबी रंग के हैं, जिनके ऊपर लाल रंग का चमकदार लेप चढ़ाया गया है। उत्खनन में हड़प्पा से 14 तथा मोहनजोदड़ों से 6 भट्टे कुम्भकारों के प्राप्त हुए है। हड़प्पा के मृद्भाण्डों पर लेख मिलते हैं। मृद्भाण्डों पर पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों, फूल–पत्तियों एवं ज्यामितीय आकृतियों से अलंकरण किया गया है। लोथल से मिले एक मृद्भाण्ड पर एक वृक्ष पर मुँह में मछली पकड़े चिड़िया तथा नीचे एक लोमड़ी का अंकन उल्लेखनीय है। सैन्धव सभ्यता के पात्र–प्रकारों में थालियाँ, कलश, मटके, नाँद, तसले, घुण्डीदार ढक्कन, कुल्हड़, मर्तवान, जामदानी, हत्थेदार प्याले आदि प्रमुख है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) प्रस्तर मूर्ति कला ।
   (ख) मृदभाण्ड ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) सैन्धव कला का विवरण दीजिये ?

1.5 सामाजिक स्थिति :

पुरातात्विक स्त्रोंतों से सिन्धु सभ्यता कालीन सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता हैं। सिन्धु सभ्यता के पुरास्थलों के उत्खनन से उच्च नगरीय सामाजिक जीवन शैली का ज्ञान होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि, सिन्धु सभ्यता के लोगों की तत्कालीन सामाजिक स्थिति अत्यन्त उच्च होने के कारण उनके मध्य कोई सामाजिक असमानता नही रही होगी।

1.5.1 सामाजिक संगठन :

सिन्धु सभ्यता कालीन समाज की सामाजिक इकाई 'परिवार' ही रही होगी। उत्खनन से प्राप्त भवन के अवशेषों से विदित होता है कि, परिवार अलग – अलग निवास करते थे। सामाजिक जीवन आर्थिक रूप से संमृद्ध, सुख – सुविधा युक्त था। लोग शान्ति प्रिय थे। नारी की मूर्तियाँ बहुसंख्या में प्राप्त होने के कारण इतिहासकारों ने इसे 'मातृ – प्रधान' ;डंजतपंतबींस ैवबपमजलद्ध समाज माना हैं। व्यवसाय के आधार पर विद्वानों ने सिन्धु सभ्यता कालीन समाज समाज को चार भागों में बांटा है – विद्वान वर्ग, योद्धा

एवं प्रशासनिक अधिकारी वर्ग, व्यवसायी तथा श्रमजीवी वर्ग। सिन्धु सभ्यता के दुर्ग क्षेत्र में प्रमुखतः महत्वपूर्ण संस्थान, प्रशासनिक कार्यालय आदि होने के कारण प्रशासनिक प्रमुख, प्रशासनिक अधिकारी, रक्षा एवं प्रमुख सैन्य अधिकारी, पुरोहित वर्ग (प्रशासनिक सलाहाकार) का निवास करते थे। आवासीय क्षेत्र में बहु संख्यक सामान्य जन, कामगार वर्ग, शिल्पकार, व्यापारिक वर्ग निवास करता था। किन्तु निवास की यह असमानता सामाजिक नहीं थी, बल्कि यह प्रशासनिक और सुरक्षात्मक व्यवस्था रही होगी। सिन्धु सभ्यता के उत्खनन से प्राप्त मकानों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि, आज की तरह लोगों के आर्थिक जीवन में अधिक अंतर नहीं था।

1.5.2 स्त्रियों की स्थिति :

सैन्धव सभ्यता में स्त्रियों की प्रधान स्थिति का ज्ञान हम पुरातात्विक साक्ष्यों से पाते हैं। सैन्धव–स्थलों से मिट्टी एवं धातुओं की स्त्री प्रतीमाएँ बड़ी संख्या में प्राप्त हुई है। विद्वानों ने इसी आधार पर सैन्धव समाज को ''मातृ प्रधान'' समाज माना है। इस संस्कृति की स्त्रियाँ अनेक प्रकार के आभूषणों एवं प्रसाधन सामग्री का प्रचुरता से उपयोग करती थी। तत्कालीन स्त्रियाँ दर्पण, कंघी, काजल, सुरमा, सिंदूर, बालो की पिन, इत्र, पावडर तथा लिपिस्टिक का प्रयोग करती थी। जॉन मार्शल एवं मार्टीमर व्हीलर का मत है कि सैन्धव सभ्यता के देव–परिवार में मातृदेवी का स्थान सर्वश्रेष्ठ था। मोहनजोदड़ो के एच.आर. क्षेत्र से प्राप्त 14 सेमी लम्बी नर्तकी की कांस्य–मूर्ति विश्व–विख्यात है। यह विलक्षण नर्तकी प्रतिमा नृत्य, शिल्प रुप और अलंकरण सज्जा की दृष्टि से अत्यन्त मनमोहक है। सैन्धव–सभ्यता में नर्तकियों एवं देवदासियों का भी प्रमुख स्थान रहा होगा। अतः पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि सैन्धव–संस्कृति में स्त्रियों की प्रधान स्थिति रही होगी।

1.5.3 भोजन :

सिन्धु सभ्यता के निवासी शाकाहारी एवं माँसाहारी दोनों ही प्रकार का भोजन ग्रहण करते थे। सिन्धु सभ्यता के निवासियों का मुख्य आहार गेहूँ था। सिन्धु सभ्यता के निवासी जौ, फल, तरबूज, दूध – दही तथा बकरी, सुअर, गाय, बतख, घड़ियाल, मुर्गा आदि का सेवन करते थे। गार्डन चाइल्ड के अनुसार, सिन्धु सभ्यता के निवासी 'चावल' का भी सेवन करते थे। सिन्धु सभ्यता के निवासी अनाज का संग्रहण करते थे। साथ ही, राजकीय अनाज संग्रहालय भी उत्खनन से प्राप्त है। उत्खनन से अनाज को कूटने वाली ओखलियाँ एवं पीसने के लिए सिल लोड़े मिले है।

1.5.4 वस्त्राभूषण :

पुरातात्विक सामग्री के आधार पर स्पष्ट होता है कि, सिन्धु – निवासी साधारणतया सूती वस्त्र पहनने थे। मोहनजोदड़ों से सूती धागे के साक्ष्य मिले है। वे ऊनी वस्त्रों का भी प्रयोग करते थे। सिन्धु सभ्यता के उत्खनन से कपड़े सिलने की सुईयाँ मिली है। कतिपय मूर्तियों के अंकन के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि, सिन्धु सभ्यता के निवासी शरीर पर दो कपड़े धारण किए जाते थे। प्रथम, एक आधुनिक शाल के समान कपड़ा होता था, जिसे बाएं कंधे के ऊपर तथा दाहिनी भुजा के नीचे से निकालकर पहनते थे। दूसरा, वस्त्र जो शरीर पर नीचे पहना जाता था, आधुनिक धोती के समान होता था। स्त्रियों एवं पुरूषों के वस्त्रों में अधिक अन्तर नहीं होता था। स्त्री – पुरूष दोनों रंग बिरंगे वस्त्रों का प्रयोग करते थे। मोहनजोदड़ों से खण्डित अवस्था में प्राप्त एक मूर्ति में पुरूष नक्काशीदार अलंकृत शाल ओड़े हुए है। स्त्री – पुरूष दोनों नुकीली टोपी पहनते थे। सिन्धु सभ्यता के सभी वर्गों के स्त्री – पुरूष आभूषण पहने थे। पुरूष और स्त्री दोनों ही कण्ठहार, केश बंध, बाजु बंध, अंगूठी, कुण्डल, आदि पहनते थे, जबकि स्त्री – चूड़ियां, कर्णफूल, कमरबंद, नूपूर, नाक की कील आदि पहनती थी। उच्च वर्ग सोने, चांदी, हाथी – दांत, हीरों (मूल्यवान पत्थर) तथा निर्धन व्यक्ति तांबे, मिट्टी, सीप आदि के आभूषण पहनते थे। स्वर्ण आभूषणों के

बारे में जॉन मार्शल कहते है कि, ''ऐसा प्रतीत होता है कि, ये आधुनिक लंदन के किसी सर्राफ की दुकान से आए है न कि 5000 वर्ष पूर्व किसी प्रागैतिहासिक घर से।''

1.5.5 श्रृंगार प्रसाधन :

सिन्धु सभ्यता के उच्च नगरीय सामाजिक जीवन में श्रृंगार प्रसाधनों का निश्चित रूप से बड़ा महत्व रहा होगा। हड़प्पा से काजल, श्रृंगारदान, मोहनजोदड़ों श्रृंगारदान, चन्हुदड़ों से लिपिस्टक तथा अंजनशालिका, नौसारो एवं मेहरगढ़ से स्त्रियों के सिन्दूर तथा अन्य सिन्धु सभ्यता के स्थलों के उत्खनन से प्राप्त सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि, सिन्धु सभ्यता की स्त्रियाँ दर्पण, कंघी, काजल, सुरमा, लिपिस्टक, सिन्दूर, बालों की पिन, इत्र तथा पाउडर का प्रयोग करती थीं। मिट्टी, हाथी – दांत तथा धातु के श्रृंगारदान भी उत्खनन से प्राप्त हुए है। उत्खनन से कांसे के दर्पण तथा हाथी – दांत के कंघे मिले है। दर्पण साधारणतया अण्डाकार होते थे। कांसे के बने हुए रेजर भी पुरूषों द्वारा प्रयोग में लाए जाने साक्ष्य मिले है। मोहनजोदड़ों से खण्डित अवस्था में प्राप्त एक मूर्ति में पुरूष के दाढ़ी एवं सिर के बालों को उत्कृष्ट केशसज्जा से सजाया गया है।

1.5.6 मनोरंजन के साधन :

सिन्धु सभ्यता के स्थलों के उत्खनन से प्राप्त सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि, सिन्धु सभ्यता के निवासी विविध प्रकार की खेल सामग्री का प्रयोग करते थे। सैन्धव सभ्यता से सर्वाधिक मृण्मूर्तियाँ खिलौनों के रूप में बनी पशु–पक्षियों की है। चन्हूदड़ों से काँसे की बैलगाड़ी, इक्कागाड़ी, पीतल की बतख मिली है। लोथल से ताँबे का कुत्ता, बैल, चिड़िया, खरगोश, मोहनजोदड़ों से भेड़, भैंसा, हड़प्पा से बैलगाड़ी आदि धातु मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। सैन्धव सभ्यता से धातु के खिलौने, पहिये युक्त खिलौना गाड़ियाँ, इक्के एवं सीटियाँ भी मिली है। मोहनजोदड़ों से प्राप्त नर्तकी की कांस्य प्रतिमा से संगीत – नृत्य का साक्ष्य मिलता है। इन सब उत्खनन से प्राप्त सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि, सिन्धु सभ्यता के निवासी शिकार खेलने, गाने – बजाने, संगीत – नृत्य, जुएँ आदि से मनोरंजन करते होगे। बच्चे मनोरंजन के लिए मिट्टी, लकड़ी, पत्थर एवं धातु के खिलौनों का प्रयोग करते होगे। सिन्धु सभ्यता के निवासी आवागमन के साधन के रूप में बैलगाड़ियों, इक्के गाडियों, नावों एवं जहाजों आदि को प्रयोग करते थे। बहुत संभव है कि, सिन्धु सभ्यता के निवासी बैलगाड़ियों एवं नावों की दौड़ की प्रतियोगिता मनोरंजन के साधन के रूप में करते हो।

1.5.7 अस्त्र – शस्त्र :

कुठार, भाले, कटार, कुल्हाडी, ढेलवाँसे, छुरे आदि तीर – धनुष के नमूने कम मिले हैं। युद्ध के हथियार, जो सभी आक्रमणात्मक हैं, साधारणतः ताँबे और काँसे के बने हैं यद्यपि थोड़े से पत्थर के हथियार भी पाये गये हैं।

1.5.8 चिकित्सा एवं औषधियाँ :

कालीबंगा और लोथल के साक्ष्यों से प्रगट होता है कि, सिन्धुवासी खोपड़ी (सिर) की शल्य चिकित्सा से भी परिचित थे। औषधियों के रूप में शिलाजीत, हिरण तथा बारहसिंघे की सींग तथा पीली हरताल, समुद्रफेन का प्रयोग किया जाता था।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) मनोरंजन के साधन ।
   (ख) वस्त्राभूषण ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) सिन्धु सभ्यता के सामाजिक संगठन का विवरण दीजिये ?

1.6 धार्मिक – अवस्था :

सिन्धु सभ्यता से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री तत्कालीन धार्मिक – अवस्था पर व्यापक प्रकाश डालती है। पुरातात्विक साक्ष्यों की अपनी सीमा है जैसाकि, मार्टीमर व्हीलर का कहना है कि, पुरातात्विक साक्ष्यों से धर्म के क्रियात्मक पक्ष पर प्रकाश पड़ता है, सैद्धांतिक पक्ष पर नहीं। सिन्धु सभ्यता पुरातात्विक सामग्री से मातृदेवी, शिव, लिंग और योनि पूजा, पशु पूजा वृक्ष पूजा, जल पूजा, सूर्य पूजा आदि का ज्ञान होता है। ए० एल० बाशम का कहना है कि, 'भारतवर्ष के आदितम् सभ्य निवासी एक देवी माता तथा उर्वरणशक्ति के एक श्रृंगयुक्त देवता की उपासना किया करते थे। उनके पवित्र पादप एवं पशु थे और उनके धार्मिक जीवन में प्रत्यक्ष रूप से कर्मकाण्डी अभिषेकों का महत्वपूर्ण स्थान था।' प्रो० रोमिला थापर ने लिखा है कि, ''हड़प्पावासी जनन – क्षमता के प्रतीकों – देवी माता, साँड (नंदी), शृंगमय देवता तथा पवित्र वृक्षों की पूजा करते थे और आज भी हिन्दुओं की पूजा में इनका समावेश हैं।''

1.6.1 मातृदेवी की पूजा :

पुरास्थलों से बड़ी संख्या मे स्त्री प्रतिमाएँ प्राप्त है। स्त्री मृण मूर्तियाँ चार प्रकार की प्राप्त हुई है, नग्न स्त्री, खड़ी सुसज्जित स्त्री, बैठी स्त्री, माँ – पुत्र की मूर्तियाँ। स्त्री प्रतिमाओं में अलंकारों में ग्रैवेयक, अंगद, चूड़ियां तथा मेखला विशेष है। मातृदेवी की मूर्तियों में विशेषतः उर्वरता के प्रतीक चिन्ह, शिशु को गोद में लिए हुए, शिशु को दूध पिलाते हुए, स्त्री प्रतिमाओं के समक्ष पूजा आदि विशेषताओं से युक्त है। एक स्त्री के गर्भ से एक स्त्री के गर्भ से पौधा निकलता हुआ प्रदर्शित हैं। सम्भवतः यह उर्वरता की प्रतीक पृथ्वी माता है। ई० जे० एस० मैके को एक मुद्रा पर वृक्ष के नीचे एक नारी का अंकन मिला है। सम्भवतः यह मातृदेवी रही होगी। ई० जे० एस० मैके को स्त्री प्रतिमाओं पर धुएँ के निशान मिले है। सम्भवतः इन मूर्तियों के सामने अग्नि के दीपक या अग्निकुण्ड प्रज्वलित रहा होगा। हड़प्पा से प्राप्त एक मुहर पर एक तरफ स्त्री प्रतिमा तथा दूसरी तरफ एक पुरूष एक स्त्री की बलि देते प्रदर्शित है। मोहनजोदड़ो में एक मूर्ति मिली है, जिसके शीश पर एक पक्षी बैठा हैं। यदाकदा इनमें वृक्ष अथवा उदर पर विशेष उभार दिखाया गया है, मातृत्व के इन लक्षणों के आधार पर ऐसी विशेषताओं वाली मूर्तियों को मातृदेवी माना है। मार्टीमर व्हीलर एवं जॉन मार्शल का मानना है कि, सिन्धु सभ्यता के देवा परिवार में मातृदेवी का सर्वश्रेष्ठ स्थान था।

1.6.2 शिव पूजा :

शिव सिन्धु सभ्यता के प्रमुख देवता थे। अनेक पुरातात्विक साक्ष्य सिन्धु सभ्यता में शिव उपासना की पुष्टि करते है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर पर त्रिमुखीय पुरूष पद्मासन मुद्रा में चौकी पर बैठा है, इसके सिर पर सींग हैं। योगी के बाईं ओर गैंड़ा, भैंसा तथा दाई ओर हाथी, व्याघ्र एवं उसके सम्मुख एक हिरन है। योगी के ऊपर 6 शब्द लिखे हैं। विद्वानों के अनुसार मुद्रा में ऊर्ध्वलिंग भी अंकित हैं। विभिन्न विद्वानों ने इसका समीकरण भिन्न – भिन्न देवताओं से किया है, बुद्ध प्रकाश ने इसका समीकरण ऋग्वेद के 'त्वाष्ट्र' से, टी० एन० रामचन्द्रन ने इसका समीकरण ग्वेद के 'सोम' से, सालेतोरे ने इसका समीकरण अग्निदेव से किया है। किन्तु जॉन मार्शल ने इसमें शिव के 'त्रिशूलिन्', 'पशुपति', तथा 'महायोगी' रूपों की पूर्व कल्पना माना है। एक अन्य मुहर पर एक शूलधारी मानवीय आकृति को वृषभ पर प्रहार करते दिखायी गयी है। व्हीलर ने इसमें शिव और दुंदुभि के संघर्ष का आभास माना है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक अन्य मुहर पर श्रृंगयुक्त त्रिमुखी आकृति योगासन मुद्रा में बैठा अंकित है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक अन्य मुहर पर योगासन मुद्रा में बैठी मानव आकृति अंकित है, जिसके आसपास हाथ जोड़े पुरूष खड़े है, तथा पुरूषों के

पीछे सर्प के फन अंकित है। अतः अनेक पुरातात्विक साक्ष्य सिन्धु सभ्यता में शिव उपासना की पुष्टि करते है।

1.6.3 लिंग और योनि पूजा :

सिन्धु सभ्यता में बहुसंख्या में साधारण पत्थर, लाल अथवा नीले सैण्डस्टोन, चीनी मिट्टी, सीप के लिंग मिले हैं, ये दो प्रकार के हैं फौलिक (लिंगों का शीर्षभाग गोल) एवं वीटल्स (लिंगों का शीर्षभाग नुकीला)। कुछ अत्यन्त छोटे तथा कुछ लिंग चार फीट ऊँचे हैं। डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय के अनुसार, 'लिंग पुजा मिस्त्र, यूनान और रोम में भी प्रचलित थी।'सिन्धु सभ्यता से पत्थर चीनी मिट्टी, सीप आदि के आधे इंच से लेकर चार इंच तक छल्ले मिले हैं। कुछ छल्लों (चक्रों) के बीच में छेद के साथ ही पेड़ों और पशुओं तथा नग्न स्त्री आकृति चित्रित है। विद्वानों ने इन्हें 'योनि पूजा' का प्रतीक माना है। डॉ० ए० डी० पुसाल्कर का मानना है कि, ''शिव इस युग के प्रमुख देवता थे और उनकी उपासना लिंग तथा मानवीय दोनों रूपों में होती थी।

1.6.4 पशु पूजा :

सैन्धव सभ्यता में पशु – पूजा भी प्रचलित थी। पशुओं में कुबड़दार बैल एवं एक श्रृंगी वृषभ का अंकन बहुतायत से प्राप्त हुआ है। एम० धवलीकर के अनुसार, ''कृषि में उपयोगी होने के कारण वृषभ पूज्य रहा होगा। संभवतः वृषभ पूजा सम्प्रदाय रहा होगा।'' विद्वानों के अनुसार, 'गोर्क नस्ल' के वृषभ की पशु – पूजा प्रचलित थी। कुछ मुहरों पर एक सींग की आकृति, हाथी, गैंडा, गरूड़ आदि चित्रों के सामने धूपदान को दिखाया गया है। ई० जे० एस० मैके के अनुसार, ''इनका धार्मिक महत्व रहा होगा।'' थपल्याल और शुक्ल के अनुसार, ''संयुक्त पशु आकृतियों का भी धार्मिक महत्व का रहा होगा।'' एक मुद्रा पर 'नाग की पूजा' करते हुए एक व्यक्ति चित्रित है। लोथल से प्राप्त ताबीज पर एक नाग चबूतरे पर लेटा हुआ चित्रित है। ई० जे० एस० मैके के अनुसार, 'सैन्धव सभ्यता में नाग पूजा भी प्रचलित थी।'

1.6.5 वृक्ष पूजा :

सैन्धव सभ्यता में वृक्ष – पूजा प्रचलित थी। वृक्षों में पीपल, शीशम, बबूल, नीम आदि वृक्ष पवित्र माने जाते थे। मोहनजोदड़ों से प्राप्त एक मुद्रा पर दो जुड़वा पशुओं के शीश पर नौ पीपल की पत्तियाँ दिखाई गई हैं। मार्शल भी इन पत्तियों को पीपल की मानते हैं। ए० एल० बाशम के अनुसार, ''एक आश्चर्यजनक मुद्रा है, जो पीपल के वृक्ष के नीचे एक श्रृंगयुक्त देवी, जिसके सामने मनुष्य के शिरोभाग वाला एक बकरा है, एक आकृति पूजारत् हैं और शिखायुक्त सात नारियों की एक पंक्ति है, जो सम्भवतः परिचर्या में संलग्न पुजारिनें हैं।'' इससे स्पष्ट है कि, पीपल पूजा सर्वाधिक प्रचलित है।

1.6.6 जल – पूजा :

मोहनजोदड़ों से प्राप्त महास्नानागार के आधार पर विद्वानों का मानना है कि, इसका धार्मिक महत्व रहा होगा। यह सैन्धव सभ्यता में जल–पूजा का प्रमाण है। ए० एल० बाशम का मानना है कि, ''हिन्दू मंदिरों के जलाशय की भाँति सम्भवतः महास्नानागार का भी धार्मिक महत्व था तथा छोटे – छोटे कक्ष महन्तों के निवास स्थान रहे होंगे।'' जॉन मार्शल का भी मानना है कि, सैन्धव सभ्यता में जल–पूजा एवं नदी–पूजा की जाती होगी।

1.6.7 सूर्य पूजा :

पुरातात्विक साक्ष्य सिन्धु सभ्यता में सूर्य पूजा उपासना की पुष्टि करते है। कुछ मुद्राओं पर सूर्य चिन्ह स्वास्तिक, पहिया प्राप्त होता है। इसी आधार पर विद्वानों का मानना है कि, क्रीट में पाषाण स्तम्भों और स्वास्तिक चिन्हों की पूजा होती थी।

उक्त सैन्धव धर्म, आधुनिक हिन्दू धर्म से गुणों में समान रखता है। मजूमदार, रायचौधरी, दत्त का मानना है कि, ''आधुनिक हिन्दू धर्म अधिक अंश में सिन्धु घाटी की संस्कृति का ऋणी है।''

1.6.8 अंतिम संस्कार :

अंतिम संस्कार धार्मिक विश्वास का अभिन्न अंग है। अंतिम संस्कार में दिवंगत आत्मा की तृप्ति और मोक्ष की कामना की जाती है। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, लोथल, कालीबंगा आदि स्थ्लों से मृतक के अंतिम संस्कार के प्रमाण मिले है। पुरातात्विक साक्ष्यों से सिन्धु सभ्यता के नगरों से बाहर मृतक का अंतिम संस्कार करने के प्रमाण मिले है। पुरातात्विक उत्खनन से अंत्येष्टि सामग्री के रूप में आभूषण, मृदभाण्ड, उपकरण एवं अन्य वस्तुएँ मिली है। पुरातत्वविदों को कपाल क्रिया के भी प्रमाण मिले है। सिन्धु सभ्यता में अंतिम संस्कार तीन प्रकार से करने के प्रमाण मिलते है— पूर्ण समाधीकरण (अर्थात् मृतक के संपूर्ण शरीर को दफनाना), आंशिक समाधीकरण (अर्थात् मृतक के शरीर को अग्नि में जलाकर या मृतक के शरीर को जंगली पशुओं द्वारा भक्षण करने के बाद शरीर की प्रमुख हड्डियों को दफनाना), एवं दाहकर्म (अर्थात् मृतक के संपूर्ण शरीर को अग्नि में जला देना)।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) पशु पूजा ।
   (ख) अंतिम संस्कार ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) सिन्धु सभ्यता की मातृदेवी एवं शिव पूजा का विवरण दीजिये ?

1.7 आर्थिक स्थिति :

पुरातात्विक स्त्रोत सैन्धव सभ्यता की अत्यन्त समृद्ध आर्थिक दशा की ओर इंकित करते हैं। डॉ० जयनारायण पाण्डेय ने लिखा है कि, ''नगरीकरण सैन्धव सभ्यता के स्वरूप की मुख्य विशेषता थी। नगरीकरण विकसित अर्थव्यवस्था एवं जटिल आर्थिक संगठन का परिचायक है। कृषि, पशुपालन के अतिरिक्त शिल्प और व्यापार सैन्धव सभ्यता के आर्थिक जीवन के प्रमुख आधार थे। स्थानीय उपयोग से अधिक पैंदावार देने वाली उन्नत एवं कारगर कृषि के द्वारा ही नगरवासियों के भरण – पोषण के लिए अनाज एवं विभिन्न शिल्पियों के लिए कच्चा माल सुलभ होता रहा होगा। नदियों के जलमार्गों एवं सड़कों के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों के बीच व्यापारिक क्रियाकलाप होते रहे होगे। मुहरों तथा एक जैसी बांट – माप प्रणाली का भी व्यापार के विकास में योगदान था।'' सैन्धव अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में कृषि, पशुपालन, प्रौद्योगिक, व्यापार एवं वाणिज्य आदि का योगदान था।

1.7.1 कृषि :

कृषि मुख्य व्यवसाय था। गेहूँ एवं जौ सैन्धव सभ्यता की प्रमुख फसलें थीं। सैन्धव पुरास्थलों से अभी तक नौ फसलों के साक्ष्य मिले हैं। जिनमें गेहूँ, जौ, कपास, मटर, खजूर, तिल, धान, सरसों आदि प्रमुख है। खरीफ की फसलों में कपास, धान और तिल तथा रबी की फसलों में जौ, गेहूँ, सरसों और मटर के साक्ष्य उपलब्ध है। लोथल और रंगपुर से मृदभाण्डों एवं मिट्टी में धान के छिलकों की प्राप्ति महत्वपूर्ण है। धान की एक किस्म को 'ब्रासिका जुंसी' की संज्ञा दी गई है। कालीबंगा से हल से जुते हुए खेत के साक्ष्य, चोलिस्तान एवं बणावली से मिट्टी के खेत जोतने के हल के खिलौने से प्रतीत होता है कि, सैन्धव सभ्यता में लोग हल से खेती करते थे। विद्वानों का मत है कि, सम्भवतः सैन्धव सभ्यता में लोग लकड़ी के हल से खेती करते थे। डॉ० जयनारायण पाण्डेय के अनुसार, 'सम्भवतः पाषाण और ताम्र का प्रयोग खेती के लिये

किया जाता था।' सैन्धव सभ्यता की गेंहूँ की दो किस्में 'ट्रीटीकम कोमपैक्टम एवं ट्रीटीकम स्पैरोकम' ;त्तपंजपबनउ बवउचंबजनउ ंदक ज्ेचीींबतवबवबबनउद्ध आज भी पंजाब में उत्पन्न होती है। ए० एल० बाशम के अनुसार, ''इस समृद्धशाली कृषि व्यवस्था के आधार पर हड़प्पा – निवासियों ने अकाल्पनिक परन्तु सुखदायी सभ्यता का निर्माण किया था।'' सैन्धव सभ्यता में कृषि मजदूरी में क्या दिया जाता था? यह तो ज्ञात नहीं है किन्तु, मेसोपोटामिया में कृषि मजदूरी में 'जौ' दिया जाता था। सैन्धव सभ्यता के पुरास्थलों से अन्नागारों की प्राप्ति यह बताती है कि, सैन्धव निवासियों के लिए कृषि कितनी महत्वपूर्ण थी।

1.7.2 पशुपालन :

पशुपालन सिन्धुवासियों के आर्थिक जीवन का द्वितीय महत्वपूर्ण आधार था। बैल, बकरी, गाय, भेड़, भैस, कुत्ता, बिल्ली, ऊँट, सुअर आदि का पशुपालन किया जाता था। डॉ० आर० एस० शर्मा के अनुसार, ''गुजरात में बसे हड़पाई लोग चावल उपजाते थे और हाथी पालते थे, ये दोनों बातें मेसोपोटामिया के नगरवासियों के बारे में नहीं है।''

1.7.3 प्रौद्योगिकी :

प्रौद्योगिक दृष्टि से भी सिन्धुवासी उन्नत अवस्था थे। वे विश्व के सूत काटने तथा कपड़े बुनने वाले प्रथम लोग थे, उन्हें कपड़े रंगने का भी ज्ञान था। दयाराम साहनी को हड़प्पा से चाँदी के एक कलश के भीतर रखा हुआ कपड़े का एक टुकड़ा मिला था। ई० जे० एस० मैके को उत्खनन से अनेक वस्तुओं में लिपटे हुए सूत के धागे मिले थे। मृद्भाण्ड चॉक पर निर्मित है। मुख्यतः रेड ऐण्ड ब्लैक वेयर प्राप्त होता है। हड़प्पा के चमकीले मृदमाण्ड सर्वाधिक पुराने माने जाते हैं। सैन्धव सभ्यता से धातुओं की बनी विभिन्न वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। सैन्धव सभ्यता के निवासी स्वर्ण के आभूषणों को बनाने में सिद्धहस्त थे। स्वर्ण आभूषणों के बारे में जॉन मार्शल कहते है कि, ''ऐसा प्रतीत होता है कि, ये आधुनिक लंदन के किसी सर्राफ की दुकान से आए है न कि 5000 वर्ष पूर्व किसी प्रागैतिहासिक घर से।'' मोहनजोदड़ों से ताँबे का गला हुआ एक ढेर मिला है। एस० आर० राव के अनुसार, ''यहाँ ताम्रकारों की एक बस्ती थी।'' ताँबे के छेनी, बर्मा, दुधारू, चाकू, पीतल का एक चाकू, एक्के खिलौने मछली पकड़ने के काँटे, सीने की सुईयाँ तथा विभिन्न प्रकार के आभूषण मिले हैं। चन्हूदड़ो एवं लोथल से मनके बनाने का कारखाना मिला है। मूर्तिकला में मोहनजोदड़ो से प्राप्त काँसे की नर्तकी की मूर्ति एवं मिट्टी की मूर्तियाँ शिल्पकला की उत्कृष्टता की द्योतक है। बेलनाकार, आयताकार, वर्गाकार एवं वृत्ताकार मुहरें आदि अनेक तथ्य सैन्धव प्रौद्यौगिकी का लोहा मनवाने के लिए पर्याप्त है। मोहनजोदड़ो से सीप की एक टूटी पट्‌टी (पटरी) मिली है, इस पर नौ बराबर भाग बने हुए है। लोथल से हाथी दाँत की पट्‌टी (पटरी) मिली है। ई० जे० एस० मैके के अनुसार, सिन्धु प्रदेश में पट्‌टी (पटरी) 13.2 इंच की होती थी। उत्खनन से पत्थर के घनाकार, बेलनाकार, शंक्वाकार एवं ढोलाकार आकृति के बाँट मिले हैं। इनकी तौल शुद्धता आश्चर्यजनक है। तौलने की इकाई सम्भवतः 16 के अनुपात में थी, जैसे 16, 64, 160, 320, 640 आदि। उत्खनन में मोहनजोदड़ों तथा लोथल से हाथी दाँत के बने हुए तराजू के पलड़े प्राप्त हुए है। जॉन मार्शल के अनुसार, ''सूसा और ईराक के प्राचीन बाँटों में भी यह विशेषता नहीं है।''

1.7.4 व्यापार – वाणिज्य :

सैन्धव सभ्यता व्यापार एवं वाणिज्य प्रधान थी। सिन्धुवासियों का व्यापार एवं वाणिज्य उन्नत दशा में था। सैन्धव सभ्यता में नदियों के जलमार्गों एवं सड़कों के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों के बीच व्यापारिक क्रियाकलाप होते रहे होगे। अर्थात् व्यापार जल एवं थल दोनों मार्गों से होता था। हड़प्पा एवं चन्हूदड़ों से 'कांसे' की बैलगाड़ियाँ, गाड़ीवान सहित प्राप्त हुई है। सामुद्रिक व्यापार की पुष्टि पुरातात्विक स्त्रोतों से स्पष्ट है। लोथल से बंदरगाह के प्रमाण तथा मुहरों पर जहाजों एवं नावों के चित्रण से सुदूर देशों के साथ सामुद्रिक व्यापार

की पुष्टि होती है। सिन्धुवासियों के व्यापार एवं वाणिज्य के पुरातात्विक साक्ष्य मध्य एशिया में दजफा – फरात, फारस की खाड़ी मेसोपोटामिया, इजिप्ट, सोवियत दक्षिणी तुर्कमेनिया आदि से प्राप्त है। मेसोपोटामिया के सुमेरीय शासक सारगोन (2371 – 2316 ई० पू०) के समय के अभिलेखों में सिन्धु प्रदेश को 'मेलुहा' कहा गया है। मेसोपोटामिया के अभिलेख 'मेलुहा' को नाविकों का देश कहते है। सिन्धु सभ्यता के लोग कई वस्तुओं यथा – सूती – वस्त्र, इमारती लकड़ी, मशाले, हाथी दाँत, पशु – पक्षी, मनके आदि का निर्यात् करते थे। सैन्धवासी सोना – कर्नाटक (कोलार), अफगानिस्तान, फारस से, चाँदी – अफगानिस्तान, ईरान से, ताँबा – खेतड़ी (राजस्थान) बलूचिस्तान से, टिन – मध्य एशिया, अफगानिस्तान से, सीसा – राजस्थान, दक्षिणी भारत, अफगानिस्तान, ईरान से, गोमेद – सौराष्ट (गुजरात) से, जुवमणि – महाराष्ट्र से, संगयशब – पामीर से, फिरोजा – ईरान (खुरासान) से, लाजवर्ण – अफगानिस्तान (बदक्शाँ), मेसोपोटामिया आदि से आयात करते थे।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) व्यापार – वाणिज्य ।
   (ख) कृषि ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) सिन्धु सभ्यता की प्रौद्योगिकी का विवरण दीजिये ?

1.8 राजनीतिक – दशा :

पुरातात्विक साक्ष्य सैन्धव सभ्यता की राजनीतिक – दशा के बारे में मौन हैं। सैन्धव सभ्यता की सांस्कृतिक एकता में एकरूपता सभी क्षेत्रों में स्पष्ट है, यथा, – मृद्भांड के स्वरूप, चर्ट – फलक, घनमाप, पक्की मिट्टी की पिंडिका (टेराकोटा केक), कंगन, पशु – मूर्तियाँ ताम्र और कांस्य उपकरण, उत्कीर्ण सीलें, सेलखड़ी, मनके ईंट की माप आदि। सुदूर व्यापार के साक्ष्य तो इसको और भी सुदृढ़ करते हैं। ऐसी सांस्कृतिक एकता किसी केन्द्रित सत्ता के बिना संभव नहीं हुई होगी। यदि हड़प्पाई सांस्कृतिक अंचल को राजनैतिक अंचल का अभिन्न अंग मानें, तो इस उपमहाद्वीप ने मौर्य साम्राज्य की स्थापना से पूर्व इतनी बड़ी राजनैतिक इकाई कभी नहीं देखी। जोकि 600 वर्षों तक निरंतर कायम रही। डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय के अनुसार, ''केन्द्रीय सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर दिया गया था। कदाचित् केन्द्रीय शासन की ओर से अनेक पदाधिकारी भिन्न – भिन्न नगरों में शासन करते थे।'' मैके एवं ए० एल० बाशम का मानना है कि, सैन्धव सभ्यता में जनतंतात्मक शासन व्यवस्था रही होगी। प्रो० पीगेट एवं अन्य कतिपय विद्वानों का मानना है कि, मिस्र एवं मेसोपोटामिया की तरह पुरोहित वर्ग का शासन रहा होगा। वहीं, डॉ० आर० एस० शर्मा का मानना है कि, मिस्र और मेसोपोटामिया के नितान्त विपरीत किसी भी हड़प्पाई स्थन पर मंदिर नहीं पाया गया है। हड़प्पा अंचल में धार्मिक विश्वासों और आचारों में एकरूपता नहीं हैं। इसलिए ऐसा सोचना गलत है कि हड़प्पा में पुरोहितों का वैसा ही शासन था जैसा कि निचले मेसोपोटामिया के नगरों में था। शायद हड़प्पाई शासकों का ध्यान विजय की ओर उतना नहीं था जितना वाणिज्य की ओर और हड़प्पा का शासन सम्भवतः वणिक वर्ग के हाथ में था। किन्तु जब तक कोई ठोस प्रमाण नहीं मिल जाता, तब तक सैन्धव सभ्यता की राजनीतिक – दशा के बारे में केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) सैन्धव सभ्यता की राजनीतिक – दशा का विवरण दीजिये ?

1.9 सारांश

सिन्धु घाटी की सभ्यता एक परिपक्व साँस्कृतिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करती है। सिन्धु घाटी के लोग उच्च साँस्कृतिक गतिविधियों में संलग्न रहे। सैंधव कारीगरों ने वास्तुकला, मूर्तिकला एवं नगर जन – जीवन के उच्च प्रतिमानों को गढ़ने में महारत हासिल कर ली थी। उन्होंने सुनियोजित नगरों, उत्कृष्ट भवन नियोजन, महास्नानागार एवं विशाल अन्नागार जैसे अद्‌भुत स्मारकों का निर्माण किया। साथ ही, सिन्धु सभ्यता के लोगों ने समकालीन विश्व की सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रथम 'जल निकासी' प्रणाली का विकास किया। उन्होंने विश्व प्रसिद्ध कलात्मक कृतियों का सृजन किया। जो अपने समकालीन सभ्यताओं में न केवल सर्वश्रेष्ठ थीं, साथ ही, विशिष्ठ भी थी। सिन्धु सभ्यता के लोगों ने समतामूलक उच्च नगरीय सामाजिक जीवन शैली की प्रतिष्ठा की। सिन्धु सभ्यता के सभ्य निवासी जनन – क्षमता के प्रतीकों एवं प्रकृति के उपासक थे। आधुनिक हिन्दू धर्म अधिक अंश में सिन्धु घाटी की संस्कृति का ऋणी है। सिन्धु सभ्यता के लोगों सभ्य निवासियों ने विकसित नगरीकरण अर्थव्यवस्था एवं जटिल आर्थिक संगठन का निर्माण किया। वे विश्व के सूत काटने तथा कपड़े बुनने वाले प्रथम लोग थे। उनका व्यापार एवं वाणिज्य संपूर्ण देश में ही नहीं अपितु सुदूर देशों में भी फैला हुआ था।

1.10 तकनीकी शब्दावली

1. मृण्मूर्तियाँ – मिट्‌टी की मूर्तिया
2. मनका – छेद युक्त गोल गुरिया
3. फयॉन्स – घिसी हुई रेत(बालू) तथा रंगएवं चिपचपे पदार्थ के मिश्रण को पका कर बनाया गया पदार्थ
4. अंत्येष्टि – मृतक का अंतिम संस्कार
5. चॉक – कुम्हार द्वारा प्रयुक्त गोल पहिया जिसको घुमाकर मिट्‌टी मटके और बर्तन बनाये जाते थे।
6. मुहरें – मुद्रा ेंमंस) जिनका प्रयोग विशेष चिन्ह (निशान) के रूप में होता था।

1.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 1.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 1.3 नगर नियोजन
2. देखिए 1.3.4 सड़कें
3. देखिए 1.3.2 विशाल अन्नागार
4. देखिए 1.3.3 महास्नानागार
5. देखिए 1.3 नगर नियोजन

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 1.3.2 विशाल अन्नागार
   (ख) देखिए 1.3.3 महास्नानागार
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) देखिए 1.3.1 भवन नियोजन

इकाई 1.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 1.4.1 प्रस्तर मूर्ति कलाँ

(ख) देखिए 1.4.6 मृदभाण्ड

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 1.4 सैन्धव कला

इकाई 1.5 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 1.5.6 मनोरंजन के साधनँ

(ख) देखिए 1.5.4 वस्त्राभूषण

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 1.5.1 सामाजिक संगठन

इकाई 1.6 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 1.6.4 पशु पूजा

(ख) देखिए 1.6.8 अंतिम संस्कार

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 1.6.1 मातृदेवी एवं 1.6.2 शिव पूजा

इकाई 1.7 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 1.7.4 व्यापार – वाणिज्य

(ख) देखिए 1.7.1 कृषि

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 1.7.3 प्रौद्योगिकी

इकाई 1.8 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 1.8 राजनीतिक – दशा

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आल्विन, आर० एण्ड बी० – ऑरिजिंस ऑफ ए सिविलाईजेशन, 1997
2. अग्रवाल, वासुदेवशरण – भारतीय कला, 1987
3. बाशम, ए० एल० – अद्भुत भारत, 1987
4. मार्शल, जॉन – मोहनजोदड़ो एण्ड द इंडस सिविलाईजेशन, 1931
5. मैके, अर्नेस्ट – फर्दर एक्सकैवेशन्स एट मोहनजोदड़ो, 1937
6. मैके, अर्नेस्ट – अर्ली इंडस सिविलाईजेशन, 1948
7. पोसल, जी०एस० – द इंडस सिविलाईजेशन, 2003
8. व्हीलर, आर०ई०एम० – माई आर्कियोलॉजिकल मिशन टू इंडिया एण्ड पाकिस्तान, 1976

1.13 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ओमप्रकाश – प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1986
2. झा एवं श्रीमाली – प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 2000

3. मिश्र, आर० एन० – भारतीय मूर्तिकला का इतिहास, नई दिल्ली, 2002
4. मजूमदार, रायचौधरी, दत्त – भारत का बृहत, इतिहास, खण्ड 1, नई दिल्ली, 1970
5. मजूमदार, रमेशचन्द्र – प्राचीन भारत, दिल्ली, 1973
6. महाजन, विद्याधर – प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 2008
7. पाण्डेय, विमल चन्द्र – प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग 1, इलाहाबाद, 1998
8. पाण्डेय, जयनारायण – पुरातत्व विमर्श, इलाहाबाद, 2000
9. श्रीवास्तव, के० सी० – प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, इलाहबाद, 20076
10. शर्मा, आनन्द कुमार – भारतीय संस्कृति एवं कला, नई दिल्ली, 2011
11. शर्मा, रामशरण – प्रारंभिक भारत का परिचय, नई दिल्ली, 2009
12. त्रिपाठी, आर० एस० – प्राचीन भारत का इतिहास, बनारस, 1998
13. वाजपेयी, कृष्णदत्त – भारतीय वास्तुकला का इतिहास, लखनऊ, 1990

1.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. सिन्धु सभ्यता की साँस्कृतिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिये ?

प्रश्न 2. सिन्धु सभ्यता की आर्थिक स्थिति का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 3. सिन्धु सभ्यता की धार्मिक स्थिति का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 4. सिन्धु सभ्यता के नगर नियोजन पर प्रकाश डालिये ?

ब्लॉक दो

इकाई–दो : वैदिक संस्कृति

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 पूर्व वैदिक कालीन संस्कृति

2.3.1 सामाजिक जन – जीवन

2.3.1.1 परिवार

2.3.1.2 वर्ण – व्यवस्था

2.3.1.3 विवाह

2.3.1.4 स्त्रियों की स्थिति

2.3.1.5 वस्त्राभूषण

2.3.1.6 भोजन

2.3.1.7 मनोरंजन के साधन

2.3.1.8 शिक्षा

2.3.2 आर्थिक जीवन

2.3.2.1 कृषि एवं पशुपालन

2.3.2.2 व्यवसाय

2.3.2.3 व्यापार – वाणिज्य

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.3.3 धार्मिक – अवस्था

2.3.4 राजनीतिक स्थिति

2.3.5.1 प्रशासनिक व्यवस्था

2.3.5.1.1 राजा (राजन्)

2.3.5.1.2 पुरोहित

2.3.5.1.3 सेनापति या सेनानी

2.3.5.1.4 ग्रामणी

2.3.5.1.5 सभा और समिति

2.3.5.1.6 विदथ (विधाता)

2.3.5.1.7 न्याय – व्यवस्था

2.4 उत्तर वैदिक कालीन संस्कृति

2.4.1 सामाजिक व्यवस्था

2.4.1.1 वर्ण – व्यवस्था

2.4.1.2 आश्रम व्यवस्था

2.4.1.3 परिवार

2.4.1.4 विवाह

2.4.1.5 स्त्रियों की स्थिति

2.4.1.6 मनोरंजन के साधन

2.4.1.7 खानपान

2.4.1.8 शिक्षा

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.4.2 आर्थिक स्थिति

2.4.2.1 कृषि एवं पशुपालन

2.4.2.2 लघु – उद्योग एवं व्यवसाय

2.4.2.3 व्यापार – वाणिज्य

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.4.3 धार्मिक स्थिति

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.4.4 राजनीतिक स्थिति

2.4.4.1 सभा – समिति

2.4.4.2 न्याय – व्यवस्था

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.5 सारांश

2.6 तकनीकी शब्दावली

2.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

वैदिक कालीन संस्कृति, भारतीय संस्कृति के इतिहास के पन्नों में अंकित गौरवशाली अध्याय है। वेद भारतीय संस्कृति के ज्ञान के आदितम् स्त्रोत है। वेद भारतीय साहित्य की प्राचीनतम् कृति है। वेदों की संख्या चार हैं – ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद। सबसे प्राचीन वेद ऋग्वेद है। ऋग्वेद में 10 मण्डल, 1028 सूक्त तथा 10,580 ऋचाएँ हैं। ऋग्वेद से प्राचीन आर्यों के सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक जीवन की विस्तृत जानकारी मिलती है। सामवेद ऐसा वेद है, जिसके मंत्र यज्ञों में देवताओं की स्तुति करते हुए गाये जाते थे। यह ग्रंथ तत्कालीन भारत की गायन विद्या का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करता हैं। सामवेद में 1549 ऋचाएँ हैं। सामवेद 75 ऋचाएँ ही मौलिक है, शेष ऋग्वेद से ली गई हैं। यजुर्वेद में अनेक प्रकार की यज्ञ – विधियों का वर्णन किया गया हैं। अथर्ववेद, इस वेद की रचना अथर्वा ऋषि ने की थी, इसीलिए इसे 'अथर्ववेद' कहते हैं। इसकी रचना लगभग 800 ई० पू० में हुई। 'अथर्ववेद' में 20 मण्डल, 731 सूक्त तथा 5849 ऋचाएँ हैं। 'अथर्ववेद' में 1200 ऋचाएँ ऋग्वेद से ली गई हैं। 'अथर्ववेद' से उत्तर वैदिक कालीन भारत की पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन की विस्तृत जानकारी मिलती है। वेदों से वैदिक कालीन संस्कृति की आधारभूत जानकारी मिलती है। वैदिक संस्कृति को दो भागों में बांटा गया है – पूर्व वैदिक कालीन संस्कृति एवं उत्तर वैदिक कालीन संस्कृति।

2.2 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है –

9. विद्यार्थी वैदिक कालीन संस्कृति का इतिहास समझ सकेगें।
10. विद्यार्थी वैदिक कालीन सामाजिक स्थिति को जान सकेंगे ।
11. विद्यार्थी वैदिक कालीन आर्थिक स्थिति को समझेंगें।
12. विद्यार्थी वैदिक कालीन धार्मिक स्थिति को जान सकेंगे ।
13. विद्यार्थी वैदिक कालीन राजनीतिक स्थिति को समझ सकेगें।
14. विद्यार्थी पूर्व वैदिक काल एवं उत्तर वैदिक काल को समझ सकेगें।
15. विद्यार्थी पूर्व वैदिक कालीन संस्कृति एवं उत्तर वैदिक कालीन संस्कृति के विकास एवं परिवर्तन को समझ सकेगें।
16. विद्यार्थी वैदिक कालीन ग्रंथों के बारे में जानेगे।

2.3 पूर्व वैदिक कालीन संस्कृति :

पूर्व वैदिक काल से तात्पर्य उस काल से है, जिसमें ऋग्वेद की रचना हुई थी। ऋग्वेद का रचना काल 1500 – 1000 ई० पू० माना जाता है। अतः पूर्व वैदिक कालीन संस्कृति की तिथि 1500 – 1000 ई० पू० है। पूर्व वैदिक काल सभ्य समाज के निर्माण का प्रारंभिक काल था। पूर्व वैदिक कालीन आर्य प्रकृति के सानिध्य में रहते थे। प्रकृति के सानिध्य में आर्य संस्कृति का क्रमिक विकास हुआ। प्रकृति ने ही धार्मिक भावनाओं का अंकुरण आर्यों में किया। पूर्व वैदिक काल में आर्यों ने शनैः–शनैः संमृद्ध 'ग्राम प्रधान' समाज का निर्माण किया। शनैः–शनैः पशुपालन, कृषि एवं अन्य व्यवसायों का क्रमिक विकास हुआ। पूर्व वैदिक काल में ही आर्यों की राजनैतिक संस्थाओं का क्रमिक विकास हुआ।

2.3.1 सामाजिक जन – जीवन :

पूर्व – वैदिक (ऋग्वैदिक) आर्यों का सामाजिक जन – जीवन सुसंगठित एवं व्यवस्थित था। पूर्व – वैदिक (ऋग्वैदिक) आर्यों के 'ग्राम प्रधान' समाज में सभी लोग समानता के साथ ग्रामीण परिवेश में एक साथ घुल मिलकर रहते थे। आर्यों ने अपनी व्यक्तिगत और खाद्य सुरक्षा को दृष्टिगत रखते हुए सामूहिक जन – जीवन को अपनाया। पूर्व – वैदिक (ऋग्वैदिक) आर्यों के 'ग्राम प्रधान' समाज की सबसे छोटी इकाई 'परिवार' थी।

2.3.1.1 परिवार :

पूर्व – वैदिक कालीन समाज की आधारभूत इकाई 'कुल' (परिवार) थी। परिवार 'पितृसत्तात्मक होता था अर्थात् परिवार का सर्वाधिक आयु का पुरूष 'मुखिया' होता था, जिसे 'कुलप' या 'गृहपति' कहा जाता था। डॉ० डी० एन० झा एवं श्रीमाली का मत है कि, 'पशुचारण की प्रधानता ने 'पितृात्मक' सामाजिक संरचना के निर्माण में सहायता दी। ऋज्राश्व एवं दिवालिए जुआरी के दृष्टांत परिवार पर पुरूष मुखिया के पूर्ण नियंत्रण के प्रतीक है।' अतः पूर्व – वैदिक कालीन परिवार में पिता के अधिकार असीमित थे। पूर्व – वैदिक कालीन समाज में 'संयुक्त परिवार' व्यवस्था थी। परिवार की संपन्नता का मापदण्ड परिवार की 'वृहदता' थी। ऋग्वेद में 'नृप्त' शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है। 'नृप्त' शब्द भतीजे, भाई, पिता, बहन, पुत्र, पुत्री आदि के लिए प्रयोग किया जाता था। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर ईश्वर से पुत्र प्राप्ति की कामना की गयी है। डॉ० आर० एस० शर्मा का मानना है कि, ''निरन्तर युद्ध में लगे पितृतंत्रात्मक समाज में लोग हमेशा वीर

पुत्रों की प्राप्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते थे। ऋग्वेद में बेटी के लिए कामना नहीं है किन्तु, उसके साथ बहुत अच्छा और समानता का व्यवहार किया जाता था।'' परिवार में गृह – पत्नि का विशिष्ट महत्व एवं आदर था। ऋग्वेद में लिखा है कि, पति के साथ समान रूप से यज्ञ में सहयोग करती थी – ''या दम्पति सुमनसा आ च धावतः। देवा सो नित्यया शिरा।'' पूर्व – वैदिक कालीन समाज में गोद लेने की प्रथा थी। पूर्व – वैदिक कालीन ग्रामों की संयुक्त परिवार व्यवस्था में परिवार के सभी सदस्य एक साथ एक ही मकान में रहते थे, उनके मकान मिट्टी, लकड़ी और घास–फूंस के बने होते थे। जैसाकि, मजूमदार, रायचौधरी, दत्त का मानना है कि, ऋग्वैदिक कालीन 'ग्राम प्रधान' समाज में घरों का निर्माण अनुमानतः लकड़ी या नरकट से होता था। प्रत्येक घर में एक बैठक और स्त्रियों के लिए कमरों के अतिरिक्त एक अग्निशाला होती थी।

2.3.1.2 वर्ण – व्यवस्था :

पूर्व – वैदिक कालीन समाज में प्रारंभिक समय में वर्ण व्यवस्था का कोई अस्तित्व नहीं था। प्रारंभिक समय में पूर्व – वैदिक कालीन समाज आर्य और अनार्य दो वर्गों में विभक्त था। किन्तु इनके लिए 'वर्ण' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में नहीं किया गया है। आर्यों द्वारा जीते गए दास और दस्यु के लिए अनार्य शब्द का प्रयोग किया जाता था। ऋग्वेद में आर्य और अनार्यों के मध्य रंग और शारीरिक संरचना के आधार पर विभेद का वर्णन मिलता है। श्वेत वर्ग आर्य और कृष्ण वर्ग अनार्यों का था। ऋग्वेद में ब्रह्म, क्षत्र और विश का अनेक बार उल्लेख मिलता है। 'ब्रह्म' शब्द का प्रयोग पुरोहित वर्ग, शैक्षणिक एवं धार्मिक क्रियाकलापों में लगे लोगों के लिए किया जाता था। 'क्षत्र' शब्द का प्रयोग राजन्य, राजकाज एवं सुरक्षा में लगे लोगों के लिए किया जाता था। 'विश' शब्द का सभी प्रयोग सामान्य लोगों के लिए किया जाता था। एक ही परिवार में ब्रह्म, क्षत्र और विश तीन वर्गों के लोग हो सकते थे या यूं कहै कि, एक ही पिता की संतानें तीन वर्गों ब्रह्म, क्षत्र और विश हो सकती थी। ऋग्वेद के 9 वें मण्डल की 112 वीं ऋचा वर्णित है कि, 'एक व्यक्ति कहता है मैं कवि हूँ, मेरे पिता एक वैद्य थे, मेरी माता आटा पीसती है। हम सभी धन और पशु की कामना करते हैं।' यह उल्लेख मनुष्य के व्यवसाय चुनाव की स्वतंत्रता और एक ही परिवार में विविध वर्गों के होने को प्रदर्शित करता है। पूर्व – वैदिक कालीन समाज में 'शूद्र' शब्द का प्रयोग प्रचलित नहीं था। मूल संहिता (ऋग्वेद) में 'शूद्र' शब्द का प्रयोग नहीं था। संभवतः इसे बाद में जोड़ा गया होगा। बहरहाल, चतुर्थ वर्ग 'शूद्र' ऋग्वेद के अंत में 'दशवे मंडल' के 'पुरूष सूक्त' में दिखायी देता है। जहाँ वर्णित हैं –

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शुद्रोऽजायत्।।

ऋग्वेद में मात्र एक बार 'शूद्र' शब्द का प्रयोग हुआ है। पूर्व – वैदिक कालीन समाज में अन्तर्जातीय विवाह, व्यवसाय परिवर्तन और सहभोज पर कोई नियंत्रण और प्रतिबंध नहीं था। मजूमदार, रायचौधरी, दत्त के मतानुसार, 'व्यवसाय सहभोज आदि संबंधी दृढ प्रतिबंधों की उत्पत्ति आर्यों से नहीं, अपितु यह द्रविड़ों के पूर्व भारत के टोटेम – प्रधान ऑस्ट्रेल्वायड़ जाति के पूर्वजों और ऑस्ट्रो – एशियाई लोगों से है।'

2.3.1.3 विवाह :

पूर्व – वैदिक कालीन समाज में विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता था। विवाह एक आवश्यक संस्कार माना जाता था, क्योंकि लौकिक एवं पारलौकिक शांति के लिए पुत्रों की आवश्यकता समझी जाती थी। ऋग्वैदिक कालीन समाज में विवाह के दो प्रमुख संस्कार 'पाणिग्रहण' एवं 'अग्नि परिक्रमा' थे। ऋग्वेद में

'सपिण्ड', 'सप्रवर' शब्द नहीं मिलते। ऋग्वैदिक कालीन समाज में भाई – बहिन का विवाह निषिद्ध था। जैसाकि, ऋग्वेद में यम – यमी संवाद से स्पष्ट है। पूर्व – वैदिक कालीन समाज में बाल – विवाह प्रचलित नहीं था। लड़कियों इच्छानुसार पति चुनने के लिए स्वतंत्र थी। डॉ० आर० एस० शर्मा का मत है कि, 16 – 17 वर्ष की आयु में विवाह होता था। कतिपय विद्वानों का मानना है कि, पूर्व – वैदिक कालीन समाज में विवाह की आयु 16 – 20 वर्ष के मध्य रही होगी। क्योंकि, यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि, संपूर्ण ऋग्वेद ऐसे अनेक साक्ष्य प्रस्तुत करता है, जिसमें लड़कियों के युवा होने पर विवाह के संकेत है। पूर्व – वैदिक कालीन समाज में 'एकपत्नी प्रथा' आदर्श रूप में प्रतिष्ठित थी। हालाँकि, बहु – विवाह तथा बहु पत्नी प्रथा भी समाज में विद्यमान थी। बहु – विवाह तथा बहु पत्नी प्रथा संभवतः प्रशासनिक और राजकीय वर्गों में प्रचलित रही होगी। समाज में पुनर्विवाह, विधवा विवाह तथा नियोग प्रथा भी प्रचलित थी। पूर्व – वैदिक कालीन समाज में स्त्रियों के अपनी स्वेच्छा से अविवाहित रहने के प्रणाम मिलते है। ऋग्वेद में ऐसी आजीवन अविवाहित रहने वाली स्त्रियों को 'अमाजू' कहा गया है। डॉ० आर० एस० शर्मा का मत है कि, बहुपति – प्रथा के कुछ संकेत मिलते हैं। किन्तु स्पष्टतः बहुपति – प्रथा समाज में प्रतिष्ठित नहीं थी। पूर्व – वैदिक कालीन समाज में दहेज प्रथा के संकेत मिलते है।

2.3.1.4 स्त्रियों की स्थिति :

पूर्व – वैदिक कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी, उसे सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। इस काल में स्त्री अत्यन्त सुशिक्षित, सुसभ्य और सुसंस्कृत थी तथा शिक्षा, ज्ञान, यज्ञ आदि विभिन्न क्षेत्रों में निर्विरोध स्वच्छन्दतापूर्वक सम्मिलित होती तथा सम्मानपूर्वक आदर प्राप्त करती थी। इस काल में बाल – विवाह, पर्दा – प्रथा, सती प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता, वहीं पुनर्विवाह, विधवा – विवाह एवं नियोग प्रथा के स्पष्ट उल्लेख मिलते है। ऋग्वेद (8.31.8 एवं 3.31.1–2) में माता – पिता के अपनी पुत्रियों से स्नेह एवं प्रियता के उल्लेख मिलते हैं। वे उन्हें उच्च शिक्षा देते थे तथा पुत्र के समान ही पुत्रियों का 'उपनयन – संस्कार' करते थे। ऋग्वेद में ऐसी 20 उच्च शिक्षित स्त्रियों का उल्लेख है, जिन्होंने ऋग्वेद की 37 ऋचाओं का सृजन किया था। अपाला, घोषा, विश्वबारा, मुद्रा आदि ऐसी ही उच्च शिक्षित स्त्रियों के उदाहरण है। ऋग्वेद (1.92.4 एवं 10.71.11) में ललितकलाओं से युक्त नृत्य में कुशल एवं सभा में ऋक् – गान करती स्त्रियों का वर्णन है। ऋग्वेद काल में कन्याओं को स्वयं अपने लिए योग्य वर के चुनाव का अधिकार था। ऋग्वेद (10.27.12) में वर्णित है कि ''सुदर्शना'' एवं ''अलंकृता'' होने पर कन्या स्वयं पुरुष को चुन ले। ऋग्वेद (7.2.5 एवं 4.58.8) में ऐसे समारोहों एवं उत्सवों का उल्लेख है, जहाँ कन्याएँ स्वयं अपने लिए पति ढूँढती थी। ऋग्वेद (3.55.16) में शिक्षित स्त्री – पुरुष के विवाह को उपयुक्त बताया गया है। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियाँ शिक्षित थी एवं अपने योग्य एवं मनोनुकूल जीवन साथी को चुन सकती थी। ऋग्वेद (10.85.46) में नववधू को श्वसुर – गृह की साम्राज्ञी कहा गया है। ऋग्वेद (5. 52.61 एवं 8.35.38) में ऐसे भी उल्लेख है जब माता ने वर के अयोग्य होने पर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करने पर आपत्ति की। इससे यह स्पष्ट होता है कि, कन्या के लिए योग्य वर माता–पिता भी चुनते थे। इस काल (ऋग्वेद, 4.42.8 एवं 1.116.13) में स्त्री को विशिष्ट परिस्थिति में पति के जीवन काल में, पति की अनुपस्थिति में तथा पति की रुग्णावस्था में पुत्र प्राप्ति हेतु अन्य पुरुष का वरण करने की स्वतंत्रता प्राप्त थी। साथ ही, विधवा स्त्री पुत्र प्राप्ति के लिये अपने देवर के साथ पत्नी के रुप में रह सकती थी (ऋग्वेद, 10.4.2)। इस प्रकार ऋग्वैदिक कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत सुदृढ़ थी तथा पुरुषों के समान ही उन्हें सभी अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियाँ सभा – समितियों भाग ले सकती थीं। कतिपय विद्वानों का मानना

है कि, पूर्व – वैदिक कालीन समाज में स्त्रियों को संपत्ति में एवं राजनीति में भाग लेने का अधिकार प्राप्त नहीं था।

2.3.1.5 वस्त्राभूषण :

पूर्व – वैदिक कालीन समाज में आर्यों की वेशभूषा साधारण थी। 'ग्राम प्रधान' सामाजिक जन – जीवन में आर्यों की साधारण वेशभूषा होना स्वाभाविक थी। प्राकृतिक परिवेश में रहने के कारण प्रकृति द्वारा प्रदत्त सामग्री से वस्त्र तैयार किये जाते थे। पूर्व – वैदिक कालीन आर्यों के वस्त्र अलसी के सूत (क्षौम), ऊन और मृगचर्म के बने होते थे। पूर्व – वैदिक कालीन लोगों को कपड़ों को काटने, सिलने, बुनने, कपड़ों पर कढ़ाई करने आदि का ज्ञान था। ऋग्वेद में सामूल्य (ऊनी कपड़े), पेशस (कढ़े हुए कपड़े), परिधान, अत्क आदि वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में आर्यों के शरीर पर तीन वस्त्र पहनने का विवरण मिलता है– नीबी (जो नीचे के कमर/कटि भाग में पहना जाता था), वास (नीवी के ऊपर आधुनिक पुरूष धोती के समान), अधिवास (शरीर के ऊपरी भाग पर धारण किया जाता था, इसे अत्क या द्रापि भी कहते थे)।

पूर्व – वैदिक कालीन समाज में स्त्री और पुरूष दोनों समान रूप से आभूषण धारण करते थे। कर्ण – शोभन (कानों में), कुरीर (सिर पर), निष्क (गले में), रूक्मा (छाती पर), भुजबंध, मुद्रिका आदि आभूषण धारण करते थे। स्त्रीयाँ वेणियाँ धारण करती, बालों में कंघी करती तथा पुरूष छुरे से दाढ़ी बनाते थे। दाढ़ी रखने की भी प्रथा थी। ऋग्वेद में स्त्री और पुरूष दोनों के उष्णीय (पगड़ी) पहनने का मिलता हैं।

2.3.1.6 भोजन :

पूर्व – वैदिक कालीन समाज में आर्य मूलतः शाकाहारी थे। किन्तु आर्य समाज में मांसाहार भी बड़ी संख्या में प्रचलित था। मांसाहार को बुरा नहीं माना जाता था। इस प्रकार पूर्व – वैदिक कालीन समाज में शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकार का भोजन किया जाता था। शाकाहारी भोजन में दूध, दही, घी, फल और सब्जियाँ आदि का प्रयोग किया जाता था। प्रकृति के सानिध्य में रहने के कारण निश्चित रूप से प्राकृतिक कंदमूल – फल पूर्व – वैदिक कालीन आर्यों की अधिक पसंद रहे होगे। पूर्व – वैदिक कालीन समाज में आर्य यव, धान्य, उड़द, मूँग, तथा अन्य दालों आदि अन्नों का भोजन में प्रयोग करते थे। ऋग्वेद में 'नमक' का उल्लेख नहीं हैं। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि, आर्य भोजन में 'नमक' का प्रयोग नहीं करते होगे। मांसाहार में पूर्व – वैदिक कालीन आर्य भेड़, बकरी, बैल, जंगली जानवरों आदि का मांस भून कर खाते थे। पूर्व – वैदिक कालीन समाज में आर्य गाय के मांस का सेवन नहीं करते थे। गाय को आर्य अत्यधिक पवित्र मानते थे इसीलिए ऋग्वेद में गाय को 'अघन्या' (न मारने वाली) कहा गया है। पूर्व – वैदिक कालीन समाज में सुरापान भी प्रचलित था, किन्तु ऋग्वेद में सुरापान को एक बुराई के रूप में वर्णित किया गया है। पूर्व – वैदिक कालीन आर्यों का सर्वाधिक प्रिय पेय 'सोमरस' था। ऋग्वैदिक यज्ञों के समय देवताओं को 'सोमरस' की आहूति देने एवं 'सोमरस' ग्रहण करने का प्रचलन था। ऋग्वेद के नवें मण्डल में 'सोमरस' के लिए अनेक सूक्त समर्पित हैं।

2.3.1.7 मनोरंजन के साधन :

पूर्व – वैदिक कालीन समाज में आर्य सुखी – आनंदित जीवन के लिए उन्मुक्त होकर अनेक प्रकार के मनोरंजन के साधनों का उपयोग करते थे। रथदौड़, घुड़दौड़, आखेट, द्यूत, नृत्य, गान एवं संगीत आदि आर्यों के मनोरंजन के साधन थे। पूर्व – वैदिक कालीन आर्य वाद्य – संगीत में वीणा, दुंदुभी, शांख, झांझ, मृदंग आदि का उपयोग किया करते थे। ऋग्वेद में अनेक समारोहों एवं उत्सवों का उल्लेख है। ए० एल०

बाशम का मत है कि, 'लोग संगीत के विशेष प्रेमी थे।' डॉ० एच० सी० रायचौधरी का मत है कि, 'जुआ दूसरा लोकप्रिय खेल था।' कीथ का मत है कि, 'समाज में धार्मिक नाटकों का भी प्रचलन था।'

2.3.1.8 शिक्षा :

पूर्व – वैदिक कालीन समाज में शिक्षा प्राप्ति में किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं था। शिक्षा सभी स्त्री एवं पुरुष समान रूप से प्राप्त कर सकते थे। ऋग्वेद में शिक्षित स्त्री – पुरुष के विवाह को उपयुक्त बताया गया है। अतः पूर्व – वैदिक कालीन समाज में शिक्षा का बहुत महत्व रहा होगा। ऋग्वेद में ललितकलाओं से युक्त नृत्य में कुशल एवं सभा में ऋक् – गान करती स्त्रियों का वर्णन है। ऋग्वैदिक पिता पुत्र के समान ही पुत्रियों को उच्च शिक्षा देते थे। ऋग्वेद में ऐसी 20 उच्च शिक्षित स्त्रियों का उल्लेख है, जिन्होंने ऋग्वेद की 37 ऋचाओं का सृजन किया था। ऋग्वेद में 'उपनयन संस्कार' का उल्लेख नहीं मिलता है। पूर्व – वैदिक कालीन आर्यों का ज्ञान 'श्रुति' पर आधारित था, उन्हें लिखने का ज्ञान नहीं था। डॉ० ए० एस० अल्तेकर के मतानुसार, ''शिक्षा का उद्देश्य धार्मिक एवं साहित्यिक शिक्षा प्रदान करना था।'' गुरूकुलों में धार्मिक एवं साहित्यिक शिक्षा के साथ – साथ अस्त्र – शस्त्रों की युद्ध विद्या भी दी जाती होगी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. पूर्व वैदिक कालीन परिवार का मुखिया होता था ?
   - (क) पुरूष (ख) महिला
   - (ग) पुरूष एवं महिला दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
2. पूर्व वैदिक कालीन लोग रहते थे ?
   - (क) जंगलों में (ख) ग्रामों में
   - (ग) शहरों में (घ) इनमें से कोई नहीं
3. पूर्व वैदिक कालीन लोगों का भोजन था ?
   - (क) शाकाहारी (ख) मांसाहारी
   - (ग) शाकाहारी एवं मांसाहारी (घ) इनमें से कोई नहीं
4. पूर्व – वैदिक कालीन आर्यों का ज्ञान आधारित था ?
   - (क) श्रुति पर (ख) लेखन पर
   - (ग) श्रुति एवं लेखन पर (घ) इनमें से कोई नहीं
5. पूर्व – वैदिक कालीन आर्यों का सर्वाधिक प्रिय पेय था ?
   - (क) दूध (ख) होमरस
   - (ग) सोमरस (घ) इनमें से कोई नहीं

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) शिक्षा ।
   (ख) वस्त्राभूषण ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) स्त्रियों की स्थिति का विवरण दीजिये ?

2.3.2 आर्थिक जीवन :

पूर्व – वैदिक कालीन आर्यों के आर्थिक जीवन की पृष्ठभूमि ग्राम आधारित अर्थव्यवस्था थी। जिसमें कृषि एवं पशुपालन का महत्वपूर्ण योगदान था। पूर्व – वैदिक कालीन आर्यों के जीवन में पशुधन को संपति माना जाता था। लघु उद्योग एवं व्यापार – वाणिज्य की भी पूर्व – वैदिक कालीन आर्यों के आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान थी।

2.3.2.1 कृषि एवं पशुपालन :

पूर्व – वैदिक कालीन आर्यों के आर्थिक जीवन में कृषि एक प्राचीन वृत्ति थी। ऋग्वेद में कृषि कार्य के लिए 'कृष' शब्द का अनेक बार उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में उल्लेखित 'धान्यकृत्' शब्द का प्रयोग संभवतः अन्न उत्पन्न करने वाले के लिए हुआ है। ऋग्वेद में उल्लेखित है कि, सर्वप्रथम अश्विन ने खेती के लिए हल द्वारा भूमि जोतने की शिक्षा दी। ऋग्वेद में हल से खेती के लिए भूमि जोतने के स्पष्ट उल्लेख है। अतः पूर्व – वैदिक काल में हल द्वारा खेती की जाती थी। ऋग्वेद में 6, 8, 12 बैलों द्वारा हल खींचने के विवरण मिलते है। किन्तु, यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि, ऋग्वेद में कृषि योग्य भूमि का मात्र दो बार उल्लेख मिलता है, एक में भूमि को कृषि योग्य बनाकर प्रजा को देने का तथा दूसरे में इन्द्र द्वारा ऐसी भूमि को बांटने का संकेत हैं। ऋग्वेद मे अर, शृंग, शिप्र, फाल, खनितृ आदि कृषि उपकरणों का उल्लेख मिलता हैं। विद्वानों के अनुसार, यव (जौ), गेहूँ, उड़द, मूंग, तिल आदि की फसल होती थी। पूर्व – वैदिक कालीन लोग कृषि कर्म की विभिन्न पद्धतियों जुताई, बुआई, कटाई, मड़ाई, अन्न मापन आदि का प्रयोग करते थे। ऋग्वेद में सिंचाई हेतु अवट (कुएँ), कुल्या (नहर), ल्हद (पोखर या तालाब) आदि का उल्लेख मिलता है। अच्छी फसल एवं वर्षा हेतु ऋग्वेद में देवताओं की स्तुति की गयी है।

किन्तु पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि, ऋग्वेद के चौथे मंडल में ही कृषि कार्यों का वर्णन है, अन्य में नहीं। ई० डब्ल्यू होपकिंग्स ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल के 57 वे सूक्त को क्षेपक मानते हैं, जिसमें कृषि कार्यों का वर्णन हैं। डॉ० डी० एन० झा एवं श्रीमाली का मत है कि, ऋग्वेद के केवल 24 श्लोकों में ही कृषि का उल्लेख है। संहिता के मूल भाग में तो कृषि के महत्व के केवल तीन शब्द ऊर्दर, धान्य, वपन्ति प्राप्त होते है। कृष्टि शब्द का उल्लेख 33 बार हुआ है, किन्तु लोगों के अर्थ में जैसें ''पंचकृष्टयः। ऋग्वेद में एक ही अनाज 'यव' का कुल 15 बार उल्लेख हुआ है, जिसका केवल तीन बार ही मूल पाठ में उल्लेख मिलता है। अतः पूर्व – वैदिक कालीन आर्यों का प्रमुख व्यवसाय पशुपालन था, न की कृषि। डॉ० आर० एस० शर्मा का भी मत है कि, 'पूर्व – वैदिक कालीन समाज कबीलों में बंटा था और आर्यों का मुख्य व्यवसाय पशुचारण वृत्ति थी।' ए० एल० बाशम भी पशुपालन को आर्यों का प्रमुख व्यवसाय मानते हैं। वस्तुतः पशुपालन ही आर्यों का प्रमुख व्यवसाय था। गाय – बैंल, भैंस, भेड़ – बकरी, घोड़ा, हाथी, ऊँट, कुत्ता, सुअर, गधा, बैंल, आदि पशुपालन किया जाता था। पूर्व – वैदिक कालीन समाज में गाय को सर्वाधिक पवित्र एवं दैवीय माना जाता था। ऋग्वेद में गाय को सबसे उत्तम धन माना गया है। ऋग्वेद में गाय को 'अघन्या' (न मारने वाली) कहा गया है। पूर्व – वैदिक काल में गाय संपत्ति, क्रय–विक्रय, दान–दक्षिणा एवं मुद्रा के रूप में प्रयुक्त होती थी। ऋग्वेद में युद्ध का पर्याय 'गविष्टि' (गाय का अन्वेषण) माना गया है। अतः पूर्व – वैदिक कालीन आर्य पशुपालन द्वारा पशुधन एवं उससे संबंधित आर्थिक लाभ का उपभोग करते थे।

2.3.2.2 व्यवसाय :

पूर्व – वैदिक कालीन आर्यों आर्थिक जीवन में अनेक व्यवसाय उन्नत स्थिति में थे। ऋग्वेद में 'वासोवाय' (वस्त्र बुनने वाले) 'कमरि' (धातुकर्म), हिरण्यकार (स्वर्णकार), कुलाल (कुम्हार), तक्षा या तक्षन् (बढ़ई), चर्मम्न

(चर्मकार या चमड़े का कार्य करने वाले), भिषक (वैद्य), वाप्तृ (नाई) आदि व्यवसायों का उल्लेख मिलता हैं। पूर्व – वैदिक काल में वस्त्र व्यवसाय उन्नत स्थिति में था। लोगों को कपड़ों को काटने, सिलने, बुनने, कपड़ों पर कढ़ाई करने आदि का ज्ञान था। पूर्व – वैदिक काल में स्वर्णकारों का व्यवसाय भी उन्नत अवस्था में था। कर्ण – शोभन (कानों में), कुरीर (सिर पर), निष्क (गले में), रूक्मा (छाती पर), भुजबंध, मुद्रिका आदि स्वर्णाभूषण बनाये जाते थे। पूर्व – वैदिक काल में धातुकर्म का व्यवसाय भी उन्नत अवस्था में था। इस काल में लोगों ने धातु गलाकर उसका शोधन करके विविध उपयोगी वस्तुओं का रूप देने एवं विविध प्रकार के अस्त्र – शस्त्रों का निर्माण करने में महारत् हासिल कर ली थी। लगभग समस्त विद्वान इस बात पर एक मत है कि, पूर्व – वैदिक काल में किसी भी व्यवसाय को हीन नहीं माना जाता था। डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय का मत है कि, ऋग्वेद में 'गण' और 'व्रात' का उल्लेख सम्भवतः व्यावसायिक संघो के रूप में हुआ है।

2.3.2.3 व्यापार – वाणिज्य :

पूर्व – वैदिक कालीन आर्थिक जीवन में व्यापार – वाणिज्य का भी योगदान था। ऋग्वेद में आंतरिक एवं वैदेशिक व्यापार का उल्लेख मिलते हैं। व्यापार करने वाले को 'पणि' कहा जाता था। व्यापार में 'वस्तु – विनिमय' ;ठंतजमत ेलेजमउद्ध की प्रणाली प्रचलित थी। विद्वानों ने ऋग्वेद में वर्णित निष्क, स्वर्ण, शतमान, हिरण्यपिंड आदि के उल्लेख को मुद्रा के प्रचलन का प्रमाण माना है। डॉ० डी० आर० भण्डारकर का मत है कि, निष्क, स्वर्ण, शतमान, हिरण्यपिंड मुद्रा या सिक्कें थे। मैकडॉनल और कीथ मतानुसार भी 'निष्क' एक मुद्रा थी। बार्कर के अनुसार, 'निष्क' पहले आभूषण के रूप में तथा बाद में 'मुद्रा' के रूप में प्रयुक्त हुआ। ऋग्वेद में सामुद्रिक यात्रा के साक्ष्य विद्यमान है, ऋग्वेद (1.116., 3 – 5) में उल्लेख है कि, जब तुग्र के पुत्र भुज्यु का समुद्र में जलयान क्षतिग्रस्त हो गया था, तब उसकी प्रार्थना पर अश्विन् ने रक्षा हेतु सौ पतवारों वाली एक नाव भेजी थी। मैकडॉनल एवं कीथ का मानना है कि, ''यह सामुद्रिक यात्रा की ओर संकेत करता है।'' ऋग्वेद में दानों की सूची में एक सुवर्ण 'मना' का उल्लेख है। कतिपय विद्वान प्राचीन बेबीलोन की तौल की इकाई 'मनः' से इसका साम्य करते है। प्रसिद्ध इतिहासविद् मजूमदार, रायचौधरी, दत्त के मतानुसार, यदि ऋग्वैदिक 'मना' की एकरूपता बेबीलोन के 'मनः' से ठीक है, तो समुद्रों से दूर देशों और वैदिक भारत के बीच के पूर्व कालिक आवागमन के निश्चित प्रमाण है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

   (क) पशुपालन ।

   (ख) व्यवसाय ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

   (अ) पूर्व – वैदिक कालीन कृषि व्यवस्था का आलोचनात्मक विवरण दीजिये ?

2.3.4 धार्मिक – अवस्था :

पूर्व – वैदिक कालीन आर्य प्रकृति के सानिध्य में रहते थे। प्रकृति में होने वाली शक्तिशाली घटनाओं ने आर्यों में भय और श्रद्धा पैंदा की। और इसी भय और श्रद्धा ने आर्यों में धार्मिक भावनाओं का सृजन किया। आर्यों ने प्रकृति के निर्देशक एवं नियंताओं को अपनी कल्पनाओं में साकार रूप देकर उनका मानवीकरण कर दिया। इस प्रकार पूर्व – वैदिक कालीन धर्म का जन्म प्रकृति का मानवीकरण करके हुआ था। देवताओं

का विकास प्रकृति के धरातल पर बाह्म और अन्तस दो स्वरूपों में हुआ। देवताओं के विस्तार में 'अदिति' नामक देवी का प्रमुख योग रहा हैं। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि, उस समय तैतीस देवताओं का अस्तित्व था, जिन्हें तीन वर्गों में बांटा गया था –

(अ) आकाशवासी :– द्यौस, सूर्य, वरूण, सविता, अश्विन, अदिति, पूषन, विष्णु, ऊषा, आप आदि।

(ब) अन्तरिक्षवासी :– इन्द्र, रूद्र, पर्जन्य, वायु, वात, मरूत।

(स) पृथ्वीवासी :– अग्नि, पृथ्वी, बृहस्पति, सोम, सरस्वती आदि।

डॉ० जयशंकर मिश्र के मतानुसार, ''देवताओं के इस वर्गीकरण में मूर्त्त प्रकृति और अमूर्त अन्तस दो स्वरूपों का भी योगदान रहा है।'' ऋग्वैदिक आर्य प्रकृति के उपासक थे, इसी कारण इतिहासविद् इस काल में मूर्तिपूजा को विद्यमान नहीं मानते है। इतिहासविद् वेंकटेश्वर और वॉलेसेन ऋग्वैदिक आर्यों को मूर्तिपूजक मानते हैं जबकि, मैक्सम्यूलर, एच० एच० विल्सन एवं जितेन्द्रनाथ बनर्जी ऋग्वैदिक आर्यो को मूर्तिपूजक नहीं मानते हैं। पूर्व – वैदिक कालीन देवमण्डल में इन्द्र सर्वाधिक शक्तिशाली देवता था। ऋग्वेद में इन्द्र को 250 सूक्त समर्पित है। ऋग्वेद में इन्द्र को पुरामभेत्ता, पुरंदर एवं युद्धों का नेतृत्वकर्त्ता कहा गया है। अग्नि आर्यों का दूसरा सर्वाधिक शक्तिशाली देवता था। ऋग्वेद में अग्नि को 200 सूक्त समर्पित है। याज्ञिक आहूतियाँ अग्नि के माध्यम से अन्य देवताओं तक पहुँचती थीं।

पूर्व – वैदिक कालीन देवताओं की उपासना की मुख्य रीति थी, स्तुतिपाठ और यज्ञबलि अर्पित करना। ऋग्वैदिक काल में स्तुतिपाठ पर अधिक जोर दिया जाता था। स्तुतिपाठ सामूहिक और अलग – अलग भी किया जाता था। बलि या यज्ञाहुति में शाक, जौ, घी, दूध, धान्य या मांस आदि वस्तुएँ दी जाती थी। पूर्व – वैदिक कालीन आर्य अपने देवताओं से संतति, पशु, अन्न, धान्य, आरोग्य आदि पाने की कामना करते थे।' यज्ञ अत्यन्त खर्चीले होते थे। इसी कारण चोपड़ा, पुरी, दास ने 'ऋग्वैदिक धर्म को अभिजातवर्गीय' कहा हैं, जिसमें जनसाधारण की विशेष रूचि न थी। ऋग्वेद में पाप – पुण्य तथा स्वर्ग – नर्क की कल्पना मिलती है। पुण्य कर्मा मृत्यु पश्चात् सानंद स्वर्ग में तथा पाक कर्मा नरक में जाता है। नरक एक अंधकूप की भाँति है। ऋग्वेद में आत्मा और अमरता का उल्लेख मिलता है किन्तु मोक्ष का नहीं। ऋग्वेद (5.85.7) में एक उपासक किसी के प्रति पाप से मुक्ति हेतु अपने आराध्य देव से प्रार्थना करता है। ऋग्वेद (1.2.6., 8.6.5) में दूसरे स्थान पर ऋषियों ने निर्धन, भूखे, असहाय मनुष्यों के प्रति उदार और दानशील होने की सम्मति दी है। अतः पूर्व – वैदिक कालीन धर्म दैवतमय होने के साथ – साथ नैतिक भी था।

पूर्व – वैदिक कालीन आर्य देवताओं को मित्रवत् समझते थे, अतः जो शक्ति को उन्हें प्रभावित करती, उसे देवता मान लेते और उसे सर्वशक्तिमान मानकर उसे जगत का सृष्टि, नियंता और उससे अन्य देवताओं की उत्पत्ति मानते थे इसे सर्वदेववाद या सर्वेश्ववादी कहते है। तत्पश्चात् आर्यों ने सर्वशक्तिमान सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड में एक परम् सत्ता की कल्पना की और ऋग्वेद में ''एक सत् विप्रा बहुधा वंदति।'' परम तत्व में रूप में हिरणयगर्भ, प्रजापति और कभी विश्वकर्मा की कल्पना की। एकेश्वर की यह पराकाष्ठा थी। आर्यों ने एकात्मवाद की भी कल्पना की थी जैसाकि, ''ऋग्वेद में सत् एक ही है।'' एवं ऋग्वेद (10.88.15, 10.101.2) मोह जनित भेदों को छिन्न कर उस परम सत् का साक्षात्कार कर लेना मनुष्य का परम लक्ष्य था। डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय के मतानुसार, ऋग्वेद से आर्यों के बौद्धिक विकास की तीन स्थितियों का ज्ञान होता है 1. बहुदेववाद 2. एकेश्वरवार 3. एकात्मवाद।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) उपासना की रीति ।

   (ख) यज्ञाहुति ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

   (अ) पूर्व – वैदिक कालीन देवताओं के विकास का विवरण दीजिये ?

2.3.5 राजनीतिक स्थिति :

पूर्व – वैदिक कालीन राजनीतिक संगठन का स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद में मिलता हैं। पूर्व – वैदिक कालीन समाज में राजनीतिक संगठन का मुख्य आधार 'कुटुम्ब' था, जिसका नेता 'कुलप' कहलाता था। कई कुलों से मिलकर 'ग्राम' बनता था, जिसका मुखिया 'ग्रामीण' कहलाता था। कई 'ग्रामों' से मिलकर 'विश' बनता था, जिसका अधिकारी 'विशपति' होता था। कई 'विशो' से एक 'जन' बनता था, जन का प्रमुख 'गोप्ता' (रक्षक) कहा जाता था। डॉ० आर० एस० शर्मा के मतानुसार, एक पुरानी ऋचा में दो जनों की संयुक्त युद्ध – क्षमता 21 बताई गई है। अतः किसी जन में सदस्यों की संख्या कुल मिलाकर 100 से अधिक नहीं रहती होगी।'' कई जन मिलकर 'राष्ट्र' (देश) बनाते थे, जिसका प्रमुख 'राजा' होता था।

2.3.5.1 प्रशासनिक व्यवस्था :

पूर्व – वैदिक कालीन शासन व्यवस्था प्रमुखतया राजतंत्रात्मक थी, जिसका अध्यक्ष राजा होता था। ऋग्वेद में 'गणों' का भी उल्लेख है। ऋग्वेद में राजनीतिक संगठन का क्रमिक स्तरण कुटुम्ब, ग्राम, विश, जन एवं राष्ट्र जैसी राजनैतिक इकाईयों का उल्लेख है। ऋग्वेद में 'पंचजन' यदु, अणु, पुरू, द्रह्यु, तुर्वस तथा भरत, क्रिवि, त्रिसु, आदि जनों का उल्लेख है। 'कुटुम्ब' पूर्व – वैदिक कालीन राजनीतिक संगठन की सबसे छोटी तथा राष्ट्र सबसे बड़ी राजनैतिक इकाई थी। इन सबका सर्वोच्च प्रशासनिक प्रमुख राजा होता था। पूर्व – वैदिक कालीन राजतंत्रात्मक व्यवस्था को सलाह, सहयोग देने के साथ ही, उस पर नियंत्रण का कार्य सभा – समिति, विदथ जैसी संस्थाएँ करती थीं।

2.3.5.1.1 राजा (राजन्) :

राजा, राष्ट्र (राज्य) का सर्वोच्च प्रशासनिक प्रमुख होने के कारण प्रधान न्यायाधीश, सैना का सर्वोच्च अधिकारी एवं समस्त प्रशासनिक एवं वैधानिक क्रियाकलापों केन्द्र बिन्दु होता था। ऋग्वेद में राजा को 'गोप जनस्य' (प्रजा का रक्षक) और 'पुरामभेत्ता' (नगरों पर विजय पाने वाला) कहा गया है। राजा भव्य राजप्रासाद में निवास करता था। प्रारंभ में राजा आम जनता के बीच में चुना जाता था। बाद में राजपद पैतृक हो गया था, हाँलाकि बाद में भी जनता द्वारा निर्वाचित राजा के उल्लेख मिलते है। डॉ० ए० एस० अल्तेकर के मतानुसार, ''निर्वाचन यदा – कदा होता था, साधारणतः सबसे प्रतिष्ठित कुल के सबसे वायोवृद्ध व्यक्ति को नेता मानकर राजा बना दिया जाता था।'' आवश्यकता पड़ने पर जनता राजा को पदच्युत अथवा निर्वासित भी कर सकती थी। राजा निरंकुश नहीं होता था। सभा और समिति उस पर नियंत्रण रखती थी। राज्याभिषेक के पूर्व राजा 'रत्नी' (पुरोहित, सेनानी, ग्रामीण) की पूजा करता था। यू० एन० घोषाल के मतानुसार, ''प्रजा राजा की आज्ञा का पालन करती थी और कर स्वरूप 'बलि' नामक 'कर' देती थी, क्योंकि ऋग्वेद में राजा को 'बलिहृत्' कहा गया है।''राजा गुप्तचरों के द्वारा जनता के आचरण पर निगाह रखता

था। राजा के व्यक्तिगत कर्मचारियों को 'उपस्ति' और 'इभ्य' कहते थे। पुरोहित, सेनानी तथा ग्रामणी आदि राजा के मुख्य पदाधिकारी थे।

2.3.5.1.2 पुरोहित :

पुरोहित राजा को धार्मिक, न्यायिक, प्रशासनिक, राजनीतिक विषयों पर सलाह देने वाला एक शिक्षक, पथ – प्रदर्शक दार्शनिक तथा मित्र रूप में राजा का प्रमुख साथी होता था। डॉ० कीथ के मतानुसार, ''वैदिक पुरोहित, ब्राह्मण राजनीतिज्ञों का अग्रगामी था।''

2.3.5.1.3 सेनापति या सेनानी :

पूर्व – वैदिक कालीन राज्य की सैना का प्रमुख सेनापति या सेनानी कहलाता था। वह युद्ध के समय सैना का संचालन करता था। ऋग्वेद में शर्ध, व्रात, गण आदि सैनिक ईकाईयों का उल्लेख मिलता है।

2.3.5.1.4 ग्रामणी :

पूर्व – वैदिक कालीन राज्य में ग्राम का प्रमुख ग्रामणी कहलाता था। ग्रामणी, ग्राम के राजस्व, न्याय, सुरक्षा एवं शांति एवं व्यवस्था का उत्तरदायी होता था। वस्तुतः ग्रामणी घरेलू और सैनिक दोनों कार्यों के लिए ग्राम का प्रधान होता था।

2.3.5.1.5 सभा और समिति :

पूर्व – वैदिक कालीन राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में राजा को सलाह देने और उस पर नियंत्रण के सभा – समिति और विदथ (विधाता) का उल्लेख मिलता है। किन्तु इनके कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के बारे में पर्याप्त मतभेद हैं। अधिकांश विद्वानों का मत है कि, सभा उच्च सदन के रूप में कार्य करती थी। सभा श्रेष्ठ जनों की संस्था थी, जिसमें उच्च पदाधिकारी तथा गणमान्य व्यक्ति ही भाग लेते थे। डॉ० एच० सी० रायचौधरी के मतानुसार, ''ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में सभा का संबंध ऐश्वर्यशाली और सुन्दर व्यक्तियों से स्थापित किया जाता है, जिससे अनुमान होता है कि, मुख्यतः सभा श्रेष्ठ जनों की संस्था थी न कि समूचे जन की परिषद्।'' राजा सभा अध्यक्ष होता था। सभा सार्वजनिक बातों का फैसला करती थी। डॉ० के० पी० जायसवाल के अनुसार, सभा राष्ट्रीय न्यायालय के रूप में भी कार्य करती थी, इसे 'आपत्ति' और 'आवेश' भी कहा गया है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में एक ऐसे व्यक्ति का उल्लेख है, जिस सभा ने दोष रहित किया था। समिति सारी प्रजा की संस्था थी, जिसमें राजा और प्रजा समान रूप से उपस्थित होते थे। इसका प्रमुख कार्य राजा का चुनाव करना था। राज्य की समृद्धि हेतु राजा और समिति का एकमत होना आवश्यक था। ऋग्वेद में राजा एक स्थान पर समिति के सदस्यों से कहता है कि ''मैं तुम्हारा विचार और सम्मति स्वीकार करता हूँ।'' समिति की सभा की अपेक्षा अधिक सार्वजनिक तथा राजनीतिक संस्था थी। सभा एवं समिति को व्यापक अधिकार थे और ये राजा की शक्ति और निरंकुशता पर नियंत्रण रखती थी। ए० एल० बाशम का भी मानना है कि, ''ये राजा की स्वेच्छाचारिता पर नियंत्रण रखती थीं।''

2.3.5.1.6 विदथ (विधाता) :

विदथ (विधाता) कर्त्तव्यों, अधिकारों एवं कार्य प्रणाली के बारे में बहुत अधिक मतभेद हैं। डॉ० के० पी० जायसवाल का मानना है कि, धार्मिक जीवन का प्रबंध विधाता करती थी। प्रतीत होता है कि, विधाता जन्मदात्री संस्था थी, जिससे सभा, समिति और सेना की उत्पत्ति हुई। विधाता नागरिक सैनिक और धार्मिक

कार्यों से संबंधित थी। ऋग्वेद में अग्नि को विधाता या केतु या झण्डा कहा गया है। जिम्मर्न का मानना है कि, विधाता समिति की ही एक छोटी संस्था थी। डॉ० के० पी० जायसवाल का मत मान्य नहीं है।

2.3.5.1.7 न्याय – व्यवस्था :

पूर्व – वैदिक कालीन ऋग्वेद से तत्कालीन न्याय – व्यवस्था के बारे में अत्यल्प जानकारी मिलती है। ऋग्वेद में कानून के लिए 'धर्मन्' शब्द प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में किसी तरह के न्यायाधिकारी का उल्लेख नहीं है। वस्तुतः राजा ही सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। चोरी, डकैती, धोखेबाजी, जानवरों को चुराना, सेंधमारी तथा सामाजिक परंपराओं का उल्लंघन भी अपराध माना जाता था। ऐसी समाज विरोधी हरकतों को रोकने के लिए गुप्तचर रखे जाते थे। न्याय की 'दिव्य – प्रणाली' अत्यधिक प्रचलित थी, जिसमें गरम कुल्हाड़ी अग्नि तथा जल का प्रयोग किया जाता था। ऋग्वेद में झगड़ों के निर्णायक को 'मध्यमशी' (बीच – बचाब करने वाला) कहा जाता था। ऋण ने देने वाले को दण्ड स्वरूप दासता स्वीकारना पड़ती थी। सम्भवतः मृत्युदण्ड का प्रावधान था। सम्भवतः 'उग्र' और 'जीवग्रभ' शब्द पुलिश कर्मचारियों को ओर इंकित करते हैं। ए० एल० बाशम का मानना है कि, 'आंग्ल – सैक्सन तथा कुछ अन्य हिन्द – यूरोपीय लोगों की भांति ऋग्वैदिक काल में हत्या का दण्ड आर्थिक जुर्माने की प्रणाली द्वारा दिया जाता था।'

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

   (क) प्रशासनिक व्यवस्था ।

   (ख) विदथ ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

   (अ) पूर्व – वैदिक कालीन सभा और समिति का विवरण दीजिये ?

2.4 उत्तर वैदिक कालीन संस्कृति :

उत्तर वैदिक काल से तात्पर्य उस काल से है, जिसमें यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रंथों, अरण्यकों, उपनिषदों एवं महाकाव्यों की रचना हुई थी। उत्तर वैदिक काल की तिथि 1000 – 600 ई० पू० मानी जाती है। उत्तर वैदिक काल में आर्य सामाजिक जन जीवन, संस्कृति एवं राजनैतिक पटल पर भारी परिवर्तन आया। पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा उत्तर वैदिक काल में प्रत्येक क्षेत्र में भारी परिवर्तन और प्रगति आयी। वस्तुतः उत्तर वैदिक काल आर्यों के लिए प्रगति और विस्तार का काल था। उत्तर वैदिक काल में आर्य संस्कृति का विस्तार हिमालय से विंध्याचल तक हो गया था। डॉ० डी० एन० झा एवं श्रीमाली का मत है कि, ''इस काल में आविर्भूत ढाँचे की प्रमुख विशेषताएँ थी : कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था, कवायली संरचना में दरार का पड़ना और वर्ण व्यवस्था का जन्म तथा क्षेत्रगत साम्राज्यों का उदय।'' डी० डी० कौशाम्बी एवं डॉ० आर० एस० शर्मा का मत है कि, ''इस काल में लौह तकनीक ने क्रांतिकारी योगदान दिया।''

2.4.1 सामाजिक व्यवस्था :

उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों से तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था े;वबपंस वतहंदप्रंजपवदद्ध पर व्यापक प्रकाश पड़ता हैं। पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा उत्तर वैदिक काल में आर्य सामाजिक पटल पर भारी परिवर्तन आया। वर्ण – व्यवस्था ने ठोस आकार ले लिया था। आश्रम व्यवस्था की स्थापना तथा शिक्षा की प्रगति एवं स्त्रियों की स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन आया। उत्तर वैदिक काल में लोग ग्राम एवं नगरों दोनों में रहने लगे थे।

2.4.1.1 वर्ण – व्यवस्था :

उत्तर वैदिक काल के सामाजिक जीवन में 'वर्ण व्यवस्था' का जन्म हुआ। पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा उत्तर वैदिक काल में वर्ण में जबरदस्त परिवर्तन आया। अब यह समाज में पूर्णतः स्थापित हो चुकी थी। उत्तर वैदिक काल में वर्ण, जन्म पर आधारित होकर पैतृक हो गया था। इस काल में चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) के कर्त्तव्यों एवं अधिकारों को स्पष्टतः परिभाषित कर दिया गया था। ऐतरेय ब्राह्मण में चारों वर्णों के कर्त्तव्यों का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में चारों वर्णों के लिए अंतिम संस्कार हेतु पृथक–पृथक स्थानों का उल्लेख मिलता है। उत्तर वैदिक काल में 'वर्ण' कठोर होकर 'जाति' का रूप ले चुका था। किन्तु फिर भी इस काल में जाति परिवर्तन समाज में मान्य था तथा विभिन्न जातियों में परस्पर विवाह भी हो जाते थे। डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी का मानना है कि, ''वर्ण – व्यवस्था में इस काल में न तो पूर्व वैदिक युग के समान स्वतंत्रता थी और न सूत्रकाल की तरह के बंधन युक्त थी, यह दोनों के बीच की स्थिति थी।'' ब्राह्मण वर्ण, पुरोहित वर्ग, शैक्षणिक अध्ययन–अध्यापन एवं धार्मिक क्रियाकलापों का कार्य करता था। क्षत्रिय वर्ण का कार्य राजकाज करना एवं प्रजा को सुरक्षा देना था। वैश्य वर्ण, कृषि एवं पशुपालन, विभिन्न व्यवसायों, व्यापार – वाणिज्य का कार्य करता था। शूद्र वर्ण का कार्य समाज के सभी की सेवा करना था। शूद्र वर्ण विभिन्न शिल्प कार्यों में भी संलग्न था। उत्तर वैदिक कालीन समाज में भी अन्तर्जातीय विवाह, व्यवसाय परिवर्तन और सहभोज पर कोई नियंत्रण और प्रतिबंध नहीं था। उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों शतपथ ब्राह्मण, बृहदारण्यकोपनिषद्, छान्दोग्य उपनिषद् आदि में शूद्र एवं चाण्डाल को भी यज्ञ की अनुमति दी गयी है। अतः सामाजिक एवं धार्मिक दोनों ही पृष्ठभूमि पर चारों वर्णों में समानता विद्‌यमान थी।

2.4.1.2 आश्रम व्यवस्था :

उत्तर वैदिक कालीन समाज में एक आधारभूत सामाजिक परिवर्तन 'आश्रम व्यवस्था' के अस्तित्व के रूप में आया। भारतीय संस्कृति की आश्रम व्यवस्था विश्व के सामाजिक इतिहास एवं संस्कृति के लिए अद्‌भुत एवं अभूतपूर्व देन है। भारतीय मनीषियों ने अपने भौतिक चिंतन से आश्रम व्यवस्था के रूप में एक ऐसी व्यवस्था का सृजन किया। जिसमें व्यक्ति के जीवन का वैज्ञानिक विभाजन करके जीवन के प्रत्येक भाग का समुचित एवं सुनियोजित उपयोग का मूलमंत्र निहित था। भारतीय मनीषियों की इस चिंतनशील व्यवस्था का अंतिम उद्‌देश्य व्यक्ति का आध्यात्मिक उत्थान करना था। भारतीय मनीषियों ने बड़ी समझबूझ और योग्यता से व्यक्ति के जीवन का प्रबंधन किया तथा 100 वर्षों का जीवन काल मानकर 25 – 25 वर्षों के चार भागों (आश्रमों) में विभाजित था और इस विभाजन की पृष्ठभूमि में प्रत्येक भाग की विशिष्ट उपयोगिता एवं विशेषता थी, जिसका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभ समाज को मिलना था। 'जाबालोपनिषद' में सर्वप्रथम चारों आश्रमों का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मचर्य – छात्रावस्था से 25 वर्ष तक, गृहस्थ आश्रम 25 से 50 वर्ष की आयु का तक, वानप्रस्य आश्रम 50 से 75 वर्ष तक, संन्यास 75 से 100 वर्ष तक का होता था। डॉ० जयशंकर मिश्र ने ठीक ही लिखा है कि ''आश्रम व्यवस्था का दर्शन प्राचीन व्यवस्थाकारों के अद्वितीय ज्ञान

और प्रज्ञा का प्रतीक है, जिसमें ज्ञान और विज्ञान लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। उन्होंने जीवन की वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए ज्ञान, कर्त्तव्य, त्याग और अध्यात्म के आधार पर मानव जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास नामक चार आश्रमों में विभाजित किया है, जिसका अन्तिम लक्ष्य था मोक्ष की प्राप्ति।'' डॉ० के० एम० कपाडिया का मानना है कि, ''पुरूषार्थ के सिद्धान्त की वास्तविक अभिव्यक्ति आश्रमों की हिन्दू योजना में निहित हैं।''

2.4.1.3 परिवार :

उत्तर वैदिक कालीन समाज में परिवार 'पितृ प्रधान' एवं 'संयुक्त परिवार' की प्रथा थी। उत्तर वैदिक कालीन समाज में पिता के अधिकारों में वृद्धि हुई। वह अपने पुत्रों की उत्तराधिकार से वंचित रह सकता था, ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णिक है कि, अजीगर्त ने अपने पुत्र शुनःशेप को 100 गायों पर बेच दिया था तथा विश्वामित्र ने आज्ञा उल्लंघन पर अपने 50 पुत्रों को घर से निकाल दिया था। किन्तु ऐसा नहीं था कि, पिता–पुत्र के मध्य सदैव खराब रहते थे। पुत्र, पिता की संपत्ति का स्वाभाविक उत्तराधिकारी होता था। संयुक्त परिवार में सभी स्त्री–पुरूष सान्नदित, समानता एवं सुमति के साथ रहते थे। उत्तर वैदिक ग्रंथों में परिवार की 'शांति एवं सुमति' के लिए ईश्वर से प्रार्थनाएँ की गयीं है। उत्तर वैदिक कालीन समाज मूलतः 'ग्राम प्रधान' था। लोग कच्ची इंटों के घरों में या खम्भों पर टिके नरकुल और मिट्टी के घरों में रहते थे। यह छत घास – फूस और खर इत्यादि से पाटी जाती थी। फिर भी कतिपय उदाहरण नगरीय जीवन की ओर आर्य जीवन संस्कृति के बढ़ने के संकेत देते है, जैमिनीय उपनिषद में 'ब्राह्मण महाग्रामों' एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'नगरिन' शब्द का प्रयोग हुआ है।

2.4.1.4 विवाह :

उत्तर वैदिक कालीन समाज में विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता था। उत्तर वैदिक काल में पुरूष के लिए यज्ञ, स्वर्ग, पूर्णता तथा पुत्र प्राप्ति की कामना हेतु विवाह अत्यावश्यक था। उत्तर वैदिक ग्रंथों में विवाह के आठ प्रकारों का उल्लेख मिलता है – ब्राह्म विवाह, दैव विवाह, आर्ष विवाह, प्राजापत्य विवाह, असुर विवाह, गांधर्व विवाह, राक्षस विवाह, पैशाच विवाह। उत्तर वैदिक ग्रंथों में प्रथम चार प्रकार ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य को धर्मानुसार श्रेष्ठ एवं असुर, गांधर्व, राक्षस, पैशाच को अधार्मिक एवं निकृष्ट श्रेणी का माना गया हैं। रूत्री–पुरूष का विवाह युवा होने पर ही होता था। किन्तु डॉ० एच० सी० रायचौधरी का मानना है कि, बाल – विवाह के उदाहरण भी मिलते हैं। उत्तर वैदिक कालीन समाज में भी 'एकपत्नी प्रथा' आदर्श रूप में प्रतिष्ठित थी। हालाँकि, बहु – विवाह तथा बहु पत्नी प्रथा भी समाज में विद्यमान थी। बहु – विवाह तथा बहुपत्नी प्रथा संभवतः प्रशासनिक और राजकीय वर्गों में प्रचलित थी। समाज में पुनर्विवाह, विधवा विवाह तथा नियोग प्रथा भी प्रचलित थी। अनुलोम–प्रतिलोम, सजातीय एवं अन्तर्जातीय विवाहों के उल्लेख मिलते हैं। डॉ० आर० एस० शर्मा का मत है कि, इस काल में गोत्र बहिर्विवाह की प्रथा चल पड़ी। किन्तु डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय का मत है कि, सपिण्ड सगोत्र एवं सप्रवर विवाहों का स्पष्ट निषेध सूत्र काल में ही मिलता हैं।

2.4.1.5 स्त्रियों की स्थिति :

उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों से विदित होता है कि, उत्तर वैदिक काल में स्त्री की स्थिति अच्छी थी। उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों अथर्ववेद (1.2.3), शतपथ ब्राह्मण (1.19.2.14), तैत्तिरीय ब्राह्मण (3.75) आदि में वर्णित है कि, स्त्री अपने पति के साथ याज्ञिक कार्य में अनिवार्य थी अर्थात् पत्नि के बिना कोई याज्ञिक और धार्मिक

कार्य पूर्ण नहीं हो सकता था तथा स्त्री – पुरुष दोनों को यज्ञ रुपी रथ के जुड़े हुए दो बैल की संज्ञा दी गई थी। उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों अथर्ववेद (2.36.1, 11.1.17), शतपथ ब्राह्मण (5.1.6.10, 5.2.1.10) एवं ऐतरेय आरण्यक (1.2.5) में वर्णित है कि, स्त्री के बिना पुरुष अपूर्ण है, स्त्री के बिना पुरुष यज्ञ का अधिकारी नहीं है, और न ही स्वर्ग जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि, उत्तर वैदिक काल में सामाजिक – धार्मिक कृत्यों में स्त्री का अत्यधिक महत्व था। इस काल में स्त्री की चर्तुमुखी शिक्षा – दीक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। अथर्ववेद (11.5.18) में वर्णित है कि, शिक्षित स्त्री – पुरुष का विवाह उत्तम एवं श्रेष्ठ होता है। अतः इस युग में शिक्षित स्त्री – पुरुष का विवाह अच्छा माना जाता था। तैत्तिरीय संहिता (6.1.6.5) एवं मैत्रायणी संहिता (3.7.3) में स्त्रियों की संगीत – नृत्य में रुचि का वर्णन मिलता है। शतपथ ब्राह्मण (14, 3.1. 35) सामगान को स्त्रियों का विशेष कार्य बताया हैं। इससे स्पष्ट है कि, स्त्रियाँ संगीत, नृत्य, गायन में प्रवीण होने के साथ – साथ मंत्रों की भी अच्छी ज्ञाता थी। बृहदारण्यक उपनिषद् (3.6.8, 2.4.3, 4.5.4) में वर्णित है कि, जनक की सभा में गार्ग्री – याज्ञवल्क्य संवाद एवं मैत्रेयी द्वारा ज्ञान प्राप्ति हेतु समस्त संपत्तिधिकार त्याग दिया था, यह स्त्रियों के ज्ञानवती एवं विदुषी होने का प्रतीक है। बृहदारण्यक उपनिषद, (3.6) में वर्णित है कि, सामाजिक और धार्मिक उत्सवों, समारोहों में स्त्रियाँ अलंकृत होकर बिना किसी प्रतिबंध के उन्मुक्त होकर हिस्सा लेती थी। तैत्तिरीय संहिता (3.2.4.4) एवं अथर्ववेद (6.5.27–29) के उल्लेखों से विदित है कि, इस काल में भी नियोग प्रथा प्रचलित थी तथा विधवा को पुत्र प्राप्ति का अधिकार था। इस काल में स्त्रियों के राजनैतिक अधिकारों में कुछ कमी आयी, किन्तु यह भी सत्य है कि, राजसूय यज्ञ के दौरान जिन लगभग एक दर्जन 'रत्निनो' के घर राजा जाता था, उनमें से चार स्त्रियाँ होती थी। किन्तु यह भी सत्य है कि, 'सभा' में स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध हो गया था। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में कमी के प्रमाण मिलते हैं। अथर्ववेद (6.2.3) में पुत्री के जन्म पर खिन्नता का उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मण (33.1) पुत्री को 'कृपण' कहता है। मैत्रायणी संहिता (3.6.3) एवं शतपथ ब्राह्मण (14.1.1.31) में भी स्त्री के लिए निन्दनीय शब्दों का प्रयोग कर एक बुराई के रुप में वर्णित किया गया है। अतः उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में कमी आयी। सती प्रथा इस युग में प्रचलित नहीं थी, किन्तु राजा राधाकान्त देव ने कतिपय साहित्यिक अंशों के आधार पर सती प्रथा सिद्ध करने की चेष्टा की थी। प्रो० रोमिला थापर का मत है कि, 'वैदिक काल में सत्ती प्रथा केवल प्रतीकात्मक थी', क्योंकि तैत्तिरीय संहिता (3. 2.4.4) में 'देधिषव्य' (विधवा – पुत्र) शब्द उल्लिखित हैं। प्रो० रोमिला थापर का मत है कि, ''दहेज और वधू मूल्य – दोनों प्रथाएँ प्रचलित थीं।'' किन्तु कतिपय उदाहरणों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि, उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति नहीं अच्छी थी। उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों में स्त्रियों की अच्छी स्थिति के अधिक साक्ष्य उपलब्ध है। पुत्री के जन्म को हर्सोल्लास के साथ मनाने के अनेक वृतांत उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों में उपलब्ध है। बृहदारण्यकोपनिषद् में धीमती कन्या के जन्म के निमित्त विधि – नियम बताये गये हैं। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों को सभी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक अधिकार प्राप्त थे।

2.4.1.6 मनोरंजन के साधन :

उत्तर वैदिक कालीन समाज में आर्य सुखी – आनंदित जीवन के लिए उन्मुक्त होकर अनेक प्रकार के मनोरंजन के साधनों का उपयोग करते थे। रथदौड़, घुड़दौड़, आखेट, द्यूत, नृत्य, गान एवं संगीत आदि आर्यों के मनोरंजन के साधन थे। उत्तर वैदिक ग्रंथों में रथदौड़ एवं घुड़दौड़ के विजेताओं को इनाम देने के प्रमाण मिलते है। उत्तर वैदिक कालीन समाज में मनोरंजन के साधनों में नाटकों का प्रसार तेजी बढ़ा होगा।

क्योंकि, उत्तर वैदिक ग्रंथों में 'शैलूष' (नाटक के पात्र) तथा 'शत तंतु' (सौ तारों वाली वीणा) का उल्लेख सार्वजनिक महोत्सवों पर नाटक में सौ तारों वाली वीणा पर गाथाओं को गाने के प्रमाण मिलते है।

2.4.1.7 खानपान :

उत्तर वैदिक कालीन समाज में भी आर्य मूलतः शाकाहारी थे। उत्तर वैदिक कालीन समाज में आर्य शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकार का भोजन किया जाता था। किन्तु उत्तर वैदिक कालीन समाज में मांसाहार पर बड़ा परिवर्तन आया। क्योंकि, इस काल में मांस खाना बुरा माना जाने लगा था। शाकाहारी भोजन में दूध, दही, मक्खन, घी, शहद, गुड़, चीनी, दूध से बनी खीर, फल और सब्जियाँ आदि का प्रयोग किया जाता था। उत्तर वैदिक कालीन समाज में सुरापान अधिक प्रचलित हा गया था, किन्तु उत्तर वैदिक ग्रंथों में सुरापान को एक बुराई के रूप में वर्णित किया गया है। उत्तर वैदिक कालीन आर्यों का भी सर्वाधिक प्रिय पेय 'सोमरस' था।

2.4.1.8 शिक्षा :

उत्तर वैदिक कालीन समाज में एक बड़ा सामाजिक परिवर्तन शिक्षा के तेजी से प्रसार – प्रचार रूप में आया। उत्तर वैदिक काल में लेखन कला के अस्तित्व में आने के कारण शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन की ओर समाज अग्रसर हुआ। उत्तर वैदिक काल में 'उपनयन संस्कार' का उल्लेख मिलने लगता है। ए० एल० बाशम का मत है कि, 'उपनयन संस्कार अत्यधिक प्राचीन संस्कार था, जिसका समय आर्यों के भारतीय तथा ईरानी शाखाओं में विभाजित होने से पूर्व निर्धारित होता है, क्योंकि जोराष्ट्रियम धर्म में भी एक ऐसे ही संस्कार का प्रचलन था, जिसका एक रूप अब भी वर्तमान पारसियों में प्रचलित हैं।' उत्तर वैदिक कालीन समाज में भी शिक्षा राज्य का दायित्व नहीं था। शिक्षा गुरूकुलों, गुरूग्रहों, आचार्यकुलों में दी जाती थी। अथर्ववेद में शिक्षा का उद्देश्य श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धन, आयु, मोक्ष प्राप्ति बताया है। धार्मिक एवं साहित्यिक शिक्षा के साथ – साथ अस्त्र – शस्त्रों की युद्ध विद्या भी दी जाती होगी। उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रियों ने भी शिक्षादान प्रारंभ कर दिया था। उत्तर वैदिक ग्रंथों में हम अनेक तत्वज्ञानी, दार्शनिक एवं ब्रह्मज्ञानी क्षत्रियों का उल्लेख पाते है। शिक्षा सभी स्त्री एवं पुरूष समान रूप से प्राप्त करते थे। शिक्षा सभी वर्णों के लिए समान रूप से खुली हुई थी। फिर भी हमें उत्तर वैदिक कालीन समाज के परिवर्ती समय में शिक्षा में वर्ण विभेद के प्रमाण मिलने लगते है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. उत्तर वैदिक काल में वर्णों की कितनी संख्या थी ?

   (क) एक (ख) दो

   (ग) तीन (घ) चार

3. उत्तर वैदिक काल में आश्रमों की कितनी संख्या थी ?

   (क) एक (ख) दो

   (ग) तीन (घ) चार

4. उत्तर वैदिक काल में विवाह कितने प्रकार के होते थे ?

   (क) 5 (ख) 6

   (ग) 7 (घ) 8

4. 'देधिषव्य' क्या हैं ?

(क) विधवा पुत्र (ख) राजपुत्र
(ग) वणिक पुत्र (घ) इनमें से कोई नहीं

5. 'शैलूष' क्या हैं ?
(क) नाटक (ख) वीणा
(ग) नाटक के पात्र (घ) इनमें से कोई नहीं

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) मनोरंजन के साधन ।
(ख) खानपान ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
(अ) उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा का विवरण दीजिये ?

2.4.2 आर्थिक स्थिति :

उत्तर वैदिक कालीन आर्यों के आर्थिक जीवन की पृष्ठभूमि पर भारी परिवर्तन और प्रगति आयी। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था स्थापित हुई। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में लौह तकनीक ने क्रांतिकारी योगदान देना प्रारंभ किया। लोग बड़े– बड़े ग्रामों और नगरों में रहने लगे। उत्तर वैदिक कालीन आर्यों के आर्थिक जीवन में लघु उद्योग एवं व्यापार – वाणिज्य ने भी महत्वपूर्ण योगदान देना प्रारंभ किया।

2.4.2.1 कृषि एवं पशुपालन :

उत्तर वैदिक कालीन आर्यों आर्थिक जीवन एक बहुत बड़ा परिवर्तन यह आया कि, कृषि प्रमुख व्यवसाय बन गया था। लोग कृषिजीवी और स्थिरवासी हो गये थे। डी० डी० कौशाम्बी एवं डॉ० आर० एस० शर्मा का मत है कि, ''इस काल में लौह तकनीक ने क्रांतिकारी योगदान दिया।'' लोगों ने कृषि एवं अन्य कार्यों में लोहे का प्रयोग करके अभूतपूर्व उन्नति प्राप्त की। उत्तर वैदिक काल में गेहूँ, जौ, चावल, उड़द, मूंग, तिल, गन्ना आदि की फसल होती थी। अतरंजीखेड़ा से जौ, चावल, गेहूँ, तथा हस्तिनापुर से चावल एवं गन्ने के अवशेष मिले हैं। शतपथ ब्राह्मण में हल संबंधी अनुष्ठान का लम्बा वर्णन आया है। अथर्ववेद में हल को प्रवीरवंत (पवीरव) कहा गया है। विद्वानों के अनुसार, लकड़ी के फाल वाले हल से जुताई होती थी। शतपथ ब्राह्मण में जोतने को 'कर्षण' बोने को 'वपन' काटने को 'कर्तन' माड़ने को 'मर्दन' शब्द व्यवहार में मिलता हैं। दात्र (सृणि) अर्थात् दराँती के अवशेष अतरंजीखेड़ा से प्राप्त हैं। काठक संहिता में हल जोतने के लिए 6 से 24 बैलों का उल्लेख मिलता हैं। तैत्तरीय संहिता में धान की कई किस्मों का उल्लेख है। बृहदारण्यकोपनिषद् में 10 प्रकार के ग्रामीण अन्न का उल्लेख है। तैत्तरीय संहिता में वर्ष में 2 बार तथा अष्टाध्यायी में तीन फसलों को उल्लेख किया है। उत्तर वैदिक कृषक कृषि में प्राकृतिक गोबर (शकृत, करीब), खाद् आदि उपयोग करते थे, उन्हें ऋतुओं का भी अच्छा ज्ञान था, जिसका उपयोग कृषि प्रक्रिया में करत थे। जोकि तत्कालीन विकसित कृषि प्रणाली का द्योतक हैं। तैत्तिरीय उपनिषद में उल्लेखित है कि, 'अन्न ही ब्राह्म है।'' एवं 'अन्न बहु कुर्वति तद व्रतम्' अर्थात् 'अधिक अन्न उत्पन्न करना चाहिए, यही हमारा व्रत होना चाहिए।' अनावृष्टि, अतिवृष्टि, विद्युत्पात, कीड़े – मकोड़े और टिड्डियों के भय से निवारण हेतु अथर्ववेद में यंत्र – मंत्रों का उल्लेख मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद 'एक दुर्भिक्ष का उल्लेख करता है, जो टिड्डियों द्वारा किये गये कृषि – विनाश के कारण पड़ा था।' उत्तर वैदिक कालीन आर्यों आर्थिक जीवन में कृषि के साथ ही पशुपालन का भी महत्वपूर्ण स्थान था। गाय – बैंल, भैंस, भेड़ – बकरी, घोड़ा, हाथी, ऊँट, कुत्ता, सुअर, गधा आदि

का पशुपालन किया जाता था। उत्तर वैदिक काल में भी गाय को सर्वाधिक पवित्र एवं दैवीय माना जाता था।

2.4.2.2 लघु – उद्योग एवं व्यवसाय :

उत्तर वैदिक कालीन आर्यों के आर्थिक जीवन में लघु उद्योग एवं व्यापार – वाणिज्य ने महत्वपूर्ण योगदान देना प्रारंभ कर दिया था। उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों में वस्त्र बुननेवाले, वस्त्रों को काटनवाले, सिलनेवाले, बुननवाले, वस्त्रों पर कढ़ाई करनेवाले', वैद्य, धातुकर्म, कुम्हार, बढ़ई, चर्मकार या चमड़े का कार्य करने वाले, नाई, धोबी, मछुए, खेत बोने वाले, रस्सी बटनेवाले, धनुषकार आदि अनेक व्यवसायों का उल्लेख मिलता हैं। उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों में सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा, रांगा, टीन, पीतल एवं लोहे का उल्लेख मिलता हैं। पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा उत्तर वैदिक काल में धातुकर्म का व्यवसाय अधिक प्रगतिशील एवं उन्नत अवस्था में आ गया था। इस काल में लोगों ने धातु गलाकर उसका शोधन करके विविध उपयोगी वस्तुओं के निर्माण में कुशलता प्राप्त कर ली थी। पंचविश ब्राह्मण के 'वयत्री' शब्द तथा शतपथ ब्राह्मण के 'तद्वा एतत्स्त्रीणां कर्म यदूर्णा सूत्रम' उल्लेख से स्पष्ट है कि, स्त्रीयाँ वस्त्र बुनने का कार्य करती थी। वाजसनेयी संहिता में वस्त्रों पर कढ़ाई करने वाली स्त्रियों को 'पेशस्करी' कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में 'कुलाल चक्र' का उल्लेख मिलता है, कुलाल (कुम्हार) व्यवसाय के बारे में सूचना मिलती है। वाजसनेयी संहिता में पुरूष भेद के संबंध में अन्य छोटे – बड़े अनेक व्यवसायियों का उल्लेख किया गया है। इस काल में आर्य चाँदी का उपयोग करने लगे थे, अथर्ववेद में रजत (चाँदी) तथा तैत्तरीय संहिता में 'रजतहिरण्य' का उल्लेख है।

2.4.2.3 व्यापार – वाणिज्य :

उत्तर वैदिक कालीन आर्थिक जीवन में आंतरिक एवं वैदेशिक व्यापार का उल्लेख मिलता हैं। वाजसनेयी संहिता, तैत्तरीय ब्राह्मण आदि में 'वणिज' शब्द का प्रयोग 'व्यापारी' के अर्थ में हुआ है। अथर्ववेद में एक स्थान से दूसरे पर सामग्री ले जाने वाले व्यापारियों का उल्लेख है। साधारणतया व्यापार में विनिमय का माध्यम 'वस्तु – विनिमय' और 'गाय' प्रमुख थी। इस युग में निष्क, शतमान जैसे मुद्रा की सुविधाजनक ईकाइयों से व्यवसाय में उन्नति हुई। उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों में तौल की ईकाइयों कृष्णल, रक्तिका, गुंजा, पाद का उल्लेख मिलता हैं। उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों में ब्याज पर और उधार धन देने के मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि, लोग ब्याज पर और उधार धन लेकर व्यापार एवं व्यवसाय करते होगे। इस युग में व्यावसायिक संघों के संकेत मिलते है। ऐतरेय ब्राह्मण में 'श्रेष्ठी' तथा वाजसनेयी संहिता 'गण' और 'गणपति' का उल्लेख करती है। मजूमदार, रायचौधरी, दत्त के अनुसार, 'समुद्र से लोग परिचित थे तथा समुद्री व्यापार सम्भवतः बेबिलोन के साथ होता था।'

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) वस्त्र व्यवसाय ।
   (ख) व्यापार एवं वाणिज्य ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) उत्तर वैदिक कालीन कृषि का विवरण दीजिये ?

2.4.3 धार्मिक स्थिति :

उत्तर वैदिक काल में धार्मिक स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन हुआ। पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा उत्तर वैदिक काल में यज्ञों एवं अनुष्ठानों का अधिक महत्व बढ़ गया। उत्तर वैदिक काल में धर्म में दार्शनिक चिंतनशील विचारधारा एवं ज्ञान तत्व का महत्व स्थापित हुआ। इस युग में यज्ञादि का एक स्वतंत्र पंथ के रूप में विकास हुआ। ग्रंथों में एक दिन, 12 दिन, एक वर्ष और कई वर्षों तक चलने वाले यज्ञों का वर्णन है, जिनमें 12 – 17 पुरोहितों की आवश्यकता होती थी। अश्वमेध, रायसूय, सोमयज्ञ, वाजपेय, अग्निष्टोम, पुरूषमेध आदि अनेक यज्ञ–अनुष्ठान उत्तर वैदिक कालीन धर्म के अभिन्न अंग बन चुके थे। डॉ० राजवली पाण्डेय का मत है कि, 'कर्मकाण्डों में धर्म की आत्मा सी दब गई थी।' उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि, यज्ञों में सैकड़ों एवं हजारों की संख्या में पशुबलि दी जाती थी। पुरूषमेध में तो पुरूष की बलि दी जाती थी। कर्मकांडीय – व्यवस्था के कुछ प्रमाण (?) प्राप्त हैं – इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू, 1963 – 64 में अंकित है कि, अतरंजीखेड़ा से कुछ वृत्ताकार अग्निकुण्ड मिले हैं, जो शायद इसी उद्‌देश्य के लिए हो। डॉ० जी० आर० शर्मा का मत है कि, पुरूषमेध यज्ञ वेदी के प्रमाण कौशांबी से प्राप्त हैं। डॉ० डी० एन० झा एवं श्रीमाली का मत है कि, इस युग में एक ओर तो ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित एवं पोषित यज्ञ, अनुष्ठान एवं कर्मकांडीय व्यवस्था थी तो दूसरी ओर इसके विरूद्ध उठाई गई उपनिषदों की आवाज।'

उत्तर वैदिक काल में उपनिषदों की विचारधारा ने कर्मकाण्डों पर गहरा आघात किया। मुण्डक उपनिषद में कहा गया है कि, ''केवल कर्मकांडी मूर्ख है। यज्ञ के द्वारा संसार सागर से पार होना अनिश्चित है।'' उपनिषदों ने ज्ञान मार्ग का रास्ता दिखाया। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि, ''ज्ञान के बिना यज्ञ करना भी मृत्यु के आवर्त में ही चक्कर लगाना है।'' उपनिषदों का विषय ब्रह्म और आत्मा है। उत्तर वैदिक काल में ब्रह्म, आत्मा, ज्ञान, मुक्ति और मोक्ष की अवधारणा स्थापित हो गयी थी। राधाकुमुद मुखर्जी का मत है कि, 'इस युग में हिन्दुत्व के प्रमुख सिद्धाँत कर्म, माया और मुक्ति अर्थात् ब्रह्म में लीन होना आदि का प्रतिपादन हो गया था।' उत्तर वैदिक काल में प्रजापति सर्वोच्च देवता तथा रूद्र (शिव, महादेव, पशुपति) एवं विष्णु इस काल के प्रमुख देवता बन गए थे।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) यज्ञ एवं अनुष्ठान ।
   (ख) उपनिषदों की विचारधारा ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) उत्तर वैदिक कालीन धार्मिक स्थिति का विवरण दीजिये ?

2.4.4 राजनीतिक स्थिति :

उत्तर वैदिक काल की राजनीतिक स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन आया। उत्तर वैदिक काल के राजनीतिक पटल पर साम्राज्यवाद का विकास हुआ। इस काल में कबायली संगठन में दरार पड़ी तथा शक्तिशाली राजतंत्रों का उदय हुआ। डॉ० आर० एस० शर्मा का मत है कि, विस्तार के दूसरे दौर में वैदिक लोग इसलिए सफल हुए कि, उन के पास लोहे के हथियार और अश्वचालित रथ थे।' ऐतरेय ब्राह्मण में राज्य की उत्पत्ति तथा राजा की दैवीय उत्पत्ति संबंधी विवरण दिए गये है। ऐतरेय ब्राह्मण में राज्य, स्वराज्य, भौज्य, वैराज्य, महाराज्य और साम्राज्य का उल्लेख मिलता है। उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि, मध्य देश के राजा, 'राजा', पूर्व के राजा 'सम्राट', दक्षिण के 'भोज', पश्चिम के 'स्वराट्' और उत्तरी जनपदों

के शासक 'विराट' कहलाते थे। राजा पदानुसार विभिन्न यज्ञों को सम्पादित करते थे। इस युग में राजा की अनिवार्यता एवं उसके दैवीय अधिकारों में वृद्धि हुई। अथर्ववेद के राजतिलकोत्सव मंत्र से स्पष्ट है कि, जनता राजा को चुनती थी किन्तु राजपद मुख्यतः वंशानुगत हो गया था। शतपथ ब्राह्मण में 'पाटव चाक्रस्थापिति' और 'दुष्टऋतु पौंसायन' नामक राजाओं का उल्लेख है। इनके पूर्वज 10 पीढ़ियों से राज्य कर रहे थे।

राजा के राज्याभिषेक में 'रत्निनों' की सहमति आवश्यक थी। अथर्ववेद में 5, शतपथ ब्राह्मण में 11, तैत्तिरीय ब्राह्मण में 12 राज निर्माताओं का उल्लेख है। राजा के पदाधिकारी 'रत्निन' कहलाते थे। पंचविंश ब्राह्मण में रत्निनों को 'वीर' कहा गया है। ये रत्निन थे – सेनानी, पुरोहित, ग्रामणी, युवराज, महिषी, क्षत्ता या क्षत्रि (प्रतिहारी), सूत्र (राजकीय चारण, कवि या रथवाहक), अक्षवाप (जुए का निरीक्षक), पालागल (दूत), गोविकर्तन (आखेट में राजा का साथी), विकर्तन (राजा के साथ शतरंज खेलने वाला), संग्रहितृ (कोषाध्यक्ष), भागदूध (कर संग्रह करने वाला) आदि। इस युग में 'सचिव' नामक उपाधि का उल्लेख भी मिलता है। राजा सम्भवतः 1/16 आयकर लेता था। मजूमदार, रायचौधरी, दत्त का मत है कि, प्रांतीय शासन की नियमित व्यवस्था का प्रारम्भ स्थापति और शतपति के वर्णन से माना जा सकता है। स्थपति का काम बाहरी क्षेत्रों का प्रबंध करना था, जिनमें बहुधा केवल आदिवासी बसते थे जबकि शतपति सम्भवतः सौ गाँवों के एक समूह की देखभाल करता था। शतपति – स्मृति ग्रथों में उल्लिखित ग्रामीण अधिकारियों की विशाल श्रृंखला के पूर्वज थे। प्रश्न उपनिषद के उल्लेखानुसार, इन अधिकारियों में 'ग्राम अधिकृत' सबसे निम्न स्तर पर थे, जिन्हें स्वयं राजा नियुक्त करता था।

2.4.4.1 सभा – समिति :

अथर्ववेद में सभा – समिति को प्रजापति की दो पुत्रियाँ कहा गया है। अथर्ववेद और ब्राह्मण ग्रंथों के वर्णनों से स्पष्ट है कि, इस काल में सभा – समिति की सम्मति के बिना राजा साधारणतया कुछ नहीं करता था। अथर्ववेद (5.19.15) में वर्णित है कि, राजा के लिए सबसे बड़ा श्राप यही था कि, उसे समिति का सहयोग प्राप्त न होना – ''नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम्।'' डॉ० आर० एस० त्रिपाठी का मत है कि, 'राज्यों के विस्तृत होने के कारण सभा – समिति का राजा पर नियंत्रण स्वतः कम हो गया होगा।' डॉ० आर० एस० शर्मा का मत है कि, 'सत्ता धीरे धीरे प्रजाश्रित से प्रदेशाश्रित होती गई।' सभा न्यायिक कार्य भी करती थी।

2.4.4.2 न्याय – व्यवस्था :

उत्तर वैदिक काल में न्याय व्यवस्था में भी विकास हुआ। राजा सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। उत्तर वैदिक काल में न्याय व्यवस्था से संबंधित अधिकारियों का उल्लेख मिलने लगते है। 'स्थपति' सम्भवतः न्यायाधीश होता था। ग्रामों में 'ग्राम्यवादिन' न्याय करता था। हत्या (मनुष्य) का दण्ड गाय देकर चुकाया जाता था। न्याय की 'दिव्य – प्रणाली' प्रचलित थी। प्रमुख अपराध चोरी, डकैती, व्यभिचार, हत्या, धोखाधड़ी थे। प्रो० रोमिला थापर का मत है कि, भूमि संबंधि झगड़ों और उत्तराधिकार की समस्याओं का उल्लेख मिलता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) सभा – समिति ।
   (ख) न्याय व्यवस्था ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) उत्तर वैदिक कालीन राजनीतिक स्थिति का विवरण दीजिये ?

2.5 सारांश

वैदिक कालीन संस्कृति भारतीय मनीषियों की मेधा की उत्तम कृति है। प्रकृति के आंचल में पूर्व वैदिक कालीन संस्कृति का विकास हुआ। ग्राम प्रधान पूर्व वैदिक कालीन समाज के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन का क्रमिक विकास हुआ। उत्तर वैदिक कालीन संस्कृति में जटिल एवं परिपक्क प्रणालियों का विकास हुआ। समाज में वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, शिक्षा, धर्म में दार्शनिक एवं बौद्धिक चिंतनशील विचारधारा तथा जटिल यज्ञों एवं अनुष्ठानों का समावेश हुआ। राजनीतिक पटल पर साम्राज्यवादी राजतंत्रों का उदय हुआ। आर्थिक क्षेत्र में लौह तकनीक ने क्रांतिकारी योगदान दिया। लोग बड़े – बड़े ग्रामों और नगरों में रहने लगे।

2.6 तकनीकी शब्दावली

कृति : रचना

मनीषी : विद्वान, ऋषि – मुनि

लौकिक : इस लोक का अर्थात् पृथ्वी लोक का

पारलौकि : ईश्वर का लोक अर्थात् स्वर्ग

अर्द्धांगनी : विवाहित पत्नी

महिषी : रानी

रत्निन : राज्य अधिकारी, सभासद, राजनीतिक रूप से प्रमुख व्यक्ति

ऋक् : छन्दों और चरणों से युक्त मंत्र

साम : गान

यजुः : यज्ञ

2.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 2.3.1 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 2.3.1.1 परिवार
2. देखिए 2.3.1.1 परिवार
3. देखिए 2.3.1.6 भोजन
4. देखिए 2.3.1.8 शिक्षा
5. देखिए 2.3.1.6 भोजन

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 2.3.1.8 शिक्षा

(ख) देखिए 2.3.1.5 वस्त्राभूषण

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 2.3.1.4 स्त्रियों की स्थिति

इकाई 2.3.2 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 2.3.2.1 कृषि एवं पशुपालन

(ख) देखिए 2.3.2.2 व्यवसाय

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 2.3.2.1 कृषि एवं पशुपालन

इकाई 2.3.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 2.3.4 धार्मिक – अवस्था

(ख) देखिए 2.3.4 धार्मिक – अवस्था

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 2.3.4 धार्मिक – अवस्था

इकाई 2.3.5 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 2.3.5.1 प्रशासनिक व्यवस्था

(ख) देखिए 2.3.5.1.6 विदथ (विधाता)

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 2.3.5.1.5 सभा और समिति

इकाई 2.4.1 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 2.4.1.1 वर्ण – व्यवस्था
2. देखिए 2.4.1.2 आश्रम व्यवस्था
3. देखिए 2.4.1.4 विवाह
4. देखिए 2.4.1.5 स्त्रियों की स्थिति
5. देखिए 2.4.1.6 मनोरंजन के साधन

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 2.4.1.6 मनोरंजन के साधन

(ख) देखिए 2.4.1.7 खानपान

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 2.4.1.8 शिक्षा

इकाई 2.4.2 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

(क) देखिए 2.4.2.2 लघु – उद्योग एवं व्यवसाय

(ख) देखिए 2.4.2.3 व्यापार – वाणिज्य

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 2.4.2.1 कृषि एवं पशुपालन

इकाई 2.4.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

(क) देखिए 2.4.3 धार्मिक स्थिति

(ख) देखिए 2.4.3 धार्मिक स्थिति

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 2.4.3 धार्मिक स्थिति

इकाई 2.4.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

(क) देखिए 2.4.4.1 सभा – समिति

(ख) देखिए 2.4.4.2 न्याय – व्यवस्था

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 2.4.4 राजनीतिक स्थिति

2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ओमप्रकाश – *प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास,* नई दिल्ली, 1986
2. ओमप्रकाश – *प्राचीन भारत का इतिहास*, नई दिल्ली, 1986
3. बाशम, ए० एल० – *अद्भुत भारत, आगरा,* 1987
4. झा एवं श्रीमाली – *प्राचीन भारत का इतिहास,* दिल्ली, 2000
5. मिश्र, जयशंकर – *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,* पटना, 2006
6. मजूमदार, रायचौधरी, दत्त – *भारत का बृहत, इतिहास,* खण्ड 1, नई दिल्ली, 1970
7. मजूमदार, रमेशचन्द्र – *प्राचीन भारत,* दिल्ली, 1973
8. मैकडोनल एवं कीथ – वैदिक इंडैक्स, लंदन, 1912
9. पाण्डेय, विमल चन्द्र – *प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास,* भाग 1, इलाहाबाद, 1998
10. कौशांबी, डी० डी० – दि कल्चर एण्ड सिविलाजेशन ऑफ एशियन्ट इण्डिया, 1965
11. शर्मा, रामशरण – *प्रारंभिक भारत का परिचय,* नई दिल्ली, 2009
12. त्रिपाठी, आर० एस० – *प्राचीन भारत का इतिहास,* बनारस, 1998
13. काणे, पी० वी० – धर्मशास्त्र का इतिहास, पाँच जिल्दें, पूना, 1930 – 53
14. रायचौधुरी, एच.सी. – पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंश्येन्ट इण्डिया, कलकत्ता, बी.एन. मुखर्जी द्वारा सम्पादित, कलकत्ता, 1997
15. स्मिथ, बी.एस. – अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड, 1924
16. थापर, रोमिला – कल्चरल पास्ट्स : ऐसेज इन अर्ली इंडियन हिस्ट्री,
    – एशियन्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री, नई दिल्ली, 1983
    – भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1989
17. रैप्सन (संपा०) – कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वो०1, कैम्ब्रिज, 1922

2.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. महाजन, विद्याधर – *प्राचीन भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, 2008
2. श्रीवास्तव, के० सी० – *प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति,* इलाहबाद, 2007
3. शर्मा, आनन्द कुमार – *भारतीय संस्कृति एवं कला,* नई दिल्ली, 2011

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. पूर्व वैदिक कालीन संस्कृति का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 2. उत्तर वैदिक कालीन संस्कृति का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

इकाई तीन : बुद्धकालीन संस्कृति

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 महात्मा बुद्ध का जीवन वृत

3.4 बौद्ध धर्म के सिद्धांत

3.4.1 चार आर्य सत्य

3.4.2 आष्टांगिक मार्ग

3.4.3 मध्यमा प्रतिपदा

3.4.4 प्रतीत्य समुत्पाद

3.4.5 दस शील एवं आचरण

3.4.6 क्षणिकवाद

3.4.7 अनीश्वरवाद

3.4.8 अनात्मावाद

3.4.9 कर्म एवं पुनर्जन्म

3.4.10 वेद, कर्मकांड एवं जाति में अविश्वास

3.4.11 अहिंसा

3.4.12 निर्वाण

3.5 महायान सम्प्रदाय

3.5.1 योगाचार सम्प्रदाय

3.5.2 माध्यमिक सम्प्रदाय

3.6 हीनयान सम्प्रदाय

3.6.1 वैभाषिक सम्प्रदाय

3.6.2 सौत्रान्तिक सम्प्रदाय

3.6.3 हीनयान और महायान सम्प्रदाय में अंतर

3.7 वज्रयान सम्प्रदाय

3.8 कालचक्रयान सम्प्रदाय

3.9 सारांश

3.10 तकनीकी शब्दावली

3.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.14 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

छठी शताब्दी ई० पू० तक गंगा घाटी की उपत्किाओं में नीवन बौद्धिक वर्ग अस्तित्व में आने लगा था। इस समय चतुर्दिक भौतिक औार अभौतिक प्रगति होने लगी। इस काल में लोहे के प्रयोग ने ऐतिहासिक भूमिका निभाई। लोहा युद्ध एवं कृषि कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगा, जिससे कुछ मूलभूत सामाजिक परिवर्तन सामने आने लगे। कृषिमूलक अर्थव्यवस्था ने वैदिक यज्ञ में पशुबलि का घोर विरोध करना प्रारंभ कर दिया। नवीन धार्मिक विचारधाराएँ वैदिक धर्म के विरूद्ध एक असंतोष के रूप में प्रगट होने लगीं। वैदिक कर्मकांडों, वैदिक यज्ञों में पशुबलि, बहुदेववाद, ब्राह्मणों के नैतिक पतन, सामाजिक असमानता, वर्णाश्रम व्यवस्था आदि अनेक कारणों से चतुर्दिक हलचल मचने लगी। चारों ओर तर्क – विर्तक होने लगे। चतुर्दिक धार्मिक बौद्धिक आंदोलन पुरातन जीवन दर्शन के विरोध में चलने लगे। इन्हीं परिस्थितियों और धार्मिक बौद्धिक आंदोलनों ने महात्मा बुद्ध और बौद्ध धर्म को जन्म दिया। तत्कालीन समय में बौद्ध संस्कृति ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर अपनी अमिट छाप छोड़ी।

3.2 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है –

- 1 विद्यार्थी महात्मा बुद्ध के जीवन वृत को समझ सकेगें।
- विद्यार्थी बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को जान सकेंगे ।
- विद्यार्थी सत्यचतुष्टय को समझेंगें।
- 4विद्यार्थी आष्टांगिक मार्ग को जान सकेंगे ।
- विद्यार्थी निर्वाण को समझ सकेगें।
- विद्यार्थी महायान सम्प्रदाय को समझ सकेगें।
- विद्यार्थी हीनयान सम्प्रदाय को समझ सकेगें।
- विद्यार्थी योगाचार सिद्धांत के बारे में जानेगे।

3.3 महात्मा बुद्ध का जीवन वृत :

महात्मा बुद्ध का जन्म 563 ई० पू० में कपिलवस्तु के पास लुम्बिनी वन (वर्तमान रूमिन्देई) में हुआ था। लुम्बिनी वन वर्तमान उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के उत्तरी नेपाल की तराई में स्थित है। अशोक ने यहीं पर एक प्रस्तर स्तम्भ स्थापित करवाया था, जिस पर उत्कीर्ण है – 'हिद बुधे जाते साक्यमुनिति हिद भगवा जातेति' अर्थात् यहाँ शाक्य मुनि बुद्ध उत्पन्न हुए थे – यहाँ भगवान उत्पन्न हुए थे। महात्मा बुद्ध के पिता शुद्धोधन शाक्य गणराज्य के राजा थे तथा माता का नाम मायादेवी (महामाया) था। मायादेवी (महामाया) कोलिय गणराज्य की राजकुमारी थीं। महात्मा बुद्ध के बचपन का नाम 'सिद्धार्थ' था। महात्मा बुद्ध के परिवार का गोत्र 'गौतम' था, इसी कारण महात्मा बुद्ध को 'गौतम' या 'गौतम बुद्ध' कहा जाता है। महात्मा बुद्ध के जन्म के सातवें दिन उनकी माता मायादेवी (महामाया) की मृत्यु हो गयी। इसी कारण मौसी व विमाता प्रजापति ने इनका पालन पोषण किया। महात्मा बुद्ध के जन्म के समय ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि, वे ज्ञानी या चक्रवर्ती सम्राट होंगें। वहीं, कालदेवल और कौडिन्य नामक ब्राह्मण विद्वानों ने भविष्यवाणी की कि, वे संसार का त्याग करेंगें अर्थात् संन्यासी होगें।

महात्मा बुद्ध को समस्त प्रकार की राजकीय और युद्ध कौशल की उच्च शिक्षा दी गयी। महात्मा बुद्ध ने अपने प्रारंम्भिक राजकुमार कालीन जीवन में समस्त राजसी वैभव, सुख – सुविधाओं और ऐश्वर्यपूर्ण भोग – विलास आदि का उपभोग किया। 16 वर्ष की आयु में महात्मा बुद्ध का विवाह रामग्राम के कोलिय गणराज्य की राजकुमारी यशोधरा से हुआ। बौद्ध ग्रंथों में यशोधरा के भद्दकच्छा, बिम्बा, गोपा आदि नामों का भी उल्लेख मिलता है। किन्तु शनैः – शनैः महात्मा बुद्ध की प्रकृति और प्रवृति चिंतनशील होने लगी। महात्मा बुद्ध की इस चिंतनशीलता को विविध घटनाओं ने तीव्रता प्रदान की। जिनका बौद्ध ग्रंथों में विस्तृत विवरण मिलता है। महात्मा बुद्ध को वृद्ध पुरूष, दुःखी रोगी, मृत शरीर तथा प्रसन्नचित संन्यासी इन चार दृश्यों को देखकर विरक्ति पैंदा हुई। महात्मा बुद्ध ने सोचा कि, 'संसार दुःखों का घर है तथा संन्यास ही इससे निवृत्ति का मार्ग है।' महात्मा बुद्ध को 28 वर्ष की आयु में 'राहुल' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। तब महात्मा बुद्ध ने कहा – ''आज मेरे बंधन की श्रृंखला में एक कड़ी और जुड़ गई।''

अब महात्मा बुद्ध ने सांसारिक जीवन से संन्यास का निश्चय किया और 29 वर्ष की आयु में अपने प्रिय अश्व 'कंथक' और सारथी 'छन्दक' को लेकर रात्रि में ही राज्य छोड़कर चले गये। गौतम बुद्ध के जीवन की इस घटना को बौद्ध ग्रंथों में *''महाभिनिष्क्रमण''* कहा गया है। महात्मा बुद्ध का गृहत्याग अचानक होने वाली कोई घटना नहीं थी, अपितु यह उनके दीर्घकालीन अनुभव और चिन्तन का पदिपक्व फल था।

महात्मा बुद्ध ने गृहत्याग के बाद ज्ञान की खोज में अनेक साधु–संन्यासियों से मुलाकात की तथा उनकी क्रियाओं एवं दर्शन का अनुसरण करने का प्रयास किया। आलार कालाम से साधना, वैराग्य, साँख्यदर्शन तथा उद्रक रामपुत्त से 'नैव संज्ञा – नासंज्ञायतन' नामक योग का ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् गया के समीप निरंजना नदी के किनारे उरूबेला वन में 5 ब्राह्मणों के साथ कठोर तप किया। इससे भी उन्हें संतुष्टि नहीं मिली और उनका साथ छोड़ दिया। तत्पश्चात् उन्होंने निरंजना नदी (आधुनिक लिलाजन) के तट पर पीपल के वृक्ष के नीचे समाधि लगायी और आठवें दिन बैसाख पूर्णिमा के दिन उन्हें सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हुई। इस घटना को *'सम्बोधि'* कहा गया। पीपल के वृक्ष को 'बोधिवृक्ष', गया को 'बोध गया', पूर्णिमा को 'बुद्ध पूर्णिमा' तथा सिद्धार्थ को बुद्ध, तथागत्, शाक्यमुनि कहा जाने लगा। इस प्रकार महात्मा बुद्ध ने दुःखों को दूर करने अर्थात् मुक्ति के मार्ग को ढूंढ लिया था। ज्ञातव्य रहे कि, महात्मा बुद्ध गृहत्याग के बाद लगातार 7 वर्षों तक ज्ञान की प्राप्ति के लिए भटकते रहे थे और उन्हें ये ज्ञान 35 वर्ष की आयु में प्राप्त हुआ था।

महात्मा बुद्ध ने सर्वप्रथम 'सारनाथ' (ऋषिपत्तन, मृगदाव) अपना पहला उपदेश दिया था। महात्मा बुद्ध ने उन पाँच तपस्वियों (आज, कौडिन्य, अस्सजि, वप्प, महानाम और भद्दिय), जिन्होंने उनके साथ तपस्या की थी और पंचवग्गीय भिक्खु (पाँच के गुट में भ्रमण करने वाले भिक्षु) कहलाते थे को अपना पहला उपदेश दिया, जो *'धर्मचक्रप्रवर्तन'* कहलाता है। महात्मा बुद्ध ने धर्म प्रचार हेतु वाराणसी में अपने 60 अनुयायियों के साथ एक संघ की स्थापना की। विद्वानों का मत है कि, यह संसार का पहला प्रचारक संघ था। महात्मा बुद्ध 45 वर्षों तक अनवरत् धर्मोपदेश करते रहे। वे अपने भ्रमण काल जीवन में पूर्व में चम्पा (आधुनिक भागलपुर) और संथाल परगना तक, पश्चिम में कुरूक्षेत्र (हस्तिनापुर – हरियाणा) के कम्पासदम्भ और शुल्लकोट्टित नगरों तक, उत्तर में कपिलवस्तु तथा दक्षिण में कौशाम्बी तक के क्षेत्रों में गए थे। उज्जैन के लोगों ने उन्हें बुलाया किन्तु वे वहां जा न सके। उनके जीवनकाल के लगभग 25 वर्ष श्रावस्ती में व्यतीत हुए।

80 वर्ष की अवस्था तक बुद्ध धर्म प्रचार करते रहे। 'पावा' में उनके शिष्य कुन्त लौहकार ने उन्हें भोजन में 'शूकर मांस' का भोजन खिला दिया, जिसके कारण उन्हें अतिसार रोग हो गया था। और 483 ई० पू० में वैशाख पूर्णिमा के दिन 'कुशीनगर' में शालवृक्ष के नीचे लेटे हुए रात्रि में उनका देहान्त हो गया। महात्मा बुद्ध के जीवन की इस घटना को बौद्ध ग्रंथों में *''महापरिनिर्वाण''* कहा गया है। कुशीनगर (उ0 प्र0 के देवरिया जिले का वर्तमान कसिया ग्राम) जो मल्लो की राजधानी थी। महात्मा बुद्ध के अंतिम शब्द थे – ''समस्त संगठित पदार्थ क्षमशील है। परिश्रम के साथ चेष्टा करो।'' महात्मा बुद्ध के मृत्यु स्थल (शालवन उपवत्तन, कुशीनगर) व दाहक्रिया स्थल (राम संभार सरोवर के किनारे) आज भी दो स्तूप विद्यमान हैं।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था ?
   (क) 563 ई० पू० (ख) 564 ई० पू०
   (ग) 565 ई० पू० (घ) इनमें से कोई नहीं
5. महात्मा बुद्ध की ज्ञान प्राप्ति कहते है ?
   (क) धर्मचक्रप्रवर्तन (ख) महाभिनिष्क्रमण
   (ग) सम्बोधि (घ) इनमें से कोई नहीं
3. महात्मा बुद्ध का गृहत्याग कहलाता है ?

(क) धर्मचक्रप्रवर्तन (ख) महाभिनिष्क्रमण

(ग) सम्बोधि (घ) इनमें से कोई नहीं

4. महात्मा बुद्ध के प्रथम प्रवचन को कहते है ?

(क) धर्मचक्रप्रवर्तन (ख) महाभिनिष्क्रमण

(ग) सम्बोधि (घ) इनमें से कोई नहीं

5. महात्मा बुद्ध की मृत्यु को कहा जाता है ?

(क) धर्मचक्रप्रवर्तन (ख) सम्बोधि

(ग) महापरिनिर्वाण (घ) इनमें से कोई नहीं

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) महात्मा बुद्ध का गृहत्याग।

(ख) महात्मा बुद्ध का महापरिनिर्वाण।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) महात्मा बुद्ध के जीवन वृत का विवरण दीजिये ?

3.4 बौद्ध धर्म के सिद्धांत :

महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म के रूप में विश्व को एक ऐसी आचार संहिता दी है। जिसमें समस्त जीवों के कल्याण की भावना निहित है। महात्मा बुद्ध बड़े व्यावहारिक सुधारक थे। उनके उपदेशों का अंतिम उद्देश्य 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' था। वस्तुतः बौद्ध धर्म में मानवता की पराकाष्ठा निहित है। महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन का प्रथम उपदेश सारनाथ में दिया था और उसी में बौद्ध धर्म के समस्त सिद्धांत और शिक्षाओं का सार निहित था। संयुक्त निकाय के धर्मचक्रप्रवर्तन सूत्र के उल्लेखानुसार, बुद्ध के प्रथम उपदेश निम्न थे – परिव्राजक को काया – क्लेश और काम सुख से बचना चाहिए। उसे 'मज्झिम पतिपदा' (मध्यम मार्ग) का अनुसरण करना चाहिए तथा 'सत्यचतुष्टय' का पालन करना चाहिए।

3.4.1 चार आर्य सत्य (सत्यचतुष्टय) :

बौद्ध धर्म के मूलभूत सिद्धांतों की आधारशिला चार आर्य सत्य है। बौद्ध धर्म की विविध शिक्षाओं और सिद्धांतों की जड़ों में चार आर्य सत्यों का सार निहित है। किसी न किसी रूप में चार आर्य सत्य बौद्ध धर्म के अंगोंपांग में समाहित रहते है। ये चार आर्य सत्य है –

(अ) **दुख** :– महात्मा बुद्ध के अनुसार संपूर्ण जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक दुःख ही दुःख है। महात्मा बुद्ध ने कहा है कि, जन्म–मरण, प्रिय–वियोग, किसी प्रिय एवं इच्छित वस्तु का न मिलना आदि सभी दुःख है।

(ब) **दुःख समुदाय (दुःख का कारण)** :– महात्मा बुद्ध ने समस्त दुःखों की जड़ 'तृष्णा' को बताया है। महात्मा बुद्ध ने सांसारिक मोह – माया और व्यक्ति की अनंत इच्छाओं से उत्पन्न 'तृष्णा' को दुःखों का मूल कारण माना है। 'तृष्णा' के जाल में फंसा मनुष्य कभी भी दुःख से मुक्ति नहीं पा सकता।

(स) **दुःख निरोध** :– दुःख निरोध से आशय तृष्णाओं से मुक्ति या छुटकारा पाना है। महात्मा बुद्ध ने तृष्णाओं के नाश को 'दुःख निरोध' कहा है।

(द) **दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा** :– दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा से आशय ऐसे मार्ग से है, जिसके पालन करने से समस्त दुःखों से मुक्ति या छुटकारा मिल जाता है। दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा अर्थात् दुःख निरोध या दुःखों से मुक्ति के लिए महात्मा बुद्ध ने 'आष्टांगिक मार्ग' के पालन की सलाह दी है। महात्मा बुद्ध के कहने का आशय यह है कि, यदि दुःखों से मुक्ति या छुटकारा चाहिए तो 'आष्टांगिक मार्ग' सुचिता युक्त मार्ग पर चलो। प्रो0 रोमिला थापर का कथन है कि, 'आष्टांगिक मार्ग' अर्थात् संतुलित, सरल जीवन की ओर अग्रसर करने वाले कर्म के आठ सिद्धांत।'

3.4.2 आष्टांगिक मार्ग :

महात्मा बुद्ध ने ज्ञान और मुक्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं के मूल में समस्त प्रकार के दुःखों को माना है। इसीलिए महात्मा बुद्ध ने दुःखों के निवारण हेतु 'आष्टांगिक मार्ग' का सृजन किया। वस्तुतः दुःखों से मुक्ति और निर्वाण प्राप्ति हेतु महात्मा बुद्ध द्वारा सुझाया गया रास्ता, आष्टांगिक मार्ग है। आष्टांगिक मार्ग के आठ अंग है –

1. सम्यक दृष्टि :– सम्यक दृष्टि से तात्पर्य है, सही और वास्तविकता का ज्ञान होना। न्यायशील, तर्कयुक्त, जांच – परख कर किये गये कार्यो को 'सम्यक दृष्टि' कहा जा सकता है। बौद्ध धर्म ग्रंथों में सम्यक दृष्टि से तात्पर्य ऐसे तर्कयुक्त विवेक से है, जो चार आर्य सत्यों की सही परख कर सके।

2. सम्यक् संकल्प :– सम्यक् संकल्प से तात्पर्य है, सार्थक दृढ़ निश्चय से है। जोकि, ऐसी समस्त वस्तुओं का त्याग कर सके जो मुक्ति और निर्वाण की प्राप्ति में बाधक हो। बौद्ध धर्म ग्रंथों में सांसारिक मोह – माया का त्याग, द्वेष, हिंसा के त्याग का संकल्प करना सम्यक् संकल्प है।

3. सम्यक् वाक् :– सम्यक् वाक् से तात्पर्य, सही, उचित, सार्थक वाणी (बोलने) से है। महात्मा बुद्ध का उपदेश है कि, ऐसी वाणी बोलना चाहिए, जो सत्य हो, विनम्र हो, और दयालुतापूर्ण हो। वही, सम्यक् वाक् हैं। सम्यक् वाक् का प्रधान विषय 'धर्म – वार्ता' होता है।

4. सम्यक् कर्मान्त :– सम्यक् कर्मान्त से तात्पर्य, सही, उचित और सार्थक सत्कर्मों से हैं। बौद्ध धर्म ग्रंथों में अहिंसा तथा इंद्रिय संयम को सम्यक् कर्मान्त माना गया हैं।

5. सम्यक आजीव :– सम्यक आजीव से तात्पर्य, सही, उचित और सार्थक कार्यों, व्यवसाय, उद्योग का जीवन यापन के लिए चुनाव करना। कुल मिलाकर जीवन यापन हेतु किसी प्रकार का अनुचित कार्य नहीं करना जिसे धर्म और समाज मान्यता प्रदान नहीं करता हो। सम्यक आजीव व्यक्ति को जीवकोपार्जना हेतु पवित्र और उचित रास्ते को चुनने का मार्ग है।

6. सम्यक् व्यायाम :– सम्यक व्यायाम से तात्पर्य ऐसे प्रयत्न से है, जो पूर्णतः शुद्ध और ज्ञान युक्त हो।

7. सम्यक् स्मृति :– सम्यक् स्मृति से तात्पर्य है, मन, वचन तथा कर्म की प्रत्येक क्रिया के प्रति सचेत रहना।

8. सम्यक् समाधि :– सम्यक् समाधि से तात्पर्य है, मन की एकाग्रता से हैं। चित्त (मन) की एकाग्रता के बिना सम्यक् समाधि संभव नहीं है।

मजूमदार, रायचौधरी, दत्त का मानना है कि, ''यह वह मार्ग था, जिसने ज्ञान चक्षु खोले, बुद्धि दी तथा जो मानसिक शान्ति, उच्चतर ज्ञान, पूर्ण मानसिक उन्नति और निर्वाण की ओर ले जाता था।'' रिज़्स डेविड्स का मानना है कि, ''चार आर्य सत्य एवं आष्टांगिक मार्ग में ही बौद्ध धर्म का सार निहित है।

3.4.3 मध्यमा प्रतिपदा :

मध्यमा प्रतिपदा दो शब्दों मध्यमा और प्रतिपदा से मिलकर बना है। मध्यमा से तात्पर्य मध्यम या बीच का तथा प्रतिपदा का अर्थ रास्ते या मार्ग से है। अर्थात् मध्यमा प्रतिपदा से तात्पर्य बीच के रास्ते या मध्यम मार्ग से है। महात्मा बुद्ध ने मध्यमा प्रतिपदा सिद्धांत का प्रतिपादन अपने गहन अनुभवों एवं चिंतन से किया था। मध्यमा प्रतिपदा महात्मा बुद्ध के जीवन में हुई वास्तविक घटनाओं से प्राप्त ज्ञान का निचोड़ है। महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन में राजसी वैभव, भोग – विलास आदि का अनुभव किया था। इससे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ कि, अत्यन्त भोग – विलास से मुक्ति और निर्वाण की प्राप्ति संभव नहीं है। साथ ही, महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन में स्वयं के शरीर को अत्यधिक शारीरिक कष्ट में झोंक दिया था और कठोर एवं घोर तपस्या की थी। इससे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ कि, अत्यधिक शारीरिक कष्ट और कठोर तप–जप से भी मुक्ति और निर्वाण की प्राप्ति संभव नहीं है। अतः महात्मा बुद्ध ने 'मध्यमा प्रतिपदा' सिद्धांत का सृजन करके साधकों के लिए इनके बीच के रास्ते की खोज की। महात्मा बुद्ध ने अपने अनुयायियों से कहा कि, मुक्ति और निर्वाण के लिए शरीर को अत्यधिक कष्ट देने या अत्यन्त भोग – विलास की आवश्यकता नहीं है। बल्कि, मुक्ति और निर्वाण के लिए व्यक्ति को इसके बीच के मार्ग का चयन करना चाहिए। वस्तुतः दुःख निरोध हेतु प्रतिपादित आष्टांगिक मार्ग ही, मध्यमा प्रतिपदा (मध्यम मार्ग) हैं।

3.4.4 प्रतीत्य समुत्पाद :

बौद्ध धर्म के प्रतीत्य समुत्पाद सिद्धांत के मूल में कारणवाद या कार्य – कारण की धारणा निहित है। प्रतीत्य समुत्पाद दो शब्दों प्रतीत्य और समुत्पाद से मिलकर बना है। प्रतीत्य का अर्थ है, इसके होने से तथा समुत्पाद का अर्थ है, ऐसा होता है। तात्पर्य यह है कि, प्रत्येक बात या घटना के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है, बिना कारण कुछ नहीं होता। वस्तुतः यह प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति का दर्शन हैं। डॉ० डी० एन० झा एवं श्रीमाली का मत है कि, ''यह नियम शाश्वत् है तथा इसके आधार पर बुद्ध ने तृष्णा को दुःख का कारण बतलाया।'' डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय का मत है कि, ''रोग के कारण को समझे बिना निदान नहीं हो सकता – यही महात्मा बुद्ध का मंतव्य था।'' बौद्ध धर्म में प्रतीत्य समुत्पाद का सिद्धांत वैज्ञानिक चिंतन और तर्कवाद का उत्तम उदाहरण है। प्रतीत्य समुत्पाद सिद्धांत के मूल में बौद्ध धर्मावलंबियों के लिए संदेश हैं कि, किसी वस्तु या बात को तब तक स्वीकार्य मक करो, जब तक कि, इसके मंतव्य को न समझ लो। निश्चित रूप से प्रतीत्य समुत्पाद का सिद्धांत बौद्ध दार्शनिकों के गहन अनुभवों एवं चिंतन का प्रतिफल है। कतिपय विद्वानों की धारणा है कि, प्रतीत्य समुत्पाद का सिद्धांत सांख्य दर्शन, वृहदारण्यक उपनिषद आदि पूर्ववर्ती दार्शनिक चिंतन से अवश्य प्रभावित हैं।

3.4.5 दस शील एवं आचरण :

बौद्ध दार्शनिकों ने ज्ञान और मुक्ति के मार्ग को प्राप्त करने के लिए दस शील एवं शुद्ध, विकार मुक्त आचरण के पालन करने की सलाह दी है। बौद्ध धर्मावलंबियों के लिए मुक्ति के प्रयास की सर्वप्रथम आवश्यकता शील है – (1) अहिंसा (2) सत्य, (3) अस्तेय (चोरी न करना), (4) अपरिग्रह (संम्पत्ति का त्याग), (5) ब्रह्मचर्य (6) दुराचरण का त्याग (7) नृत्य, गान व मादक वस्तुओं का त्याग, (8) विलासिता का त्याग (9) असमय भोजन का त्याग (10) कामिनी कंचन का त्याग। उपर्युक्त प्रथम पाँच गृहस्थों के लिए एवं सभी दस शील भिक्षुओं के लिए थे, जिनके पालन से शुद्ध आचरण सम्भव हो सकता है।

3.4.6 क्षणिकवाद :

क्षणिकवाद बौद्ध धर्म के मूलभूत सिद्धांतों में से एक है। महात्मा बुद्ध ने संसार को क्षण – भंगुर माना है। महात्मा बुद्ध का कथन है कि, संसार की प्रत्येक वस्तु क्षणिक तथा सदैव परिवर्तनशील हैं। क्षणिकवाद सिद्धांत महात्मा बुद्ध के संसार के बारे में दार्शनिक चिंतन है। क्षणिकवाद सिद्धांत के द्वारा महात्मा बुद्ध बताना चाहते है कि, यह संसार और इसकी प्रत्येक रचना का विनाश निश्चित है। अतः मोह – माया को त्याग दो।

3.4.7 अनीश्वरवाद :

बौद्ध धर्म ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानता और नहीं सृष्टि की उत्पत्ति ईश्वर से मानता है। बौद्ध धर्म कहता है कि, सृष्टि की उत्पत्ति के लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। बौद्ध धर्म का मानना है कि, इस संसार का निर्माण ईश्वर ने किया है। संसार एवं उसकी प्रत्येक वस्तु एवं जीवन की उत्पत्ति प्राकृतिक करणों से हुई है। बौद्ध धर्म का मानना है कि, सृष्टि का उत्थान और पतन प्राकृतिक नियमों के अनुसार होता है। कार्य – करण श्रृंखला से विश्व चलता है। प्रो0 रोमिला थापर का मानना है कि, ''सृष्टि का विश्लेषण बौद्ध दर्शन में कारणवाद के आधार पर किया गया, जिसमें विवेकाश्रित तर्क की प्रधानता थी।'' महात्मा बुद्ध ने कभी भी ईश्वर के अस्तित्व के बारे में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर नहीं दिये थे। वे हमेंशा ऐसे प्रश्नों को टाल देते थे।

3.4.8 अनात्मावाद :

बौद्ध धर्म आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानता है। महात्मा बुद्ध की धारणा है कि, शरीर का निर्माण पृथक – पृथक प्रकार के विविध तत्वों से हुआ है और शरीर के ये तत्व मृत होने पर प्रकृति में विलीन हो जाते है। अतः शरीर के निर्माण और संचालन में आत्मा की कोई भूमिका नहीं है। महात्मा बुद्ध ने आत्मा के विषय पर चर्चा को निरर्थक माना। महात्मा बुद्ध ने हमेंशा आत्मा के विषय एवं अस्तित्व के बारे में पूछे गये प्रश्नों के उत्तरों को टालना ही उचित समझा। बौद्ध धर्म ग्रंथ मज्झिम निकाय के सब्बासव सुत्तन्त में उल्लेखित है कि, बुद्ध ने आत्मा के विषय पर विचार करना मना किया था, उन्होंने इसे ''अमनसिकरणीय' धर्म बताया हैं। डॉ० आर० एस० शर्मा का कहना है कि, ''बुद्ध बड़े ही व्यावहारिक सुधारक थे। उन्होंने अपने समय की वास्तविकताओं को खुली आंखों से देखा। वे उन निरर्थक वाद – विवादों में नहीं उलझे जो उनके समय में 'आत्मा' और 'परमात्मा' के बारे में जोरों से चल रहे थे।'' ए० एल० बाशम का कथन है कि, 'बौद्ध धर्म, एक ऐसा धर्म है, जिसमें न कोई देवता है और न कोई आत्मा।'

3.4.9 कर्म एवं पुनर्जन्म :

महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म को कर्म प्रधान बनाने के लिए कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। महात्मा बुद्ध का उपदेश है कि, कर्म प्रतिफल का कारक है। मनुष्य जैसा कर्म करेगा उसे वैसा ही फल मिलेगा। मनुष्य के कर्मानुसार ही उसे सुख – दुःख मिलता हैं। प्रो0 रोमिला थापर ने लिखा है कि, ''बौद्धों के मुक्ति मार्ग के लिए कर्म का सिद्धांत आवश्यक था।'' महात्मा बुद्ध का कथन है कि, अच्छे कर्मों से निर्वाण प्राप्त होता है। मनुष्य के कर्मानुसार ही उसका पुनर्जन्म होता है। मनुष्य का वर्तमान जीवन उसके अतीत के कर्मों का साकार रूप होता है। बौद्ध धर्म ग्रंथ मज्झिम निकाय में उल्लेखित है कि, अपने कर्मों के आधार पर मनुष्य अच्छा – बुरा जन्म पाता हैं। आत्मा के अस्तित्व के अभाव में कर्मानुसार जन्म किसका होता है ? कौन फल भोगता हैं ? बौद्ध धर्म में इसका प्रतिवाद द्वीप शिक्षा से दिया गया है, जो अन्य दीप की शिखा को प्रज्जवलित करके स्वयं बुझ जाती है। दोनों में कार्य – करण का संबंध है। मिलिन्दपन्हों में नागसेन इस प्रश्न का उत्तर देता है – 'एक जन्म की अंतिम चेतना के विलय होते ही, दूसरे जन्म की प्रथम चेतना का उदय होता है, बिना किसी व्यवधान के।' किन्तु यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात यह है कि, पुनर्जन्म का यहां पर यह अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि, आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश हो सकता है।

3.4.10 वेद, कर्मकांड एवं जाति में अविश्वास :

महात्मा बुद्ध ने ब्राह्मण धर्म की मूलभूत स्थापनाओं वेद, वैदिक कर्मकांडों एवं जाति व्यवस्था पर करार प्रहार किया। महात्मा बुद्ध ने वेदों की प्रामाणिकता को अस्वीकारते हुए इन्हें ईश्वर कृत नहीं माना। वस्तुतः वेद एवं वैदिक मंत्र महात्मा बुद्ध की दृष्टि में केवल जलविहीन मरूस्थल तथा पंथहीन जंगल के समान थे। महात्मा बुद्ध ने ब्राह्मण धर्म के कर्मकांडों, यज्ञ पशुबलि तथा जात – पांत के भेद को अस्वीकारते हुए समानता पर बल दिया। महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म के द्वार सभी जातियों एवं सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिए खोल दिए थे। महात्मा बुद्ध ने समतामूलक समाज की परिकल्पना की थी।

3.4.11 अहिंसा :

अहिंसा बौद्ध धर्म के मूलभूत सिद्धांतों में से एक है। वस्तुतः अहिंसा का सिद्धांत बौद्ध धर्म के आधार स्तम्भ के समान है। महात्मा बुद्ध प्राणी के लिए दया, करूणा और प्रेम के सागर के समान थे। वे प्राणी के प्रति किसी भी प्रकार के कष्ट या जीव हत्या के मौलिक रूप से विरोधी थे। वस्तुतः महात्मा बुद्ध अहिंसा के पुजारी थे। उन्होंने अपने संपूर्ण जीवन में 'अहिंसा परमोधर्म' के सिद्धान्त का उन्होंने प्रचार – प्रसार किया।

3.4.12 निर्वाण :

निर्वाण का सिद्धांत बौद्ध धर्म का आधारभूत सिद्धांत है। बौद्ध धर्म के समस्त धार्मिक सिद्धांतों एवं क्रियाकलापों का अंतिम परम् लक्ष्य निर्वाण है। निर्वाण का शाब्दिक अर्थ 'बुझ जाना' या जीवन की समस्त कामनाओं – लालसाओं से मुक्ति, दुःख का अंत, पुनर्जन्म से मुक्ति है। निर्वाण की स्थिति पूर्णतया शान्त, स्थिर, आसक्ति एवं तृष्णाविहीन होती है। वस्तुतः निर्वाण का अर्थ अज्ञान रूपी अंधकार का दूर होना है तथा ज्ञान युक्त परमसुख की स्थिति में पहुंचना हैं। निर्वाण प्राप्त व्यक्ति को 'अर्हत्' कहा जाता है। बौद्ध धर्म में निर्वाण व्यक्ति के जीवनकाल में ही प्राप्त होता है, मरने के बाद नहीं। महात्मा बुद्ध ने निर्वाण का अर्थ, 'परम् ज्ञान' बताया है। महात्मा बुद्ध ने अपने जीवनकाल में ही निर्वाण प्राप्त किया था।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. बौद्ध धर्म के दसों शील एवं आचरण का पालन करना किसके लिए आवश्यक है ?
   (क) गृहस्थों के लिए (ख) भिक्षुओं के लिए
   (ग) दोनों के लिए (घ) इनमें से कोई नहीं
2. बौद्ध धर्म के अनीश्वरवाद से आशय है ?
   (क) ईश्वर के अस्तित्व को मानना (ख) ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानना
   (ग) उपर्युक्त दोनों सही (घ) इनमें से कोई नहीं
3. बौद्ध धर्म के अनात्मावाद से आशय है ?
   (क) आत्मा के अस्तित्व को मानना (ख) आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानना (ग) उपर्युक्त दोनों सही (घ) इनमें से कोई नहीं
4. बौद्ध धर्म में कर्म एवं पुनर्जन्म की क्या धारणा है ?
   (क) कर्म एवं पुनर्जन्म को मानना (ख) कर्म एवं पुनर्जन्म को नहीं मानना (ग) उपर्युक्त दोनों सही (घ) इनमें से कोई नहीं
5. बौद्ध धर्म का वेद, वैदिक कर्मकांडों एवं जाति व्यवस्था में अविश्वास था ?
   (क) हाँ (ख) नहीं
   (ग) कह नहीं सकते (घ) इनमें से कोई नहीं

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) मध्यमा प्रतिपदा ।
   (ख) प्रतीत्य समुत्पाद ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) आष्टांगिक मार्ग का विवरण दीजिये ?

3.5 महायान सम्प्रदाय :

महायान शाखा का उदय, बौद्ध धर्म में नवीन परिवर्तन का प्रतीक है। बौद्ध धर्मावलंबियों की महात्मा बुद्ध में असीम श्रद्धा की भावना ने महायान के उदय में आधारभूत भूमिका निभायी। बौद्ध धर्मावलंबियों ने महात्मा बुद्ध को ईश्वर का रूप माना और 'दैवीय अवतार' मानकर भगवान की तरह पूजना प्रारंभ कर दिया। बौद्ध धर्मावलंबियों ने महात्मा बुद्ध की मूर्ति पूजा प्रारंभ कर दी। महायान धर्म में महात्मा बुद्ध एवं बोधिसत्वों को देव रूप माना। डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय ने ठीक ही लिखा है कि, ''महायान ने महात्मा बुद्ध और अन्य बोधिसत्वों को देवरूप दे दिया। महात्मा बुद्ध के प्रति भक्ति और अनुराग अब मोक्ष के सर्वसुगम एवं सर्वश्रेष्ठ साधन बन गये, परिणामतः महायान भक्तिवादी, अवतारवादी और मूर्तिवादी बन गया।'' हीनयानी इसे विधर्म तथा कुछ विद्वान बौद्ध धर्म का विकृत रूप कहने लगे। कुछ विद्वानों ने महायान को बोधिसत्वों का धर्म कहा है।

ए० एल० बाशम का मानना है कि, ''महायान में बोधिसत्व की कल्पना एक ऐसी प्राणी के रूप में नहीं जो निर्वाण शीघ्र प्राप्त कर लेगा वरन् ऐसे प्राणी के रूप में जो अपने समय की उस अवधि तक प्रतीक्षा करेगा, जब तक क्षुद्रतम जीव भी सर्वोच्च उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर लेता।'' ए० एल० बाशम, महायान में बोधिसत्व की उपस्थिति को ईसाईयत् का प्रभाव मानते हैं। महायान के द्वार सभी प्राणियों के लिए खुले हुए थे। गृहस्थ भी इसे ग्रहण कर सकते थे। निर्वाण हेतु महायान साधक को 'दस अवस्थाओं से

होकर गुजरना होता था – मुदिता, विमला, प्रभाकारी, अर्चिष्मती, सुदुर्जया, अभिमुक्ति, दूरगंभा, अचला, साधमती तथा धर्मसेध।

विद्वानों का मत है कि, महायान बौद्ध धर्म का जन्म प्रथम शताब्दी ई० पू० में आंध्रदेश में हुआ था। कनिष्क काल में कश्मीर में हुई चतुर्थ बौद्ध संगीति ने महायान बौद्ध धर्म को अभूतपूर्व प्रसिद्धि प्रदान की। नागार्जुन, आर्यदेव, आसंग तथा वसुबंधु के नेतृत्व में महायान बौद्ध धर्म पूर्ण प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया। महायान के उदय के विषय में डॉ० आर० सी० मजूमदार का मानना है कि, ''महायान उत्थान से बुद्धमत को भारत तथा भारत से बाहर विकसित होने में विशेष सहायता मिली।'' योगाचार (विज्ञानवाद) एवं माध्यमिक (शून्यवाद) या सापेक्षवाद महायान सम्प्रदाय के दो प्रसिद्ध मत है।

3.5.1 योगाचार (विज्ञानवाद) सम्प्रदाय :

योगाचार (विज्ञानवाद) सिद्धांत के संस्थापक प्रसिद्ध महायान बौद्ध धर्म के विचारक मैत्रयनाथ थे। योगाचार (विज्ञानवाद) सिद्धांत का मानना है कि, 'बाह्म सत्ता की जानकारी ज्ञान से होती है। ज्ञान, विज्ञान और चित्त वास्तविक सत्ता हैं।' ए० एल० बाशम का कथन है कि, 'एक मात्र वास्तविक सत्ता (तथाता) सत्य थी, जिसे (धर्म धातु) भी कहते हैं, जो निर्वाण के शून्य की समकोटीय थीं।' विज्ञान को ही एक मात्र सत्ता स्वीकारने के कारण 'विज्ञानवाद' तथा योग और आचार पर विशेष बल देने के कारण 'योगाचार' कहा गया। योगाचार (विज्ञानवाद) के प्रसिद्ध प्रचारक मैत्रयनाथ ने धर्मधर्माताविभंग, मनुष्यांतविभंग, योगाचार भूमिशास्त्र आदि ग्रंथों की रचना की थी। असंग ने 'पञ्चभूमि, अभिधर्म समुच्चय'', महायान संग्रह की रचना की। योगाचार की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना लंकावतार सूत्र' हैं।

3.5.2 माध्यमिक (शून्यवाद) या सापेक्षवाद सम्प्रदाय :

माध्यमिक (शून्यवाद) या सापेक्षवाद सिद्धांत के संस्थापक महायान बौद्ध धर्म के महान् विचारक नागार्जुन थे। माध्यमिक (शून्यवाद) या सापेक्षवाद सिद्धांत का मानना है कि, 'प्रत्येक वस्तु किसी कारण से बनी है, इसलिए वह शून्य है। इस प्रकार वस्तुओं का अस्तित्व 'सापेक्ष' सिद्ध होता है। यह भाव और अभाव की स्थिति है। निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता, इसलिए यह माध्यमिक दर्शन है।' माध्यमिक (शून्यवाद) या सापेक्षवाद सिद्धांत के विचारक नागार्जुन ने 'माध्यमिककारिका', युक्तिषाष्ठिका, शून्यतासप्तति, विग्रहव्यावर्तनी, प्रज्ञापारमिताशास्त्र आदि ग्रंथों की रचना की थी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:
   (क) योगाचार ।
   (ख) माध्यमिक ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) महायान सम्प्रदाय का विवरण दीजिये ?

3.6 हीनयान सम्प्रदाय :

हीनयान सम्प्रदाय, बौद्ध धर्म का मूल रूप है। हीनयान सम्प्रदाय बौद्ध धर्म के प्राचीन मूल रूप को मानता था। वस्तुतः प्राचीन मूल बौद्ध धर्म का परिपालन हीनयान बौद्ध सम्प्रदाय में होता था। हीनयान का अभिप्राय है, निर्वाण हेतु अनुपयुक्त तथा निकृष्ट मार्ग का अनुसरण। हीनयान को 'श्रावकयान्' भी कहते हैं। श्रावक उस व्यक्ति को कहते हैं, जो जीवन के क्लेश से त्रस्त होकर, निर्वाण पथ पर अग्रसर होता है। हीनयान साधक 'अर्हत्' पद को सर्वोत्कृष्ट एवं परम् लक्ष्य मानते हैं। वैभाषिक एवं सौत्रान्तिक हीनयान सम्प्रदाय के दो प्रसिद्ध मत है।

3.6.1 वैभाषिक सम्प्रदाय :

वैभाषिक सिद्धांत का मानना है कि, जगत् का अनुभव इन्द्रिया के द्वारा होता है, जो उसकी बाह्म सत्ता होती है। प्रत्यक्ष या अनुमान दोनों से इसका परिज्ञान होता है। विषयगत् और विषयिगत् दो दृष्टियों से तत्वों का विचार इस मत में किया जाता है। वैभाषिक मत के दो भेद थे – कश्मीरी और पाश्चात्य वैभाषिक, जिसका केन्द्र गांधार था। इस मत के प्रधानतः चार आचार्य धर्मत्रात, घोषक, वसुमित्र, बुद्धदेव थे।

3.6.2 सौत्रान्तिक सम्प्रदाय :

सौत्रान्तिक सिद्धांत के संस्थापक कुमारलात थे। सौत्रान्तिक सिद्धांत का मानना है कि, 'यह बाह्म सत्ता को अवश्य स्वीकारता है, किन्तु इसका ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में नहीं होता। चित्त शुद्ध और निरकार है।' कुमारलात के शिष्य श्रीलाभ भी सौत्रान्तिक सिद्धांत के विचारक थे।

3.6.3 हीनयान और महायान सम्प्रदाय में अंतर :

1. हीनयान महात्मा बुद्ध द्वारा स्थापित मूल बौद्ध धर्म था, जबकि महायान, हीनयान का संशोधित एवं परिवर्तित रूप था।

2. हीनयान केवल महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं को मानता है, जबकि महायान महात्मा बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध तथा बोधिसत्वों की शिक्षाओं को मानता है।

3. हीनयान प्रमुखतया दर्शन है और महायान धर्म है।

4. हीनयान की अपेक्षा महायान का कार्यक्षेत्र विस्तृत है। हीनयान का लक्ष्य व्यक्ति विशेष को और महायान का सम्पूर्ण विश्व को निर्वाण दिलाना था।

5. हीनयान महात्मा बुद्ध को एक महापुरूष तथा महायान उन्हें देवता का प्रतिरूप मानता है।

6. हीनयान के सिद्धांत कठोर हैं। चार आर्य सत्य एवं आष्टांगिक मार्ग का पालन करने पर ही निर्वाण प्राप्ति संभव है, जबकि महायान सरल एवं सुगम है। महात्मा बुद्ध के प्रति श्रद्धा भक्ति – प्रदर्शन द्वारा भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

7. हीनयान का परम् लक्ष्य 'अर्हत्' प्राप्ति, जबकि महायान बोधिसत्व को परम् लक्ष्य मानता हैं।

8. हीनयानियों का मानना है कि, महात्मा बुद्ध ने अपने सभी अनुयायियों को एक ही प्रकार के उपदेश दिये। वहीं, किन्तु महायानियों का मानना है कि, बुद्ध ने साधारण कोटि में शिष्यों को 'प्रगट उपदेश' तथा अधिक योग्य शिष्यों को 'गुह्म उपदेश' दिये।

9. हीनयान 'प्रज्ञा' (ज्ञान) प्रधान तथा महायान 'करूणा' प्रधान है।

10. हीनयान 'संन्यासी' व महायान गृहस्थ जीवन पर बल देता है।

11. हीनयान की अपेक्षा महायान अधिक आशावादी है।

12. हीनयान मूर्ति उपासना नहीं मानता, महायान में मूर्तिपूजा की जाती है।

13. हीनयान ने 'पाली' तथा महायान ने 'संस्कृत' भाषा का प्रयोग किया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

   (क) वैभाषिक ।

   (ख) सौत्रान्तिक ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

   (अ) हीनयान और महायान सम्प्रदाय में क्या अंतर है ?

3.7 वज्रयान सम्प्रदाय :

वज्रयान सम्प्रदाय बौद्ध धर्म का तांत्रिक सम्प्रदाय था। वज्रयान सम्प्रदाय का उदय पाँचवीं – छठीं शताब्दी ई० में हुआ था। वज्रयान सम्प्रदाय तंत्र–मंत्र द्वारा ईश्वरीय सत्ता की प्राप्ति का मार्ग बताता था। ए० एल० बाशम का कथन है कि, 'वज्रयान सम्प्रदाय में ईश्वरीय उत्पादन की क्रिया की कल्पना यौन संबंध के रूप में की गयी थी। वह विचार उतना ही प्राचीन था, जितना ऋग्वेद।' बौद्ध धर्म के तंत्र सिद्धान्त 'मंजूश्रीमूलकल्प और गुह्मसमाज' ग्रंथों में संग्रहित है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) वज्रयान सम्प्रदाय का संक्षिप्त विवरण दीजिये ?

3.8 कालचक्रयान सम्प्रदाय :

9–10 वीं शताब्दी में उदय हुआ। कालचक्र दर्शन में कालचक्र को परम देवता के रूप में माना गया। इसमें 'शून्यता' और 'करूणा' है, जो प्रज्ञात्मक शक्ति से संयुक्त है। कालचक्र में अद्वयतत्व की धारणा व्यक्त होती है, जिसे कालचक्र में आदिबुद्ध कहा जाता है। इसमें मानव शरीर को ब्रह्माण्ड का प्रवर्तन माना गया है। 'कालचक्रतंत्र' और उसकी 'विमलप्रभा टीका' इस सम्प्रदाय क आधार ग्रंथ हैं।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) कालचक्र सम्प्रदाय का संक्षिप्त विवरण दीजिये ?

3.9 सारांश

छठी शताब्दी ई० पू० के धार्मिक बौद्धिक आंदोलनों ने महात्मा बुद्ध और उनके बौद्ध धर्म के उदय में आधारभूत भूमिका निभाई। महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म के रूप में समतामूलक एक ऐसी आचार संहिता प्रदान की जिसके द्वार सभी के लिए खुले हुए थे। महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म के रूप में एक सरल, संतुलित, तर्कयुक्त मार्ग समस्त जीवों के कल्याण के लिए खोला। जिसमें 'सर्वो भवन्ति सुखिनः' और समस्त जीवों के कल्याण की भावना समाहित थी। महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म में मानवता की सर्वोच्चता और मानवाद की पराकाष्ठा को प्रतिष्ठित किया।

3.10 तकनीकी शब्दावली

भौतिक : इस लोक से संबंधित दिखने वाली वस्तुएँ अर्थात् पृथ्वी लोक से संबंधित समस्त वस्तुएँ

अभौतिक : आँखों से न दिखने वाली शक्ति, आत्मा, ईश्वर आदि

अर्हत् : संपूर्ण मनुष्य, जिसे परम् ज्ञान की प्राप्ति हो गयी हो

बोधिसत्व : बुद्धत्व प्राप्त करने वाला

निर्वाण : ज्ञान प्राप्ति

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय् : सर्वजन (सभी) का कल्याण

3.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 3.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 3.3 महात्मा बुद्ध का जीवन वृत
2. देखिए 3.3 महात्मा बुद्ध का जीवन वृत
3. देखिए 3.3 महात्मा बुद्ध का जीवन वृत
4. देखिए 3.3 महात्मा बुद्ध का जीवन वृत
5. देखिए 3.3 महात्मा बुद्ध का जीवन वृत

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 3.3 महात्मा बुद्ध का जीवन वृत
   (ख) देखिए 3.3 महात्मा बुद्ध का जीवन वृत

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 3.3 महात्मा बुद्ध का जीवन वृत

इकाई 3.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 3.4.5 दस शील एवं आचरण
2. देखिए 3.4.7 अनीश्वरवाद
3. देखिए 3.4.8 अनात्मावाद
4. देखिए 3.4.9 कर्म एवं पुनर्जन्म
5. देखिए 3.4.10 वेद, कर्मकांड एवं जाति में अविश्वास

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 3.4.3 मध्यमा प्रतिपदा

(ख) देखिए 3.4.4 प्रतीत्य समुत्पाद

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 3.4.2 आष्टांगिक मार्ग

इकाई 3.5 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

(क) देखिए 3.5.1 योगाचार (विज्ञानवाद) सम्प्रदाय

(ख) देखिए 3.5.2 माध्यमिक (शून्यवाद) या सापेक्षवाद सम्प्रदाय

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 3.5 महायान सम्प्रदाय

इकाई 3.6 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

(क) देखिए 3.6.1 वैभाषिक सम्प्रदाय

(ख) देखिए 3.6.2 सौत्रान्तिक सम्प्रदाय

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 3.6.3 हीनयान और महायान सम्प्रदाय में अंतर

इकाई 3.7 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 3.7 वज्रयान सम्प्रदाय

इकाई 3.8 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 3.8 कालचक्रयान सम्प्रदाय

3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ओमप्रकाश – *प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास,* नई दिल्ली, 1986
2. ओमप्रकाश – *प्राचीन भारत का इतिहास*, नई दिल्ली, 1986
3. बाशम, ए० एल० – *अद्भुत भारत, आगरा,* 1987

4. डेविड्स, आर० – *बुदिस्ट इण्डिया,* कलकत्ता, 1955

5. झा एवं श्रीमाली – *प्राचीन भारत का इतिहास,* दिल्ली, 2000

6. मिश्र, जयशंकर – *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,* पटना, 2006

7. मजूमदार, रायचौधरी, दत्त – *भारत का बृहत, इतिहास,* खण्ड 1, नई दिल्ली, 1970

8. मजूमदार, रमेशचन्द्र – *प्राचीन भारत,* दिल्ली, 1973

8. पाण्डेय, विमल चन्द्र – *प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास,* भाग 1, इलाहाबाद, 1998

9. कौशांबी, डी० डी० – दि कल्चर एण्ड सिविलाजेशन ऑफ एशियन्ट इण्डिया, 1965

10. शर्मा, रामशरण – *प्रारंभिक भारत का परिचय,* नई दिल्ली, 2009
– *डंजमतपबंस ब्नसजनतम ंदक ैवबपंस थ्वतउंजपवदे पद ंदबपमदज प्दकपंए क्मसीपए 1983*

11. तैनसए ॅ दृ *ंैज जीम ठनककीं जंनहीज*ए ठमकवितकए 1959

12. त्रिपाठी, आर० एस० – *प्राचीन भारत का इतिहास,* बनारस, 1998

13. काणे, पी० वी० – *धर्मशास्त्र का इतिहास, पाँच जिल्दें,* पूना, 1930 – 53

14. स्मिथ, बी.एस. – *अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,* ऑक्सफोर्ड, 1924

15. थापर, रोमिला – *कल्चरल पास्ट्स : ऐसेज इन अर्ली इंडियन हिस्ट्री,* नई दिल्ली, 2000
– *एशियन्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री,* नई दिल्ली, 1983
– *भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, 1989

16. रैप्सन (संपा०) – *कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वो०1,* कैम्ब्रिज, 1922

17. उपाध्याय, बलदेव – *भारतीय दर्शन,* वाराणसी, 1945

18. ॅतकमतए ।ण्ज्ञण दृ *प्दकपंद ठनककीपेउ*ए टंतंदेंपए 1970

3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. महाजन, विद्याधर – *प्राचीन भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, 2008

2. श्रीवास्तव, के० सी० – *प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति,* इलाहबाद, 2007

3. शर्मा, आनन्द कुमार – *भारतीय संस्कृति एवं कला,* नई दिल्ली, 2011

3.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. महात्मा बुद्ध के जीवन वृत का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 2. बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 3. हीनयान और महायान सम्प्रदाय पर प्रकाश डालिये ?

प्रश्न 4. बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों पर प्रकाश डालिये ?

ब्लॉक तीन

इकाई एक : मौर्यकालीन संस्कृति

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 सामाजिक स्थिति

1.3.1 वर्णाश्रम व्यवस्था

1.3.2 दास प्रथा

1.3.3 परिवार एवं विवाह

1.3.4 स्त्रियों की स्थिति

1.3.5 खानपान, रहन–सहन एवं नैतिकता

1.3.6 मनोरंजन के साधन

1.4 आर्थिक स्थिति

1.4.1 कृषि एवं पशुपालन

1.4.2 व्यवसाय एवं उद्योग

1.4.3 व्यापार

1.4.4 मुद्रा

1.5 भाषा, शिक्षा एवं साहित्य

1.6 धार्मिक स्थिति

1.6.1 वैदिक या ब्राह्मण धर्म

1.6.2 बौद्ध धर्म

1.6.3 जैन धर्म

1.6.4 आजीविक सम्प्रदाय

1.7 मौर्यकालीन कला

1.7.1 राजधानी एवं नगर

1.7.2 स्तम्भ

1.7.2.1 दंड

1.7.2.2 कमलाकृति शीर्ष

1.7.2.3 फलक

1.7.2.4 शीर्षस्थ पशु मूर्तियाँ

1.7.3 स्तूप

1.7.4 विहार एवं शैलोत्कीर्ण गुफाएँ

1.7.5 लोक कला

1.8 सारांश

1.9 तकनीकी शब्दावली

1.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

मौर्य साम्राज्य, भारतवर्ष का प्रथम सार्वभौमिक साम्राज्य था। मौर्य साम्राज्य, भारतीय इतिहास का वह साम्राज्य है, जिसकी उत्पत्ति शास्त्र और शस्त्र के संयोग की शक्ति का अद्‌भुत, अभूतपूर्व एवं सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। शास्त्र ने शस्त्र को सामर्थ्य और शक्ति दी। जिसका बखान इतिहास के पन्नों में सुनहरे अक्षरों से अंकित हैं। वस्तुतः चाणक्य (विष्णुगुप्त, कौटिल्य) ने समय की वास्तविकताओं को खुली आँखों से देखा और वह कर दिखाया, जिसकी तार्किक परिणिति भारतवर्ष के प्रथम सार्वभौमिक साम्राज्य के रूप में सामने आयी। मौर्य साम्राज्य की स्थापना चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य की सहायता से की थी। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य का उपयोग नंद राजवंश के विघटन के लिए साधन के रूप में किया था। वस्तुतः मौर्य साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक चाणक्य था, जो चाहता तो सम्राट बन सकता था, किन्तु उसने शास्त्र संवत् व्यवहार किया और चन्द्रगुप्त मौर्य को पाटलिपुत्र की गद्‌दी पर बैठाया और स्वयं उसका प्रधानमंत्री (सलाहकार) बना। चन्द्रगुप्त मौर्य, मौर्य साम्राज्य का प्रथम शासक था। मौर्य साम्राज्य ने 322 ई० पू० – 184 ई० पू० तक कुल 137 वर्षों तक शासन किया। मौर्य साम्राज्य में 9 या 10 शासक हुए। चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार, अशोक जैसे महान् शासक मौर्य साम्राज्य के शासक थे। मौर्य साम्राज्य का अंतिम शासक 'वृहद्रथ' था, जिसकी हत्या 184 ई० पू० में उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने कर दी थी। लगभग 137 वर्षों के मौर्यों के सुदीर्घ शासनकाल में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, भाषा, शिक्षा, साहित्य एवं कला आदि सभी क्षेत्रों में मौर्यकालीन संस्कृति ने अपनी विशेषताएँ प्रगट कीं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है –

17. विद्यार्थी मौर्यकालीन संस्कृति को समझ सकेगें।
18. विद्यार्थी मौर्यकालीन सामाजिक स्थिति को जान सकेंगे ।
19. विद्यार्थी मौर्यकालीन आर्थिक स्थिति को समझेंगें।
20. विद्यार्थी मौर्यकालीन भाषा, शिक्षा एवं साहित्य को जान सकेंगे ।
21. विद्यार्थी मौर्यकालीन धार्मिक स्थिति को समझ सकेगें।
22. विद्यार्थी मौर्यकालीन अशोक के बौद्ध धर्म के प्रचार – प्रसार के प्रयासों को जान सकेगें।
23. विद्यार्थी ने मौर्यकालीन कला को समझ सकेगें।
24. विद्यार्थी स्तूप स्थापत्य के बारे में जानेगे।

1.3 सामाजिक स्थिति :

मौर्यकाल का सामाजिक जनजीवन मुख्यतः सनातन ब्राह्मण धर्म द्वारा विहित सामाजिक विधि – विधान पर आधारित था। अशोक के शासनकाल में बौद्ध धर्म – संस्कृति का अत्यधिक प्रभाव रहा। किन्तु फिर भी मौर्यकालीन समाजिक व्यवस्था की मूलभूत आधारशिला ब्राह्मण धर्म द्वारा निश्चित निर्धारित सामाजिक प्रणालियों पर ही चलता रहा।

1.3.1 वर्णाश्रम व्यवस्था :

मौर्यकालीन संस्कृति की सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला वर्णाश्रम व्यवस्था थी। समाज चार वर्णो में विभक्त था तथा आश्रम व्यवस्था मौर्यकाल में सुचारू ढंग से चल रही थी। समाज में लोग ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रमों का पालन कर रहे थे, यद्धपि यह व्यवस्था उच्च वर्णो में अधिक प्रचलित थी। मौर्यकाल में वर्ण व्यवस्था सुनियोजित परिपाटि पर चल रही थी, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि, वर्ण व्यवस्था में कठोरता नहीं थी। अशोक के कर्म के सिद्धान्त पर जोर देने तथा बौद्ध एवं जैन धर्मो के प्रभावों के कारण वर्ण व्यवस्था निश्चित रूप से लचीली रही होगी। लेकिन यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि, वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था में परिवर्तित होकर जन्म पर आधारित हो गयी थी।

चातुर्य वर्णो में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था। अध्ययन – अध्ययन, शिक्षा – दीक्षा तथा शासन का सलाहकार, यह बौद्धिक वर्ग धर्म एवं संस्कृति का संरक्षक तथा संवर्धक था। कौटिल्य एवं मेगस्थनीज से ज्ञात होता है कि, ब्राह्मणों का जीवन 'सादा जीवन – उच्च विचार' की युक्ति को चरितार्थ करता था। अशोक के तीसरे शिलालेख में उल्लेखित है कि, ब्राह्मणों और श्रवणों की सेवा करना उत्तम है। ब्राह्मण प्रशासन के अनेक पदों पर आसीन थे। मौर्यकाल में क्षत्रिय सामाजिक व्यवस्था के प्रमुख अंग थे। क्षत्रिय शासक वर्ग था। स्वयं सम्राट क्षत्रिय वर्ण के थे। क्षत्रिय शासकीय सुविधा भोगी, प्रशासनिक पदों पर आसीन, सैन्य क्रिया कलापों में संलग्न रहता था। वैश्य, मौर्यकाल की सामाजिक व्यवस्था का एक धनाढ्य वर्ग था। व्यापार एवं वाणिज्य का संपूर्ण कार्य वैश्यों के हाथों में था। कुल मिलाकर मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था पर वैश्यों का आधिपत्य था। वैश्य व्यापार, शिल्प एवं कृषि कर्म में संलग्न थे। वैश्यों की मौर्यकालीन समाज में अच्छी स्थिति थी। मौर्यकालीन सामाजिक व्यवस्था में शूद्रों का चौथा स्थान था। शूद्र वर्ग, श्रम कृषि एवं शिल्प, व्यवसाय करते थे। कौटिल्य शूद्रों को भी 'आर्य' कहते हैं। शूद्रों को सम्पत्ति का अधिकार था। कौटिल्य ने शूद्रों को सेना में सैनिक के रूप में कार्य करने की अनुमति दी थी। मौर्यकाल में शूद्रों को नए विजित क्षेत्रों में जमीनें देकर कृषि करने को प्रोत्साहित किया जाता था। शूद्रों से समाज में 'विष्टि' लेने के प्रमाण भी मिलते हैं।

मौर्यकाल में शूद्रों की सामाजिक एवं धार्मिक निर्योग्यताएँ विध्यमान थी, किन्तु इन पर कठोर प्रतिबंध नहीं था। अशोक के अभिलेखों में शूद्रों से अच्छे व्यवहार का निर्देश दिया है। मौर्यकालीन समाज में वर्ण संकर जातियाँ भी विद्यमान थीं। कौटिल्य ने 15 प्रकार की वर्ण संकर जातियों का उल्लेख किया है। जिनका प्रादुर्भाव अनुलोम – प्रतिलोम विवाहों तथा सामाजिक विधि – विधानों के उल्लंघन से हुआ होगा। ये मुख्य बस्ती से दूर अलग बस्ती में निवास करते थे। इन पर अनेक प्रकार के सामाजिक एवं धार्मिक प्रतिबंध थे। यूनानी लेखकों एवं मेगस्थनीज ने मौर्यकालीन समाज में सात जातियों – दार्शनिक, कृषक सैनिक, अहीर, कारीगर, निरीक्षक, मंत्री एवं परामर्शदाता का उल्लेख किया है।

1.3.2 दास प्रथा

दासप्रथा, प्राचीन भारतीय समाज की वास्तविकता थी। मौर्यकाल में भी दास प्रथा विद्यमान थी, हालांकि यूनानी लेखकों एवं मेगस्थनीज ने लिखा है कि, मौर्यकाल में दास प्रथा नहीं थी। वस्तुतः भारत में दासों के साथ इतना अच्छा व्यवहार किया जाता था कि, यूनानी लेखक दास प्रथा की विद्यमानता को पहचान नहीं सके। यूनान की तरह क्रूर एवं कठोर व्यवहार दासों के साथ नहीं होता था और इसी कारण यूनानी लेखक भारत में दास प्रथा को समझ नहीं पाये थे। इतिहासकार रीज डेविड्ज कहते हैं कि, मौर्यकालीन समाज में दासों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था, उन्हें घरेलू नौकरों की तरह रखा जाता था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में नौ प्रकार के दासों का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने बड़े पैमाने पर दासों को कृषि कार्यों में लगाये रखा था। दासों को सम्पत्ति रखने एवं बेचने का अधिकार प्राप्त था। इसके साथ ही, दासों को दासत्व मुक्ति का भी अधिकार था। दास, सम्पत्ति या मूल्य प्रदान करके दास प्रथा से मुक्त हो सकता था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में दासों के साथ गलत व्यवहार करने पर दण्ड का प्रावधान किया था। अशोक ने भी अपने अभिलेखों में दासों के साथ समान एवं मधुर व्यवहार करने का निर्देश दिया है। अतः स्पष्ट है कि, मौर्यकालीन समाज में दासों की स्थिति पश्चिमी देशों की अपेक्षा बहुत अच्छी थी।

1.3.3 परिवार एवं विवाह

मौर्यकालीन समाज में संयुक्त परिवार व्यवस्था थी। परिवार पितृसत्तात्मक होते थे। समाज में विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता था। कौटिल्य ने आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है– ब्राह्म, प्रजापात्य, आर्ष, देव, असुर, गान्धर्व, राक्षस एवं पिशाच विवाह। समाज में प्रथम चार विवाहों को उचित तथा अंतिम चार को अनुचित माना जाता था। यूनानी लेखकों ने आर्ष, प्राजापत्य, असुर एवं स्वयंवर विवाहों का उल्लेख किया है। मेगस्थनीज ने लिखा है कि, विवाह का उद्देश्य जीवन साथी प्राप्त करना, भोग एवं संतानोत्पत्ति करना था। मौर्यकाल में सोलह वर्ष के लड़के एवं बारह वर्ष की लड़की का विवाह आदर्श माना जाता था। समाज में बहुविवाह, विधवा विवाह, पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित थी। समाज में अंतर्जातीय विवाहों को भी मान्यता प्राप्त थी। सगोत्र, सप्रवर, सपिण्ड विवाहों को अनुचित माना जाता था। समाज में अनुलोम – प्रतिलोम विवाहों के भी प्रमाण मिलते है।

1.3.4 स्त्रियों की स्थिति

मौर्यकाल में स्त्रियों की स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं थी। उनकी स्वतंत्रता पर पर्याप्त रुप से प्रतिबंध लगा दिया गया था तथा कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में सामाजिक कड़े नियमों के उल्लंघन पर अत्यधिक कठोर शारीरिक एवं आर्थिक दण्डों का उल्लेख किया है। स्त्रियाँ उच्च शिक्षा से वंचित हो गयी थी। स्त्रियों के विविध कलाओं में प्रवीणता के उल्लेख मिलते है। समाज में वेश्यावृति प्रचलित थी। राज्य ने वेश्यावृति पर निगरानी एवं नियंत्रण के लिए 'गणिकाध्यक्ष' नामक पदाधिकारी की नियुक्ति की थी। मौर्यकाल में स्त्रियों को विधवा–विवाह, संबंध–विच्छेद, संपत्ति पर अधिकार आदि के अधिकार प्राप्त थे। मेगस्थनीज ने लिखा है

कि, स्त्रियां राजा की अंगरक्षिकाएँ थी, वे गुप्तचरों के रुप में भी कार्य करती थी तथा पति के दुर्व्यवहार करने पर न्यायालय की शरण में जा सकती थी। कौटिल्य के साथ–साथ इस काल के बौद्ध – जैन अनुश्रुतियां सती – प्रथा का उल्लेख नहीं करते हैं किन्तु यूनानी लेखकों ने उत्तरी – पश्चिमी भारत में सैनिकों की स्त्रियों के सती होने का उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि, समाज एवं परिवार में पर्दे की प्रथा नहीं थी कौटिल्य ने नियोग प्रथा की भी अनुमति प्रदान की है। नियोग प्रथा के तहत विशेष परिस्थितियों में कोई भी स्त्री पर पुरूष का वरण करके संतान उत्पन्न कर सकती थी। दहेज प्रथा के भी प्रमाण है।

1.3.5 खानपान, रहन–सहन एवं नैतिकता

मौर्यकालीन समाज का नैतिक स्तर उच्च एवं खानपान तथा रहन–सहन सीधा–सादा था। मौर्यकाल में शाकाहारी एवं माँसाहारी दोनों प्रकार का भोजन किया जाता था। शाकाहारी भोजन में गेहूँ, चावल, जौ, सब्जियाँ, फल, दूध, शरबत आदि का सेवन करते थे। यूनानी लेखक चावल के भात को भारतीयों का प्रिय भोज्य बताते हैं। यूनानी लेखक भोजन में पकवानों के परोसे जाने का भी उल्लेख करते हैं। मौर्यकाल में सम्राट और अन्य लोग माँसाहार के शौकीन थे। अशोक के अभिलेखों एवं मेगस्थनीज के विवरण से ज्ञात है कि, सम्राट के लिए अनेक प्रकार के पशु – पक्षियों का माँस परोसा जाता था। बौद्ध धर्म के प्रभाव में आकर बाद में अशोक ने शाही भोजन में माँस पर प्रतिबंध लगा दिया था। यूनानी लेखकों ने लिखा है कि, लोग मसालेदार पका हुआ माँस खाते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी लोगों के माँस खाने का पता चलता है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में माँस बेचने वालों का विवरण दिया। पशु–पक्षियों को मारने के लिए अनेक वधगृहों का उल्लेख मिलता है। मेगस्थनीज ने लिखा है कि, भारतीय लोग भोजन जमीन पर बैठकर करते थे, भोजन करते समय एक तिपाई के आकार की मेज उनके सामने रख दी जाती थी, जिस पर सोने का प्याला रखा होता था। भोजन में चावल एवं अन्य पकवान परोसे जाते थे। मौर्यकालीन समाज में सुरापान का भी प्रचलन था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में मदिराओं और उनकी निर्माण प्रणालियों का विवरण दिया है। मौर्य प्रशासन ने सुसंगठित मदिराओं की स्थापना की थी। मदिरालयों में बैठने, सोने एवं खाने की व्यवस्था होती थी। राज्य मदिरालयों पर कड़ी नजर रखता था। मदिरा शासन वर्ग एवं क्षत्रियों को विशेष प्रिय थी। सामान्य जनता में मदिरा का अधिक प्रचलन नहीं था।

भारतीयों का सामाजिक जीवन चिरकाल से नैतिक रूप से बहुत ऊँचा रहा है। मौर्यकाल में भी सामान्यजन का नैतिक स्तर बहुत ऊँचा था। मेगस्थनीज ने लिखा है कि, मौर्यकाल में जनता का सामाजिक जीवन सरल, सादा एवं सुव्यवस्थित था। सामान्यजन चरित्रवान, सत्यवादी, मितव्ययी एवं साहसी थे। समाज में चोरी करने एवं झूठ बोलने को पाप माना जाता था। सत्य, अहिंसा, उदारता, सहिष्णुता, दया, अतिथि सत्कार आदि उच्च नैतिक गुण विद्‌यमान थे। अशोक ने भी अपने अभिलेखों में जनता को सद्‌मार्ग पर चलने एवं पापों से दूर रहने की सलाह दी है। मेगस्थनीज ने लिखा है कि, लोग अपनी सम्पत्ति को बिना किसी सुरक्षा के घरों में छोड़ देते थे, चोरी – चपारी का डर बहुत कम था। लोग बहुत कम न्यायालयों में न्याय के लिए जाते थे। अतः स्पष्ट है कि, मौर्यकालीन सामाजिक लोगों का नैतिक स्तर बहुत ऊँचा था, जिसमें निश्चित रूप से धर्म की सकारात्मक भूमिका रही होगी।

1.3.6 मनोरंजन के साधन

मौर्यकालीन समाज में दैनिक जीवन को आनंदित एवं प्रफुल्लित रखने के लिए मनोरंजन के अनेक साधन विद्‌यमान थे। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र ऐसे कलाकारों का उल्लेख किया है जो राज्य में राजकीय अनुज्ञा पत्र (लाईसेन्स) लेकर मनोरंजन करने का कार्य करते थे। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में गाने–बजाने वालों, नट, नर्तक, मदारी, चारण, रस्सी पर नाचकर कर्तब दिखाने वाले, विविध प्रकार की मुंह से आवाज निकाल कर

मनोरंजन करने वालों का उल्लेख किया है। शिकार खेलने की प्रथा राजवंशीय लोगों के साथ–साथ सामान्य जनता में भी लोकप्रिय थी। यूनानी लेखक एलियन मनुष्यों एवं पशुओं में मल्ल युद्धों एवं रथदौड़ का मनोरंजन के साधन के रूप में विवरण देता है। कालान्तर में अशोक ने पशुओं एवं मनुष्यों के मध्य मल्ल युद्ध की प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया था। मेगस्थनीज ने मल्ल युद्ध, घुड़दौड़, रथदौड़, साँड युद्ध, विहार यात्रा का मनोरंजन के साधन के रूप में विवरण दिया है। मौर्यकालीन समाज में समाजों एवं उत्सवों द्वारा मनोरंजन के विधि रूपों का आयोजन किया जाता था। विशेष त्यौहारों एवं सामाजिक अवसरों पर भी आमोद–प्रमोद के कार्यक्रमों का आयोजन होता था। ग्रामीण स्तर पर अनेक प्रकार के खेलों एवं तमाशों का आयोजन होता था। अशोक के अभिलेखों एवं मेगस्थनीज के विवरण से ज्ञात है कि, सम्राट विहार यात्रा पर जाता था। सम्राट जब शिकार पर जाता था, तब पूरी सुरक्षा व्यवस्था के साथ जाता था। अशोक ने अपने शासनकाल में विहार यात्राओं एवं समाजों पर प्रतिबंध लगा दिया था।

1.3.7 वस्त्राभूषण

मौर्यकालीन समाज स्त्री एवं पुरूष दोनों आभूषणों के शौकीन थे। धातु एवं मिट्टी दोनों के आभूषणों का उल्लेख मिलता है। सामान्य जनता सूती वस्त्रों को पहनती थी। मेगस्थनीज ने लिखा है कि, भारतीय सुन्दर चटकीले रंगों के वस्त्रों को पहनते थे। वस्त्रों पर सोने की कड़ाई की जाती थी। सुन्दर मलमल के वस्त्रों पर फूलदार पच्चीकारी की जाती थी। वस्त्रों को मूल्यवान रत्नाभूषणों से सुसज्जित करने के भी प्रमाण है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. कौटिल्य ने शूद्रों को कहा है ?
   (क) आर्य (ख) अनार्य
   (ग) अछूत (घ) इनमें से कोई नहीं

6. कौटिल्य ने कितने प्रकार की वर्ण संकर जातियों का उल्लेख किया है?
   (क) 13 (ख) 14
   (ग) 15 (घ) 16

3. मौर्यकाल में वेश्यावृति पर निगरानी एवं नियंत्रण के लिए नियुक्त था ?
   (क) सीताध्यक्ष (ख) सुराध्यक्ष
   (ग) गणिकाध्यक्ष (घ) इनमें से कोई नहीं

4. किस मौर्य शासक ने विहार यात्राओं पर प्रतिबंध लगाया था ?
   (क) चन्द्रगुप्त मौर्य (ख) बिन्दुसार
   (ग) अशोक (घ) इनमें से कोई नहीं

5. मौर्यकालीन समाज में परिवार होते थे ?
   (क) पितृसत्तात्मक (ख) मातृसत्तात्मक
   (ग) दोनों प्रकार के (घ) इनमें से कोई नहीं

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) दास प्रथा ।
   (ख) स्त्रियों की स्थिति ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) मौर्यकालीन वर्णाश्रम व्यवस्था का विवरण दीजिये ?

1.4 आर्थिक स्थिति

मौर्यकाल में राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी। कौटिल्य के कठोर प्रशासन में कृषि, उद्योग, व्यापार – वाणिज्य तथा कर व्यवस्था के सुदृढ़ होने के कारण चतुर्दिक समृद्धि थी। साथ ही, मौर्यकाल में राजनीतिक एकता स्थापित हो जाने से भी आर्थिक क्रियाकलापों को काफी बल मिला। कृषि, व्यापार एवं वाणिज्य, उन्नत शिल्प, ठोस कर प्रणाली आदि अर्थव्यवस्था की रीढ़ थी। कौटिल्य ने कृषि, पशुपालन और वाणिज्य को 'वार्ता' कहा है।

1.4.1 कृषि एवं पशुपालन

कृषि, मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था की धुरी थी। बहुसंख्यक प्रजा कृषि कार्यो में संलग्न थी। राज्य कृषि एवं कृषकों की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखता था। युद्ध के समय में भी कृषि एवं कृषकों को कोई हानि नहीं पहुँचायी जाती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कृष्ट (जुती हुई), अकृष्ट (बिना जुती हुई), स्थल (ऊँची) आदि अनेक प्रकार की भूमियों का वर्णन किया गया है। आदेवमातृक भूमि, वह भूमि होती थी, जिसमें बिना वर्षा के भी अच्छी फसल हो जाती थी। यूनानी लेखकों मेगस्थनीज, स्ट्रैबों एवं एरियन राजा को भूमि का स्वामी बताते हैं। किन्तु कौटिल्य निजी भूमि का भी संकेत देता है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में क्षेत्रक (भू–स्वामी), उपवास (काश्तकार) एवं स्वाम्य शब्दों का प्रयोग किया है। विद्वानों ने स्वाम्य से तात्पर्य निजी भूमि स्वामी से लगाया है। इससे भूमि पर व्यक्ति का अधिकार सिद्ध होता है, जिसे वह स्वयं अपनी इच्छा से क्रय–विक्रय कर सकता था। राजकीय भूमि को 'सीता' कहा जाता था, इसकी संपूर्ण आय या फसल सीधे केन्द्रिय खजाने में जाती थी। सीता भूमि के प्रबंधन के लिए 'सीताध्यक्ष' नामक अधिकारी नियुक्त किया गया था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में वर्ष में तीन फसलें–रबी की फसल, खरीफ की फसल, जायद की फसल उगाए जाने का उल्लेख किया है। वहीं, मेगस्थनीज वर्ष में दो बार फसलों को उगाये जाने की सूचना देता है। कृषि, हल और बैलों की सहायता से होती थी। भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए खाद् का प्रयोग किया जाता था।

मौर्य प्रशासन कृषि सिंचाई का विशेष प्रबंध करता था। इसे 'सेतुबंध' कहा जाता था। कौटिल्य ने सिंचाई के लिए नदी, तालाब, कुएँ, नहर का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने कुएँ से राहट एवं पवन चक्की द्वारा सिंचाई का भी उल्लेख किया है। सुदर्शन झील राज्य सिंचाई का प्रमुख उदाहरण है, जिसका निर्माण चन्द्रगुप्त मौर्य के सुराष्ट्र प्रान्त के गवर्नर पुष्यगुप्त वैश्य ने प्रारंभ कराया और अशोक के गवर्नर तुषास्य ने पूर्ण कराया। जिसका उल्लेख रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में मिलता है। मौर्यकाल में चावल, गेहूँ, दालें, सरसों, मूंग, गन्ना, कपास, आलू, सब्जियाँ आदि की फसल होती थी। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में धान की फसल को सर्वोत्तम तथा गन्ने की फसल को सर्वाधिक निकृष्ट बताया है। मेगस्थनीज ने लिखा है कि, 'भारत की भूमि बहुत उपजाऊ है, यहाँ पर्याप्त फसल होती है। यहाँ वर्षा बहुत होती है। अकाल यहाँ कभी नहीं पड़ता है। खाने–पीने की वस्तुऐं पर्याप्त एवं सस्ती है।'

कृषि में बैलों के बड़ते महत्व ने पशुपालन को प्रोत्साहन दिया। कृषि के साथ ही पशुपालन कृषकों का प्रमुख व्यवसाय था। भार वाहन पशुओं के साथ ही दुधारू पशुओं का पालन भी कृषक करते थे। वस्तुतः पशुपालन भारत के सामाजिक आर्थिक जनजीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा प्राचीनकाल से ही रहा है। राज्य पशुओं की सुरक्षा एवं चिकित्सा का पूरा प्रबंध करता था।

1.4.2 व्यवसाय एवं उद्योग

मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था में व्यवसायों एवं उद्योग धन्धों की आधारभूत भूमिका थी। मौर्य प्रशासन ने साम्राज्य में व्यवसायों एवं उद्योग धंधों को नियामक रूप प्रदान करके राजकीय विभागों एवं अधिकारियों के

द्वारा आर्थिक गतिविधियों को संरक्षित, सुरक्षित एवं प्रोत्साहित किया। मौर्यकाल में विविध प्रकार के व्यवसाय एवं उद्योग धंधे संचालित थे। वस्त्र, धातु, सूरा व्यवसाय एवं विविध प्रकार शिल्प उन्नत अवस्था को प्राप्त कर चुके थे। वस्त्र उद्योग मौर्यकाल का प्रमुख व्यवसाय था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में बंग, वत्स, अपरान्त, काशी, मदुरा आदि सूती वस्त्र उद्योग के रूप में वर्णित है। इन नगरों में सूती वस्त्र तैयार करने वृहद् एवं लघु उद्योग संचालित थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मगध, पुण्डू एवं सुवर्ण कुड्य को सन के वस्त्र उद्योग के लिए उन्नत बताया गया है। बंगाल में उन्नत श्रेणी का मलमल बनाया जाता था। नेपाल में ऊनी वस्त्र उद्योग उन्नत अवस्था का था। वहाँ से ऊँनी वस्त्र एवं कंबल मगाये जाते थे। चीन से रेशमी वस्त्रों के आयात का भी उल्लेख मिलता है। मेगस्थनीज लिखता है कि, भारतीय सोने–चाँदी एवं रत्न जड़ित वस्त्र पहनते थे। इससे स्पष्ट है कि, वस्त्र उद्योग एवं वस्त्रों का व्यवसाय उन्नत अवस्था में था। कौटिल्य ने लिखा है कि, वस्त्र निर्माण उद्योग 'सूत्राध्यक्ष' नामक अधिकारी के निरीक्षण में चलता था।

मौर्यकाल में काष्ठशिल्प अत्यन्त उन्नत अवस्था में था। मौर्यकाल में नगरों के भवन लकड़ी के बने होने के प्रमाण मिले हैं। पाटलिपुत्र का राजभवन एवं विभिन्न भवन लकड़ी के बने थे। लकड़ी की विविध जीवनोपयोगी वस्तुऐं बनायी जाती थी। रथ, बैलगाड़ी, हल, तख्ते, दरवाजे, जहाजों एवं नौकाओं आदि का निर्माण लकड़ी से होता था। यूनानी लेखक लकड़ी से जहाजों एवं नौकाओं के निर्माण उद्योग को उत्कृष्ट स्तर का बताते हैं। इस प्रकार मौर्यकाल में काष्ठकला चर्मोत्कर्ष पर थी। मौर्यकाल वनोपज राजस्व का एक बड़ा साधन था। इसके लिए मौर्य प्रशासन ने 'आटविक' नामक अधिकारी नियुक्त किया था, जो वन विभाग का प्रधान होता था।

मौर्यकाल में मदिरा व्यवसाय भी उन्नत दशा में था। राज्य में सुसंगठित मदिरालयों के उल्लेख मिलते हैं। कौटिल्य ने छः प्रकार की मदिराओं का उल्लेख किया है। मदिरालय राज्य के कठोर नियंत्रण में रहते थे, इसके लिए 'सुराध्यक्ष' की नियुक्ति की गयी थी। मौर्यकाल में पत्थरों पर कार्य करने वाले कारीगरों और शिल्पियों की दक्षता उत्कृष्ट अवस्था में थी। मौर्यकालीन अभिलेखों, स्तम्भों, मूर्तियों, स्तूपों, पाषाण गुफाओं आदि को देखने से प्रतीत होता है कि, इनका निर्माण अत्यन्त कुशल तक्षण शिल्पियों द्वारा किया गया होगा और निश्चित रूप से इन कुशल शिल्पियों का संगठन रहा होगा। मौर्यकाल में चर्म व्यवसाय का भी उल्लेख मिलता है। चर्म के वस्त्र एवं अनेक समाजोपयोगी वस्तुऐं बनायी जाती थी। मौर्यकाल में धातु से विधि प्रकार की वस्तुओं के निर्माण में दक्ष थे। धातुकर्मी धातुओं को गलाने, शुद्धी करने एवं मिश्रित धातु के निर्माण में कुशल थे। सोने, चाँदी, ताँबे, काँसें, पीतल, लोहा आदि धातुओं से विविध जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुओं का निर्माण होता था। राज्य का खानों एवं खनिज पदार्थो पर पूर्ण नियंत्रण रहता था। इसके लिए 'आकराध्यक्ष' नामक अधिकारी राज्य की ओर नियुक्त किया गया था। सोने–चाँदी की धातु से विविध प्रकार के आभूषण बनाये जाते थे। लोहे, ताँबे, तीतल आदि धातुओं से अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण किया जाता था। कौटिल्य ने समुद्र से प्राप्त विविध समुद्री रत्नों एवं वस्तुओं का उल्लेख किया है। जिनका उपयोग आभूषणों एवं औषधियों के व्यवसाय में किया जाता था।

1.4.3 व्यापार

मौर्यकाल की अर्थव्यवस्था में व्यापार का बड़ा योगदान था। कौटिल्य ने व्यापार एवं व्यापारियों के लिए ठोस आर्थिक नियामक विधानों को लागू किया था। राज्य व्यापार एवं व्यापारियों पर कठोर नियंत्रण के साथ ही उनकी सुरक्षा का पूरा प्रबंध करता था। मौर्य प्रशासन ने सड़क मार्गो, नदियों एवं समुद्रमार्ग से होने वाले देशी–विदेशी व्यापार के लिए उच्चाधिकारियों की नियुक्ति की थी। 'पण्याध्यक्ष' व्यापार एवं वाणिज्य तथा 'संस्थाध्यक्ष' व्यापारिक मार्गों का अधिकारी थी। मौर्यकाल के समय विदेशी व्यापार ईरान, रोम, मिश्र, सीरिया, यूनान, नेपाल, चीन एवं पूर्वी देशों के साथ होता था। भृगुकच्छ बंदरगाह से पश्चिमी देशों एवं ताम्रलिप्ति

बंदरगाह से पूर्वी देशों के साथ व्यापार होता था। सोपारा तथा बारबैरिकम् बन्दरगाह से भी विदेशी व्यापार होता था। मौर्यकाल में विदेशों से घोड़े, ऊन, ऊनी एवं रेशमी वस्त्र, मोती, मीठी शराब आदि वस्तुओं का आयात होता था। मौर्यकाल में हाथी दाँत की वस्तुऐं, मोती, बहुमूल्य लकड़ी, औषधियाँ, शंख, सीपियाँ, नील, कछुआ आदि का विदेशों को निर्यात किया जाता था। काशी, उज्जैन, कन्नौज, मगध, कौशांभी, तोसली, प्रयाग आदि आंतरिक व्यापार के केन्द्र थे।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में समुद्री जल मार्गों का उल्लेख करते हुए उन्हें 'संयानपथ' तथा समुद्री जहाजों को 'प्रवहरण' कहा है। राज्य ने व्यापारियों का लाभ भी तय कर रखा था। स्थानीय वस्तुओं पर 5 प्रतिशत तथा विदेशी वस्तुओं पर 10 प्रतिशत का लाभ लिया जा सकता था। निर्यात कर को 'निष्क्राम्य' तथा आयात कर को 'प्रवेश्य' कहा जाता था। आयात पर 20 प्रतिशत कर लगता था। बाजार में बेची जाने वाली वस्तु को 'पण्य' कहा जाता था। मौर्यकाल में 'पण्य संबंधी' चुंगी, तौल–माप, विदेशी व्यापार आदि का निरीक्षण क्रमशः शुल्काध्यक्ष, पोताध्यक्ष एवं अंतपाल किया करते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से विदित है कि, व्यापारियों द्वारा वस्तुओं की खरीदी एवं बेचने पर अनुचित लाभ उठाने तथा खाने–पीने की वस्तुओं में मिलावट करने एवं कम तौल पर राजकीय अर्थदण्ड का सामना करना पड़ता था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजधानी पाटलीपुत्र एवं राज्य के प्रमुख व्यापारिक नगरों के राजमार्गों एवं सड़कों से जुड़े होने का उल्लेख किया है। राजमार्गो एवं अन्य सड़कों की सुरक्षा का पूर्ण दायित्व राज्य द्वारा उठाया जाता था।

1.4.4 मुद्रा

मौर्य साम्राज्य में ठोस मुद्रा प्रणाली की स्थापना हो चुकी थी। कौटिल्य ने मुद्रा व्यवस्था को साम्राज्य में सुचारू रूप से संचालित होते रहने के लिए मुद्रा एवं टकसाल विभाग की स्थापना की थी, जिसका प्रमुख 'लक्षणाध्यक्ष' कहलाता था। मुद्राओं का परीक्षण 'रूपदर्शक' नामक अधिकारी करता था। कोई व्यक्ति धातु एवं निर्धारित शुल्क देकर सिक्का बनवा सकता था। राज्य में सोने–चाँदी एवं ताँबे की मुद्राएँ चलती थी। 'पण' मौर्य साम्राज्य की राजकीय मुद्रा थी। एक पण 3/4 तोले के बराबर चाँदी का सिक्का था। अधिकारियों का वेतन 'पण' में ही दिया जाता था। मौर्य साम्राज्य का सर्वाधिक प्रचलित सिक्का चाँदी का 'कार्षापण' था। सोने का सिक्का–निष्क एवं सुवर्ण, चाँदी का पण या रूप्यरूप, कार्षापण, धरण, शतभान, ताँबे का माषक एवं काकणी कहलाता था। मयूर, पर्वत अर्द्धचन्द्र चिन्ह् छाप वाली 'आहत रजत मुद्राएँ' मौर्य साम्राज्य में खूब चलती थीं।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः
   (क) व्यापार ।
   (ख) मुद्रा ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) मौर्यकालीन कृषि एवं पशुपालन का विवरण दीजिये ?

1.5 भाषा, शिक्षा एवं साहित्य

मौर्यकाल में भाषा, शिक्षा एवं साहित्य प्रगतिशील अवस्था में थे। मौर्यकाल में सामान्य जनता की भाषा पाली (प्राकृत) थी। अभिजात वर्ग एवं उच्च वर्णों में संस्कृत भाषा बोली जाती थी। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय संभवतः संस्कृत राजकीय भाषा थी, किन्तु अशोक के समय पाली (प्राकृत) राजकीय भाषा बन गयी थी। बहुसंख्यक आम जनता की भाषा होने के कारण ही अशोक के अधिकांश अभिलेख पाली (प्राकृत) भाषा में उत्कीर्ण किये गये है। ब्राह्मण धार्मिक शिक्षा संस्कृत भाषा में दी जाती थी। ब्राह्मण साहित्य भी संस्कृत भाषा में ही था। मध्यदेश में मागधी भाषा बोली जाती थी। मौर्यकाल में सर्वाधिक ब्राह्मी लिपि का प्रचलन था, जिसकी लेखन

शैली बाँये से दाँये थी। अशोक के अभिलेखों में सर्वाधिक ब्राह्मी लिपि का ही उपयोग किया गया है। वैसे, अशोक के अभिलेख ब्राह्मी, खरोष्ठी, अरामाईक एवं ग्रीक लिपि चार लिपियों में मिलते हैं।

मौर्यकाल में शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा था। सामान्य जनता, राज्य द्वारा प्रजा को जारी किये गये राज्यादेशों को समझ सकती थी। अशोक द्वारा साम्राज्य में प्रजा के दिशा–निर्देश हेतु जारी किये गये अभिलेखों, शिलालेखों स्तंभ लेखों आदि को प्रजा पढ़ सकती थी। यूनानी लेखकों ने उल्लेख किया है कि, मौर्य साम्राज्य के राजमार्गों पर दूरी सूचक पत्थर लगे होते थे और उन पर एक निश्चित दूरी अंकित होती थी। अतः यह आसानी से समझा जा सकता है कि, सामान्य जनता साक्षर थी। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० वी० ए० स्मिथ ने तो यहाँ तक लिखा है कि, ''मौर्यकाल में आम जनता, अंग्रेजी भारत की अपेक्षा अधिक शिक्षित थी।'' मौर्यकाल में शिक्षा के लिए अलग से कोई विभाग नहीं था। प्राचीनकाल की तरह मौर्यकाल में शिक्षा के स्त्रोत गुरूकुल और आश्रम थे। गुरूकुलों में धार्मिक संस्कारित शिक्षा के साथ ही जीवनोपयोगी शिक्षा भी दी जाती थी। मठ एवं विहार भी शिक्षा प्रदान करने के केन्द्र थे।

मौर्य प्रशासन शिक्षा दान करने वाले आश्रमों, गुरूकुलों, मठों एवं विहारों को मुक्त हस्त दान देता था। बौद्धों एवं जैनियों के धार्मिक केन्द्र भी शिक्षा प्रसार का कार्य करते थे। मौर्यकाल में तक्षशिक्षा, काशी, उज्जयिनी, मथुरा आदि शिक्षा के बड़े केन्द्र थे। तक्षशिला विश्वविद्यालय तो इस समय शिक्षा का विश्व प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र था। जहाँ विश्वभर से छात्र शिक्षा लेने आते थे। स्वयं चाणक्य भी तक्षशिला विश्वविद्यालय से शिक्षित था। मौर्यकालीन साहित्य की सबसे बड़ी निधी कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' है। प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य मोग्गलिपुत्त तिस्स ने 'कथावस्तु' रचना मौर्यकाल में ही की थी। प्रसिद्ध जैन आचार्य भद्रबाहु मौर्यकाल की देन थे, उन्होंने चन्द्रगुप्त मौर्य को जैन धर्म में दीक्षित किया था। सुबन्धु, वररूचि, जबूस्वामी, स्थूलभद्र, यशोभद्र, संभूति आदि अनेक विद्वान मौर्यकाल में हुए।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) मौर्यकालीन भाषा, शिक्षा एवं साहित्य का विवरण दीजिये ?

1.6 धार्मिक स्थिति

मौर्यकाल धार्मिक सहिष्णुता एवं समन्वय का काल था। इस काल में वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म एवं अन्य अनेक धार्मिक दार्शनिक विश्वासों की विद्यमानता थी, फिर भी आपस में कोई टकराव नहीं था, सभी अपने – अपने स्थान पर धार्मिक क्रियाकलापों में संलग्न थे। स्वयं मौर्य सम्राट भी विविध धर्मों को मानते थे। सम्राट 'चन्द्रगुप्त मौर्य' वैदिक धर्म मानते थे और जीवन के अंतिम समय में जैन धर्म को मानने लगे थे। महान मौर्य सम्राट 'अशोक' बौद्ध धर्म का अनुयायी था और उसने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के अनेक कार्य किये। मौर्य शासक 'सम्प्रति' जैन धर्म अनुयायी था। कहने का तात्पर्य यह है कि, मौर्य सम्राटों ने विविध धर्मो को अपनाया! किन्तु उन्होंने अपनी प्रजा को किसी धर्म विशेष को मानने के लिए बाध्य नहीं किया।

1.6.1 वैदिक या ब्राह्मण धर्म

मौर्यकाल में विशेषतः वैदिक धर्म की ही प्रधानता थी। बहुसंख्यक जनता वैदिक धर्म की अनुयायी थी। वैदिक धर्म के आचार–विचार, वैदिक यज्ञ एवं कर्मकाण्डों की प्रधानता थी। अशोक के शासनकाल में वैदिक यज्ञों एवं कर्मकाण्डों में कमी आयी। मेगस्थनीज वैदिक यज्ञों में पशुबलि का उल्लेख करता है। मेगस्थनीज तीर्थ यात्रा का भी उल्लेख करता है, वह गंगा को सर्वाधिक पावन नदी कहता है। मेगस्थनीज एवं यूनानी लेखक कृष्ण एवं शिव की उपासना का उल्लेख करते हैं। समाज में बहुदेववाद का उल्लेख अर्थशास्त्र में भी मिलता है। वैदिक धर्म के अनुयायी ब्राह्मण दार्शनिकों की धार्मिकता, पवित्रता एवं विद्वता की प्रशंसा मेगस्थनीज के

साथ ही अन्य यूनानी लेखक भी करते हुए कहते है कि इनका बौद्धिक एवं आध्यात्मिक स्तर अत्यन्त ऊँचा है। इतिहासकार नीलकंठ शास्त्री लिखते हैं कि, ''बौद्ध ग्रंथों में महाशाला नामक ब्राह्मणों के एक वर्ग का वर्णन मिलता है, जो सम्राट द्वारा दान दी गयी कृषि भूमि से कर वसूलते थे, जिसका उपयोग शिक्षा के प्रसार एवं धार्मिक क्रियाकलापों में करते थे।'' मेगस्थनीज 'मेन्डनिस' नामक दार्शनिक बौद्धिक ब्राह्मण का उल्लेख करता है, जिसने सिकंदर के द्वारा मृत्यु दण्ड देने की धमकी को दर किनार करके उससे मिलने से इंकार कर दिया था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से देवी–देवताओं के मंदिरों एवं मूर्तियों का विवरण मिलता है। पतंजलि के महाकाव्य से मौर्यकाल में देवी–देवताओं की मूर्तियों के विक्रय का उल्लेख मिलता है। मौर्यकाल में देवी–देवताओं की मूर्तियों के निर्माण करने वाले शिल्पियों का उल्लेख मिलता है, इन्हें 'देवताकरू' कहा जाता था।

1.6.2 बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म मौर्यकाल में अशोक के शासनकल में सर्वाधिक प्रभावशाली रहा। हालाँकि अशोक से पूर्व भी बौद्ध धर्म समाज में आदर के साथ प्रचलित था किन्तु अशोक ने स्वयं राजकीय प्रश्रय प्रदान करके बौद्ध धर्म को अधिक प्रभावशाली बना दिया था। अशोक ने धम्म (बौद्ध धर्म) के प्रसार – प्रचार के लिए ठोस नीतिगत फैसले लिए। इसके लिए अशोक ने प्रशासनिक मशीनरी का भरपूर उपयोग किया। साथ ही, स्वयं ने भी आगे बढ़कर सक्रिय रूप से धम्म के प्रसार – प्रचार का झण्डा अपने हाथों में थाम लिया था। अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार – प्रसार के लिए सार्वजनिक रूप से बौद्ध धर्म में आस्था प्रगट की। बौद्ध धर्म से संबंधित स्थलों की तीर्थ यात्रा की तथा बौद्ध धर्म को चोट पहुँचाने वालों को वह प्रत्यक्षतः चेतावनी देता है।

अशोक ने प्रशासन में फेरबदल करते हुए प्रशासनिक अधिकारियों को अतिरिक्त जिम्मेदारी सौंपी। अशोक ने अपने राज्याभिषेक (269 ई० पू०) के बारहवें वर्ष (258 ई० पू०) 'धम्मानुशासन' धर्म की शिक्षा प्रकाशित करवाया एवं प्रचार के लिए पदाधिकारियों की नियुक्ति की। अशोक के तीसरे शिलालेख में वर्णित है कि, उसने राजुकों, युक्तों, एवं प्रादेशिकों को प्रति पाँचवे वर्ष धर्म प्रचार हेतु नियुक्त कर यात्रा करने का आदेश दिया। अशोक अभिलेखों में इसे 'अनुसंधान' की संज्ञा दी गयी है। साथ ही, अशोक ने धर्म की वृद्धि एवं प्रज्ञा के नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान के लिए राज्याभिषेक (269 ई० पू०) में चौदहवे वर्ष (256 ई० पू०) में नवीन अधिकारियों के रूप में 'धर्ममहामात्रों की नियुक्ति की। पाँचवे शिलालेख से स्पष्ट है कि, ''धर्ममहामात्रों का मुख्य कार्य प्रजा की आध्यात्मिक आवश्यक्ताओं की पूर्ति करना था।''

अशोक स्वयं भी प्रत्यक्ष रूप से बौद्ध धर्म में आस्था प्रगट करता है। अशोक मास्की लघु शिलालेख में स्वयं को 'बुद्ध शाक्य' कहता है। भब्रु लघु शिलालेख (बैराट, राजस्थान) में अशोक बौद्ध त्रिरत्नों बुद्ध, धम्म, संघ में आस्था प्रगट करता है। अशोक ने बौद्ध धर्म में आस्था प्रकट करते हुए बौद्ध धर्म स्थलों की तीर्थ यात्रा की थी। ये धार्मिक यात्राएँ 10 वर्षों में होती थीं, प्रथम धर्म यात्रा (बौद्ध स्थल तीर्थ यात्रा) राज्यभिषेक के 10 वें वर्ष (260 ई० पू०) में 'बोध गया' की की। द्वितीय, राज्यभिषेक के 20 वर्ष (250 ई० पू०) लुम्बिनी की की। लुम्बिनी (रूम्मिनदेई) अभिलेख में वर्णित है कि, अशोक ने भूमि कर आधा आर्थात् 1/8 कर दिया। अशोक, लुम्बिनी के पास स्थित निगाली सागर की भी यात्रा की। निगाली सागर स्तम्भ लेख में उत्कीर्ण है कि, अशोक ने राज्याभिषेक (269 ई० पू०) के चौदहवें वर्ष (256 ई० पू०), कनकमुनि बुद्ध के स्तूप को बढ़ाकर दो गुना करवाया तथा राज्याभिषेक के 20 वें वर्ष यहाँ की यात्रा की थी। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि, कनकमुनि प्रत्येक बुद्ध थे। 'प्रत्येक बुद्ध उसे कहते हैं, जो स्वयं तो ज्ञान प्राप्त कर लेता है किन्तु दूसरों को उसका उपदेश नहीं देता।' अशोक अपने आठवें शिलालेख में विहार यात्रा के स्थान पर धर्म यात्रा करने का उल्लेख करता है। अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रसार – प्रचार के तारतम्य में बुद्ध के अवशेषों (मूल 8 स्तूपों को खुदवाकर प्राप्त अवशेष) पर 84 हजार स्तूपों का निर्माण करवाया। बुद्ध के

अवशेषों पर स्तूप बनवाने की सूचना 'अहरौरा अभिलेख' (मिर्जापुर, जिला, उ० प्र०) देता है और यह संभवत् बुद्ध के अवशेषों पर अशोक द्वारा स्तूप बनाये जाने प्रथम उल्लेख करता है।

अशोक धम्म के प्रसार – प्रचार के साथ – साथ धम्म को चोट पहुँचाने वाले लोगों को सख्त लहजे में चेतावनी देने में पीछे नहीं हटता। अशोक साँची, सारनाथ एवं कौशाम्बी के अभिलेखों में संघ में फूट डालने वाले भिक्षुकों को चेतावनी देता है कि, यदि वे दोषी पाये गये, तो उन्हें श्वेत वस्त्र पहना कर संघ से बाहर निकाल दिया जायेगा। इस प्रकार अशोक बौद्ध धर्म के संगठनकर्ता की मुख्य भूमिका भी धारण कर लेता है, जैसाकि डॉ० डी० आर० भण्डारकर लिखते हैं कि, ''अशोक बौद्ध संघ (बुद्धिस्ट चर्च) का भी स्वामी या प्रमुख बन गया था तथा सम्राट और पोप (धर्म गुरू) दोनों की शक्तियाँ उसने धारण कर लीं थीं।''

अशोक ने बौद्ध धर्म को अपने जीवन एवं प्रशासनिक नीतियों में अधिक समाहित करते हुए अनेक कार्यों को संपादित किया। वह अब जनता को धर्म श्रावण अर्थात् धर्म संदेश देने लगा, जैसाकि सातवें स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है। उसने आम जनता के हितों को दृष्टिगत रखते हुए अनेक कार्य किये। जैसे, कुँए खुदवाना, वृक्ष लगाना, चिकित्सालयों तथा औषधियों की व्यवस्था करना, सड़कें बनवाना आदि। जिनका विस्तृत वर्णन सातवें स्तम्भ लेख एवं दूसरे शिलालेख में मिलता है।

साथ ही, अशोक अपने सम्पूर्ण क्रियाकलापों में अहिंसा के सिद्धान्त को प्रमुख स्थान प्रदान करता है। हिंसा का परित्याग करते हुए घोषणा करता है कि, अब वह शस्त्र – विजय का त्यागकर 'धर्म विजय' करेगा, जैसाकि तेरहवें शिलालोख में उल्लेखित है। चौथे शिलालेख में वर्णित है कि, अशोक राज्य में 'भेरी घोष' (युद्ध का शंखनाद) के स्थान पर सभी तरफ 'धर्म घोष' (धार्मिक वातावरण का बोलवाला) गूंज रहा है, अर्थात् ''युद्ध का त्याग कर धर्मिक कृत्यों से सारा राज्य आप्लावित हो रहा है।'' अशोक ने अहिंसा की नीति को तार्किक परिणति प्रदान करते हुए के अपने राज्याभिषेक (269 ई० पू०) के छब्बीसवें वर्ष (244 ई० पू०) में 'हिंसा निषेध' लागू किया। प्रथम शिलालेख में वर्णित है कि, उसने समाजों (उत्सवों) पर प्रतिबंध लगा दिया। इन समाजों (उत्सवों) में मनोरंजन के लिए पशु – पक्षियों की लड़ाई होती थी तथा नृत्य संगीत के साथ भोजन के लिए पशु – पक्षियों का वध किया जाता था। पाँचवे शिलालेख में अशोक ने उन पशुओं के नाम दिये हैं, जिनका वध दण्डनीय है।

अशोक ने प्रशासनिक व्यवस्था में जन कल्याण हेतु सुधार किये। अशोक ने दण्ड विधि में नरमता बरतते हुए कुछ सार्थक कदम उठाये। अशोक प्रतिवर्ष अपने 'राज्याभिषेक – दिवस' पर कैदियों की सजा माफ करते हुए जेलों से मुक्त करता था, जैसाकि पाँचवे स्तम्भ लेख में उल्लेखित है। विद्वानों का मानना है कि, अशोक ने अपने शासनकाल में कुल 26 बार सामूहिक रूप से कैदियों (अपराधियों) को आम माफी दी थी। इसके साथ ही, अशोक ने मृत्यु दण्ड पाये अपराधियों के प्रति नरमता बरतते हुए मृत्यु दण्ड से पूर्व 'तीन दिन' का अतिरिक्त समय देने का आदेश दिया, जैसाकि चौथे स्तम्भ लेख में उल्लेख है।

अशोक ने धम्म की वृद्धि एवं प्रसार – प्रचार के लिये तथा धम्म में अपनी आस्था को प्रगट करते हुए 250 ई० पू० में 'तृतीय बौद्ध संगीति' का आयोजन किया। यह संगीति पाटलिपुत्र के अशोक विहार में 'मोग्गलिपुत्र तिस्स' की अध्यक्षता में हुई। संगीति में 'अभिधम्मपिटक' का सृजन किया गया। ज्ञातव्य रहे कि, इस तृतीय बौद्ध संगीति का उल्लेख मात्र दीपवंश एवं एवं महावंश करते हैं। अशोक के किसी भी अभिलेख में इसका उल्लेख नहीं आया है। दीपवंश – महावंश में वर्णित है कि, अशोक ने राज्याभिषेक का सत्रहवें तथा महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्माण के 236 वर्ष बाद पाटलिपुत्र में 'मोग्गलिपुत्र तिस्स' की अध्यक्षता में एक 'बौद्ध संगीति' आयोजित की गयी। कतिपय विद्वानों का मानना है कि, अशोक का भब्रू (वैराट, राजस्थान) अभिलेख 'तृतीय बौद्ध संगीति' के प्रमाण देता है। इस विषय में डॉ० डी० आर० भण्डारकर का मानना है कि, भब्रू अभिलेख में सम्राट अशोक के वक्तव्यों से विदित होता है कि, वह इस संगीति में आये बौद्ध भिक्षुओं

को अपना परिचय देता है तथा भिक्षुओं को धर्म ग्रंथों के अध्ययन की सलाह देता है तथा धम्म की दीर्घकालीन होने की कामना करता है।

अशोक ने तृतीय बौद्ध संगीति के बाद विदेशों में बौद्ध धर्म प्रचार को भेजा। अशोक का दूसरा, पाँचवाँ, तेरहवाँ शिलालोख एवं सातवाँ स्तम्भ लेख तथा दीपवंश, महावंश, सामंतपासादिका धर्म प्रचार का उल्लोख करते हैं। साथ ही, साँची स्तूप (जिला रायसेन, मध्य प्रदेश) से प्राप्त एक पट्टिका पर दस धर्म प्रचारकों का नाम लिखा मिला है। तेरहवें शिलालेख में यवन (यूनानी) राजाओं का उल्लेख में, तुरमाय (मिस्त्र का यूनानी राजा टालमी द्वितीय फिलाडेल्फस), अंतिकिनी (मेसीडोनिया का यूनानी राजा ऐण्टीगोनस), मग (सीरिया का यूनानी राजा मगा, मैगस), अंतियोक (सीरिया का यूनानी राजा एण्टियोकस द्वितीय थियोस), अलिकसुन्दर (एपिरस का एलेग्जेण्डर) धर्म प्रचार भेजे। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों तथा देशों में अशोक ने धर्म प्रचार को भेजे।

	स्थान (देश)		प्रचारक
1.	कश्मीर, गंधार	–	मज्झन्तिक
2.	यवन देश (यूनानी राज्य)	–	महारक्षित
3.	मैजू (और मांधाता)	–	महादेव
4.	अपरान्तक	–	धर्मरक्षित
5.	हिमालय प्रदेश	–	मज्झिम
6.	महाराष्ट्र	–	महाधर्मरक्षित
7.	बनवासी (उत्तर कनारा)	–	रक्षित
8.	सुवर्ण भूमि (पेगू, वर्मा)	–	सोन एवं उत्तरा
9.	श्रीलंका	–	महेन्द्र, संघमित्र, सम्बल, भद्रसाल

इस प्रकार अशोक ने दक्षिणी एवं पश्चिमी देशों में धम्म मिशनों (धर्म शिष्टाचार प्रतिनिधी मण्डल) के द्वारा संपर्क स्थापित किया। इन मिशनों की तुलना आधुनिक सद्भावना मिशनों से की जा सकती है।

1.6.3 जैन धर्म

जैन धर्म, मौर्यकालीन समाज में एक प्रमुख धर्म था। जैन धर्म के अधिकांश अनुयायी व्यापारी वर्ग एवं वैश्यों में से आते थे। व्यापारी वर्ग जैन धर्म के विकास एवं प्रसार के लिए प्रचूर धनराशि दान में देता था। मौर्यकाल में लगभग 300 ई० पू० में पाटलिपुत्र में प्रथम जैन धर्म सभा संपन्न हुई थी। जिसमें जैन धर्म के प्रधान भाग 12 अंगों का सम्पादन हुआ। यह सभा स्थूलभद्र एवं सम्भूति विजय के निरीक्षण में हुई थी। इसी जैन संगीति के बाद जैन धर्म श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदायों में बंट गया था। मौर्यकाल में मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य को जैन के छठे थेर (स्थविर) ने जैन धर्म में दीक्षित किया था। चन्द्रगुप्त ने जीवन का अंतिम समय भद्रबाहू के साथ दक्षिण भारत में श्रवणवेलगोला में व्यतीत किया था और इसी काल में दक्षिण भारत में जैन धर्म का प्रचार–प्रसार तीव्रता से हुआ। अशोक का पौत्र सम्प्रति भी जैन धर्म का अनुयायी था। उसके समय भी जैन धर्म का प्रसार–प्रचार हुआ।

1.6.4 आजीविक सम्प्रदाय

मौर्यकाल में आजीविक सम्प्रदाय का बड़ा प्रभाव था। आजीविक सम्प्रदाय की स्थापना 'मक्खलिपुत्र गोसाल' ने की थी। आजीविक सम्प्रदाय के अनुयायी श्रवण वर्ग के थे। अशोक एवं उसके पौत्र दशरथ ने आजीविकों को अपना संरक्षण प्रदान किया था। बिम्बिसार के कला में आजीविक परिव्राजक उसकी राजसभा में रहता था, अतः आजीविक सम्प्रदाय को विम्बिसार का भी संरक्षण प्राप्त था। अशोक ने गया के पास बराबर पहाड़ी पर दो गुफाओं का निर्माण आजीविकों के लिए करवाया था। मौर्य शासक दशरथ ने भी

आजीविकों के लिए नागार्जुनी पहाड़ी पर गुफाओं का निर्माण करवाया था। वस्तुतः आजीविक नगर–ग्रामों में दूर सन्यासियों का जीवन नग्न अवस्था में जंगलों में व्यतीत करते थे।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. अशोक ने राज्याभिषेक के कौनसे वर्ष में 'हिंसा निषेध' लागू किया ?

    (क) 24 (ख) 25

    (ग) 26 (घ) इनमें से कोई नहीं

7. अशोक ने कितने हजार स्तूपों का निर्माण करवाया था ?

    (क) 81 हजार (ख) 82 हजार

    (ग) 83 हजार (घ) 84 हजार

3. अशोक ने अपने शासनकाल में कितने बार सामूहिक रूप से कैदियों को आम माफी दी थी ?

    (क) 23 (ख) 24

    (ग) 25 (घ) 26

4. किस मौर्य शासक के शासनकाल में तृतीय बौद्ध संगीति हुई थी ?

    (क) चन्द्रगुप्त मौर्य (ख) बिन्दुसार

    (ग) अशोक (घ) इनमें से कोई नहीं

5. किस मौर्य शासक ने विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचार भेजे थे ?

    (क) चन्द्रगुप्त मौर्य (ख) बिन्दुसार

    (ग) अशोक (घ) इनमें से कोई नहीं

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) जैन धर्म ।

    (ख) आजीविक सम्प्रदाय ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

    (अ) मौर्यकालीन बौद्ध धर्म का विवरण दीजिये ?

1.7 मौर्यकालीन कला

कला, मौर्यकालीन संस्कृति का अभिन्न अंग है। मौर्यकाल में कला के प्रत्येक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई थी। इतिहासकारों ने मौर्यकालीन कला को राजकीय एवं लोक कला में विभाजित किया है। मौर्य कालीन नगर राजमहल, स्तूप, स्तंभ, गुफाएँ, मूर्तियाँ राजकीय कला के अंतर्गत आते हैं। यक्ष मूर्तियाँ, पशु एवं पक्षियों की मूर्तियाँ आदि लोककला का हिस्सा है।

1.7.1 राजधानी एवं नगर

मौर्यकाल में पाटलीपुत्र, श्रीनगर, ललितपट्टन (नेपाल), देवपालन (नेपाल) आदि नगरों की स्थापना हुई। पाटलिपुत्र मौर्य साम्राज्य की राजधानी थी और यहाँ के नगर नियोजन एवं राजप्रसादों का उल्लेख यूनानी लेखकों ने किया है। इसके साथ ही वर्तमान पटना के पास बुलन्दीबाग एवं कुम्रहार के उत्खनन से महत्वपूर्ण अवशेष मिले हैं, जिनसे यूनानी लेखकों के प्रसंगों की साम्यता स्थापित होती है। यूनानी लेखक स्ट्रेबो ने पाटलिपुत्र का विवरण देते हुए लिखा है कि, ''पाटलिपुत्र की लम्बाई 80 स्टेडिया तथा चौड़ाई 18 स्टेडिया है। नगर के चारों ओर 700 फीट चौड़ी एवं 30 फुट गहरी खाई है तथा नगर लकड़ी की एक

चहार दीवारी से घिरा है, जिसमें बाण चलाने के लिये छिद्र बने हैं। इस दीवार में 570 बुर्ज एवं 64 द्वार है। समानान्तर चतुभुर्ज के आकार का यह नगर सोन एवं गंगा नदियों पर बसा हुआ था।

राजधानी पाटलिपुत्र में अशोक द्वारा निर्मित राजप्रसाद के अवशेष 1813 ई० में डॉ० स्पूनर ने पटना के पास कुम्रहार से उत्खनन प्राप्त किये। स्पूनर के एक विशाल 'सभा कक्ष' मिला था, जिसकी छत 80 पाषाण स्तम्भों पर टिकी हुई थी। इस विशाल 'सभा कक्ष' की छत एवं फर्श काष्ठ से निर्मित थी। इस सभा भवन की लम्बाई 140 फुट एवं चौड़ाई 120 फुट थी। स्तम्भों पर चमकदार पालिश मिली है। स्पूनर इन पाषाण स्तम्भों की चमकदार पॉलिश पर ईरानी प्रभाव मानते हैं। वहीं, डॉ० वी० एस० अग्रवाल ने भारतीय साहित्य से अनेक तथ्य खोजकर यह सिद्ध कर दिया है कि, यह मौलिक रूप से भारतीय है। फाह्यान जब भारत आया तब उसने भवन देखकर आश्चर्यजनक रूप से कहा कि, इसे देवताओं ने बनाया होगा। सातवीं शताब्दी में जब इत्सिंग भारत आया, तब तक यह भवन नष्ट हो गया था। ईलियन ने कहा है कि, ''एकबटना एवं सूसा के राजप्रसाद भी मौर्य राजप्रसादों की बराबरी नहीं कर सकते थे।''

1.7.2 स्तम्भ

मौर्यकालीन कला की उत्कृष्ट कृति स्तम्भ है। स्तम्भों का निर्माण, इनकी पोलिश एवं इन पर उत्तम कला उत्कीर्णन, इन्हें सर्वश्रेष्ठ बना देता है। अशोक ने अनेक स्तम्भ स्थापित करवाये थे। ऐसे छः स्तम्भ फाह्यान एवं पंद्रह स्तम्भ ह्वेनसांग ने देखे थे। डॉ० वी० ए० स्मिथ का मानना है कि, अशोक ने ऐसे 30 स्तम्भों का निर्माण करवाया होगा। स्तम्भों की लम्बाई 40 से 50 फुट की है। स्तम्भों का वजन लगभग 50 टन का है। स्तम्भों का निर्माण चुनार (आधुनिक मिर्जापुर, उ० प्र०) के 'लाल बलुआ' पत्थरों से किया गया था। कतिपय स्तम्भों का निर्माण मथुरा की पहाड़ियों से लाये गये 'लाल बलुआ' पत्थरों से किया गया था। मौर्यकालीन सभी स्तम्भ 'एकाश्मक' (मोनोलिथिक) है। अशोक 10 स्तम्भ लेख युक्त तथा 4 लेख विहीन मिले हैं। लेखयुक्त स्तम्भ – प्रयाग स्तम्भ, दिल्ली टोपरा स्तम्भ, दिल्ली स्तम्भ, रूमिन्देई स्तम्भ, प्रयाग स्तम्भ, सारनाथ स्तम्भ, साँची स्तम्भ रामपुरवा स्तम्भ, लौरिया नन्दनगढ़ स्तम्भ, लौरिया अरराज स्तम्भ एवं लेख विहीन स्तम्भ – कौशाम्बी स्तम्भ, रामपुरवा स्तम्भ, वैशाली स्तम्भ, संकिसा स्तम्भ है। अशोक के स्तम्भों के चार भाग है। दंड, कमलाकृति शीर्ष, फलक और सर्वोच्च पशुमूर्ति।

1.7.2.1 दंड

दंड को यष्टि, लाट या तना भी इतिहासकारों ने कहा है। यह भाग पूर्णतः एकाश्मक है। ये दंड बिना किसी पीठिका के सहारे जमीन में सीधे खड़े किये गये हैं। दंड नीचे से ऊपर की ओर बड़े ही नियंत्रित ढंग से पतले होते गये हैं, इनकी आकृति गोल है। स्तम्भ के इस दंड भाग पर चमकदार ओपदार पॉलिश की गयी। समस्त दंडों की औसत ऊँचाई लगभग 32 फुट है। डॉ० वी० ए० स्मिथ ने इनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि, कठोर पत्थर पर तक्षण की प्रवीणता का ऐसा उत्तम कार्य वर्तमान में भी संभव नहीं है।

1.7.2.2 कमलाकृति शीर्ष

कमलाकृति शीर्ष दंड के ऊपर दूसरे पत्थर को जोड़कर निर्मित की गयी है। किन्तु किस पदार्थ या धातु से जोड़ा है, वह आज तक स्पष्ट नहीं हो सका है। मार्शल आदि कतिपय इतिहासविद् कमलाकृति शीर्ष को घण्टाशीर्ष की संज्ञा देते हुए इसे 'हखामनी' (पर्सिपोलिस) से प्रभावित मानते हैं। वहीं, डॉ० वी० एस० अग्रवाल ने इसे भारतीय पूर्णघट (मंगल कलश) की अनुकृति प्रमाणित किया है। शीर्ष भाग में कमलशीर्ष फलक एवं सर्वोच्च पशुमूर्ति विद्यमान है। डॉ० आर० एन० मिश्र ने लिखा है कि, स्तम्भों में सीधे दंड पर बनी हुई पंखुड़ियों सहित वर्तुल कमल आकृति बड़ी मनोहर है। इनमें पंखुड़ियाँ लंबी, नुकीले सिरे वाली है।

इनके किनारे उठे हुए है। सभी स्तम्भों में पंखुड़ियों का लगभग एक जैसा नियमित अंकन है। कमलशीर्ष के ऊपरी भाग पर, पद्मबंध के किनारों के ऊपर फलक का भाग प्रारंभ होता था।

1.7.2.3 फलक

कमलशीर्ष के ऊपर सर्वोच्च पशुमूर्ति की पीठिका के रूप में फलक का विधान किया गया था। प्रारम्भ में फलक चौकोर बनाये गये बाद में विकसित होकर फलक गोल आकृति के अलंकरण युक्त बनने लगे।

1.7.2.4 शीर्षस्थ पशु मूर्तियाँ

स्तम्भों के सर्वोच्च भाग में पशु मूर्तियाँ प्रतिष्ठित है। शीर्षस्थ पशु मूर्तियों में सिंह, वृषभ, गज, अश्व पशुओं की मूर्तियाँ मिलती है। प्रमुख शीर्षस्थ पशु मुर्तियाँ स्तम्भ है – सारनाथ का चतुर्सिंह स्तम्भ, साँची का चतुर्सिंह स्तम्भ, लौरिया नन्दनगढ़ सिंह शीर्ष स्तम्भ, रामपुरवा सिंह शीर्ष स्तम्भ, बसाढ़ सिंह शीर्ष स्तम्भ, रामपुरवा वृषभ शीर्ष, संकिशा गजशीर्ष स्तम्भ, शीर्षस्थ पशु मूर्ति स्तम्भों में सारनाथ स्तम्भ कला की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सर जॉन मार्शल ने लिखा है कि, 'सारनाथ स्तम्भ स्थापत्य कला की उत्कृष्ट कृति है।' वस्तुतः शीर्षस्थ पशुमूर्तियाँ मौर्यकालीन कला की उत्कृष्टता एवं कलात्मकता का जीवंत उदाहरण है। विश्व में शायद ही इतनी सजीव और सुन्दर मूर्तियाँ निर्मित हुई हो। यह भारतीय कला के कलाकारों के पीढ़ियों के अनुभवों की साकार कृति है।

1.7.3 स्तूप

स्तूप, मौर्यकला के महत्वपूर्ण अंग है। मौर्यकाल में अशोक के शासनकाल में बहुत बड़ी संख्या में स्तूपों के निर्माण हुआ। बौद्ध ग्रंथों से ज्ञात होता है कि, अशोक ने 84000 स्तूपों का निर्माण करवाया था। स्तूप का शाब्दिक अर्थ 'थूहा' अथवा 'ढेर' है। प्राकृत भाषा में स्तूप के लिए 'थूप' शब्द का प्रयोग मिलता है। स्तूप का प्राचीनतम् साहित्यिक प्रमाण 'ऋग्वेद' में मिलता है। यजुर्वेद एवं शतपथ ब्राह्मण में भी स्तूप का उल्लेख मिलता है। बौद्ध ग्रंथ महापरिनिर्वाण सूत्र में उल्लेख मिलता है कि ''महात्मा बुद्ध ने स्वयं अपने शिष्य आनन्द से कहा था कि, मेरी मृत्यु के बाद मेरे अवशेषों पर उसी प्रकार का स्तूप बनाया जाये जिस प्रकार चक्रवर्ती सम्राटों के अवशेषों पर बनाये जाते हैं।'' इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, बुद्ध के जीवन से पहले भी स्तूप विद्यमान थे।

अशोक के शासनकाल में बने स्तूपों में साँची का स्तूप सर्वाधिक प्रसिद्ध है। वर्तमान में साँची का स्तूप जिला रायसेन (मध्यप्रदेश) में स्थित है। साँची को मौर्यकाल में 'वेदिसगिरि' और 'चेतियगिरि' कहा जाता था। साँची का स्तूप नं. 01, जिसे 'महास्तूप' भी कहा जाता है, अशोक के शासनकाल में बना। इसके बाद यहाँ समय–समय पर स्तूप के आकार–प्रकार, अलंकरण आदि में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होते रहे। शुंग–सातवाहन काल में स्तूप के अण्ड भाग पर प्लास्टर किया गया। स्तूप के दक्षिणी तोरण द्वार का निर्माण उस पर उत्कीर्ण एक लेखानुसार सातकर्णी–द्वितीय के समय हुआ। गुप्तकाल में इस स्तूप के समीप अनेक छोटे–छोटे स्तूप निर्मित हुए। प्रतिहार परमार आदि राजवंशों के शासनकाल में भी यहाँ अनेक

गतिविधियाँ संपन्न हुई। मौर्यकाल में स्तूप के निर्माण में ईंटों का प्रयोग किया गया था। यह स्तूप वर्तमान सतह से चार फीट नीचे मौर्यकाल में बनाया गया था। अशोक के समय इस स्तूप का व्यास 60 फीट था, स्तूप के निर्माण में पकी हुई ईंटो का प्रयोग किया गया था जिनका आकार 16''×10''×3'' है। भू–वेदिका, मेधि, अण्ड हर्मिका छत्र, यष्टि, आदि स्तूप की संरचना के वास्तु अंग है। साँची स्तूप का विकसित स्वरुप शुंग–सातवाहन काल में उभरकर आया। स्तूप की वेदिका और तोरणों की शिलाओं पर दान दाताओं के नाम भी उत्कीर्ण मिलते है, जिनमें अधिकांशतः आलेख शुंग कालीन ब्राह्मी लक्षणों से मेल खाते है।

स्तूप के वास्तु अंगों का विवरण निम्नांकित है –

भू–वेदिका :– स्तूप के चतुर्दिक भू–वेदिका का निर्माण किया गया है। यह अण्ड के व्यास से अधिक व्यास का है। अण्ड और भू–वेदिका के बीच एक निश्चित दूरी है, जो संभवतः प्रदक्षिणा पथ के रुप में प्रयुक्त की जाती थी। भू वेदिका के निर्माण में आलंबन, स्तम्भ, सूची और ऊष्णीस नामक वास्तु अंगो का उपयोग किया गया है। यह वास्तु अंग पाषाण से निर्मित है। अशोक के समय भू–वेदिका लकड़ियों से निर्मित की गयी थी।

मेधि (मध्य – वेदिका) :– मेधि का निर्माण स्तूप की ऊँचाई के मध्य में किया गया है। इसके निर्माण में भी भू–वेदिका की तकनीक और सामग्री का प्रयोग किया गया है। मेधि और अण्ड के बीच में पुनः एक निश्चित दूरी प्रदक्षिणा पथ हेतु छोड़ी गयी है। मेधि पर जाने के लिए स्तूप के धरातक से वर्तमान में दक्षिणी तोरण द्वार की तरफ में मेधि तक पहुँचने के लिए सोपान निर्मित हैं।

अण्ड :–स्तूप का प्रमुख वास्तु अंग, जो सूर्य के प्रतीक के रुप में बुद्ध का प्रतिनिधित्व करता हैं, अण्ड के नाम से जाना जाता है। मौर्यकाल में इसके निर्माण में ईंटों का प्रयोग किया गया था, जिस पर शुंगकाल में एक इंच मोटा प्लास्टर किया गया। यह अर्द्धवृत्ताकार या अर्द्धचन्द्राकार है।

हर्मिका :–स्तूप के शीर्ष भाग पर वर्गाकार हर्मिका निर्मित है, जिसके निर्माण में स्तम्भ, सूची और ऊष्णीश का विधान है। भू–वेदिका, मेधि और हर्मिका में तीन–तीन सूचीयॉ आड़ी दिशा में लगायी गयी है। स्तम्भों में सूची की चौड़ाई के आकार का छेद काटकर सूचियों को उनमें फंसाया गया है परंतु यहाँ आलंबन का विधान नहीं है क्योंकि इसका विधान स्तूप के शीर्ष पर उलान होने के कारण संतुलन की दृष्टि से उपयुक्त नहीं था जबकि भू–वेदिका और मेधि में जो स्तम्भ लेगे हैं, उन्हें आलंबन शिला में कटाव करके फंसाया गया है।

यष्टि एवं छत्र :– स्तूप के शीर्ष पर निर्मित हर्मिका के केन्द्र बिन्दु में पाषाण निर्मित यष्टि (दण्ड) आरोपित है जिसमें तीन छत्र नीचे से ऊपर की तरफ घटते क्रम में लगाये गये है। ये तीनों छत्र क्रमशः बुद्ध, धर्म, संघ का प्रतिनिधित्व करते है। यष्टि बुद्ध की स्थिरता और उनके मत की अमरता का द्योतक है। छत्र यष्टि के माध्यम से स्तूप वास्तु में सम्भवतः यह परिकल्पना भी की गयी है कि बुद्ध या उसका ज्ञान आकाश की विशालता जैसे गुणों से निहित हैं, क्योंकि बौद्ध साहित्य में बुद्ध को सूर्यवंशीय बताया गया हैं।

तोरण द्वार :– तोरण अर्थात द्वार के निर्माण में स्तंभ, बड़ेरियाँ, सूचियाँ आदि वास्तु अंगों का प्रयोग किया गया हे। ये पत्थर से निर्मित है। तोरण द्वारों में दो स्तंभों पर तीन बड़ेरियॉ लगायी गयी हैं, बड़ेरियों पर बुद्ध की जातक कथाओं, उनके जीवन दृश्यों एवं आलंकारिक अभिप्रायों को अंकित किया गया है। बड़ेरियों के दोनों किनारों पर चक्रपुंज बनाए गए है। तोरण–द्वार में बड़ेरियों को एक–दूसरे से अलग करने के लिए तीन–तीन सूचियॉ ऊपर से नीचे लगायी गयी है। इन तोरण द्वारों में सबसे प्राचीन दक्षिणी तोरण द्वार (सातकर्णी–द्वितीय द्वारा निर्मित) है, इसके बाद क्रमशः उत्तरी, पूर्वी एवं पश्चिमी तोरण द्वार बने।

1.7.4 विहार एवं शैलोत्कीर्ण गुफाएँ

मौर्यकाल में अशोक एवं उसके उत्तराधिकारियों ने अनेक बौद्ध विहार एवं शैलोत्कीर्ण गुफाओं का निर्माण करवाया था। बुद्धघोष द्वारा रचित बौद्ध ग्रंथ 'सुमंगलविलासिनी' से ज्ञात है कि, अशोक ने 84000 विहार बनवाये थे। बौद्ध विहारों का निर्माण बौद्ध भिक्षुओं के निवास के लिए करवाया जाता था। ह्वेनसांग अशोक के 100 विहारों का उल्लेख करता है। मौर्यकाल में शैलोत्कीर्ण गुहा कला का श्री गणेश अशोक ने ही किया था। अशोक एवं उसके पौत्र दशरथ ने बौद्ध भिक्षुओं एवं आजीविक सम्प्रदाय के भिक्षुओं के निवास करने के लिए बराबर एवं नागार्जुनी की पहाड़ियों की चट्टानों को काटकर गुफाओं का निर्माण करवाया था। चार गुफाएँ बराबर तथा तीन गुफाएँ नागार्जुनी पहाड़ी पर उत्कीर्ण है। इन सात गुफाओं को सामूहिक रूप से 'सतघर' कहा जाता है। इन गुफाओं के अलंकरण 'काष्ठकला' से प्रभावित है। गुफाओं की छत एवं दीवारो पर ओपदार चमकीली पॉलिश की गयी है। बराबर की पहाड़ी पर अशोक द्वारा निर्मित सुदामा की गुफा, कर्ण चौपड़ गुफा, विश्व झोपड़ी एवं दशरथ द्वारा निर्मित लोमश ऋषि की गुफा अपने अलंकरण एवं वास्तु विम्ब के कारण प्रसिद्ध है। नागार्जुनी गुफाओं का निर्माण मौर्य सम्राट दशरथ ने करवाया था। इनके नाम गोपी गुफा, वापि गुफा एवं पदथिक गुफा है।

1.7.5 लोक कला

मौर्यकाल की कला में लोक कला का भी प्रमुख स्थान है। लोक कला, आम जनता के लोक जीवन की कल्पनाशीलता एवं सृजनशीलता का साकार रूप था। मौर्यकालीन लोक कला में प्रमुखतः यक्ष – यक्षिणियाँ एवं पशुओं की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। यक्ष मूर्तियाँ विशालकाय, बलिष्ट और मांसल की निर्मित है। यक्ष मूर्तियाँ कुरूक्षेत्र, राजघाट (वाराणसी), पटना, पद्मावती (ग्वालियर), मथुरा, नोह (भरतपुर), सोपारा आदि स्थानों से तथा यक्षिणी मूर्तियाँ दीदारगंज (पटना), झींग का नगला (मथुरा) बेसनगर (विदिशा), मेहरौली आदि स्थानों से प्राप्त हुई है। मौर्यकालीन लोककला के अंतर्गत मृण्मूर्तियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इन मूर्तियों को आग में अच्छी तरह पकाया गया था। बसाढ़, मथुरा, बुलंदीबाग, कुम्हरार, मथुरा, सारनाथ, भीटा आदि स्थलों से बहुत बड़ी संख्या में मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. मौर्य साम्राज्य की राजधानी थी ?
   (क) पाटलिपुत्र (ख) उज्जयिनी
   (ग) कौशाम्बी (घ) इनमें से कोई नहीं
2. मौर्यकालीन स्तम्भों का वजन था ?
   (क) 30 टन (ख) 40 टन
   (ग) 50 टन (घ) 60 टन
3. स्तूप का प्राचीनतम् साहित्यिक प्रमाण मिलता है ?
   (क) ऋग्वेद में (ख) यजुर्वेद में
   (ग) सामवेद में (घ) इनमें से कोई नहीं
4. ह्वेनसांग अशोक के कितने विहारों का उल्लेख करता है ?
   (क) 100 (ख) 200
   (ग) 300 (घ) 400
5. नागार्जुनी गुफाओं का निर्माण किस मौर्य सम्राट ने करवाया था ?
   (क) चन्द्रगुप्त मौर्य (ख) बिन्दुसार

(ग) अशोक (घ) दशरथ

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) विहार एवं शैलोत्कीर्ण गुफाएँ ।

(ख) लोक कला ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) मौर्यकालीन स्तम्भों की कला का विवरण दीजिये ?

1.8 सारांश

भारत के प्रथम सार्वभौमिक साम्राज्य, मौर्य साम्राज्य ने देश पहली बार राजनैतिक एकता स्थापित की। मौर्य साम्राज्य ने अपने 137 वर्षीय सुदीर्घ शासनकाल में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, भाषा, शिक्षा, साहित्य एवं कला आदि सभी क्षेत्रों में सुदृढ़ साँस्कृतिक प्रतिमान स्थापित किये। अशोक के सामाजिक – धार्मिक कृत्यों से वर्ण व्यवस्था लचीली हुई और धार्मिक सहिष्णुता एवं समन्वय की स्थापना हुई। बौद्ध धर्म का अभूतपूर्व विकास हुआ। पाली (प्राकृत) भाषा को राजकीय संरक्षण मिलने से इस भाषा का सर्वांगीण विकास हुआ। मौर्यकाल में राजनीतिक एकता स्थापित हो जाने से भी आर्थिक विकास तेजी से हुआ। कला के प्रत्येक क्षेत्र में कालजयी कृतियों का सृजन हुआ। इस प्रकार मौर्यकाल महान् साँस्कृतिक गतिविधियों का काल था।

1.9 तकनीकी शब्दावली

कृति : रचना

मृण्मूर्तियाँ : मिट्टी की मूर्तियाँ

चतुर्दिक : चारो ओर

शास्त्र : धार्मिक ग्रंथ एवं साहित्य

शस्त्र : हथियार

सार्वभौमिक साम्राज्य : संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न राज्य

स्थापत्य कला : भवन निर्माण कला

विष्टि : बेगार

मुद्रा : मानक सिक्का

1.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 1.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 1.3.1 वर्णाश्रम व्यवस्था
2. देखिए 1.3.1 वर्णाश्रम व्यवस्था
3. देखिए 1.3.4 स्त्रियों की स्थिति
4. देखिए 1.3.6 मनोरंजन के साधन
5. देखिए 1.3.3 परिवार एवं विवाह

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 1.3.2 दास प्रथा

(ख) देखिए 1.3.4 स्त्रियों की स्थिति

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 1.3.1 वर्णाश्रम व्यवस्था

इकाई 1.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः
   (क) देखिए 1.4.3 व्यापार
   (ख) देखिए 1.4.4 मुद्रा
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) देखिए 1.4.1 कृषि एवं पशुपालन

इकाई 1.5 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) देखिए **1.5 भाषा, शिक्षा एवं साहित्य**

इकाई 1.6 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 1.6.2 बौद्ध धर्म
2. देखिए 1.6.2 बौद्ध धर्म
3. देखिए 1.6.2 बौद्ध धर्म
4. देखिए 1.6.2 बौद्ध धर्म
5. देखिए 1.6.2 बौद्ध धर्म

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 1.6.3 जैन धर्म
   (ख) देखिए 1.6.4 आजीविक सम्प्रदाय
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) देखिए 1.6.2 बौद्ध धर्म

इकाई 1.7 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 1.7.1 राजधानी एवं नगर
2. देखिए 1.7.2 स्तम्भ
3. देखिए 1.7.3 स्तूप
4. देखिए 1.7.4 विहार एवं शैलोत्कीर्ण गुफाएँ
5. देखिए 1.7.4 विहार एवं शैलोत्कीर्ण गुफाएँ

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 1.7.4 विहार एवं शैलोत्कीर्ण गुफाएँ
   (ख) देखिए 1.7.5 लोक कला
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) देखिए 1.7.2 स्तम्भ

3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ओमप्रकाश – *प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास,* नई दिल्ली, 1986
2. बाशम, ए० एल० – *अद्भुत भारत, आगरा,* 1987
3. बोगार्ड लेविन, जी० एम०– *मौर्यन इण्डिया,* नई दिल्ली, 1985

4. ठींदकंतांतए क्ण् दृ *ीवांए* ब्सबनजजंए 1932
5. डेविड्स, आर० – *बुदिस्ट इण्डिया,* कलकत्ता, 1955
6. गुप्त, एस० पी० – *दि रूट्स ऑफ इंडियन आर्ट,* दिल्ली, 1980
7. गोयल, श्रीराम – *प्राचीन भारत का इतिहास,* खण्ड 1, जोधपुर, 1998
8. झा एवं श्रीमाली – *प्राचीन भारत का इतिहास,* दिल्ली, 2000
9. मजूमदार, रायचौधरी, दत्त – *भारत का बृहत, इतिहास,* खण्ड 1, नई दिल्ली, 1970
10. मजूमदार, रमेशचन्द्र – *प्राचीन भारत,* दिल्ली, 1973
11. Mookerji, R.K.- *Chandraguptas Mauryas and His Times,* Banaras, 1960
    - *Ashoka*, London, 1928
12. पाण्डेय, विमल चन्द्र – *प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिकइतिहास,* भाग 1, इलाहाबाद, 1998
13. राय, निहार रंजन – *मौर्य तथा मौर्यन्तर कला,* दिल्ली, 1979
14. रोलैंड, बेजामिन – *ऑर्ट एंड आर्किटेक्चर ऑफ इंडिया,* हार्मड्सबर्थ, 1956
15. रैप्सन (संपा०) – *कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वो०1,* कैम्ब्रिज, 1922
16. शर्मा, रामशरण – *प्रारंभिक भारत का परिचय,* नई दिल्ली, 2009
17ण Sastri, Nilakanta (ed.)- Age of the Nandas and Mauryas, Banaras, 1952
18. स्मिथ, वी. एस. – *अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,* ऑक्सफोर्ड, 1924
19. त्रिपाठी, आर० एस० – *प्राचीन भारत का इतिहास,* बनारस, 1998
20. थापर, रोमिला – *कल्चरल पास्ट्स : ऐसेज इन अर्ली इंडियन हिस्ट्री,*
    – *एशियन्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री,* नई दिल्ली, 1983
    – *भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, 1989

3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ओमप्रकाश – *प्राचीन भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, 1986
2. महाजन, विद्याधर – *प्राचीन भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, 2008
3. मिश्र, जयशंकर – *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,* पटना, 2006
4. श्रीवास्तव, के० सी० – *प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति,* इलाहबाद, 2007
5. शर्मा, आनन्द कुमार – *भारतीय संस्कृति एवं कला,* नई दिल्ली, 2011

3.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. मौर्यकालीन कला का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 2. मौर्यकालीन सामाजिक स्थिति का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 3. मौर्यकालीन आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालिये ?

प्रश्न 4. मौर्यकालीन धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालिये ?

इकाई दो : कुषाण, शुंग, एवं सातवाहन कालीन संस्कृति

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 शुंग कालीन संस्कृति

2.3.1 धार्मिक स्थिति

2.3.1.1 वैदिक या ब्राह्मण धर्म

2.3.1.2 बौद्ध धर्म

2.3.2 सामाजिक स्थिति

2.3.2.1 वर्ण व्यवस्था

2.3.2.2 आश्रम व्यवस्था

2.3.2.3 स्त्रियों की स्थिति

2.3.3 आर्थिक स्थिति

2.3.4 साहित्य एवं भाषा

2.3.5 कला

2.3.5.1 स्तूप एवं उनके वास्तु अंगों का निर्माण

2.3.5.2 चैत्य एवं विहारों का निर्माण

2.3.5.3 गरूड़ ध्वज एवं अन्य कला कृतिया

2.4 सातवाहन कालीन संस्कृति

2.4.1 सामाजिक स्थिति

2.4.2 धार्मिक स्थिति

2.4.3 आर्थिक स्थिति

2.4.4 शिक्षा एवं साहित्य

2.4.5 कला

2.4.5.1 स्तूप

2.4.5.2 चैत्य एवं विहार

2.5 कुषाण कालीन संस्कृति

2.5.1 सामाजिक स्थिति

2.5.2 आर्थिक स्थिति

2.5.3 धार्मिक स्थिति

2.5.3.1 चतुर्थ बौद्ध संगीति

2.5.4 साहित्य का विकास

2.5.5 कला

2.5.5.1 मथुरा कला

2.5.5.2 गांधार कला

2.6 सारांश

2.7 तकनीकी शब्दावली
2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

शुंग–सातवाहन एवं कुषाण राजवंशों ने द्वितीय शताब्दी ई० पू० से तीसरी ई० के मध्य शासन किया। शुंगों ने 184 ई० पू० – 72 ई० पू० तक कुल 112 वर्ष तक शासन किया। सातवाहन राजवंश भारत के महान राजवंशों में से एक था। दक्षिण भारत में सातवाहनों ने प्रथम शताब्दी ई० पू० से तीसरी ई० तक शासन किया। कुषाणों शासकों ने प्रथम शताब्दी ई० पू० से तृतीय शताब्दी ई० तक शासन किया। शुंग – सातवाहन राजवंशों के राजकीय सत्ता प्राप्ति से ब्राह्मणों की श्रेष्ठता पुनः स्थापित हो गयी तथा वैदिक संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठा हुई। वैदिक धर्म एवं सामाजिक धार्मिक ढाँचे का पुनरूत्थान हुआ। राजनैतिक परिवर्तन के साथ ही धार्मिक परिवर्तन हुआ। ब्राह्मण धर्म को राजकीय संरक्षण मिला! फिर भी बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म पहले की तरह फलते–फूलते रहे। इसके साथ ही, अनेक विदेशी जातियों ने इस काल में बौद्ध एवं वैदिक धर्म को ग्रहण किया। कला के क्षेत्र में सर्वाधिक उन्नति स्तूप, चैत्य एवं विहार के स्थापत्य एवं विकास में हुई। कुषाण कालीन संस्कृति विविध धर्मो एवं समाजों का अद्भुत समन्वय थी। कुषाणों ने सभी धर्मो एवं समाजों को अपना संरक्षण दिया। कला के क्षेत्र में भी कुषाणों ने अभूतपूर्व योगदान दिया है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है –

- विद्यार्थी शुंग कालीन संस्कृति को समझ सकेगें।
- विद्यार्थी सातवाहन कालीन संस्कृति को समझ सकेंगे ।
- विद्यार्थी कुषाण कालीन संस्कृति को समझेंगें।
- विद्यार्थी शुंग, सातवाहन एवं कुषाण कालीन भाषा, शिक्षा एवं साहित्य को जान सकेंगे ।
- विद्यार्थी मौर्यकालीन शुंग, सातवाहन एवं कुषाण कालीन धार्मिक स्थिति को समझ सकेगें।
- विद्यार्थी शुंग, सातवाहन एवं कुषाण कालीन बौद्ध धर्म की स्थिति को समझ सकेगें।
- विद्यार्थी ने शुंग, सातवाहन एवं कुषाण कालीन, कला को समझ सकेगें।
- विद्यार्थी शुंग, सातवाहन एवं कुषाण कालीन स्तूप, चैत्य एवं विहार के स्थापत्य एवं विकास को जानेगें।

2.3 शुंग कालीन संस्कृति :

मौर्य सम्राट बृहद्रथ के सेनापति 'पुष्यमित्र शुंग' ने बृहद्रथ की 184 ई० पू० में हत्या करके 'शुंग वंश' की स्थापना की। शुंग वंश के लिए तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों एवं कमजोर – शिथिल राजा और राजतंत्र ने अनुकूल वातावरण तैयार किया। जिसका सही उपयोग पुष्यमित्र शुंग ने किया और राजसिंहासन हस्तगत कर लिया। शुंग 'ब्राह्मण' जाति के थे और पुष्यमित्र शुंग को प्राचीन काल में 'प्रथम ब्राह्मण' राज्य के गठन का श्रेय जाता है। पुष्यमित्र शुंग की राजधानी पाटलिपुत्र ही थी। पुष्यमित्र शुंग के पुत्र अग्निमित्र ने विदिशा को भी राजधानी बनाया। शुंगों ने 184 ई० पू० – 72 ई० पू० तक कुल 112 वर्ष तक शासन किया। इस वंश में कुल 10 शासक हुए। शुंग वंश का अंतिम शासक 'देवभूति' था। शुंगों के राजकीय सत्ता प्राप्ति से वैदिक संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठा हुई। वैदिक धर्म एवं सामाजिक धार्मिक ढाँचे का पुनरूत्थान हुआ।

2.3.1 धार्मिक स्थिति :

शुंग राजवंश के ब्राह्मण जाति के होने कारण वैदिक या ब्राह्मण धर्म का पुनरूत्थान शुंग काल में हुआ। वस्तुतः मौर्यकाल की समाप्ति और 'शुंग वंश' की स्थापना के साथ ही सर्वप्रथम राजनैतिक परिवर्तन के साथ ही धार्मिक परिवर्तन हुआ। वैदिक धर्म एवं ब्राह्मणों की श्रेष्ठता पुनः धार्मिक क्षेत्र में स्थापित हो गयी। शुंग काल में बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का प्रचलन पूर्वतः प्रचलित रहा। शुंगों ने बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म संस्कृति में कोई हस्तक्षेप नहीं किया।

2.3.1.1 वैदिक या ब्राह्मण धर्म :

शुंगकाल में वैदिक या ब्राह्मण धर्म का पुनरूत्थान हुआ। शुंगकाल में ब्राह्मण धर्म को राजकीय संरक्षण मिलने से वैदिक धर्म एवं यज्ञों की प्रभुता स्थापित हो गयी। ब्राह्मण धर्म के देवी – देवताओं की उपासना एवं उनसे संबंधित धर्म – कर्म, अनुष्ठान सम्पूर्ण शुंग शासनकाल में दृढ़ता के साथ किये जाने लगे। ब्राह्मणों की श्रेष्ठता पुनः स्थापित हो गयी। ब्राह्मण वैदिक धर्म के विशेषज्ञ एवं यज्ञों के कर्ता होने के कारण धार्मिक क्रियाकलापों के केन्द्र बिन्दु थे। शुंगों ने वैदिक यज्ञों को प्रतिष्ठित करते हुए दो 'अश्वमेघ यज्ञों' का आयोजन किया। जिसकी पुष्टि शुंग वंश के अयोध्या अभिलेखों से होती है। इनमें से एक यज्ञ की पुरोहतायी महान् आचार्य पतंजलि के द्वारा संपन्न हुई थी। शुंगों द्वारा अश्वमेघ यज्ञ किया जाना वैदिक धर्म की पुनः स्थापना का प्रतीक है। यज्ञों में पशुबलि को सिद्धान्त और व्यावहारिकतः स्वीकृति मिल गयी।

वस्तुतः यज्ञ हेतु पशुबलि के कारण हिंसा को सीमित दायरे में मान्यता प्रदान कर दी गयी। इसी काल में यह युक्ति प्रतिष्ठित हो गयी कि, ''वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'' अर्थात् यज्ञों में की गयी हिंसा, हिंसा नहीं होती है तथा ''जीवों जीवस्य भोजनम्'' अर्थात् जीव ही जीव का भोजन (आहार) है।

शुंगकाल से विदेशी जातियों के भारतीय समाज वैदिक धर्म में सम्मिलित होने के प्रमाण मिलते है। इसकाल में तेजी से विदेशी जातियों ने वैदिक धर्म को बड़े ही उत्साह के साथ स्वतः अपनाया। इसका सबसे बड़ा उदाहरण हेलियोडोरस का बेसनगर (विदिशा) का गरूड़ ध्वज (स्तम्भ) है। जिसमें उसने स्वयं की भागवत धर्म में आस्था प्रगट की है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि, शुंगकाल में भागवत धर्म प्रसिद्ध हो चुका था। शुंगकाल में विदेशी जातियों ने ब्राह्मण एवं बौद्ध धर्म में स्वयं को दीक्षित किया। सबसे बड़ा उदाहरण हेलियोडोरस था, जिसने वैष्णव धर्म को अपनाया। शक क्षत्रप रूद्रदामन ने ब्राह्मण धर्म में अपनी आस्था प्रगट की।

2.3.1.2 बौद्ध धर्म :

शुंगकाल में बौद्ध धर्म, ब्राह्मण धर्म के बाद सर्वाधिक प्रचलित धर्म था। मौर्यो के राजकीय संरक्षण के कारण बौद्ध धर्म की अभूतपूर्व प्रगति हुई थी। वहीं, पुष्यमित्र शुंग बौद्ध धर्म के विरूद्ध ब्राह्मण क्रांति का साकार रूप था। शुंगकाल में बौद्ध धर्म से राजकीय संरक्षण छीन लिया गया और इसी कारण बौद्ध धर्मावलंबियों एवं उनके धार्मिक प्रतिमानों को भारी आर्थिक प्रशासनिक मदद् बंद हो गयी। इसी कारण बौद्ध ग्रंथ पुष्यमित्र शुंग को बौद्धद्रोही घोषित करते हैं। बौद्ध ग्रंथ 'दिव्यावदान' पुष्यमित्र शुंग को बौद्धद्रोही घोषित करते हुये कहता है कि, पुष्यमित्र शुंग ने अशोक द्वारा निर्मित अनेक बौद्ध स्तूपों को नष्ट कर दिया और उसने साकल (स्यालकोट) में घोषणा की कि, जो कोई भी मुझे श्रमण का सिर काट कर देगा उसे मैं 100 दीनार ईनाम दूंगा। किन्तु इतिहासकारों का कहना है कि, 'दिव्यावदान' में यह कोरी काल्पनिकता है क्योंकि शुंगकाल में दीनार 'मुद्रा' प्रचलित ही नहीं थी। तिब्बत का बौद्ध विद्वान तारानाथ भी पुष्यमित्र शुंग को बौद्धद्रोही घोषित करते हुए कहता है कि, उसने बौद्धों की हत्या की तथा स्तूपों और विहारों को नष्ट किया था। 'आर्यमंजूश्रीमूलकल्प' एवं क्षेमेन्द्र कृत 'अवदानकल्पना' भी पुष्यमित्र शुंग को बौद्धद्रोही कहती है। इतिहासविदों की धारणा है कि, बौद्ध ग्रंथों द्वारा बहुत बढ़ा – चढ़ाकर पुष्यमित्र शुंग को बौद्धद्राही बताया है। जिनकी अन्य ग्रंथों एवं अभिलेखीय साक्ष्यों से कोई पुष्टि नहीं होती है। वहीं, पुष्यमित्र शुंग एवं उसके उत्तराधिकारियों की धार्मिक सहिष्णुता की पुष्टि होती है। जो 'दिव्यावदान' पुष्यमित्र शुंग को बौद्धद्रोही कहता है, उसी में लिखा है कि, पुष्यमित्र ने बौद्ध मंत्रियों की राज्य में नियुक्ति की थी। शुंगकाल में भरहुत, बोध गया एवं साँची में बौद्ध स्थापत्य के कतिपय अंगों का निर्माण शुंग शासकों ने करवाये। भाजा, नासिक, कार्ले के बौद्ध चैत्य एवं विहार शुंगकाल में ही बने थे। अतः स्पष्ट है कि, शुंग शासन बौद्ध द्रोही नहीं थे। वस्तुतः शुंग काल में बौद्ध धर्म पहले की तरह फलता–फूलता रहा। शुंग शासकों ने बौद्ध धर्म की पूजा पद्धति, पूजा स्थलों, स्तूपों, चैत्यों विहारों, बौद्ध गुफाओं एवं बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। इण्डो यूनानी शासक मीनेण्डर ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया और मिलिंद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कार्ले, जुन्नार, नासिक आदि गुहाभिलेखों में अनेक विदेशियों के बौद्ध धर्म को मानने के प्रमाण मिलते हैं।

शुंगकाल में जैन धर्म भी पहले की तरह प्रचलित रहा। शुंगों ने जैन धर्म संस्कृति एवं उनके सामाजिक – धार्मिक सरोकारों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. शुंगकाल में किस धर्म का पुनरूत्थान हुआ ?

(क) ब्राह्मण धर्म (ख) बौद्ध धर्म

(ग) जैन धर्म (घ) इनमें से कोई नहीं

8. गरूड़ ध्वज (स्तम्भ) किस धर्म से संबंधित है ?

(क) ब्राह्मण धर्म (ख) जैन धर्म

(ग) बौद्ध धर्म (घ) भागवत धर्म

3. बौद्ध ग्रंथ पुष्यमित्र शुंग को घोषित करते है ?

(क) ब्राह्मणद्रोही (ख) जैनद्रोही

(ग) बौद्धद्रोही (घ) इनमें से कोई नहीं

4. बौद्ध विद्वान तारानाथ किस देश का था ?

(क) तिब्बत (ख) भारत

(ग) नेपाल (घ) इनमें से कोई नहीं

5. शुंगकाल में किस धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त था ?

(क) ब्राह्मण धर्म (ख) बौद्ध धर्म

(ग) जैन धर्म (घ) इनमें से कोई नहीं

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) ब्राह्मण धर्म ।

(ख) बौद्ध धर्म ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) पुष्यमित्र शुंग बौद्धद्रोही नहीं था ? विश्लेषण कीजिये ।

2.3.2 सामाजिक स्थिति

शुंग काल सामाजिक परिवर्तन का काल था। पूर्व कालीन बौद्ध सामाजिक व्यवस्था के स्थान पर ब्राह्मण धर्म द्वारा विदित वर्ण और आश्रम व्यवस्था को प्रोत्साहित किया गया। ब्राह्मण विचारधारा ने बौद्ध श्रवण विचार धारा पर गहरा प्रहार किया और समाज में ब्राह्मण वर्णाश्रम व्यवस्था पुनः प्रभावशाली हो गयी।

2.3.2.1 वर्ण व्यवस्था

शुंगकाल ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था का पुर्नरूत्थान का काल था। वर्णाश्रम धर्म के आधार पर सामाजिक नियमों को स्थापित किया गया। शुंगकाल में वर्ण व्यवस्था कर्म पर आधारित थी। समाज चार वर्णो में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में कठोरता के साथ विभाजित था। शुंगकाल में ब्राह्मणों की सर्वोच्चता पुनः स्थापित हो गयी। क्योंकि ब्राह्मणों ने धर्मविदित आपातकाल धर्म का पालन करते हुए क्षत्रिय कर्म को अपनाया तथा अपने राष्ट्र की रक्षार्थ राजपद ग्रहण किया। प्रजा की विदेशी आक्रमणों से रक्षा की तथा दुर्बल–अयोग्य मौर्य शासक 'वृहद्रथ' की हत्या करके राज्य में 'शान्ती और व्यवस्था' का शासन स्थापित किया। वस्तुतः शुंगों द्वारा राजसत्ता प्राप्ति करना एक महान् 'ब्राह्मण क्रान्ति' थी। ब्राह्मणों ने राजनैतिक अव्यवस्था को समाप्त कर राजनैतिक एवं प्रशासनिक सुव्यवस्था स्थापित करके विपरीत कठिन परिस्थितियों में अपनी योग्यता प्रमाणित कर दी थी। शुंगकाल में ब्राह्मणों के धर्म विहित वही कर्त्तव्य थे, जो परंपरागत चले आ रहे थे। अध्ययन – अध्यापन, धार्मिक – यज्ञानुष्ठान, दान लेना आदि थे। शुंगकाल में ब्राह्मणों के राजनैतिक प्रशासनिक दायित्वों में बढ़ोत्तरी हुई। ब्राह्मण शुंगकाल में राजनैतिक रूप से शक्तिशाली हो गये थे। क्षत्रिय का कर्त्तव्य रक्षा – युद्ध, राजकाज से संबंधित था। वैश्य का कर्त्तव्य आर्थिक एवं क्रियाकलापों कृषि, पशुपालन, व्यापार एवं वाणिज्य से संबंधित था। शूद्र का कर्त्तव्य समाज की सेवा करना था शूद्र को धर्म ग्रंथों के अध्ययन अध्यापन एवं सुनने का अधिकार नहीं था। किन्तु मनुस्मृति में शूद्र छात्रों और शिक्षकों का विवरण मिलता है। इससे स्पष्ट है कि, शूद्र शिक्षा एवं शिक्षाजन से वंचित नहीं थे, संभवतः कतिपय

सामाजिक एवं धार्मिक विधानों उल्घंन करने वालों पर प्रतिबंध रहा होगा। समाज में वर्ण शंकर के तेजी से बढ़ने के कारण सामाजिक व्यवस्थाकारों ने राज्य से समाज में कठोरता के साथ वर्ण संकरता को रोकने की सलाह दी है। संभवतः वर्ण संकरता के बढ़ने के कारण ही सामाजिक वर्ण एवं जाति में कठोरता देखने को मिलती है। मनुस्मृति में ऐसी ही शंका के कारण कहा गया है कि, वर्ण संकारता के कारण समाज का पतन हो सकता है। मनुस्मृति वर्णों के लिए निर्धारित अधिकार एवं कर्तव्यों के पालन न करने पर शासन को दण्ड का सुझाव देती है।

2.3.2.2 आश्रम व्यवस्था

शुंगकाल में समाज में आश्रम व्यवस्था का पुनरूद्धार हुआ। ब्राह्मण विचारधारा ने बौद्ध श्रवण व्यवस्था पर करारा प्रहार किया। ब्राह्मण संस्कृति का मानना था कि, यौवनावस्था में गृह एवं संसार त्याग, समाज एवं राज्य दोनों के लिए अनुचित है। क्योंकि ब्राह्मण विचारधारा के अनुसार, गृहस्थाश्रम पर ही समाज की नींव टिकी हुई थी। इसके साथ ही भिक्षुओं की आड़ में अनेक अपराधी प्रवृत्ति के लोगों ने संघों में शरण ले रखी थी। अतः समाज एवं राज्यहित में आश्रम व्यवस्था को हितकर बताते हुए शुंगकालीन समाज में आश्रम व्यवस्था का पुनरूद्धार किया गया। द्विजों को चारों आश्रमों का पालन करना अनिवार्य कर दिया गया। आश्रम व्यवस्था का पालन नहीं करने वालों को सामाजिक एवं राजकीय भय भी दिखाया गया।

2.3.2.3 स्त्रियों की स्थिति

शुंगकाल में स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। उसे शिक्षा धर्म एवं सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। शुंगकालीन समाज में पुनर्विवाह, नियोग प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल–विवाह प्रचलित थे। समाज में एक पत्नी विवाह आदर्श माना जाता था। हालाँकि शासक वर्ग में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। सती प्रथा के प्रमाण नहीं मिलते हैं। मनु स्त्रियों के बारे में दोहरा मत अपनाते है। मनु एक ओर कहते है कि, 'जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ ईश्वर निवास करते हैं। वही, दूसरी ओर जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्येक अवस्था में पुरूष के नियंत्रण में रखने का विधान बताते हैं।' समाज में धर्म विहित आठ प्रकार के विवाह मान्य थे। अन्तर्जातीय, अनुलोम–प्रतिलोग विवाह होते थे। सगोत्र, सपिण्ड विवाह समाज में प्रचलित नहीं था।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः
   (क) आश्रम व्यवस्था ।
   (ख) स्त्रियों की स्थिति ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) शुंग कालीन वर्ण व्यवस्था का विवरण दीजिये ?

2.3.3 आर्थिक स्थिति

शुंग कालीन शासन काल तक समाज में कृषि व्यवस्था ने विकसित स्थिति प्राप्त कर ली थी। इसी कारण शुंगकाल के आर्थिक जन–जीवन में कृषि प्रधान व्यवसाय था। बहुसंख्यक जनता अपने भरण–पोषण, रोजगार एवं आर्थिक संसाधनों के लिए कृषि कार्य में लगी हुई थी। इस काल में विविध प्रकार की फसलों के उत्पादन से किसान समृद्ध थे। भूमि पर कृषकों का मालिकाना हक होता था, किन्तु शासन भूमि का संरक्षक था। कृषक शासक को भूमिकर देते थे, जोकि संभवतः उपज का 1/6 भाग होता था। कृषि के साथ पशुपालन अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ था। पशुपालन से ग्रामीणों को कृषि एवं यातायात के पशु तथा खानपान के लिए दूध, दही, मक्खन, घी आदि की प्राप्ति होती थी।

शुंगकाल व्यापार एवं वाणिज्य में अभूतपूर्व प्रगति हुई। तत्कालीन ग्रंथों से विविध प्रकार के व्यवसायों एवं लघु उद्योगों की सूचना मिलती है। इसकाल में बड़े–बड़े नगरों ने व्यावसायिक प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। व्यापार सड़कों एवं जलीय मार्ग दोनों से होता है। व्यापारी अपने व्यापारिक हितों एवं उन्नति के लिए व्यावसायिक संघों और श्रेणियों में संगठित हो गये थे। अलग–अलग व्यवसायों की अलग–अलग श्रेणियाँ या संघ होते थे और उनके आंतरिक विधि–विधान होते थे। आर्थिक प्रगति में सुदृढ़ मुद्रा–प्रणाली ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। सोने–चाँदी एवं ताँबे की विधिक मुद्राओं का उल्लेख मिलता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) शुंग कालीन आर्थिक स्थिति का विवरण दीजिये ?

2.3.4 साहित्य एवं भाषा

शुंगकाल में साहित्य एवं भाषा की प्रगति हुई। ब्राह्मण धर्म के पुर्नरूत्थान के साथ ही, शुंगकाल में संस्कृत भाषा का अभूतपूर्व उत्थान हुआ। शुंगकाल में ब्राह्मण वर्ण के साथ ही अन्य वर्णो में संस्कृत के प्रसार के प्रमाण मिलते हैं। शिक्षा का माध्यम संस्कृत बन गयी थी तथा राजकीय संरक्षण भी संस्कृत भाषा को प्राप्त हो गया था। इन सब कारणों से संस्कृत भाषा आम जनता में भी तेजी से प्रसारित हुई। हालाँकि, शुंगकाल में आम जनता में प्राकृत भाषा भी प्रचलित रही। संस्कृत भाषा को आम जनता के लिए सुगम बनाने में महान् आचार्य पतंजलि की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। पतंजलि ने पाणिनी की अष्टाध्यायी पर महाभाष्य की रचना की। शुंगकाल में ही मनुस्मृति के वर्तमान स्वरूप की रचना हुई। कतिपय विद्वानों की धारणा तो यह भी है कि, महाभारत के नवीन रूप की रचना शुंगकाल में हुई।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) शुंग कालीन साहित्य एवं भाषा का विवरण दीजिये?

2.3.5 कला

शुंगकाल में कला एवं स्थापत्य में भी अभूतपूर्व प्रगति देखी गयी। शुंगकाल में स्तूपों के निर्माण के साथ ही, स्तूपों के विविध वास्तु अंगों एवं स्तूप स्थापत्य में विकास हुआ। अनेक विहार एवं चैत्यों का निर्माण हुआ। इसके साथ ही, अन्य अनेक कलात्मक गतिविधियों का प्रचलन होता रहा।

2.3.5.1 स्तूप एवं उनके वास्तु अंगों का निर्माण

शुंगकाल में स्तूपों के निर्माण में पत्थरों का उपयोग होने लगा। स्तूपों की वेदिकाएँ एवं तोरण (द्वार) पत्थरों के बनने लगे। उन पर विविध प्रकार के अलंकरण किये गये। शुंगकाल में कला राजकीय प्रभाव से निकलकर लोक जीवन से अधिक प्रभावित हो गयी। शुंगकाल में *'भरहूत स्तूप'* (सतना, मध्य प्रदेश) के वास्तु अंगों में पाषाण निर्मित महावेदिका एवं तोरणों (द्वारों) का निर्माण हुआ। भरहूत स्तूप के पूर्वी तोरण पर शुंग नरेश 'धनभूति' का नाम अंकित था। इस वेदिका एवं तोरणों के स्तम्भों तथा तोरण के अन्य वास्तु अंगों पर जातक कथाओं एवं महात्मा बुद्ध के जीवन के दृश्यों, अन्य मूर्तियों एवं वनस्पति का कलात्मक उत्कीर्णन है। *'बोध गया'* के स्तूप के चारों ओर वेदिका का निर्माण शुंगकाल में हुआ। संपूर्ण वेदिका तो नष्ट हो गयी थी किन्तु वेदिका के कुछ अवशेष मिले हैं। जिन पर महात्मा बुद्ध के प्रतीकों, जातक कथाओं एवं वनस्पति का कलात्मक उत्कीर्णन है।

'साँची' (रायसेन, मध्य प्रदेश) के तीन स्तूपों में शुंगकालीन कला के प्रमाण मिलते हैं। शुंग काल में स्तूप के अण्ड भाग पर प्लास्टर किया गया था। प्रथम *'महास्तूप'* जिसकी महावेदिका एवं तोरणों का निर्माण

शुंगकाल में हुआ। महावेदिका पर कोई अलंकरण नहीं है। तोरणों के विविध वास्तु अंगों में महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं के प्रतीक, जातक कथाओं, शाल भंजिका, यक्षों एवं वनस्पति जगत का अंकन है। साँची के *द्वितीय स्तूप* में शुंगकाल में महावेदिका, मध्य वेदिका एवं हर्मिका का निर्माण हुआ। महावेदिका या भूवेदिका पर महात्मा बुद्ध की जीवन की घटनाओं का प्रतीकों के माध्यम से अंकन के साथ ही त्रिरत्न, श्रीवत्स एवं अन्य अंकनों का उत्कीर्ण किया गया है। साँची के *तीसरे स्तूप* के एक मात्र तोरण एवं वेदिका पर यक्ष, नाग, अश्व स्तूप पूजा आदि अनेक अंकन उत्कीर्ण है। मथुरा का एक जैन स्तूप शुंगकाल का माना जाता है।

2.3.5.2 चैत्य एवं विहारों का निर्माण

'भाजा' (महाराष्ट्र) का विहार एवं चैत्य शुंगकालीन है। भाजा के विहार में मुखमण्डप, स्तम्भ, अर्धस्तम्भ तथा विहार में अन्दर एक मण्डप, जिसमें बौद्ध भिक्षुओं के निवास के लिए तीन कोठरियाँ बनी है। भाजा के चैत्य में मण्डप एवं अंदर स्तम्भ तथा अंत में स्तूप का विधान है। इसकी छत गजपृष्ठाकार है। *'अजंता'* (महाराष्ट्र) का चैत्य, गुफा नं. 09 शुंगकालीन है। चैत्यगृह में प्रवेश द्वार के साथ ही, दो पार्श्व गवाक्ष बने है। इनके ऊपर छज्जे, उसके ऊपर संगीतशाला, जिस पर कीर्तिमुख का विधान है। चैत्यगृह के अंदर स्तम्भयुत मण्डप है। चैत्यगृह में अनेक आकर्षक चित्र अंकित है। *'नासिक'* (महाराष्ट्र) का चैत्यगृह शुंगकालीन है। इस चैत्य गृह के वास्तु अंगों में दो तलीय मुखमण्डप, प्रवेश द्वार एवं अंदर स्तम्भ युक्तमण्डल है। यह चैत्यगृह 'पाण्डुलेण'' के नाम से जानी जाती है। *'कार्ले'* (महाराष्ट्र) का चैत्य शुंगकालीन है। चैत्यगृह के वास्तु अंगों में मुखमण्डप, मुखमण्डप के चतुर्मुखी स्तम्भ, कीर्तिमुख, संगीतशाला, मण्डप, वृताकार गर्भगृह तथा दोहरा प्रदक्षिणापथ तथा मण्डप के स्तम्भ, गर्भगृह के बीच में स्तूप प्रमुख है। इस चैत्यगृह में ब्राह्मी में अनेक अभिलेख उत्कीर्ण है। इस चैत्यगृह को भारत के शैलोत्कीर्ण चैत्यों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

2.3.5.3 गरूड़ ध्वज एवं अन्य कला कृतियाँ

शुंग राजवंश के 9 वें शासक भागभद्र (भागवत) के शासनकाल में बेसनगर (विदिशा मध्य प्रदेश) में *'गरूड़ ध्वज'* की स्थापना तक्षशिला के यूनानी शासक अंतलिकित के राजदूत हेलियोडोरस ने की। यह 'गरूड़ ध्वज' सनातन धर्म या भागवत का सर्वप्रथम स्तम्भ है। मथुरा की अनेक यक्ष–यक्षिणी प्रस्तर प्रतिमाओं को भी शुंगकालीन माना है। शुंगकालीन कला में मृण्मूर्तियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। शुंगकाल में विविध प्रकार की मृण्मूर्तियों का निर्माण हुआ। जोकि, लोककला की सर्वोत्तम कृति मानी जाती है। कौशाम्बी (उत्तर प्रदेश) से शुंगकालीन मिट्टी की मूर्तियाँ एवं खिलौने मिले हैं। शुंगकाल में मिट्टी की मूर्तियों एवं खिलौनों को साँचे में ढालकर बनाने की परंपरा प्रारम्भ हो गयी थी। इतिहासकारों का मत है कि, शुंगकाल में सबसे पहले मिट्टी की मूर्तियों को साँचे से बनाने की प्रथा प्रारंभ हुई थी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:
   (क) चैत्य एवं विहारों का निर्माण ।
   (ख) गरूड़ ध्वज एवं अन्य कला कृतियाँ ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) शुंग कालीन स्तूप एवं उनके वास्तु अंगों का निर्माण का विवरण दीजिये ?

2.4 सातवाहन कालीन संस्कृति

सातवाहन राजवंश भारत के महान राजवंशों में से एक था। दक्षिण भारत में सातवाहनों ने प्रथम शताब्दी ई० पू० से तीसरी ई० तक शासन किया। कतिपय इतिहासविद्ों की धारणा है कि, सातवाहनों के बहुत लंबे समय तक दक्षिण भारत के अधिकांश भागों पर शासन किया था। यह अवधि लगभग साढ़े चार सौ वर्ष की थी। उनके शासनकाल में सामाजिक आर्थिक जीवन, कला – स्थापत्य, धर्म, भाषा एवं साहित्य आदि क्षेत्रों में स्मरणीय उन्नति हुई। इस प्रकार लगभग तीन – चार सौ वर्षों के वृहद् सातवाहनों के शासनकाल में दक्षिण भारत में अनेक साँस्कृतिक गतिविधियाँ संपन्न हुई। जिन्होंने न केवल दक्षिण भारत को अपितु संपूर्ण भारत को अमूल्य साँस्कृतिक निधि प्रदान की है। कला – संस्कृति, साहित्य – सृजन, उन्नत अर्थव्यवस्था एवं सुदृढ़ राजनैतिक इच्छा शक्ति आदि को दृष्टिगत् रखते हुए प्रसिद्ध इतिहासविद् 'अजयमित्र शास्त्री' ने सातवाहन युग को दक्षिण भारत के इतिहास का 'स्वर्ण युग' की संज्ञा दी है।

2.4.1 सामाजिक स्थिति

सातवाहन कालीन समाज की प्रमुख विशेषता यह थी कि, यह वर्णो एवं वर्गों दोनों में बंटा हुआ था अर्थात् सातवाहन कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था एवं वर्ग व्यवस्था दोनों साथ–साथ चल रहीं थी और बिना किसी विरोधाभास या संघर्ष के समानता एवं भाईचारे के सिद्धांत का परिपालन करते हुए। सनातन ब्राह्मण धर्म के अनुयायी चार वर्णो में बंटे हुए थे। सातवाहन काल ब्राह्मण प्रभुत्व का काल था। स्वयं सातवाहन शासक ब्राह्मण थे। सातवाहन शासक स्वयं अपने को 'अद्वितीय ब्राह्मण' एवं 'क्षत्रियों का दमन' करने वाला कहते हैं। समाज में ब्राह्मणों की सर्वोच्चता स्थापित थी। शिक्षा, धर्म एवं शासन–प्रशासन में ब्राह्मण प्रभावी भूमिका निभा रहे थे। क्षत्रिय, सैन्य, सुरक्षा एवं युद्ध, बहादुरी के कार्यों में संलग्न थे। वैश्य, कृषि, पशुपालन, व्यवसाय, व्यापार एवं वाणिज्य आदि आर्थिक गतिविधियों में संलग्न थे। शूद्र, सेवा कार्यों एवं विविध शिल्प कार्यों में संलग्न थे। सातवाहन कालीन समाज की यह प्रमुख विशेषता थी कि, किसी भी वर्ण के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाता था। सातवाहन काल में दक्षिण भारत में आर्य संस्कृति से इतर स्थानीय लोग अपने व्यवसायों एवं आजीविका के साधनों के आधार पर वर्गो के रूप में पहचाने जाते थे। जैसाकि, कृषकों 'हलिक', व्यापारी को 'सेठी', लुहार को 'कंगर' तेली को तिलपिसक, बढ़ई को 'बंधकी' कहा जाता था। सातवाहन शासकों ने वर्ण व्यवस्था को समाज में स्थापित करने के प्रयास किये। किन्तु इसी काल में विदेशी जातियों शक, पहलव, यवनों ने ब्राह्मण एवं बौद्ध को स्वीकारा। अतः वर्ण व्यवस्था के द्वारा विदेशियों के लिए खोलकर सातवाहनों ने उदारता का परिचय दिया। गौतमीपुत्र ने वर्ण संकरता को रोकने का भी प्रयास किया। किन्तु व्यवहार में कठोरता का पालन नहीं किया और वर्ण संकरता निर्विरोध रूप से चलती रही।

सातवाहन काल में परिवार की 'संयुक्त परिवार' प्रथा प्रचलित थी। परिवार पितृसत्तात्मक होते थे। परिवार स्त्री और पुरूष दोनों की समानता स्थापित थी। समाज में आठ प्रकार के विवाह प्रचलित थे। समाज में एक पत्नी व्रत आदर्श माना जाता था। हालाँकि, बहुपत्नी प्रथा भी प्रचलित थी। अनुलोम–प्रतिलोम, अन्तर्जातीय विवाह भी होते थे। समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी थी। सातवाहन नरेशों के नाम के साथ उनकी माताओं के नाम जुड़े होते थे और इसमें वे अपना नाम घोषित करने में गर्व अनुभव करते थे। सातवाहन काल में नागानिका, गौतमी, बलश्री आदि नारियों के उदाहरण यह प्रगट करते है कि, पतियों के साथ उनकी स्त्रियां भी शासन–संचालन करती थीं। सातवाहन काल में स्त्रियों को सामाजिक धार्मिक एवं प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियाँ धार्मिक कार्यो के साथ ही दान देने के लिए भी स्वतंत्र थी। डॉ० के० गोपालाचारी ने अपने शोध में लिखा है कि, अमरावती के 145 लेखों में 72, कुड़ा के 30 में 13, नासिक के 29 में 16 लेखों में स्त्रियों के स्वतंत्र रूप से या सहरूप से दान–पुण्य की भागीदार थी।'' स्त्रियों को बचपन

से ही शिक्षा प्रदान की जाती थी और वे निर्वाध रूप से उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं। समाज में पर्दा प्रथा का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। अतः परिवार एवं समाज में स्त्रियों पर कोई प्रतिबंध नहीं रहा होगा।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः
   (क) वर्ण व्यवस्था ।
   (ख) वर्ग व्यवस्था ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) सातवाहन कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति का विवरण दीजिये ?

2.4.2 धार्मिक स्थिति

सातवाहन शासक अपनी धार्मिक सहिष्णुता के लिए प्राचीन भारतीय संस्कृति में जाने जाते हैं। ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म एवं अन्य सम्प्रदायों के मध्य सातवाहनों ने कोई भेदभाव नहीं किया तथा सभी धर्मो को राजकीय दान प्रदान किये गये। सातवाहन काल ब्राह्मण धर्म का पुनरूत्थान काल था तथा स्वयं सातवाहन शासक भी ब्राह्मण थे। इसी कारण सातवाहन शासन काल में ब्राह्मण धर्म का अभूतपूर्व विकास हुआ। वैदिक यज्ञ एवं अनुष्ठानों का आयोजन सातवाहन शासकों ने किया। सातवाहन शासक शातकर्णी प्रथम ने दो अश्वमेध यज्ञ किये थे। सातवाहन अभिलेखों में अश्वमेध यज्ञ, राजसूय यज्ञ, वाजपेय यज्ञ, आग्न्याध्येय यज्ञ, अप्तोर्यम यज्ञ, गार्गतिरात्र यज्ञ, दशरात्र यज्ञ आदि अनेक प्रकार के यज्ञों का उल्लेख किया गया है। समाज में आम जनता भी यथा सामर्थ्य धर्म–कर्म यज्ञ, कर्मकाण्ड एवं दानादि पुण्यार्थ करती थी। सातवाहन काल में दान–पुण्य, तीर्थ यात्राओं एवं पवित्र सरोवरों में स्नान करना धर्म–कर्म का हिस्सा माना जाता था। सातवाहन शासकों ने प्रभूत मात्रा में धर्म–पुण्य की की कामना से दान दिये। सातवाहन काल में ही सर्वप्रथम भूमिदान के प्रमाण मिलते हैं। सातवाहन शासकों एवं उनकी रानियों ने भारी मात्रा में वैदिक धार्मिक स्थलों एवं ब्राह्मणों को धन एवं भूमिदान दिये। सातवाहन काल में अनेक वैदिक देवी–देवताओं की उपासना के प्रमाण मिलते हैं। स्वयं सातवाहन शासक गौतमी पुत्र शातकर्णि अपने को वेदों का संरक्षक एवं अद्वितीय ब्राह्मण कहने में गौरवान्वित महसूस करता है। सातवाहन काल में शैव सम्प्रदाय और वैष्णव सम्प्रदाय के प्रभावशाली होने के प्रमाण मिलते हैं।

सातवाहन काल में बौद्ध धर्म बहुत सशक्त अवस्था में था। सातवाहन शासकों के स्वयं वैदिक धर्म के अनुयायी होने के बाबजूत बौद्ध धर्म आम जनता में निर्वाध रूप से फलता–फूलता रहा। सातवाहन शासकों एवं राजकीय परिवार के सदस्यों ने बौद्ध संघों, विहर चैत्यों, स्तूपों एवं भिक्षुओं को दान–दक्षिणा, भूमिदान एवं ग्रामदान किये। दक्षिण भारत में अनेक बौद्ध गुहाओं, चैत्यों, बिहारों का निर्माण सातवाहन काल में हुआ। सातवाहन काल में विदेशी जातियों अनेक विदेशी जातियों ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया और भारी मात्रा में दान पुण्य कार्य किया। दक्षिण भारत के अनेक अभिलेखों में चैत्य, विहार, स्तूप के निर्माण में दानदाताओं की सूची में विदेशियों के नाम मिलते हैं।

सातवाहन काल में जैनधर्म भी प्रगतिशील अवस्था में था। इतिहासविदों का मानना है कि, सातवाहन काल दक्षिण भारत में जैन धर्म के अनुयायियों की अनेक बस्तियाँ थी। तमिल देश एवं मैसूर में जैन धर्म अधिक प्रभावशाली था। इतिहासकार सेवेल ने वर्तमान आंध्र प्रदेश के लगभग हर जिले में जैन अवशेष देखे थे।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः
   (क) बौद्ध धर्म ।

(ख) जैन धर्म ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) सातवाहन कालीन ब्राह्मण धर्म की स्थिति का विवरण दीजिये ?

2.4.3 आर्थिक स्थिति

सातवाहन काल में कृषि एवं व्यापार में अभूतपूर्व उन्नति हुई। कृषि सामान्य जनता की आर्थिक गतिविधियों की धुरी थी। सातवाहन काल में खेतिहर किसान को 'हलिक' कहा जाता था। सातवाहन काल में कृषि एवं भूमि का बहुत महत्व था। कृषि के साथ ही पशुपालन भी ग्रामीण कृषकों का प्रमुख व्यवसाय था। सातवाहन काल में भी गाय को पूज्य एवं पवित्र माना जाता है। सातवाहन शासकों ने दान में सहस्त्रों गायों को दान दिया था, जिसका उल्लेख सातवाहनों के अभिलेखों में मिलता है। सातवाहन शासक कृषकों से उपज का 1/6 भाग राजस्व कर के रूप में लेते थे। सातवाहन काल में लघु उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य विकसित अवस्था में था। सातवाहन कालीन अभिलेखों, साहित्यिक ग्रंथों एवं विदेशी यात्रियों के वृतान्तों से व्यापार एवं वाणिज्य की प्रगति का ज्ञान होता है। नासिक एवं जुन्नार के अभिलेखों में अनेक व्यवसायों, व्यवसायकारों, व्यावसायिक संगठनों एवं अक्षयनिधियों का उल्लेख मिलता है। बढ़ई, लुहार, कुम्हार, बुनकरों, ठठेरों, तेलियों, गंधिकों (इत्र व्यवसायियों), मछुआरों, स्वर्णकारों एवं अन्य धातु व्यवसायियों आदि के उल्लेख मिलते हैं। इन व्यवसायियों के अपने व्यावसायिक संगठन होते थे, जिन्हें श्रेणियाँ कहा जाता था।

सातवाहन काल में प्रतिष्ठान, धान्यकटक, भड़ौच, तगर (तेर), जुन्नार, नासिक, वैजयंती, विजयपुर, सोपास, कोंटाकोसिला, गुंडूर, अल्लोसीगें, हैदराबाद (गोलकुंडा), कुदूर आदि अनेक नगरों का व्यापारिक एवं व्यावसायिक मण्डियों के रूप में अभिलेखों, टॉलमी, पेरिप्लस ऑफ दि एरीथ्रियन सी में उल्लेखित है। ये नगर सड़क मार्ग से एक – दूसरे से जुड़े हुए थे। भड़ौच, सोपारा, कल्याण, कोंटाकोसिला, कोड़ोगरा (गुडूर) उल्लोसीगे, आदि नगरों के बंदरगाहों से विदेशों को व्यापार होता था। जी वैंकटराव का मत है कि, ''सातवाहन शासक पुलुमावि (द्वितीय) के शासनकाल में पूर्वी दकन में जहाजरानी के एक ऐतिहासिक युग का प्रादुर्भाव हुआ, जो यज्ञश्री के शासनकाल में अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था।'' सातवाहन काल में विलासिता की वस्तुओं औषधियों, मसालों, विविध प्रकार के वस्त्रों, आकर्षक हीरे–मोती एवं अन्य रत्न आदि का निर्यात विदेशों को होता था। आयात की वस्तुओं में धातुओं के बर्तन, चकमक के गिलास, मूल्यवान पत्थर गाने वाले लड़के, सुंदर लड़कियाँ मंदिरा आदि थी। सातवाहन काल में व्यापार एवं वाणिज्य की उन्नति में मुद्रा व्यवस्था ने भी आधारभूत भूमिका निभायी होगी। सातवाहनों ने सीसे, पोटीन, चाँदी एवं ताँबे के सिक्के चलाये। इस काल में दक्षिण भारत में रोमन सिक्के भी मिलते हैं। अभिलेखों में स्वर्ण के सिक्कों का भी उल्लेख मिलता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

(क) कृषि एवं पशुपालन ।

(ख) लघु उद्योग ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) सातवाहन कालीन व्यापार एवं वाणिज्य का विवरण दीजिये ?

2.4.4 शिक्षा एवं साहित्य

शिक्षा एवं साहित्य के विकास में सातवाहनों शासनों ने गहरी रूचि ली। शिक्षा राज्य का दायित्व नहीं था। शिक्षा गुरूकुलों, गुरूगृहों में, जैन एवं बौद्ध विहारों में दी जाती थी। सातवाहन काल में धार्मिक एवं समाजोपयोगी दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। विद्वानों का मत है कि, सातवाहन काल में संभवतः विविध शिल्पों की भी शिक्षा दी जाती होगी। सातवाहन शासन, व्यापारिक संघ, श्रेणियाँ, धनाढ्य वर्ग आदि अनुदान देकर शिक्षा को प्रोत्साहित करते थे। सातवाहन काल में प्राकृत भाषा राजकीय भाषा थी। प्राकृत के साथ–साथ संस्कृत भाषा का विकास भी सातवाहन काल में हुआ। सातवाहन काल की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक कृति सातवाहन शासन 'हाल' की प्राकृत भाषा में 'गाथा सप्तशती है। प्राकृत में ही गुणाढ़्य की बृहत्कथा एवं संस्कृत में शर्ववर्मन का संस्कृत व्याकरण ग्रंथ 'कातंत्र' अमर कृतियाँ हैं।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

    (अ) सातवाहन कालीन शिक्षा एवं साहित्य का विवरण दीजिये ?

2.4.5 कला

सातवाहन शासनकाल के सुदीर्घ आधिपत्य में पश्चिम एवं दक्षिण भारत में कला का सर्वत्र सर्वांगीण विकास हुआ। सातवाहन काल में स्तूप, चैत्य, विहार, शैलोत्कीर्ण कला एवं मूर्तियों का अभूतपूर्व विकास हुआ। अमरावती, घंटशाल, गोली आदि में स्तूपों एवं मात्रा कार्ले, नासिक, पीतलखोरा, अजंता आदि में शैलोत्कीर्ण गुहा कला एवं मूर्तियों का भारी संख्या निर्माण हुआ।

2.4.5.1 स्तूप

सातवाहन शासनकाल में अनेक स्तूपों एवं उनके वास्तु अंगों का निर्माण हुआ। *अमरावती* (आंध्र प्रदेश) में सातवाहन काल में महास्तूप का निर्माण हुआ। अमरावती स्तूप का प्रमुख वास्तु अंग महावेदिक थी। महावेदिका पर जातक कथाओं के दृश्य एवं बुद्ध के जीवन की घटनाओं का उत्कीर्ण किया गया था। सूचियों पर कमल पुष्पों का उत्कीर्ण है। स्तूप के तोरण द्वारों पर बोधिवृक्ष, धर्मचक्र, स्तूप आदि का उत्कीर्ण है। *गोली* (गुंटूर जिला) नामक स्थल पर सातवाहन काल के स्तूप के अवशेष मिले हैं। गोली में शिलापट्ट पर स्तूप का उत्कीर्ण है। शिलापट्टों पर ही अनेक मूर्तियों के अंकन मिले हैं। *भट्टिप्रोलु* में भी सातवाहन कालीन एक महास्तूप मिला है। *घण्टशाल* एवं *जगय्यपट्ट* में भी सातवाहन कालीन स्तूप मिला है। *नागार्जुनीकोड़ा* (जिला गुंटूर) में सातवाहनों के सामंत इक्ष्वाकु वंश के शासकों ने महास्तूप का निर्माण कराया।

2.4.5.2 चैत्य एवं विहार

सातवाहन काल में शैलोत्कीर्ण गुफाओं का निर्माण संभवतः भारतीय इतिहास सर्वाधिक हुआ। डॉ० के० डी० वाजपेयी ने लिखा है कि ''पश्चिम भारत के शैलगृहों की संख्या बहुत बड़ी है। उनमें सर्वाधिक लगभग 900 बौद्ध, शेष 200 जैनधर्म तथा वैदिक धर्मो से संबंधित है। शैलोत्कीर्ण गुहाओं में चैत्य एवं विहार दोनों सम्मिलित हैं। *भाजा* (पूना, महाराष्ट्र) में सातवाहन काल में चैत्य, विहार एवं चौदह छोटे–छोटे स्तूप बने थे। भाजा के चैत्य गृह के वास्तु अंगों में मण्डप, प्रदक्षिणा पथ, स्तम्भ, गजपृष्ठाकार छत प्रमुख है। *भाजा* के विहार के वास्तु अंगों में महामण्डप, कोडरिया, स्तम्भ, अर्धस्तम्भ प्रमुख है। *कोंडाने* की गुहा के वास्तु अंगों में महामण्डप, मण्डप, स्तम्भ, गजपृष्ठाकार छत प्रमुख है। *पीतलखोरा* (औरंगाबाद महाराष्ट्र) की 03 नं. की गुहा चैत्य गृह है। चैत्यगृह में ईंटों का अण्ड बना था। प्रदक्षिणा पथ एवं कक्ष का विधान है। गुहा नं० 04 विहार थी। *अजंता* की गुहा नं. 10 सातवाहन कालीन है। गुहा नं. 09 भी चैत्यशाला है। विहार

गुहा नं. 12, 13 एवं 08 विहार है। *बेडसा,* (नासिक, महाराष्ट्र) में विहार एवं चैत्य गृह दोनों, *जुन्नार* में लगभग 150 शैलगृह एवं 10 चैत्य शालाऐं हैं। *जुन्नार* हीनयान बौद्ध धर्म का बड़ा केन्द्र था। *कार्ला* (कार्ले) में एक चैत्यशाला एवं तीन विहार है। *कन्हेरी* में एक चैत्यगृह एवं अनेक विहारों का निर्माण सातवाहन काल में हुआ। पूर्वी भारत में सातवाहन काल में भुवनेश्वर (उड़ीसा) के पास उदयगिरि की पहाड़ी पर 19 गुफाओं एवं खण्डगिरि में 16 गुफाओं का निर्माण हुआ।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) सातवाहन कालीन स्तूपों एवं उनके वास्तु अंगों का विवरण दीजिये ?
   (ब) सातवाहन कालीन चैत्यों एवं विहारों का विवरण दीजिये ?

2.5 कुषाण कालीन संस्कृति

कुषाण पश्चिमी चीन के गोबी प्रदेश के मूल निवासी थे। इतिहासकार कुषाणों को 'यू– ची' जाति का मानते है। कुषाणों को उनके मूल स्थान से 'हूंग – नू' (हूण) जाति ने खदेड़ दिया था। कुषाणों ने बैक्टिरिया पर अधिकार कर लिया और सोण्डियाना (आधुनिक बोखारा) को अपनी राजधानी बनाया। यहीं से कुषाणों ने अपने लिए सुरक्षित स्थान तलासने और अपने लिए राज्य निर्माण की लालसा से उत्तर पश्चिमी भारत में प्रवेश किया। कुषाणों का सबसे महान शासक कनिष्क प्रथम था। कनिष्क से पूर्व कुजुल कडफिसेस, विमकडफिसेस, सोटर मेगास आदि प्रारंभिक कुषाणों शासकों के नाम मिलते हैं। कुषाण शासक विमकडफिसेस ने भारत में सर्वप्रथम स्वर्ण मुद्राएँ प्रचलित की थी। विम कडफिसेस ने ही सबसे पहले कुषाण साम्राज्य को भारत में स्थापित किया था। कुषाण राजवंश का सबसे प्रतापी शासक कनिष्क (लगभग 78 ई० – 101 ई० तक) था। जिसका शासनकाल कुषाण राजवंश का प्रत्येक क्षेत्र में चर्मोत्कर्ष था।

2.5.1 सामाजिक स्थिति

भारतीय संस्कृति में कुषाण कालीन संस्कृति अपना विशिष्ट स्थान रखती थी। कुषाण कालीन संस्कृति विविध धर्मो एवं समाजों का सम्मिश्रण थी। कुषाण साम्राज्य में सनातन हिन्दू, बौद्ध, जैन एवं अन्य सामाजिक विचार धाराओं पर जीवन जीने वाले समुदाय रहते थे। इसीलिए कुषाण साम्राज्य में सामाजिक विविधा, कुषाण कालीन समाज की प्रमुख विशेषता थी। सनातन हिन्दू सामाजिक व्यवस्था चार वर्णो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में विभक्त थी। चातुर्यवर्ण व्यवस्था के अनुसार ही अपने व्यवसायों में संलग्न थी। समाज प्राचीन आठ प्रकार के विवाहों के साथ–साथ अनुलोम–प्रतिलोम विवाह होते थे। वर्ण संकर जातियों का भी उल्लेख मिलता है।

समाज में बौद्ध एवं जैन धर्मावलम्बी अपनी–अपनी सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुरूप रह रहे थे। कुषाणकाल में विदेशी जातियाँ अपनी सामाजिक परंपराओं के साथ ही भारतीय परंपराओं का सामाजिक जीवन में उपयोग कर रहे थे। अनेक विदेशी जातियों ने बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्म को ग्रहण कर लिया था। स्वयं कुषाण शासकों ने भी बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्म में अपनी आस्था प्रगट करके उनका सामाजिक जीवन अपनाया था। डॉ० बी० एन० पुरी ने लिखा है कि, कुषाणों के अधीन भारत में सामाजिक जीवन समृद्धि और विविधताओं से परिपूर्ण था। समाज में स्त्री एवं पुरूषों की वेशभूषा में भी भारी विविधताऐं थी। उत्तर मध्य भारत, राजपूताना, पंजाब के भौगोलिक क्षेत्र की वेशभूषा में भारी अंतर था। समाज में शाकाहारी एवं माँसाहारी दोनों प्रकार का भोजन प्रचलित था। कुषाण कालीन समाज में मनोरंजन के साधनों में नृत्य–संगीत–गायन के वाद्ययंत्रों ढोल–मंजीरा, सितार, सारंगी, एकतारा आदि का मूतियों में अंकन बहुत मिलता है। शिकार खेलना पाँसों का खेल, अखाड़े और व्यायाम शालाएँ, नाटकों तथा जादूगरों के खेल आदि मनोरंजन के साधन थे।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

   (अ) कुषाण कालीन सामाजिक स्थिति का विवरण दीजिये ?

2.5.2 आर्थिक स्थिति :

कुषाण काल में कृषि, पशुपालन, उद्योग धंधे एवं व्यापार– वाणिज्य उन्नतिशील अवस्था में था। बहुसंख्यक आम जनता कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर थी। कुषाणकाल में राज्य द्वारा अनाज संग्रहण एवं वितरण किया जाता था। कुषाण काल उद्योग–धंधों एवं व्यापार–वाणिज्य की दृष्टि से अब तक के भारतीय इतिहास में सर्वश्रेष्ठ स्थिति में था। कुषाण साम्राज्य अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्गो एवं व्यापारिक स्थलों के केन्द्र में था। कुषाण साम्राज्य की सीमा पूर्व में चीन तथा पश्चिम में रोमन साम्राज्य से मिलती थी। इसी कारण रोम, ईरान, अफगानिस्तान, खोतन, चीनी तुर्किस्तान, काशगर, चीन, तिब्बत से व्यापारिक संपर्क स्थापित हो गया। इसके साथ ही दक्षिण पूवी देशों में भारतीयों ने हिंद चीन एवं हिन्देशिया में अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। भारत से इन देशों में तथा यहाँ से व्यापारी चीन से व्यापार करते थे। कुषाण साम्राज्य से अंतर्राष्ट्रीय 'रेशम मार्ग' (सिल्क रूट) गुजरता था। इस रेशम मार्ग पर कुषाणों का नियंत्रण होने से स्थानीय व्यापारी बिचौलिये की भूमिका निभाकर भारी आर्थिक लाभ कमाते थे। भारतीय विदेशों को रेशम, मलमल, वस्त्र, सुगंधित पदार्थ, मोती, मलाल अन्य अनेक प्रकार की वस्तुऐं निर्यात करते थे। एक यूनानी लेखक लिखता है कि, रोम की स्त्रियाँ भारत के मलमल के परिधान पहनकर सौन्दर्य प्रदर्शन करती है।'' यूनानी लेखन प्लिनी भारतीयों को होने वाले भारी आर्थिक लाभ पर दुःख प्रगट करता है। रोमन साम्राज्य में भारतीय रेशमी, मलमल के वस्त्रों एवं अन्य सौंदर्य सामग्री के उपयोग को सामाजिक उच्चता का प्रतीक समझा जाता था।

चीनी लेखक पानचाऊ अपने ग्रंथ 'शिन–हान–चाउ' में दक्षिण भारत के चीन से सामुद्रिक मार्ग से व्यापार का उल्लेख करता है। कुषाण काल में संगठित व्यावसायिक संघो एवं श्रेणियों के माध्यम से स्थलीय एवं जलीय मार्गो से बड़ी संख्या में व्यापार होता था। महावस्तु में उल्लेखित है कि, व्यापारी सामान से लदे जहाजों को लेकर समुद्र पार जाते थे। कुषाण कालीन व्यापार एवं वाणिज्य की समृद्धि में मजबूत मुद्रा प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। कुषाणों ने सोना, ताँबे के विविध प्रकार के सिक्के जारी किये।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

   (अ) कुषाण कालीन आर्थिक स्थिति का विवरण दीजिये ?

2.5.3 धार्मिक स्थिति

कुषाण काल धार्मिक सहिष्णुता एवं सामंजस्य का अद्‌भुत संगम था। कुषाण साम्राज्य में आम जनता मध्य एशियायी, यूनानी, सुमेरियन, ईरानी, बौद्ध, जैन, ब्राह्मण देवी–देवताओं की उपासना करती थी और शासक सभी का समानता के साथ सम्मान करते थे। कुषाण शासकों के सिक्कों पर ब्राह्मण, बौद्ध, यूनानी, सुमेरी, ईरानी, रोमन आदि धर्मो के देवी–देवताओं के चित्र मिलते हैं। कुषाणकाल में भी ब्राह्मण धर्म शक्तिशाली था अधिकांश जनता ब्राह्मण धर्मावलम्बी थी। कुषाणों ने अपने सिक्कों पर शिव, नंदी, वासुदेव, मित्र, यम, स्कन्द कुमार, उमा, विशाखा, महासेन, वरूण, मिहिर आदि ब्राह्मण देवी–देवताओं का अंकन करवाया। कुषाणों ने अपने शासनकाल में ब्राह्मण धर्म एवं ब्राह्मण धर्मावलंबियों का पूरा सम्मान किया।

कुषाण काल में जैन धर्म भी प्रचलित था। कुषाण साम्राज्य में मथुरा जैन धर्म का एक बड़ा केन्द्र था। संभवतः मथुरा में जैन धर्म का कोई बड़ा संघ रहा होगा। मथुरा से जैन तीर्थकरों की मूर्तियाँ जैन देवियों की मूर्तियाँ, आयागपट्ट आदि मिले हैं। इस प्रकार कुषाणकाल में जैन धर्म भी प्रगति करता रहा।

कुषाण शासकों ने बौद्ध धर्म में गहरी आस्था प्रगट की। अनेक कुषाण शासक बौद्ध धर्म के प्रति आस्थावान थे, वहीं महान कुषाण शासक कनिष्क प्रथम ने स्पष्टतः बौद्ध धर्म अपनाकर, बौद्ध के राजकीय संरक्षण दिया और बौद्ध धर्म के विस्तार एवं प्रगति में योगदान प्रदान किया। इतिहासकारों का मत है कि, कनिष्क को बौद्ध धर्म में सुदर्शन नामक बौद्ध विद्वान ने दीक्षित किया था। कनिष्क ने अपने शासनकाल के प्रारंभिक वर्षो में ही बौद्ध धर्म को अपना लिया था। कनिष्क ने बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए अनेक कार्य किये। इसी कारण बौद्ध ग्रंथों में कनिष्क को बौद्ध धर्म का संरक्षक एवं दूसरे अशोक के रूप में उल्लेखित किया गया है। कनिष्क ने अनेक बौद्ध विहार स्तूपों एवं बौद्ध मूर्तियों का निर्माण करवाया। कनिष्क के बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए कनिष्कपुर, पुरूषपुर, मथुरा, तक्षशिला आदि अनेक स्थानों पर स्तूपों विहारों का निर्माण करवाया। कनिष्क ने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए बौद्ध विद्वानों को चीन, तिब्बत, जापान एवं मध्य एशिया भेजा।

2.5.3.1 चतुर्थ बौद्ध संगीति

कनिष्क ने बौद्ध धर्म की प्रगति और प्रचार–प्रसार के साथ ही, तत्कालीन समय में बौद्ध धर्म में प्रचलित विभिन्न सिद्वानों, मतों एवं विवादों पर गहन अध्ययन एवं विचार विमर्श के लिए चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन करवाया। चतुर्थ बौद्ध संगीति कश्मीर के कुण्डलवन में आयोजित की गयी। इस संगीति के अध्यक्ष वसुमित्र तथा उपाध्यक्ष अश्वघोष को बनाया गया। संगीति में 500 से अधिक बौद्ध भिक्षुओं एवं विद्वानों ने हिस्सा लिया। बौद्ध संगीति में नागार्जुन एवं पार्श्व ने भी हिस्सा लिया था। यह संगीति छह माह तक चली। इसके सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य पर विस्तृत चर्चा की गयी। विद्वानों ने गहन चिंतन–मनन करके त्रिपिटकों पर शुद्ध टीकाएँ लिखी। टीकाओं को 'महाविभाष' नामक ग्रंथ में संकलित किया गया। यहीं 'महाविभाष' कालान्तर में 'बौद्ध धर्म का विश्वकोष' कहलाया। कनिष्क ने सभी टीकाओं को ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण कराके एक नवीन निर्मित स्तूप में संरक्षित करवा दिया। इस बौद्ध संगीति में बौद्ध धर्म में प्रचलित तत्कालीन 18 मतों (सिद्धांतों) में चला आ रहा विवाद गहन विचार–विमर्श के बाद समाप्त कर दिया गया। 'महायान' बौद्ध धर्म का उदय संगीति के विचार मंथन से हुआ।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः
   (क) चतुर्थ बौद्ध संगीति ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) कुषाण कालीन धार्मिक स्थिति का विवरण दीजिये ?

2.5.4 साहित्य का विकास

कुषाण काल साहित्यिक प्रगति का काल था। कुषाण शासक कनिष्क के काल में भाषा एवं साहित्य की चतुर्दिक प्रगति हुई। कुषाण काल में यूनानी संस्कृत, प्राकृत भाषा एवं ब्राह्मी एवं खरोष्ठी लिपियों का विकास हुआ। कनिष्क की राजसभा में वसुमित्र, अश्वघोष, नागार्जुन, पार्श्व, माठर, चरक संघरक्ष आदि महान विद्वानों को राजकीय प्रश्रय प्राप्त था। वसुमित्र ने चतुर्थ बौद्ध संगीति की अध्यक्षता की तथा महान बौद्ध ग्रंथ महाविभाष की रचना की थी। अश्वघोष ने चतुर्थ बौद्ध संगीति की उपाध्यक्षता की थी। अश्वघोष ने बुद्धचरित, सौन्दरानंद जैसे महान् महाकाव्यों एवं शारिपुत्र प्रकरण जैसे सुप्रसिद्ध नाटक की रचना की थी। महान दार्शनिक एवं वैज्ञानिक नागार्जुन ने प्रसिद्ध ग्रंथ प्रज्ञापारमितासूत्र की रचना की। प्रज्ञापारमिता सूत्र में ही नागार्जुन ने अपने विश्व प्रसिद्ध सिद्धान्त 'सापेक्ष्यवाद' (शून्यवाद) सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। प्रसिद्ध चिकित्सक चरक ने आयुर्वेदिक ग्रंथ 'चरक संहिता' की रचना की। चरक को आयुर्वेद का जन्मदाता कहा जाता है। माठर (मथर) कनिष्क का सुप्रसिद्ध राजनीतिक सलाहाकार था। डॉ० एच० सी० राय चौधरी ने

ठीक ही लिखा है कि, ''कुषाणकाल साहित्यिक क्रियाशीलता का युग था, इसका ज्ञान अश्वघोष, नागार्जुन एवं अन्य विद्वानों की रचनाओं से होता है।''

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

   (अ) कुषाण कालीन साहित्य के विकास का विवरण दीजिये ?

2.5.5 कला

कुषाणों के काल में कला चर्मोत्कर्ष पर थी। मथुरा, गांधार, पुरूषपुर, मनिक्याल, तक्षशिला, कौशांबी, सारनाथ आदि कुषाण कालीन कला के केन्द्र थे। कुषाण काल में विशेषतः कनिष्क ने कला के क्षेत्र में प्रशंसनीय योगदान प्रदान किया है। कनिष्क ने पुरूषपुर, तक्षशिला, बल्ख, खोतान, मनिक्याल, गांधार आदि में अनेक स्तूपों एवं विहारों का निर्माण कराया। कुषाण काल में नगरीकरण की प्रगति में अत्यधिक तेजी आयी। अनेक नवीन नगरों की स्थापना हुई एवं पहले से स्थापित नगरों के नगरीकरण में भारी तेजी आयी। कनिष्क ने तक्षशिला में सिरकप तथा पुरूषपुर में कनिष्कपुर नामक नवीन नगरों की स्थापना की। कनिष्क के शासनकाल में मूर्तिकला के क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य हुआ। कनिष्क के शासनकाल ने कला के क्षेत्र में भारतीय संस्कृति को मथुरा कला एवं गांधार कला की महत्वपूर्ण कृतियाँ दी है। कनिष्क के शासनकाल में मथुरा कला एवं गांधार कला की 'मूर्तिकला कला' विश्वविख्यात हो चुकी थी।

2.5.5.1 मथुरा कला

भारत में मथुरा का कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मथुरा, कला की दृष्टि से एक लंबे समय तक कला की उत्कृष्ट कृतियों का सृजन करता रहा। कला के एक केन्द्र के रूप में मथुरा कला ने अपनी विशिष्टता को स्थापित किया। इसी कारण मथुरा को 'मथुरा कला के विद्यालय' (मथुरा स्कूल ऑफ आर्ट) की संज्ञा दी गयी। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने मथुरा कला के विषय में लिखा है कि ''मथुरा शिल्प में अलंकृत विषयों की मौलिकता और विविधता प्रतिभाशाली शिल्पियों की मौलिक संरचना एवं सृजनात्मता की उत्कृष्टता का द्योतक है।'' वस्तुतः कुषाण काल में मथुरा कला अपने पूर्ण यौवन को प्राप्त कर चुकी थी, मथुरा कला अपनी मूर्तिकला कला में पूर्ण दक्ष हो चुकी थी, अपनी वैशिष्टक विशेषता के कारण इसने सम्पूर्ण भारत की कला को प्रभावित किया। मथुरा कला में बौद्ध, जिन, हिन्दू देवी – देवताओं, यक्ष, यक्षिणी आदि की मूर्तियों का निर्माण हुआ।

कुषाण कालीन मथुरा कला की विशेषताएँ :

1. कुषाण कालीन शिल्पी ने सम्मुख दर्शन के साथ–साथ पार्श्व दर्शन, पृष्ठ दर्शन आदि का प्रयोग किया है, देवताओं और राजपुरुषों की मूर्तियाँ सम्मुख दर्शन रूप में उकेरी गई हैं। उक्त मूर्तियों की श्रेष्ठता हेतु 'सम्मुख दर्शन' अपरिहार्य था।
2. मथुरा के शिल्पी को जहाँ जीवन में अनेक पहलू उद्भृत करने थे, वहां अनौपचारिकता का वातावरण उत्पन्न करना आवश्यक था और ऐसे दृश्यों में मुद्रा व कोणों की भिन्नता के द्वारा स्त्री–पुरुष आकृतियों में स्वाभाविकता लाना सम्भव था, जिसके लिये कलाकारों ने आकृतियों में मृद्रा व कोणों की भिन्नता को प्रदर्शित किया है।
3. उस समय की मूर्तियाँ पृष्ठ से अधिक उभरी हैं और इस कारण पूर्वकालीन मूर्तियों में जो चपटेपन का आभास होता है, वह कुषाण काल में समाप्त हो गया, जो मूर्तियाँ शिलापट्टों पर उभारकर बनाई गई हैं,

उनके भी पृष्ठ भाग पर केश सहित आभूषण अथवा वस्त्र दिखाये गये हैं या मूर्ति के पृष्ठ भाग पर पशु – पक्षी, पुष्प – पत्ती आदि आकृतियाँ प्रदर्शित की गई हैं।

4. कुषाण युग में आरम्भिक काल की स्थूलता के आधार पर मूर्तियों को सुडौल हस्ट–पुष्ट एवं मांसल रूप में अंकित किया गया है। इसमें यह भी उल्लेखीय है कि, जंघा व पैरों के भारीपन को दूर करने का प्रयास कुषाण शिल्पियों ने आरम्भ कर दिया था, परन्तु दुर्भाग्यवश मथुरा के शिल्पी को जहाँ अनेकानेक सफलताएँ मिली। उससे वह गुप्त काल में इस दोष से मुक्त न हो सका।
5. कुषाण कालीन मथुरा कला के शिल्पी ने वस्त्र संरचना में भी नये–नये प्रयोग कर दिये थे, पूर्ण कालीन भारतीय वस्त्रों के स्थान पर मूर्तियों को सुरूचिपूर्ण व हल्के वस्त्रों से सुसज्जित किया गया।
6. कथानकों के अंकन की एक नई शैली का आरम्भ भी इसी युग में हो गया। पूर्व काल में एक ही चौखट के अन्तर्गत एक कथा से सम्बन्धित अनेक घटनाएँ प्रदर्शित कर दी जाती थीं, परन्तु अब विभिन्न घटनाओं को अलग–अलग स्पष्ट रूप में प्रदर्शित किया जाने लगा।
7. कुषाण कालीन मथुरा कला में निर्मित मूर्तियों पर मूंछें नहीं दिखायी गईं हैं, वास्तव में मूंछों से रहित मूर्तियों के निर्माण की परम्परा भारतीय थी।
8. मथुरा की कुषाण कालीन देव प्रतिमा के दाहिने कन्धे पर वस्त्र प्रदर्शित नहीं किये गये हैं, दाहिना हाथ अधिकतर 'अभयमुद्रा' में ही पाया गया है।
9. मथुरा की कुषाण कालीन कला के विषय एवं तकनीक भारतीय है। मथुरा के शिल्पी भारतीय आदर्श व भावनाओं को पूर्णतः व्यक्त करते है।
10. मथुरा शैली की पाषाण कला कृतियाँ प्रायः चत्तेदार 'बलुआ पत्थर' से निर्मित है।

मथुरा कला शैली में प्रथमतः मथुरा में बुद्ध को प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। ज्ञातव्य रहे कि, बुद्ध की प्रथम मूर्ति मथुरा कला में मथुरा में ही बनीं। कुषाण काल में मथुरा कला का विकास हुआ। डॉ० आर० एन० मिश्र ने लिखा है कि, कनिष्क के काल से बुद्ध की आसन एवं स्थानक मूर्तियों का सुचारू एवं प्रभावशाली ढंग से निर्माण होने लगा था। इनमें मथुरा में निर्मित बुद्ध की कंकाली टीला, महोली, कौशांबी, सारनाथ की 'स्थानक मूर्तियाँ' प्रमुख है। इनके अतिरिक्त, कटरा तथा आन्योर की 'पद्मासन मुद्रा' में निर्मित बुद्ध की मूर्तियाँ भी कनिष्क के काल की है।

कुषाण कालीन मथुरा कला शैली में हिन्दू देवी – देवताओं की प्रतिमाओं का भी बड़ी संख्या में निर्माण हुआ। शिव, विष्णु, सूर्य, अग्नि, ब्रह्मा, कार्तिकेय, इंद्र, बलराम, कामदेव, दुर्गा, लक्ष्मी, मातृकाएं आदि हिन्दू देवी – देवताओं की मूर्तियों का निर्माण हुआ। कुषाण कालीन मथुरा कला शैली में यक्ष – यक्षिणी मूर्तियों का निर्माण बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है। यक्ष – यक्षिणीयों की मूर्तियों के निर्माण में आध्यत्मिक पक्ष की अपेक्षा भौतिक पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने यक्षिणीयों एवं स्त्रियों की आकर्षक, मोहक, काम क्रीड़ा युक्त नग्न मूर्तियों को आम जनता के उत्सवों (लोकोत्सवों) से जोड़ा है। महोली, गोविन्दनगर से प्राप्त तथा मथुरा संग्रहालय में संरक्षित यक्ष मूर्तियाँ कुषाण कालीन मथुरा कला शैली की विशिष्ट यक्ष प्रतिमाएं है। डॉ० आर० एन० मिश्र लिखा है कि, यक्ष प्रतिमाएं मांसल, विशाल उदर, मोटी मूंछें, गोमुख, शंकुकर्ण, मेष कर्ण, मेंढक – मुंह, भयानक रूप वाले मिलते है। कुषाण कालीन मथुरा कला शैली में शिलाओं पट्टों, वेदिका स्तंभों आदि पर राजा – महाराजाओं की प्रतिमाएं मिलती है। इनमें कुषाण शासक कनिष्क की मथुरा संग्रहालय में संरक्षित पत्थर की मूर्ति प्रमुख है। कुषाण कालीन मथुरा कला शैली में जैन प्रतिमाएं भी मिलती है, जिनमें जैन सर्वतोभद्रिकाएं, स्वतंत्र जिन प्रतिमाएं, आयागपट्ट आदि प्रमुख है।

2.5.5.2 गांधार कला

गांधार मूर्तिकला का कुषाण काल में महत्वपूर्ण स्थान है। कुषाण काल में गांधार एशिया एवं यूरोप के मिलन का एक प्रमुख स्थल था। इसी कारण गांधार में एक विशिष्ट कला का विकास हुआ। जिसकी तकनीक यूनानी एवं विषय वस्तु भारतीय होने कारण विद्वानों ने ग्रीकों – रोमन, ग्रीकों – बुद्धिस्ट, इण्डो – रोमन, इण्डो – ग्रीक आदि नामों से संबोधित किया। किन्तु हाल के शोधों से प्रमाणित हो गया है कि इस विशिष्ट कला शैली का गांधार में ही उद्भव हुआ। अतः इसे 'गांधार मूर्तिकला शैली' कहना ही उचित है। गांधार मूर्तिकला कला शैली में निर्मित महात्मा बुद्ध की प्रतिमाओं में बुद्ध की मुखमुद्रा शख्त कठोर रूप में प्रदर्शित की गयी है। इसी कारण आनन्द कुमारस्वामी ने इन प्रतिमाओं को *'आत्मारहित पुतले'* कहा है। निहार रंजन राय ने इन प्रतिमाओं को *'कारखानों में मशीनों'* द्वारा निर्मित कहा है।

डॉ० आर० एन० मिश्र लिखा है कि, गांधार मूर्तिकला कला शैली कुषाण काल में विकास के तृतीय चरण में थी। इसका विस्तार सुर्खकोतल, हद्दा, बेग्राम, तेपे शोतोर, तेपे सरदार, तेपे मरंदजान (अफगानिस्तान) खल्चयान, तेपे देलवर्जिन (दक्षिणी उज्बेकिस्तान) आदि क्षेत्रों में था। कुषाण कालीन गांधार कला शैली की प्रमुख प्रतिमाएं है, बर्लिन संग्रहालय की बोधिसत्व प्रतिमा, ब्रिटिश संग्रहालय की बुद्ध प्रतिमा, भारतीय संग्रहालय कलकत्ता की बुद्ध प्रतिमा, लौरिया टंगाई की बुद्ध प्रतिमा, गांधार क्षेत्र के बीमरान एवं शाहजी की ढेरी से मिली अस्थि मंजूषाओं की बुद्ध प्रतिमाएं आदि।

कुषाण कालीन गांधार कला की विशेषताएँ

1. गांधार की कृतियाँ 'स्वात घाटी' में उपलब्ध 'स्लेटी पत्थर' से निर्मित की गयी हैं।
2. गांधार कला के विषय वस्तु में भारतीय किन्तु तकनीकी विदेशी हैं, अधिकांश विद्वानों का मानना है कि वास्तव में गांधार कला के अन्तर्गत मूर्तियों का विषय भारतीय, किन्तु तकनीकी यूनानी है। एक यूनानी कला के द्वारा भारतीय विषयों की वास्तविक अभिव्यक्ति नहीं हो सकती थी। अतः गांधार के शिल्पी भारतीय आदर्श व भावनाओं को व्यक्त करने में असमर्थ रहे।
3. महात्मा बुद्ध को सिंहासन पर बैठे हुये दर्शाया गया है तथा कहीं–कहीं वे चप्पल भी धारण किये हुये हैं।
4. महात्मा बुद्ध केश व उष्णीश (जूड़ा) में दिखाये गये हैं तथा वे आभूषण धारण किये हुये हैं। यह यूनानी प्रभाव को इंगित करता है। अपोलो और एक्रोडाइट की यूनानी मूर्तियों में सिर पर जूड़े का प्रदर्शन किया जाता था। अपोलो की मूर्ति पर निर्मित उष्णीश को 'क्रेम्ब्रीलोज' कहा जाता था।
5. गांधार में निर्मित की गयी कुछ मूर्तियों को रोम में प्रचलित 'शेग' की तरह का वस्त्र धारण किये हुये प्रदर्शित किया गया है। यह एक बड़ी प्रकार की चादर होती थी, जिससे सारे शरीर को ढंका जाता था।
6. बैंजामिन रोलेन्ड ने स्पष्ट किया है कि रोम की ऑगस्टस युग की मूर्तियों में दिखाए जाने वाले वस्त्रों में सिलवटों को दिखाने के लिये जिस प्रकार से गहरी लकीरें उकेरी गई हैं ठीक उसी प्रकार गांधार की बुद्ध मूर्तियों के वस्त्रों की सलवटें भी लकीरों में प्रदर्शित हैं, जो निश्चित ही प्रथम सदी ई० की रोमन कला के प्रभाव को सूचित करती हैं।
7. गांधार मूर्तियों में आध्यात्मिक व भावुकता का अभाव है, यही कारण है कि आनन्द कुमारस्वामी ने इन मूर्तियों को 'आत्मा रहित पुतलें' कहा है, निहार रंजन रे ने लिखा है कि 'गांधार कला की मूर्तियाँ कलाकारों द्वारा नहीं अपितु बृहत् संख्यां में कारखानों में मशीनों द्वारा निर्मित हैं।'
8. गांधार मूर्ति शिल्प में बुद्ध मूर्तियों के वस्त्र कुछ भारी तथा मोटे प्रतीत होते हैं, साथ ही मूर्तियों के दोनों कंधों को ढका हुआ दिखाया गया है। कुछ आसन मूर्तियों के दाहिने कंधों पर वस्त्र का प्रदर्शन नहीं

हुआ है। मूर्तियों को अधिक वस्त्राच्छांदित करने का कारण सम्भवतः गान्धार प्रदेश की शीतप्रद जलवायु की शिल्पियों की दृष्टि में रहा होगा। कुषाण परम्परा के प्रभाव कुछ मूर्तियों के चेहरे पर मूंछों का भी प्रदर्शन किया गया है।

9. गांधार मूर्तिकला का विषय प्रधानतः बुद्ध, बोद्धिसत्व तथा बुद्ध से सम्बन्धित है।
10. यूनानी प्रभाव के कारण गांधार मूर्तियों में बुद्ध 'अपोलो' देवता के समान लगते हैं।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. कनिष्क ने कौनसे नगर की स्थापना की थी ?
   (क) तक्षशिला (ख) कनिष्कपुर
   (ग) पुरूषपुर (घ) इनमें से कोई नहीं
2. बुद्ध की प्रथम मूर्ति बनीं थी ?
   (क) गांधार में (ख) तक्षशिला में
   (ग) मथुरा में (घ) इनमें से कोई नहीं
3. गांधार की कृतियाँ किस पत्थर से निर्मित की गयी हैं?
   (क) स्लेटी पत्थर (ख) बलुआ पत्थर
   (ग) लाल पत्थर (घ) इनमें से कोई नहीं
4. गांधार कला की मूर्तियों को किसने 'आत्मारहित पुतले' कहा है ?
   (क) निहार रंजन राय (ख) वासुदेव शरण अग्रवाल
   (ग) आनन्द कुमारस्वामी (घ) इनमें से कोई नहीं
5. कुषाण शासक कनिष्क की पत्थर की मूर्ति संरक्षित है ?
   (क) मथुरा संग्रहालय में (ख) कलकत्ता संग्रहालय में
   (ग) ग्वालियर संग्रहालय में (घ) इनमें से कोई नहीं

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) कुषाण कालीन मथुरा कला का विश्लेषण कीजिये ।
   (ब) कुषाण कालीन गांधार कला का विश्लेषण कीजिये ।

2.6 सारांश

शुंग–सातवाहन शासकों ने ब्राह्मण राजवंशों की स्थापना की। सर्वप्रथम राजनैतिक परिवर्तन के साथ ही धार्मिक परिवर्तन हुआ। इससे समाज में पुनः ब्राह्मणों की श्रेष्ठता स्थापित हुई। ब्राह्मणों के राजकीय सत्ता प्राप्ति से वैदिक संस्कृति पुनः प्रतिष्ठित हुई। मौर्यकाल में राजकीय संरक्षण के कारण बौद्ध धर्म संस्कृति का प्रभुत्व बढ़ गया था। शुंग – सातवाहन शासकों के राजनैतिक उत्कर्ष के साथ ही वैदिक संस्कृति का पुनरूत्थान हुआ और वैदिक धर्म संस्कृति द्वारा विहित सामाजिक धार्मिक ढाँचे को दृढ़ता के साथ स्थापित किया गया। किन्तु वैदिक संस्कृति के उत्थान ने बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म के स्तूप, चैत्य एवं विहार के स्थापत्य एवं विकास में कोई रूकावट पैंदा नहीं की। अपितु कला के क्षेत्र में सर्वाधिक उन्नति बौद्ध कला की ही हुई। कुषाण काल अपनी धार्मिक सहिष्णुता एवं समन्वय का उत्तम उदाहरण था। कुषाणों ने कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया तथा मथुरा एवं गांधार कला जैसी महान् कला संस्कृति का उत्थान हुआ।

2.7 तकनीकी शब्दावली

मृण्मूर्तियाँ : मिट्टी की मूर्तियाँ

चतुर्दिक : चारों ओर

पुनरूत्थान : फिर से उत्थान होना

वस्त्राच्छांदित : कपड़ों से ढके हुए या कपड़े पहने हुए

स्थापत्य कला : भवन निर्माण कला

चैत्य : पहाड़ों को काटकर गुफा के अंदर बना बौद्ध पूजा स्मारक

विहार : बौद्ध भिक्षुओं के रहने का भवन

आयागपट्ट : पत्थर की शिला पर बनीं जैन प्रतिमाएँ

2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 2.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 2.3.1.1 वैदिक या ब्राह्मण धर्म
2. देखिए 2.3.1.1 वैदिक या ब्राह्मण धर्म
3. देखिए 2.3.1.2 बौद्ध धर्म
4. देखिए 2.3.1.2 बौद्ध धर्म
5. देखिए 2.3.1.1 वैदिक या ब्राह्मण धर्म

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 2.3.1.1 वैदिक या ब्राह्मण धर्म
   (ख) देखिए 2.3.1.2 बौद्ध धर्म
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) देखिए 2.3.1.2 बौद्ध धर्म

इकाई 2.3.2 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः
   (क) देखिए 2.3.2.2 आश्रम व्यवस्था
   (ख) देखिए 2.3.2.3 स्त्रियों की स्थिति
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) देखिए 2.3.2.1 वर्ण व्यवस्था

इकाई 2.3.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) देखिए 2.3.3 आर्थिक स्थिति

इकाई 2.3.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) देखिए 2.3.4 साहित्य एवं भाषा

इकाई 2.3.5 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 2.3.5.2 चैत्य एवं विहारों का निर्माण
   (ख) देखिए 2.3.5.3 गरूड़ ध्वज एवं अन्य कला कृतियाँ

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 2.3.5.1 स्तूप एवं उनके वास्तु अंगों का निर्माण

इकाई 2.4.1 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 2.4.1 सामाजिक स्थिति

(ख) देखिए 2.4.1 सामाजिक स्थिति

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 2.4.1 सामाजिक स्थिति

इकाई 2.4.2 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 2.4.2 धार्मिक स्थिति

(ख) देखिए 2.4.2 धार्मिक स्थिति

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 2.4.2 धार्मिक स्थिति

इकाई 2.4.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 2.4.3 आर्थिक स्थिति

(ख) देखिए 2.4.3 आर्थिक स्थिति

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 2.4.3 आर्थिक स्थिति

इकाई 2.4.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 2.4.4 शिक्षा एवं साहित्य

इकाई 2.4.5 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 2.4.5.1 स्तूप

(ब) देखिए 2.4.5.2 चैत्य एवं विहार

इकाई 2.5.1 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 2.5.1 सामाजिक स्थिति

इकाई 2.5.2 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 2.5.2 आर्थिक स्थिति

इकाई 2.5.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 2.5.3.1 चतुर्थ बौद्ध संगीति

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 2.5.3 धार्मिक स्थिति

इकाई 2.5.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

   (अ) देखिए 2.5.4 साहित्य का विकास

इकाई 2.5.5 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 2.5.5 कला
2. देखिए 2.5.5.1 मथुरा कला
3. देखिए 2.5.5.2 गांधार कला
4. देखिए 2.5.5.2 गांधार कला
5. देखिए 2.5.5.1 मथुरा कला

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

   (अ) देखिए 2.5.5.1 मथुरा कला

   (ब) देखिए 2.5.5.2 गांधार कला

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ओमप्रकाश – *प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास,* नई दिल्ली, 1986
2. अग्रवाल, वासुदेवशरण – *भारतीय कला,* वाराणसी, 1987
3. भण्डारकर, आर० जी० – *द अर्ली हिस्ट्री ऑफ द डेक्कन,* बम्बई, 1957
4. डेविड्स, आर० – *बुदिस्ट इण्डिया,* कलकत्ता, 1955
5. गुप्त, एस० पी० – *दि रूट्स ऑफ इंडियन आर्ट,* दिल्ली, 1980
6. गोयल, श्रीराम – *प्राचीन भारत का इतिहास,* खण्ड 1, जोधपुर, 1998

   – *ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन बुद्धिज्म,* मेरठ, 1987
7. झा एवं श्रीमाली – *प्राचीन भारत का इतिहास,* दिल्ली, 2000
8. मजूमदार, रायचौधरी, दत्त – *भारत का बृहत, इतिहास,* खण्ड 1, नई दिल्ली, 1970
9. मजूमदार, रमेशचन्द्र – *प्राचीन भारत,* दिल्ली, 1973
10. मिश्र, आर० एन० – *भारतीय मूर्तिकला का इतिहास,* नई दिल्ली, 2002
11. पाण्डेय, विमल चन्द्र – *प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास,* भाग 1, इलाहाबाद, 1998
12. पुरी, बी० एन० – *इण्डिया अण्डर दि कुषाणज,* बम्बई, 1965
13. राय, निहार रंजन – *मौर्य तथा मौर्यन्तर कला,* दिल्ली, 1979
14. रोलैंड, बेजामिन – *ऑर्ट एंड आर्किटेक्चर ऑफ इंडिया,* हार्मड्सबर्थ, 1956
15. रैप्सन (संपा०) – *कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वो०1,* कैम्ब्रिज, 1922
16. रायचौधुरी, एच० सी० – *पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंश्येन्ट इण्डिया,* कलकत्ता, बी. एन. मुखर्जी द्वारा सम्पादित, कलकत्ता, 1997
17. शर्मा, रामशरण – *प्रारंभिक भारत का परिचय,* नई दिल्ली, 2009

    – *Materical Culture and Social Formations in ancient India, Delhi, 1983*
18. Sastri, Nilakanta (ed.)- *A Comprehensive History of India,vol. 2,* Bombay, 1957

    – *दक्षिण भारत का इतिहास,* पटना, 2006

19. स्मिथ, वी. एस. – *अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,* ऑक्सफोर्ड, 1924
20. त्रिपाठी, आर० एस० – *प्राचीन भारत का इतिहास,* बनारस, 1998
21. थापर, रोमिला – *कल्चरल पास्ट्स : ऐसेज इन अर्ली इंडियन हिस्ट्री,*नई दिल्ली, 2000
– *एशियन्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री,* नई दिल्ली, 1983
– *भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, 1989
22. वाजपेयी, कृष्णदत्त – *भारतीय वास्तुकला का इतिहास,* लखनऊ, 1990
23. याजदानी, जी. (संपा.) – *दकन का प्राचीन इतिहास,* नई दिल्ली, 1977

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ओमप्रकाश – *प्राचीन भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, 1986
2. महाजन, विद्याधर – *प्राचीन भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, 2008
3. मिश्र, जयशंकर – *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,* पटना, 2006
4. श्रीवास्तव, के० सी० – *प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति,* इलाहबाद, 2007
5. शर्मा, आनन्द कुमार – *भारतीय संस्कृति एवं कला,* नई दिल्ली, 2011

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. शुंग कालीन संस्कृति का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 2. सातवाहन कालीन संस्कृति का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 3. कुषाण कालीन संस्कृति पर प्रकाश डालिये ?

प्रश्न 4. कुषाण कालीन कला पर प्रकाश डालिये ?

इकाई –तीन : गुप्तकालीन संस्कृति

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 सामाजिक स्थिति

3.3.1 वर्ण व्यवस्था

3.3.2 स्त्रियों की स्थिति

3.3.3 मनोरंजन के साधन

3.3.4 दास प्रथा

3.4 आर्थिक स्थिति

3.4.1 कृषि

3.4.2 उद्योग–धंधे, व्यापार एवं वाणिज्य

3.4.3 श्रेणी

3.4.4 मुद्रा

3.5 धार्मिक दशा स्थिति

3.5.1 वैदिक धर्म

3.5.1.1 वैष्णव धर्म

3.5.1.2 शैव धर्म

3.5.2 बौद्ध धर्म

3.5.3 जैन धर्म

3.6 साहित्य

3.7 गुप्तकालीन कला

3.7.1 गुहा स्थापत्य कला एवं चित्रकला

3.7.1.1 बाघ की गुहा चित्रकला

3.7.2 स्तूप स्थापत्य कला

3.7.3 मंदिर स्थापत्य कला

3.7.4 गुप्तकालीन मूर्तिकला

3.8 सारांश

3.9 तकनीकी शब्दावली

3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा और उन्नति को गौरवशाली पृष्ठभूमि गुप्तकाल के सांस्कृतिक उत्थान ने प्रदान की। गुप्त शासकों ने लगभग 275 ई० से 550 ई० तक शासन किया। इस प्रकार गुप्त शासकों ने तृतीय शताब्दी ई० से छठी शताब्दी ई० तक शासन किया। चन्द्रगुप्त प्रथम समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य जैसे प्रतापी शासक गुप्त राजवंश में हुए। गुप्तों ने देश में राजनैतिक एकता स्थापित की। जिससे चतुर्दिक प्रगति, नवचेतना और नवस्फूर्ति का संचार हुआ। गुप्तों के उदार सुशासन ने देश में सभी क्षेत्रों की प्रगति के द्वार खोल दिये थे। गुप्तों ने सभी धर्मो एवं समाजों के साथ समानता, समन्वय एवं सहिष्णुता का अद्‌भुत परिचय दिया था। इसी कारण सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक क्षेत्र में प्रगति के नवीन सोपानों का निर्माण गुप्तकाल में हुआ। साहित्य एवं कला की सृजनशीलता तो गुप्त शासकों का आश्रय पाकर अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच गयी थी। गुप्तकाल में सांस्कृतिक उत्थान की महान् उपलब्धियों ने गुप्तकाल को भारतीय इतिहास का 'स्वर्णकाल' बना दिया है।

3.2 उद्‌देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के उद्‌देश्य निम्नलिखित है –

25. विद्यार्थी गुप्तकालीन संस्कृति को समझ सकेगें।

26. विद्यार्थी गुप्तकालीन सामाजिक स्थिति को जान सकेंगे।

27. विद्यार्थी गुप्तकालीन आर्थिक स्थिति को समझेंगें।

28. विद्यार्थी गुप्तकालीन धार्मिक स्थिति को समझ सकेगें।

29. विद्यार्थी गुप्तकालीन मूर्तिकला को समझ सकेगें।

30. विद्यार्थी गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य कला को समझ सकेगें।

31. विद्यार्थी ने गुप्तकालीन कला को समझ सकेगें।

32. विद्यार्थी गुप्तकालीन भाषा, शिक्षा एवं साहित्य को जान सकेंगे ।

3.3 सामाजिक स्थिति :

गुप्तकाल सामाजिक परिवर्तन का काल था। शुंग–सातवाहन काल में जिस 'वर्णाश्रम धर्म' का पुनरूत्थान हुआ था, वह गुप्तकाल में अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुका था। गुप्तकालीन सामाजिक जीवन अपनी प्राचीनता के साथ–साथ नवीन सामाजिक विचारों और पद्धतियों के साथ विकसित हुआ। गुप्तकाल तक आते – आते वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित हो गयी थी। ब्राह्मण वर्णाश्रम व्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन भी गुप्तकाल में दिखने को मिलते है।

3.3.1 वर्ण व्यवस्था :

गुप्तकाल के सामाजिक पटल पर विविध परिवर्तन देखने को मिलते हैं। वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित हो चुकी थी। साथ ही, वर्ण व्यवस्था में लोचता के अधिक प्रमाण मिलते हैं। गुप्तकालीन गौरव ग्रंथों में राजा को 'वर्णाश्रम धर्म' का संरक्षक कहा गया है और उससे आशा की गयी है कि, वह वर्णाश्रम धर्म की सीमाओं के उल्लंघन को रोके। समाज चार वर्णो में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में विभाजित था। गुप्तकाल में ब्राह्मणों के धर्म विहित वही कर्त्तव्य थे, जो परंपरागत चले आ रहे थे। अध्ययन – अध्यापन, धार्मिक – यज्ञानुष्ठान, दान लेना आदि थे। गुप्तकाल में अनेक ब्राह्मण उच्च प्रशासनिक पदों पर पदासीन थे। क्षत्रिय का कर्त्तव्य रक्षा – युद्ध, राजकाज से संबंधित था। वैश्य का कर्त्तव्य आर्थिक क्रियाकलापों कृषि, पशुपालन, व्यापार एवं वाणिज्य से संबंधित था। शूद्र का कर्त्तव्य समाज की सेवा करना था। किन्तु यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि, गुप्तकालीन वर्णाश्रम व्यवस्था में शूद्रों के जीवन में भारी सकारात्मक परिवर्तन दिखने को मिलते है।

फाह्यान से ज्ञात है कि, चारों वर्ण सामाजिक नियमों का पालन करते हुए अलग – अलग रहते थे। वाराहमिहिर ने 'वृहत्संहिता' में चारों वर्णो की अलग – अलग बस्तियों का विधान दिया है। दण्ड विधान में भी विभेद के प्रमाण मिलते हैं। ब्राह्मण की परीक्षा तुला से क्षत्रिय की अग्नि से वैश्य की जल से एवं शूद्र की

विष से लिये जाने की सलाह दी गयी है। नारद स्मृति की सलाह है कि, चोरी करने पर ब्राह्मण का अपराध सर्वाधिक तथा शूद्र का सबसे कम माना जाएगा। गुप्तकाल में शूद्रों को दण्ड विधान में भारी छूट मिली। उन्हें उच्च वर्णो की अपेक्षा सबसे कम दण्ड मिलता था। गुप्तकालीन दण्ड विधान का शूद्रों के लिए यह अभूतपूर्व परिवर्तन था। गुप्तकाल में शूद्रों के सम्पत्ति अधिकारों में भी वृद्धि हुई। शूद्रक ने मृच्छकटिक में लिखा है कि, ब्राह्मण और शूद्र एक ही कुएं से पानी भरते थे।

गुप्तकाल में जहाँ राजा को वर्णाश्रम धर्म की सीमाओं की सुरक्षा का दायित्व दिया गया था, वहीं सर्वाधिक वर्णाश्रम धर्म के उल्लंघन के प्रमाण गुप्तकाल में ही मिलते हैं। सर्वप्रथम तो गुप्त शासक ही संभवतः वैश्य थे। साथ ही, गुप्तकाल में ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र राजाओं का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण मयूरशर्मन एवं विंध्यशक्ति ने क्रमशः कदम्ब एवं वाकाटक राजवंशों की स्थापना की। सौराष्ट्र, अवन्ति, मालवा के 'शूद्र' राजाओं का उल्लेख मिलता है। ह्वेनसांग भी सिंध एवं मतिपुर के शासकों को शूद्र बताता है। इस प्रकार गुप्तकाल में शूद्र प्रशासन एवं सैन्य व्यवस्था में क्रियाशील थे। वस्तुतः शूद्रों के जीवन में यह परिवर्तन उनकी सामाजिक स्वीकृति एवं उच्चता प्राप्ति का प्रतीक है। गुप्तकालीन ग्रंथों अमरकोष, याज्ञवल्क्य स्मृति, नृसिंह पुराण, वृहस्पति स्मृति आदि से पता चलता है कि, शूद्र केवल उच्च वर्णो की सेवक नहीं थे, अपितु शूद्र, कृषक, व्यापारी, शिल्पी, कामगारों आदि का कार्य करते थे। पुराणों ने भी शूद्रों को व्यापार एवं वाणिज्य की अनुमति दी है। गुप्तकाल में आर्थिक प्रगति होने से श्रमिकों की मजदूरी दुगनी होने के भी प्रमाण मिलते हैं। गुप्तकाल में शूद्रों के धार्मिक अधिकारों में भी वृद्धि हुई। गुप्तकालीन ग्रंथों में दान–पुण्य, भक्ति और यज्ञादि करते शूद्रों का उल्लेख है। मार्कण्डेय पुराण शूद्रों को दान देने और यज्ञ करने की अनुमति देते हुए इसे शूद्रों का कर्तव्य बताता है। मत्स्य पुराण भक्ति में मग्न, शुद्धाचरण युक्त शूद्र को 'मोक्ष' का भागी बताता है। याज्ञवल्क्य शूद्रों को 'पंचमहायज्ञ' करने की अनुमति देता है। इससे स्पष्ट है कि, शूद्र धर्म–कर्म में लीन रहते होंगे और धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन भी करते होगें। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि, खानपान छुआ–छूत आदि की भावना गुप्तकाल में नहीं रही होगी। गुप्तकाल में शूद्रों का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक विकास हुआ और इससे उनका निश्चित रूप से सांस्कृतिक उत्थान हुआ होगा।

गुप्तकाल के सामाजिक पटल पर कायस्थ नामक एक नवीन वर्ग प्रगट हुआ। जिसकी उत्पत्ति भूमि संबंधी राजस्व क्रियाकलापों से हुई। कायस्थों का प्रमुख कार्य लेखन, लेखाकरण, गणना, आय–व्यय, भूमिकर संग्रहण आदि थे। कायस्थ प्रमुखतः शासन की सेवा में रहते थे। याज्ञवल्क्य स्मृति में सर्वप्रथम 'कायस्थ वर्ग' का उल्लेख हुआ है। कालान्तर में गुप्तकाल के बाद की 'ओशनम् स्मृति' में कायस्थों का एक जाति के रूप में उल्लेख मिलता है। गुप्तकालीन समाज में वर्ण संकर जातियों का भी उल्लेख मिलता है। अमरकोष, याज्ञवल्क्य स्मृति, गौतम स्मृति आदि गुप्तकालीन ग्रंथों में मिश्रित जातियों एवं वर्णसंकर जातियों का उल्लेख मिलता है। इनका उदय अनुलोम–प्रतिलोम विवाहों और सामाजिक एवं धार्मिक नियमों के उल्लंघन से हुआ था। गुप्तकाल में चाण्डालों का उल्लेख अस्पृश्य जाति के रूप में हुआ है। फाह्यान ने चाण्डालों के अधम कार्यो में संलग्न रहने और ग्रामों से बाहर पृथक बस्ती में रहने का विवरण दिया है।

3.3.2 स्त्रियों की स्थिति :

गुप्तकालीन साहित्य व कला में स्त्रियों की आदर्शमय स्थिति का चित्रण मिलता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि, स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक रही होगी। गुप्त युग में रानी के रुप में नारी की

प्रधान स्थिति थी, वह कई स्थानों पर शासन संचालिका तथा प्रांतीय शासिका रही एवं उच्च वर्गों की लड़कियां उदार शिक्षा पाती थीं और उस युग के सांस्कृतिक कार्यो में खूब दिलचस्पी लेती थी। कुमारसंभव में कन्या को कुल का 'प्राण' कहा गया है। रघुवंश को 'स्त्री रत्न' एवं मालविकाग्निमित्र में 'वीरप्रसगिनी' कहा गया है। 'रघुवंश' एवं 'स्वप्नवासवदत्तम' में नायक अपनी पत्नी को प्रिये, सखी, सचिव, शिष्या कहता हैं, राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में लिखा है कि, स्त्रियाँ भी कवयित्री होती थी। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' में अनुसूया को 'इतिहास' का ज्ञाता कहा गया है। भवभूति, 'मालती–माधव' में माधवी को चित्र अंकित करते एवं संस्कृत समझने योग्य बताता है। अमरकोष स्त्रियों को शिक्षिका होना बताता है। कालीदास नारी साज सज्जा एवं प्रसाधनों पर विशेष जानकारी मिलती है। अजंता के भित्ति चित्रों से नारी केश सज्जा की विविध कलाओं का ज्ञान होता है। गुप्तकालीन समाज में गणिकाओं और देवदासियों के भी उल्लेख मिलते है।

इस काल में 'सती प्रथा' के स्पष्ट उल्लेख मिलते है। कालीदास एवं वात्स्यायन ने 'सती प्रथा' का उल्लेख किया है। गुप्तकालीन स्मृतिकारों वृहस्पति स्मृति एवं विष्णुस्मृति में सती होने की अनुमति दी गयी है। इस काल में सती प्रथा का प्रथम अभिलेखीय स्पष्ट उल्लेख मिलता है। 510 ई. के भानुगुप्त के एरण अभिलेख में गोपराज की पत्नी के सती होने का उल्लेख मिलता है। फाह्यान, ह्वेनसांग के विवरणों एवं अजंता–एलोरा के चित्रों से स्पष्ट है कि, समाज में पर्दा–प्रथा नहीं थी।

गुप्तकालीन समाज में पुनर्विवाह, पर्दा प्रथा, बाल–विवाह, अंतर–जातीय, अनुलोम–प्रतिलोम विवाह प्रचलित थे। समाज में एक पत्नी विवाह आदर्श माना जाता था। हालाँकि शासक वर्ग में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। गुप्तकालीन समाज में विधवा–विवाह प्रचलित था। नारद एवं पराशर स्मृति में विधवा–विवाह के समर्थन में उल्लेख मिलता है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने बड़े भाई रामगुप्त की विधवा पत्नी ध्रुवदेवी से विवाह किया था। अंतर–जातीय एवं अनुलोम–प्रतिलोम विवाह के उल्लेख राजवंशों के आपसी विवाहों में मिलते है। चन्द्रगुप्त ने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त की शादी ब्राह्मण वंशीय वाकाटक राजवंश के राजकुमार रूद्रसेन द्वितीय से किया था। चन्द्रगुप्त का विवाह नागवंशीय कुबेरनागा से हुआ था। ब्राह्मण वंशीय कंदम्ब राजवंश ने गुप्त राजकुमार से अपनी पुत्री का विवाह किया था। अतः स्पष्ट है कि, स्त्रियां शिक्षित होती थी तथा उनकी स्थिति अच्छी थी।

3.3.3 मनोरंजन के साधन :

गुप्तकालीन समाज में दैनिक जीवन को आनंदित एवं प्रफुल्लित रखने के लिए मनोरंजन के अनेक साधन विद्‌यमान थे। नृत्य – संगीत, नाटक, मल्ल युद्ध, घुड़दौड़, रथदौड़, साँड युद्ध, शिकार खेलना आदि का मनोरंजन के साधन के रूप में विवरण मिलता है। गुप्तकाल में द्युत क्रीड़ा एवं चौपड़ का खेल मनोरंजन का प्रमुख साधन था। पानगोष्ठियों में सामूहिक सुरापान करने के उल्लेख मिलते हैं। जल क्रीड़ा एवं नौका विहार, पशु–पक्षियों का युद्ध आदि मनोरंजन के साधन थे। राज्य शासन के ओर वार्षिक महोत्सवों 'शरद पूर्णिमा' को 'कौमुदी महोत्सव' तथा चैत्र की पूर्णिमा को 'वसंतोत्सव' मनाया जाता था। गुप्तकाल में नाटकों का मंचन भी मनोरंजन का साधन था। फाह्यान पाटलिपुत्र में वार्षिक 'रथयात्रा' उत्सव का उल्लेख करता है।

3.3.4 दास प्रथा :

दास प्रथा, प्राचीन भारतीय समाज की वास्तविकता थी। गुप्तकाल में भी दास प्रथा विद्‌यमान थी, हालांकि गुप्तकाल में दास प्रथा में सकारात्मक परिवर्तन आया। गुप्तकालीन स्मृति ग्रंथों से दास प्रथा के बारे में व्यापक सूचना मिलती है। कात्यायन, नारद, याज्ञवल्क्य स्मृति में नीचे की जाति का दास होना बताया गया है, अर्थात् स्वामी उच्च जाति का होना चाहिए। हालांकि, दास किसी को भी बनाया जा सकता था। गुप्तकाल में दास एवं दासियों के विदेशों से आयात करने के भी प्रमाण मिलते है। दासों को कृषि कार्यो, घरेलू कार्यों एवं अधम कार्यों में लगाया जाता था। स्त्री दासियों के भी प्रमाण गुप्तकाल में मिलते है। स्त्री दासियों को घरेलू कार्यों के साथ ही, भोग–विलास में संलग्न रखा जाता था। यदि कोई दासी अपने स्वामी के पुत्र को जन्म देती थी, तो उसे दासता से मुक्ति मिल जाती थी। गुप्तकालीन स्मृतिकार नारद ने 15 प्रकार के दासों का उल्लेख किया है। सर्वप्रथम गुप्तकालीन स्मृतिकार नारद ने ही दासता से मुक्ति के अनुष्ठान का विधान दिया है। गुप्तकाल में दास प्रथा कमजोर पड़ी। डॉ० रामशरण शर्मा की मान्यता है कि, भूमि संबंधों के कारण गुप्तकाल में दास प्रथा में शिथिलता आयी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. ब्राह्मण और शूद्र एक ही कुएं से पानी भरते है किसका कथन है ?

    (क) याज्ञवल्क्य (ख) शूद्रक

    (ग) वाराहमिहिर (घ) इनमें से कोई नहीं

9. अवन्ति का शासक कौन था?

    (क) ब्राह्मण (ख) वैश्य

    (ग) क्षत्रिय़ (घ) शूद्र

3. कदंब वंश के शासक किस वर्ण के थे?

    (क) ब्राह्मण (ख) वैश्य

    (ग) क्षत्रिय़ (घ) शूद्र

4. कायस्थ वर्ग का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है ?

    (क) याज्ञवल्क्य स्मृति (ख) नारद स्मृति

    (ग) वृहस्पति स्मृति (घ) इनमें से कोई नहीं

5. गुप्तकालीन न्याय व्यवस्था का सर्वाधिक लाभ मिला ?

    (क) ब्राह्मण (ख) क्षत्रिय़

(ग) वैश्य (घ) शूद्र

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) गुप्तकाल में शूद्रों की स्थिति।

(ख) गुप्तकाल में स्त्रियों की स्थिति।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) गुप्तकालीन वर्ण व्यवस्था का विवरण दीजिये ?

3.4 आर्थिक स्थिति :

गुप्तकाल का आर्थिक जन जीवन उन्नतिशील एवं समृद्ध था। गुप्तकालीन राजनैतिक स्थिरता एवं प्रशासनिक सुव्यवस्था ने आर्थिक प्रणालियों के विकास के मार्ग प्रशस्त किये। कृषि, पशुपालन, लघु उद्योग, विविध व्यवसायों, व्यापार एवं वाणिज्य आदि सभी आर्थिक क्षेत्रों में प्रगति होने से तत्कालीन आर्थिक जन जीवन समृद्धि के नवीन क्षितिजों को स्पर्श कर रहा था।

3.4.1 कृषि :

कृषि गुप्तकालीन अर्थव्यवस्था की रीढ़ थी। अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर थी। गुप्तकाल में जौ, गेहूँ, चावल, दाले, तिल, सरसों, अदरक, सब्जियाँ, गन्ना आदि का उल्लेख गुप्तकालीन ग्रंथों में मिलता है। वाराहमिहिर ने वृहत्संहिता में रबी, खरीफ एवं तीसरी साधारण फसल के उत्पन्न होने का उल्लेख मिलता है। वाराहमिहिर ने वृहत्संहिता में आम, केला, नारियल, कटहल आदि अनेक फलों की खेती का विवरण दिया है। गुप्तकालीन ग्रंथों से काली मिर्च, इलायची लौंग, चंदन, कपूर आदि कृषि का उल्लेख भी मिलता है। कृषि बैलों और हल से की जाती थी। कृषि के पशुपालन भी गुप्तकाल के कृषक की आजीविका का प्रमुख साधन था। गुप्तकाल में कृषि की अवस्था अच्छी थी। कृषि उत्पादन मांग से अधिक उत्पन्न होता था। गुप्तकाल में राजा भूमि का स्वामी होता था। कृषि उत्पादन का 1/6 से लेकर 1/4 भाग तक कर लिया जाता था। कृषि उत्पादन कर को 'भाग' कहा जाता था। भाग, भोग, उद्रंग, उपरिकर आदि कृषिकरों का उल्लेख मिलता है। कृषक, नगद एवं अन्न दोनों रूपों में कर देने के लिए स्वतंत्र थे। गुप्तकाल में कर प्रशासन का ठोस ढाँचा स्थापित था। 'ध्रुवाधिकरण' भूमिकर संग्रह करता था तथा 'महाक्षपटलिक' एवं 'करणिक' नामक पदाधिकारी भूमि अभिलेखों को सुरक्षित रखते थे। भूमि संबंधी विवादों को सुलझाने के लिए 'न्यायाधिकरण' नामक पदाधिकारी की नियुक्ति की गयी थी। गुप्तकाल में भूमि माप से संबंधित निवर्तन, पाटक, नड़, कुल्यावाप, द्रोणवाप, आढ़वाप आदि ईकाईयों का उल्लेख मिलता है। राज्य कृषि सिंचाई की ओर ध्यान देता था। स्कंदगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से सुदर्शन झील के जीर्णोद्वार का उल्लेख मिलता है। यह सिंचाई की ओर राज्य की प्रतिबद्धता का प्रमाण हैं। गुप्तकालीन ग्रंथों में सिंचाई के साधनों के रूप में अरघट्ट (रहट) का उल्लेख मिलता है। वाराहमिहिर की वृहत्संहिता में मौसम एवं वर्षा की भविष्यवाणियों का उल्लेख मिलता है। सिंचाई वर्षा, तालाब, कुंआ, नदियों, झीलों आदि से होती थी।

3.4.2 उद्योग–धंधे, व्यापार एवं वाणिज्य :

गुप्तकाल में उद्योग धंधे, व्यापार एवं वाणिज्य उन्नत अवस्था थी। सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था एवं विकसित मुद्रा प्रणाली ने आर्थिक प्रगति को आधारभूत पृष्ठभूमि प्रदान की। गुप्तकालीन प्रशासन ने सुसंगठित व्यापारिक संघो एवं श्रेणियों की स्थापना को अपना प्रगतिशील समर्थन एवं सहयोग दिया। गुप्तकाल में प्रमुख व्यापारिक नगरों को सड़कों से जोड़ दिया गया था तथा उनकी सुरक्षा का पूरा प्रबंध किया गया था। इससे आंतरिक एवं बाह्म व्यापार को सुदृढ़ता मिली। गुप्तकालीन गौरव ग्रंथों में अनेक प्रकार के व्यवसायों का उल्लेख मिलता है। वस्त्र व्यवसाय, वस्त्र रंगने का व्यवसाय, हाथी दांत से बनी वस्तुओं के व्यवसाय, शिक्षण एवं सैन्य व्यवसाय, उद्यान कार्य, शिकार, नृत्य एवं गायन व्यवसाय, विविध धातुओं का व्यवसाय, पाषाण कला व्यवसाय, विविध शिल्प कार्यों के व्यवसाय, मूर्तिकारी एवं चित्रकारी, काष्ठकला, जहाज निर्माण, समुद्र से मोती निकालना आदि अनेक प्रकार के उद्योग धंधे एवं व्यवसाय गुप्तकालीन आर्थिक जीवन को समृंद्ध बना रहे थे। गुप्तकाल में आभूषण निर्माण कला बहुत विकसित अवस्था में थी। बृहत्संहिता में चौबीस प्रकार के आभूषणों का उल्लेख मिलता है। गुप्तकाल में 'रत्नपरीक्षा' विज्ञान का जन्म हुआ। जिससे जौहरी विविध रत्नों के परीक्षण में निपुण हो गये थे।

गुप्तकाल में व्यापार एवं वाणिज्य जल–थल दोनों मार्गो से होता था। गुप्तकाल में जहाज निर्माण उद्योग ने अभूतपूर्व प्रगति की थी। गुप्तकालीन व्यापार एवं वाणिज्य के विशेष क्षेत्र में समुद्री तटवर्ती पाँच 'वणिक या विपणि नगरों' (डंतामज ज्वूदे) एवं बंदरगाहों का उल्लेख मालावार क्षेत्र से मिलता है। पूर्वी समुद्रतट पर ताम्रलिपि को गोद आदि बंदरगाहों से व्यापार होता था। विदेशी व्यापार चीन, लंका, कंबोडिया, जावा, वर्मा, सुमात्रा, बोर्नियों रोमन, साम्राज्य अरब एवं फारस आदि देशों के साथ होता था। गुप्तकालीन व्यापार के बारे में प्रसिद्ध इतिहासविद् आनन्द कुमारस्वामी ने लिखा है कि, भारतवासियों ने पेगु, कंबोडिया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियों आदि अनेक देशों में उपनिवेशों की स्थापना की थी तथा चीन, अरब और फोरस में व्यापारिक संस्थानों की स्थापना कर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। गुप्तकाल में सिंहल द्वीप बिचौलिए का कार्य करता था। चीनी यात्री फाह्यान, ह्वेनसांग एवं इत्सिंग भारत और चीन के मध्य व्यापारिक संबंधों का उल्लेख करते हैं। गुप्तकाल में सामान्य लेन–देन कौड़ियों में होता था। गुप्तकाल में केसर, चंदन, सुगंधित लकडियाँ, चंदन की मूर्तियाँ, कस्तूरी, हाथी दाँत की वस्तुऐं, विविध मसलों, सुगंधित द्रव्य, नारियल, नील, आयुर्वेदिक औषधियाँ, विविध प्रकार के वस्त्र, बहुमूल्य पत्थर आदि अनेक प्रकार की वस्तुओं का निर्यात किया जाता था। विदेशों से रेशम एवं रेशमी वस्त्र, हाथी दाँत, घोड़े, विविध प्रकार की शराब, टिन, शीशा, मूंगा, कांच सिंदूर, चाँदी के बर्तन, दास एवं दासियाँ आदि का आयात किया जाता था।

3.4.3 श्रेणी :

गुप्तकालीन अर्थव्यवस्था के आर्थिक प्रबंधन में व्यावसायिक संगठनों के 'रूप में श्रेणियों' की महत्वपूर्ण भूमिका थी। श्रेणियाँ एक ही व्यवसाय या विविध प्रकार के व्यवसाय करने वालों का व्यावसायिक या व्यापारिक संगठन होता था। डॉ० आर० सी० मजूमदार का मानना है कि, 'श्रेणी एक ही अथवा अलग–अलग जातियों के किन्तु एक ही व्यापार अथवा उद्योग में प्रवृत्त लोगों का संगठन है।' प्राचीन साहित्य में व्यावसायिक संगठनों या व्यापारियों की संस्थाओं को कुल, पूग, निकाय, जाति, व्रात, संघ समुदय, समूह, संभूय–समुत्थान, परिषत्, वर्ग, गण, सार्थ, निगम, श्रेणी आदि कहा गया है। नारद ने व्यवसायियों की सहकारी संस्था को 'श्रेणी' कहा है। पाणिनी, याज्ञवल्क्य, मिताक्षरा, वीरमित्रोदय ने भी 'पूग' का उल्लेख किया है। कात्यायन ने वणिकों के समूह को 'पूग कहा है। गुप्तकाल में व्यापारियों सुसंगठित संगठन श्रेणियों को बहुत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। शासन ने इनके आंतरिक मामलों में इन्हें पहले से अधिक

स्वतंत्रता प्रदान की थी। गुप्तकाल में श्रेणियों के अपने विशिष्ठ चिन्ह्न, मुद्रायें और ध्वज भी होते थे। वस्तुतः गुप्तकाल में श्रेणियों ने आर्थिक प्रबंधन में अभूतपूर्व योगदान प्रदान किया था। गुप्तकाल में

श्रेणियाँ अपनी मुद्राएँ चलाती, बैंक के रुप में काम करती, ऋण देते एवं समाज में अन्य सभी आर्थिक गतिविधियों का संचालन करती थी। तक्षशिला, वाराणसी, सारनाथ, नालन्दा, कौशाम्बी, वैशाली आदि अनेक स्थानों से श्रेणियों की मुद्राएँ मिली हैं। इससे स्पष्ट है कि श्रेणियों ने मुद्रा अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया था। प्रत्येक श्रेणि के पास अपनी अलग मुहर होती थी। वैशाली से एक संयुक्त श्रेणि की 274 मुद्राएँ मिली है। डॉ० ब्लाख, जिन्हें वैशाली से मिट्टी की मुहरें मिली थी, का कहना है कि, 'आधुनिक चैम्बर ऑफ कॉमर्स' की भाँति कोई संस्था उत्तर भारत के किसी बड़े व्यापारिक केन्द्र संभवतः पाटलिपुत्र में भी रही होगी। श्रेणियों के महाजन, वित्त प्रबंधक तथा न्यासधारी के रुप में कार्य करने के प्रमाण मिलते है। 'कुभारसंम्भव' और 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में भी श्रेणियों, निगमों की बैंक–प्रणाली का संदर्भ मिलता है। इन श्रेणियों के पास सामान्य जन अपनी बहुमूल्य वस्तुओं को निक्षेप के रुप में जमा करते थे, यहां तक कि स्वयं राजा और राजपुरुष भी अपनी संपत्ति को धरोहर के रुप में रखने में संकोच नहीं करते थे। गढ़वा अभिलेख में उल्लेखित हैं कि, गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने श्रेणियों के पास धर्म कार्य के लिए धन जमा करवाया था। राज्य ने श्रेणियों को आवश्यक कानूनी संरक्षण भी प्रदान किया हुआ था। श्रेणियों के साथ किसी भी धोखा–धड़ी पर कठोर दण्ड़ का प्रावधान राज्य ने किया था। याज्ञवल्क्य स्मृति एवं विष्णु पुराण में श्रेणियों के साथ बेईमानी करने वालों को कठोर दण्ड़ देने की व्यवस्था मिलती हैं।

श्रेणियों को वैधानिक एवं न्यायिक अधिकार प्राप्त थे, जिन्हें शासन से मान्यता प्राप्त थी। श्रेणी, सदस्यों के व्यवहार को न्यायाधिकरण के माध्यम से नियंत्रित करता था। गौतम ने भी श्रेणियों के आचार–विचार और रीति–रिवाजों पर उनके विधान का समर्थन किया हैं। नारद ने श्रेणी न्यायालय को चार सामान्य न्यायालयों में दूसरा स्थान दिया हैं। श्रेणियों ने अपनी सुरक्षा करने के लिए निजी सेना का गठन भी कर रखा था, जिन्हें राजकीय मान्यता भी प्राप्त थी। आपत्तिकाल में इनकी सेनाएँ राजा को भी सैन्य–सहयोग प्रदान करती थी। वृहस्पति एवं याज्ञवल्क्य ने भी श्रेणियों की सैन्य शक्ति का वर्णन किया हैं। मंदसौर अभिलेख में रेशम बुननेवाली श्रेणी के लोगों का धनुर्विद्या में पारंगत अच्छे योद्धा के रुप में वर्णन हैं। श्रेणियों ने समाज में अनेक जनकल्याणकारी कार्य करके अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वहन भी किया। विश्रामगृह, पंथशाला, सभागृह आदि विभिन्न प्रकार के जन–कल्याणकारी कार्य श्रेणी संगठनों द्वारा देश के विभिन्न स्थानों पर संपन्न कराए जाते थे। इनके द्वारा दीन–दुखियों और निर्धनों को सहायता भी प्रदान की जाती थी। दुर्भिक्ष में पीड़ितों की रक्षा करना भी इनका कर्त्तव्य था। श्रेणियों द्वारा जनकल्याण किये जाने के अनेक अभिलेखीय प्रमाण मिलते है। श्रेणियों ने अनेक मंदिर और देवताओं की प्रतिमाएँ धार्मिक दान द्वारा निर्मित करवायीं थी। मन्दसौर अभिलेख में वर्णित है कि, रेशम के व्यापारियों ने सूर्य का एक भय मंदिर बनवाया तथा बाद में जीर्ण–शीर्ण होने पर उसी श्रेणी ने उसकी मरम्मत भी कराई थी।

3.4.4 मुद्रा :

गुप्त साम्राज्य के समय ठोस मुद्रा प्रणाली की स्थापित थी। इस विकसित मुद्रा प्रणाली ने आर्थिक प्रगति को आधारभूत पृष्ठभूमि प्रदान की थी। मुद्रा व्यवस्था को साम्राज्य में सुचारू रूप से संचालित होते रहने के लिए मुद्रा एवं टकसाल विभाग के साथ ही, सक्षम प्रशासनिक अधिकारियों की व्यवस्था रही होगी।

गुप्त साम्राज्य में सोने, चाँदी एवं ताँबे की मुद्राएँ चलती थी। गुप्त साम्राज्य की स्वर्ण मुद्रा 'दीनार' कहलाती थी। भारतीय इतिहास में सर्वाधिक स्वर्ण मुद्राएँ गुप्त शासकों ने ही जारी करवायी। चाँदी की मुद्राओं को

'रूप्यरूप या रूपक' कहा जाता था। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने सर्वप्रथम शकों पर विजय के उपलक्ष्य में चाँदी की मुद्राएँ जारी करवायी थी। गुप्तकाल में सामान्य लेनदेन 'कौड़ियों' में होता था। यह संभवतः मुद्रा की कोई छोटी ईकाई रही होगी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. गुप्तकाल में भूमि कर संग्रह करने वाले अधिकारी का नाम था ?

(क) ध्रुवाधिकरण (ख) न्यायाधिकरण

(ग) समाहर्ता (घ) इनमें से कोई नहीं

2. गुप्तकाल में सामान्य लेनदेन होता था?

(क) दीनार में (ख) कार्षापण में

(ग) कौड़ियों में (घ) इनमें से कोई नहीं

3. गुप्तकालीन स्वर्ण मुद्रा थी ?

(क) दीनार (ख) कार्षापण

(ग) कौड़ियाँ (घ) इनमें से कोई नहीं

4. गुप्तकालीन सर्वाधिक उन्नत व्यवसाय था?

(क) वस्त्रों का (ख) घोड़ों का

(ग) हाथीदाँत का (घ) इनमें से कोई नहीं

5. वर्षा की भविष्यवाणी किसने अपनी पुस्तक में की है ?

(क) याज्ञवल्क्य (ख) शूद्रक

(ग) वाराहमिहिर (घ) इनमें से कोई नहीं

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) श्रेणी ।

(ख) मुद्रा ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) गुप्तकालीन कृषि का विवरण दीजिये ?

3.5 धार्मिक दशा :

धार्मिक सहिष्णुता, समन्वय एवं विविध धार्मिक सम्प्रदायों के विकास की उत्तम पृष्ठभूमि गुप्तकाल की धार्मिक विशेषता है। शुंग–सातवाहन काल में जिस वैदिक धर्म का पुनरूत्थान हुआ था, वह गुप्तकाल में अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुका था। गुप्तकालीन वैदिक धर्म अपनी प्राचीनता के साथ–साथ नवीन धार्मिक विचारों और पद्धतियों के साथ विकसित हुआ। गुप्तकाल में वैदिक धर्म के साथ ही वैष्णव धर्म एवं शैव धर्म का उत्थान हुआ। बौद्ध धर्म एवं जैन धर्मो के साथ ही अन्य धार्मिक सम्प्रदाय भी गुप्तकाल में फलीभूत होते रहे।

3.5.1 वैदिक धर्म :

गुप्तकाल में वैदिक धर्म अपने विकास की पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुका था। गुप्तकालीन शासकों ने वैदिक धर्म एवं उससे संबंधित धार्मिक क्रियाकलापों और याज्ञिक कर्मकाण्डों को अपना संरक्षण प्रदान किया था। वैदिक धर्म के देवी – देवताओं की उपासना एवं उनसे संबंधित धर्म – कर्म, अनुष्ठान सम्पूर्ण गुप्त शासनकाल में दृढ़ता के साथ किये जाते थे। गुप्त शासकों ने वैदिक धर्म के अश्वमेध यज्ञ, अग्निष्टोम यज्ञ, वाजसनेयी यज्ञ, वाजपेय यज्ञ आदि यज्ञों को किया। गुप्तकाल में सूर्य–पूजा के भी उल्लेख मिलते है। मन्दसौर शिलालेख एवं इन्दौर ताम्रलेख में सूर्य की उपासना के प्रमाण मिलते है। गुप्तकाल में सूर्य मंदिरों के निर्माण के भी प्रमाण मिलते है।

3.5.1.1 वैष्णव धर्म :

वैष्णव धर्म, वैदिक धर्म का ही एक अंग था। गुप्त शासक वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। गुप्त शासकों ने वैष्णव धर्म को राजकीय संरक्षण प्रदान किया तथा वैष्णव धर्म को राजकीय धर्म स्वीकारा और स्वयं को 'परम् भागवत' की उपाधि से विभूषित किया। गुप्त साम्राज्य का राजकीय चिन्ह् भी विष्णु भगवान का वाहन 'गरूड़' था। गुप्त शासकों के सिक्कों पर लक्ष्मी जी एवं गरूड़ का अंकन मिलता है। गुप्त शासक स्कंदगुप्त का जूनागढ़ एवं बुद्धगुप्त का एरण अभिलेख 'विष्णु' की स्तुति से प्रारंभ होते है। स्कंदगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख, उदयगिरि गुहा अभिलेख एवं बुद्धगुप्त कालीन दामोदरपुर अभिलेख में विष्णु के 'वराह अवतार' का उल्लेख है। गुप्तकाल में विष्णु के चार अवतारों– वराह, नृसिंह, वामन और कृष्ण की मूर्तियाँ मिली हैं। विष्णु का 'वराह अवतार' गुप्तकाल का सर्वाधिक लोकप्रिय अवतार था। गुप्त शासकों ने विष्णु भगवान में श्रद्धा प्रगट करते हुए अनेक मंदिर और मूर्तियों का निर्माण करवाया। देवगढ़ का दशावतार मंदिर वैष्णव धर्म के मंदिरों का सर्वोत्तम उदाहरण है।

वस्तुतः भगवान विष्णु को अपना आराध्य देवता मानने वाले अनुयायियों को 'वैष्णव' कहा जाता था। वैष्णव धर्म प्रथमतः भागवत धर्म के रूप में देवकी पुत्र भगवान वासुदेव कृष्ण की उपासना के साथ लगभग छठी शताब्दी ई० पू० से पहले प्रचलन में आया था। वासुदेव की पूजा का सर्वप्रथम उल्लेख भक्ति के रूप में पाणिनी की अष्टाध्यायी में ई० पू० पाँचवी शताब्दी में मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद में श्रीकृष्ण का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। भागवत धर्म भक्ति और अवतारवाद को सर्वाधिक मानता है। वैष्णव धर्म में विष्णु के 24

अवतारों का उल्लेख मिलता है, किन्तु अधिकांशतः दशावतारों की ही प्रसिद्धि थी। वासुदेव कृष्ण, विष्णु, नारायण आदि नामों से विष्णु का पूजन किया जाता था।

3.5.1.2 शैव धर्म :

गुप्त शासक वैष्णव धर्म के अनुयायी होने के साथ ही, शिव के भी उपासक थे। गुप्त शासकों ने शिव में अपनी आस्था प्रगट करते हुए अनेक मंदिर और मूर्तियों का निर्माण करवाया। वस्तुतः भगवान शिव को अपना आराध्य देवता मानने वाले अनुयायियों को 'शैव' कहा जाता था। गुप्त काल में शैव धर्म भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थिति में था। गुप्त शासकों ने शिव में अपनी आस्था प्रगट करते हुए अपने राजकुमारों का नामकरण शैव धर्म की विचारधारा पर किया था, जिनमें से कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त के नाम शिव के पुत्र कार्तिकेय के नाम पर आधारित थे, जो बाद में गुप्त साम्राट बने। शैव धर्म में अपनी आस्था प्रगट करते हुए गुप्त साम्राट कुमारगुप्त ने मयूर की आकृति वाले सिक्के तथा स्कन्दगुप्त ने बृषभ की आकृति वाले सिक्के चलवाए। शैव धर्म में अपनी आस्था प्रगट करते हुए गुप्त साम्राटों नचना – कुठारा का पार्वती मंदिर, भूमरा का शिव मंदिर के साथ ही अनेक मंदिरों की दीवालों पर शैव धर्म से संबंधित मूर्तियों का अंकन करवाया। गुप्तकाल में शैव धर्म का विकासात्मक रूप उभरकर सामने आया। शिव और शक्ति में अभिन्नता प्रगट करते हुए शिव और शक्ति (पार्वती) की संयुक्त मूर्तियाँ बनाई जाने लगी। जिन्हें 'अर्धनारीश्वर' की संज्ञा दी गयी। सर्वप्रथम गुप्तकाल में ही 'अर्धनारीश्वर' की मूर्तियाँ बनीं थी। गुप्तकाल में ही सर्वप्रथम वैष्णव धर्म एवं शैव धर्म में एकता स्थापित करते हुए शिव और विष्णु को संयुक्त रूप में 'हरिहर' कहा गया। गुप्त काल में ही सर्वप्रथम त्रिमूर्ति के रूप में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की विचारधारा स्थापित हुई और त्रिमूर्ति के रूप में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूजा प्रारम्भ हुई। इस प्रकार गुप्तकाल विविध धार्मिक संप्रदायों के मध्य समन्वय का काल भी था।

3.5.2 बौद्ध धर्म :

गुप्तकाल में बौद्ध धर्म उन्नत अवस्था में था। समाज का बहुत बड़ा वर्ग बौद्ध धर्म का अनुयायी था। बौद्ध धर्म के प्रति गुप्त शासकों का व्यवहार सकारात्मक था। समुद्रगुप्त के समय श्रीलंका के शासक मेघवर्मन ने बोधगया में बौद्ध यात्रियों के लिए विहार बनवाया गया था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय आये चीनी यात्री फाह्यान ने लिखा है कि, कश्मीर, अफगानिस्तान और पंजाब बौद्ध धर्म के केन्द्र थे। गुप्तकाल में पाटिलपुत्र, मथुरा, कौशाम्बी और सारनाथ भी बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध केन्द्र थे। गुप्त साम्राट् कुमारगुप्त ने नालन्दा में प्रसिद्ध बौद्ध विहार का निर्माण करवाया था। गुप्त प्रशासन में अनेक बौद्ध उच्च पदों पर पदासीन थे। गुप्तकाल में अनेक प्रसिद्ध बौद्ध आचार्यों का उल्लेख मिलता है। जिनमें आर्यदेव, असंग, वसुबंधु और मैत्रेयनाथ आदि प्रमुख थे। बौद्ध धर्म के केन्द्र के रूप में साँची की महत्ता गुप्तकाल में भी बनी हुई थी। इस प्रकार बौद्ध धर्म गुप्तकाल में फलता – फूलता रहा।

3.5.3 जैन धर्म :

गुप्तकाल में जैन धर्म उन्नत अवस्था में था। समाज का मध्यम एवं व्यापारी वर्ग जैन धर्म का अनुयायी था। जैन धर्म के प्रति भी गुप्त शासकों का व्यवहार सकारात्मक था। गुप्तकाल में दक्षिण भारत में कदंब और गंग राजाओं ने जैन धर्म को राजकीय संरक्षण प्रदान किया। गुप्तकाल में मथुरा और बल्लभी श्वेताम्बर जैन धर्म के केन्द्र थे, जबकि बंगाल में पुण्ड्रवर्धन दिगम्बर सम्प्रदाय का केन्द्र था। गुप्त साम्राट् कुमारगुप्त प्रथम के

उदयगिरि अभिलेख एवं मथुरा के एक अभिलेख से जैन मंदिर और मूर्तियों के निर्माण के उल्लेख मिलते है। गुप्त साम्राट स्कन्दगुप्त के शासनकाल के कहौम अभिलेख से जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों के निर्माण का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार जैन धर्म गुप्तकाल में भी फलता – फूलता रहा।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. गुप्तकाल में किस धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त था ?

(क) वैष्णव धर्म (ख) बौद्ध धर्म

(ग) जैन धर्म (घ) इनमें से कोई नहीं

2. गुप्त शासकों का राजकीय चिन्ह था?

(क) घोड़ा (ख) मयूर

(ग) गरूड़ (घ) इनमें से कोई नहीं

3. गुप्तकाल का सर्वाधिक प्रसिद्ध अवतार था ?

(क) वाराह (ख) वामन

(ग) कृष्ण (घ) इनमें से कोई नहीं

4. अर्धनारीश्वर स्वरूप किसका है ?

(क) कृष्ण (ख) विष्णु

(ग) शिव (घ) इनमें से कोई नहीं

5. गुप्तकाल में कौनसा चीनी बौद्ध भिक्षु आया था ?

(क) तारानाथ (ख) फाह्यान

(ग) इत्सिंग (घ) इनमें से कोई नहीं

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) बौद्ध धर्म ।

(ख) जैन धर्म ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) गुप्तकालीन वैष्णव धर्म का विवरण दीजिये ?

3.6 साहित्य :

गुप्तकाल में साहित्य की अभूतपूर्व प्रगति हुई। गुप्तकाल में साहित्य का सर्वांगीण विकास हुआ। गुप्तकाल में अनेक साहित्यकार, स्मृतिकार, भाष्यकार, कवि, खगोलविद्, वैज्ञानिक मेधाकार आदि हुए। जिन्होंने अपने शोध एवं लेखन से कालजयी रचनाओं का सृजन किया। गुप्तकालीन साहित्यकारों एवं कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास हुआ। जिसे 'भारत के शेक्सपीयर' की संज्ञा दी गयी है। इनकी रचनाओं को नाटक, महाकाव्य और खण्डकाव्य में बाँटा जाता है। इनकी रचनाएँ, कुमारसंभव, मालविकाग्निमित्र, रघुवंश, अभिज्ञान शाकुन्तलम, मेघदूत आदि प्रमुख है। भास की स्वप्नवासवदत्ता, अमरसिंह की अमरकोष, राजशेखर की काव्यमीमांसा, शूद्रक की मृच्छकटिकम्, वाराहमिहिर की वृहत्संहिता, वात्स्यायन की कामसूत्र, विशाखदत्त की मुद्राराक्षस, दण्डिन की दशकुमारचरित, भारवी की रावण वध, कामंदक की नीतिसार आदि प्रमुख गुप्तकालीन साहित्यकार एवं उनकी रचनाएँ है। गुप्तकाल में याज्ञवल्क्य, नारद, गौतम, वृहस्पति, विष्णु, कात्यायन, पाराशर आदि अनेक स्मृतिकार हुए। जिन्होंने अपने स्मृतियों की रचनाएँ की। गुप्तकाल श्रेष्ठ विद्वानों एवं कवियों का काल था। कुछ कवियों के केवल अभिलेखीय प्रमाण मिले हैं। जिसमें हरिषेण, वत्सभट्टि तथा वीरसेन शाब प्रमुख थे।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. भारत के शेक्सपीयर की संज्ञा दी गयी थी ?
   (क) कालिदास (ख) अमरसिंह
   (ग) भास (घ) इनमें से कोई नहीं
2. वृहत्संहिता किसकी रचना है ?
   (क) कालिदास (ख) अमरसिंह
   (ग) भास (घ) वाराहमिहिर
3. स्वप्नवासवदत्ता किसकी रचना है ?
   (क) कालिदास (ख) अमरसिंह
   (ग) भास (घ) वाराहमिहिर
4. मुद्राराक्षस किसकी रचना है ?
   (क) विशाखदत्त (ख) अमरसिंह
   (ग) भास (घ) वाराहमिहिर
5. मृच्छकटिकम किसकी रचना है ?
   (क) याज्ञवल्क्य (ख) शूद्रक
   (ग) वाराहमिहिर (घ) इनमें से कोई नहीं

(पप) नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) गुप्तकालीन साहित्य का विवरण दीजिये ?

3.7 गुप्तकालीन कला :

भारतीय इतिहास में गुप्तकाल को 'स्वर्ण काल' के नाम से जाना जाता है। गुप्त शासकों ने लगभग 275 ई० से 550 ई० तक शासन किया। इस प्रकार लगभग तीन सौ वर्षों के शासनकाल में गुप्तों ने

राजनीतिक एकता स्थापित करके, सामाजिक – आर्थिक, कला, संस्कृति आदि क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति की। जैसाकि, डॉ० वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि ''गुप्त शासकों ने साहित्य, कला, विज्ञान आदि क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति की।''

3.7.1 गुहा स्थापत्य कला एवं चित्रकला :

गुप्तकाल अपने सर्वांगींण तथा चतुर्दिक उत्थान के लिए जाना जाता है। गुप्तकाल में गुहा स्थापत्य कला को पर्याप्त आश्रय मिला। इस कारण गुप्तकाल में अजंता, बाघ एवं उदयगिरि में गुहा स्थापत्य कला के उत्कृष्ठ उदाहरण मिलते हैं। अजंता (जिला– औरंगाबाद, महाराष्ट्र) में गुप्तकालीन गुहाओं का निर्माण हुआ। जिनमें गुहा संख्या 16, 17 एवं 19 गुप्तकालीन हैं। अजंता की 16 वीं गुफा एक विहार हैं, इसके वास्तु अंगों में गर्भगृह (वर्गाकार), स्तम्भ (20), हैं तथा यह गुफा 65 वर्गफीट के आकार में निर्मित है। गर्भगृह में बुद्ध की मूर्ति पैर लटकायें (प्रलम्बपाद मुद्रा में) हुए विराजमान है। 17 वीं गुफा के वास्तु अंग एवं आकार – प्रकार 16 वीं गुफा के समान ही है। अजंता की 19 वीं गुहा चैत्य है। इसके निर्माण में गर्भगृह, स्तम्भ, गलियारा, मण्डप आदि वास्तु अंगों का प्रयोग किया गया है। गुहा में बने स्तूप में गुम्बद (अण्ड), हर्मिका, यष्टि, छत्र आदि वास्तु अंग विद्यमान हैं। अजंता की गुप्तकालीन गुहाओं में गुहा संख्या 16, 17 एवं 19 गुप्तकालीन हैं। जिनमें गुहा संख्या 16 एवं 17 में उत्कृष्ठ चित्रकला के उदाहरण मिलते है। इनमें अधिकांश चित्र बौद्ध धर्म से संबंधित हैं। भगवान बुद्ध एवं उनके जीवन से संबंधित घटनाओं, बौधिसत्वों एवं जातक कथाओं का चित्रण मिलते है। अजंता की गुहा संख्या 16 में 'मरणासन्न राजकुमारी' का चित्र उल्लेखनीय हैं। अजंता की गुहा संख्या 17 में भगवान बुद्ध, एवं उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं एवं विविध जातक कथाओं के चित्र मिलते है। अजंता की गुहा संख्या 17 को 'चित्रणशाला' भी कहा जाता है।

गुप्तकालीन गुहा स्थापत्य कला के श्रेष्ठ उदाहरण मध्य प्रदेश के विदिशा नगर (जिला विदिशा) के पास 'उदयगिरि' में है। अभिलेखीय साक्ष्यों से विदित है कि ये गुहाएँ चन्द्रगुप्त द्वितीय (375–415 ई०) एवं कुमारगुप्त प्रथम (415–455 ई०) के काल की है। उदयगिरि की गुहाओं में कमलांकृत छतें (भीतर की तरफ) उल्लेखनीय गुहा स्थापत्य कला की विशेषता को व्यक्त करती है। उदयगिरि की गुहा के द्वारों पर द्वार रक्षकों का निर्माण भी उल्लेखनीय वास्तु अंग है। उदयगिरि की वराह–गुहा, जिसमें भगवान वराह (विष्णु के अवतार) की पृथ्वी को अपने दाँतों से लटकाये भव्य प्रतिमा विराजमान है, भी उल्लेखनीय है। इस गुहा के द्वार के स्तंभों पर घड़ों सहित गंगा – यमुना तथा द्वारपालों का अंकन है।

3.7.1.1 बाघ की गुहा चित्रकला :

बाघ की गुफायें मध्य प्रदेश के धार जिले में स्थित हैं। बाघ की गुफायें नर्मदा की एक सहायक नदी बांधमती के बांयें तट पर विंध्य की पहाड़ियों में स्थित है। यह क्षेत्र पहले भूतपूर्व ग्वालियर रियासत के अंतर्गत आता था। इसी कारण कतिपय पुस्तकों में बाघ की गुफाओं को ग्वालियर के पास स्थित बताया गया है। बाघ की गुफाओं की खोज डेन्जर फील्ड ने 1818 ई० में की थी। 1910 ई० में लुअर्ड ने 'इण्डियन एण्टीक्वेरी' में बाघ की गुफाओं के बारे में जानकारी प्रकाशित करवाई। वर्तमान में बाघ की पहाड़ियों में 9 (नौ) गुफायें बची हैं, जिनमें गुफा नं. 4 एवं 5 में चित्र बचे हैं, शेष गुफाओं में चित्र नष्ट हो चुके हैं। बाघ की गुफाओं के चित्रों की प्रति कांपियाँ शासन ने तैयार करवाईं हैं और यह मध्य प्रदेश के भोपाल 'राज्य संग्रहालय' में प्रदर्शित हैं। बाघ की गुफाओं के प्रमुख विषयों के विवरण एम० बी० गर्दे, बैरिट एवं लॉर्ड लिटन द्वारा संपादित हैं। बाघ की चित्रकला के चित्रों मे मुख्यतः छः दृश्य द्रष्ट्व्य हैं –

1. प्रथम दृश्य में एक शोकाकुल महिला है, जिसके समीप दूसरी स्त्रियाँ शोकाकुल अवस्था में बैठी चित्रित है।
2. दूसरे दृश्य में राजा एवं चार सभासदों के बीच वार्तालाप को चित्रित किया गया है। चित्रण में राजा और सभासदों की वेशभूषा में अधिक अंतर प्रतीत नहीं होता है।
3. तृतीय दृश्य में दूसरे दृश्य का पुनरावलोकन किया गया है।
4. चतुर्थ दृश्य, नृत्य का दृश्य है, जिसमें दो आकृतियाँ नृत्यरत दिखायीं गयी हैं। इसमें एक स्त्री एवं पुरूष नृत्यरत हैं और गोल दायरे में दर्शक खड़े दिखाए गए हैं। स्त्री एवं पुरूष की वेशभूषा विदेशी प्रतीत होती है।
5. पंचम दृश्य में चतुर्थ दृश्य का अंकन पुनः किया गया है।
6. षष्ठ्म दृश्य, एक शोभायात्रा का है। जिसमें राजपुरूष, महिलाएँ, गायक, गायिकाएँ , अश्वारोही, गजरोही आदि द्रष्ट्व्य है। इन आकृतियों में पक्षियों का अंकन प्रभावशाली है। मयूर, कोकिला, कुकुट, चकोर, सारस आदि पक्षियों एवं हाथी, बैल आदि पशुओं का अंकन प्रभावशाली है।

बाघ की गुफाएँ लोकरंजना की अभिव्यंजना करती हैं। बाघ से शुभंदु के ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं, शुभंदु माहिष्मती का राजा था। बाघ की गुफाओं का काल वाल्टर स्पिंक ने 480–502 ई० निर्धारित किया है।

3.7.2 स्तूप स्थापत्य कला :

गुप्तकाल में स्तूपों का भी निर्माण हुआ। गुप्तकाल में सारनाथ एवं मीरपुर खास में स्तूपों का निर्माण हुआ। सारनाथ (वाराणसी, उत्तर प्रदेश) का धमेख स्तूप 128 फुट ऊँचा है। स्तूप की दीवारों पर बुद्ध की मूर्तियों की प्रति स्थापना हेतु आले बने हुए हैं। मीरपुर खास (सिंधु, पाकिस्तान) का स्तूप ईंटों से निर्मित हैं। ईटों पर बुद्ध की मूर्तियाँ बनीं हुई हैं।

3.7.3 मंदिर स्थापत्य कला :

गुप्तकाल में मंदिर स्थापत्य कला का विकास बड़ी तीव्रगति से हुआ। गुप्तों ने ब्राह्मण धर्म को प्रश्रय दिया, विशेषतः वैष्णव धर्म को और उनसे संबंधित अनेक मंदिरों का निर्माण कराया। गुप्तकालीन मंदिरों में अधिष्ठान, सोपान, शिखर, गर्भगृह, मण्डप, अर्द्ध मण्डप, प्रदक्षिणा पथ आदि वास्तु अंग विद्‌यमान है। प्रमुख गुप्तकालीन मंदिर निम्नलिखित है – *एरण के मंदिर* – एरण (जिला, सागर, मध्य प्रदेश) में गुप्त शासकों ने विष्णु के नृसिंह, वराह के अवतारों के मंदिरों के साथ ही विष्णु का मंदिर भी निर्मित करवाया था। मंदिर स्थापत्य की नागर शैली पर निर्मित इन मंदिरों के स्थापत्य अंगों में सपाट छत युक्त वर्गाकार गर्भगृह, स्तम्भों पर आधारित छोटा मण्डप है। *देवगढ़ का दशावतार मंदिर* – देवगढ़ (जिला – ललितपुर, उत्तर प्रदेश) का दशावतार मंदिर, गुप्तकाल की मंदिर स्थापत्य कला के विकास का महत्वपूर्ण साक्ष्य है। इस मंदिर में सर्वप्रथम गुप्तकाल में शिखर का प्रयोग किया गया। कनिंघम का मत है कि, देवगढ़ का मंदिर विष्णु की मूर्ति की स्थापना के लिए निर्मित किया गया था। मंदिर जगती पर बना है, जगती पर चढ़ने के लिए चारों ओर से सोपान (सीढ़ियाँ) बनें हैं। मंदिर के गर्भगृह की बाहरी दीवारों की रथिकाओं पर विष्णु के अवतारों गजेंद्रमोक्ष, शेषशाही विष्णु, नर नारायण का अंकन है। मंदिर का गर्भगृह वर्गाकार है, इसके द्वार की शीर्ष पट्‌टी पर गंगा – यमुना क्रमशः मकर एवं कच्छप अपने वाहनों सहित अंकित है। शीर्ष पट्‌टी के ललाटबिंब पर शेषशाही विष्णु का अंकन है। *साँची मंदिर नं. 17* – यह मंदिर, प्रारंभिक गुप्तकालीन मंदिर

स्थापत्य कला से संबंधित है। साँची (जिला – रायसेन, मध्य प्रदेश) विदिशा शहर से 10 किलो मीटर की दूरी पर स्थित है। इस मंदिर की स्थापत्य कला में वर्गाकार गर्भगृह, सपाट छत (शिखर विहीन) तथा गर्भगृह के सामने स्तम्भ युक्त लघु मण्डप हैं। मंदिर की विशेषताओं में चार स्तंभों के शीर्ष भागों पर सिंह एक – दूसरे से पीठ लगाये बैठे हैं।

तिगवा का मंदिर – तिगवा (जिला– जबलपुर, मध्य प्रदेश) का विष्णु मंदिर प्रारंभिक गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य कला का प्रतिनिधित्व करता है। इस मंदिर के स्थापत्य में वर्गाकार गर्भगृह, सपाट छत (शिखर हीन), गर्भगृह के सामने चार स्तम्भों पर टिका मण्डप है। गर्भगृह के द्वार अलंकृत है तथा द्वार की ऊपरी शाखा पर गंगा – यमुना अपने वाहनों मकर एवं कच्छप के साथ सुशोभित है। *नचना – कुठारा का पार्वती मंदिर* – नचना – कुठारा (जिला–पन्ना, मध्य प्रदेश) के पार्वती मंदिर का निर्माण ऊँचे प्लेटफॉर्म पर किया गया है। मंदिर स्थापत्य के वास्तु अंगों में वर्गाकार गर्भगृह, सपाट छत (शिखरहीन), मण्डप तथा चारों – तरफ प्रदक्षिणा पथ हैं। *भूमरा का शिव मंदिर* – भूमरा (जिला – सतना, मध्य प्रदेश) में गुप्तकालीन शिव मंदिर स्थित है। मंदिर एक वर्गाकार चबूतरे पर स्थित है। मंदिर स्थापत्य के वास्तु अंगों में वर्गाकार गर्भगृह, सपाट छत (शिखर विहीन) तथा गर्भगृह के सामने एक मण्डप है। वर्गाकार गर्भगृह अंदर से 8 फीट तथा बाहर से 15. 50 फीट का है गर्भगृह की द्वार शाखा पर गंगा – यमुना अपने वाहनों मकर एवं कच्छप के साथ सुशोभित है। यह मंदिर अलंकरण अभिप्रायों से अधिक अलंकृत है। मंदिर से शिव के गणों की मूर्तियाँ बड़ी संख्या में प्राप्त है।

भीतरगाँव का मंदिर – भीतरगाँव (जिला – कानपुर, उत्तर प्रदेश) में विष्णु का मंदिर स्थित है। यह मंदिर 70 फीट ऊँचा है तथा यह पकीं ईंटों से बना है। मंदिर वर्गाकार ऊँचें चबूतरे पर निर्मित है, जिस पर चढ़ने के लिए सोपान (सीढ़ियाँ) बने हुए हैं। मंदिर के स्थापत्य वास्तु अंगों में वर्गाकार गर्भगृह, शिखर, मण्डप, प्रदक्षिणा पथ है। मंदिर का गर्भगृह, 15 फीट लंबे एवं 15 फीट चौड़ें आकार का है। *लाड खाँ मंदिर* – ऐहोल का लाड़ खाँ मंदिर कतिपय इतिहासकारों के अनुसार, सर्वाधिक प्राचीन मंदिर है। लाड़ खाँ मंदिर स्थापत्य के वास्तु अंगों में वर्गाकार गर्भगृह, सपाट छत (शिखर विहीन), आच्छांदित प्रदक्षिणापथ, एक स्तम्भ युक्त मण्डप है। *कोन्तगुडीमंदिर* – कोन्तगुड़ी के मंदिर स्थापत्य के अंगों में वर्गाकार गर्भगृह, शिखर हीन सपाट छत, स्तम्भ युक्त मण्डप है। मंदिर की रथिकाओं पर शिव – ताण्डव, वराह, भैरव, वामन की मूर्तियाँ अंकित है। *हुच्चीमल्लिगुड़ी मंदिर* – हुच्ची मल्लिगुड़ी के मंदिर स्थापत्य के वास्तु अंगों में गर्भगृह, आयताकार मण्डप, अर्धमण्डप, प्रदक्षिणा पथ, शिखर है। मंदिर के अंदर का भाग अलंकारहीन है किन्तु, गर्भगृह अलंकृत है। *दशपुर का सूर्य मंदिर* – दशपुर (जिला–मंदसौर, मध्य प्रदेश) में गुप्तकालीन सूर्य मंदिर स्थित था, इसका साक्ष्य कुमारगुप्त प्रथम के काल का एक अभिलेख है। अभिलेख में वर्णित है कि रेशम की एक श्रेणी ने यहाँ सूर्य – मंदिर निर्मित करवाया था।

3.7.4 गुप्तकालीन मूर्तिकला :

गुप्त काल में कला का चहुमुंखी विकास हुआ। गुप्त काल में कला के उत्कृष्ठ शिल्पांकन के साक्ष्य मिलते है। मूर्तिकला में गुप्त कला के श्रेष्ठ केंद्र सारनाथ, कौशांबी, मथुरा थे। गुप्तों ने मंदिरों, मूर्तियों एवं धार्मिक क्रियाकलापों में गहरी रूची ली। गुप्तों के वैष्णव होने के कारण विष्णु से संबंधित मंदिरों एवं मूर्तियों का बहुतायत में निर्माण हुआ। गुप्तों ने वैष्णव मंदिरों एवं मूर्तियों के निर्माण के साथ – साथ अन्य देवी – देवताओं के मंदिरों एवं मूर्तियों का भी निर्माण कराया। गुप्त काल की कला में विष्णु, उनके अवतारों से

संबंधित तथा संबंधित कथाओं, लीलाओं का शिल्पांकन बहुतायत में मिलता है। गूजरी महल संग्रहालय, ग्वालियर में संरक्षित बेसनगर (विदिशा) की नृसिंह एवं उदयगिरि (विदिशा) की वराह प्रतिमा, देवगढ़, एरण, भीतरगांव, भूमरा, तिगवा आदि के मंदिरों से प्राप्त वैष्णव मूर्तियों में विष्णु, उनके अवतारों से संबंधित तथा संबंधित कथाओं, लीलाओं के शिल्पांकन के बहुत सुंदर साक्ष्य मिलते है। इन मंदिरों में विष्णु के साथ – साथ अन्य देवी – देवताओं के मंदिर एवं मूर्तियाँ भी मिलतीं है। गुप्त मूर्तिकला में शिव के लिंग, एकल, उमा – माहेश्वर, नटेश रावणानुग्रह के साथ ही शिव के गणों, गणेश, कार्तिकेय तथा देवीओं में दुर्गा, पार्वती, लक्ष्मी, मातृका, महिषमर्दिनी आदि का अंकन मिलता है। गुप्त मूर्तिकला में बौद्ध एवं जैन मूर्तियों का भी अंकन हुआ है। सारनाथ बुद्ध एवं बोधिसत्वों से संबंधित गुप्त मूर्तिकला का बड़ा केंद्र था। अजंता एवं कन्हेरी से भी बुद्ध मूर्तियाँ मिलती है। गुप्त काल में जैन मूर्तिकला का मथुरा एक बड़ा केंद्र था। मथुरा से बड़ी संख्या में जैन मूर्तियाँ मिलती है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. अजंता की 16 वीं गुफा है ?
   (क) स्तूप (ख) चैत्य
   (ग) विहार (घ) इनमें से कोई नहीं

10. धमेख स्तूप कहाँ स्थित है?
   (क) सारनाथ (ख) एरण
   (ग) देवगढ़ (घ) कौशांबी

3. गुप्तकालीन मूर्तिकला का केंद्र नहीं था ?
   (क) सारनाथ (ख) मथुरा
   (ग) बाघ (घ) कौशांबी

4. गुप्तकालीन चित्रकला का केंद्र था ?
   (क) सारनाथ (ख) मथुरा
   (ग) बाघ (घ) कौशांबी

5. दशावतार मंदिर स्थित है ?
   क) सारनाथ (ख) एरण
   (ग) देवगढ़ (घ) कौशांबी

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) गुप्तकालीन मूर्तिकला ।
   (ख) बाघ की चित्रकला।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य कला का विवरण दीजिये ?

3.8 सारांश

गुप्तकाल ने भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का गौरवशाली एवं स्वर्णिम अध्याय प्रस्तुत किया। लगभग 275 ई० से 550 ई० तक के लगभग तीन शताब्दियों के सुदीर्घ शासनकाल में गुप्त शासकों ने देश में राजनैतिक एकता स्थापित करके चतुर्दिक प्रगति के मार्ग प्रशस्त किये। गुप्त शासकों के शासनकाल में सामाजिक,

आर्थिक एवं धार्मिक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। गुप्तकाल में सामाजिक जीवन ने नवीन सामाजिक विचारों और पद्धतियों को अपनाया। इसी कारण गुप्तकाल में शूद्रों और दासों की स्थिति में भारी सकारात्मक परिवर्तन आया। गुप्तकालीन राजनैतिक स्थिरता एवं प्रशासनिक सुव्यवस्था ने आर्थिक प्रणालियों के विकास के मार्ग प्रशस्त कर दिये थे। धार्मिक सहिष्णुता, समन्वय एवं विविध धार्मिक सम्प्रदायों के विकास की उत्तम पृष्ठभूमि गुप्तकाल की धार्मिक विशेषता बन गयी थी। गुप्तकाल में साहित्य, कला, विज्ञान आदि क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति हुई। इसी कारण गुप्तकाल में हुई सांस्कृतिक उत्थान की इन महान् उपलब्धियों ने गुप्तकाल को भारतीय इतिहास के 'स्वर्णकाल' की संज्ञा प्रदान की।

3.9 तकनीकी शब्दावली

गुहा : गुफा

चतुर्दिक : चारों ओर

विभेद : भेदभाव

मोक्ष : जन्म–मरण के बंधन से मुक्ति

पुनरूत्थान : फिर से उत्थान होना

मुद्रा : मानक सिक्का

स्थापत्य कला : भवन निर्माण कला

स्तूप : बौद्ध पूजा स्मारक

विहार : बौद्ध भिक्षुओं के रहने का भवन

3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 3.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 3.3.1 वर्ण व्यवस्था
2. देखिए 3.3.1 वर्ण व्यवस्था
3. देखिए 3.3.1 वर्ण व्यवस्था
4. देखिए 3.3.1 वर्ण व्यवस्था
5. देखिए 3.3.1 वर्ण व्यवस्था

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 3.3.1 वर्ण व्यवस्था

   (ख) देखिए 3.3.2 स्त्रियों की स्थिति
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

   (अ) देखिए 3.3.1 वर्ण व्यवस्था

इकाई 3.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 3.4.1 कृषि
2. देखिए 3.4.4 मुद्रा
3. देखिए 3.4.4 मुद्रा
4. देखिए 3.4.2 उद्योग–धंधे, व्यापार एवं वाणिज्य

5. देखिए 3.4.1 कृषि

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 3.4.3 श्रेणी

   (ख) देखिए 3.4.4 मुद्रा

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

   (अ) देखिए 3.4.1 कृषि

इकाई 3.5 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 3.5.1.1 वैष्णव धर्म
2. देखिए 3.5.1.1 वैष्णव धर्म
3. देखिए 3.5.1.1 वैष्णव धर्म
4. देखिए 3.5.1.2 शैव धर्म
5. देखिए 3.5.2 बौद्ध धर्म

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 3.5.2 बौद्ध धर्म

   (ख) देखिए 3.5.3 जैन धर्म

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

   (अ) देखिए 3.5.1.1 वैष्णव धर्म

इकाई 3.6 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 3.6 साहित्य
2. देखिए 3.6 साहित्य
3. देखिए 3.6 साहित्य
4. देखिए 3.6 साहित्य
5. देखिए 3.6 साहित्य

(पप) नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

   (अ) देखिए 3.6 साहित्य

इकाई 3.7 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 3.7.1 गुहा स्थापत्य कला एवं चित्रकला
2. देखिए 3.7.2 स्तूप स्थापत्य कला
3. देखिए 3.7.4 गुप्तकालीन मूर्तिकला
4. देखिए 3.7.1.1 बाघ की गुहा चित्रकला
5. देखिए 3.7.3 मंदिर स्थापत्य कला

(पप) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 3.7.4 गुप्तकालीन मूर्तिकला

   (ख) देखिए 3.7.1.1 बाघ की गुहा चित्रकला

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 3.7.3 मंदिर स्थापत्य कला

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण – *भारतीय कला,* वाराणसी, 1987
2. अग्रवाल, पृथिवीकुमार – *गुप्त टेंपल आर्कीटेक्चर,* वाराणसी, 1968
3. गुप्ते तथा महाजन – *अजंता, एलोरा एण्ड औरंगाबाद केव्ज,* बम्बई, 1962
4. गोयल, श्रीराम – द *हिस्ट्री ऑफ द इम्पीरियल गुप्ताज,* इलाहबाद, 1967
5. मजूमदार, रमेशचन्द्र – *प्राचीन भारत,* दिल्ली, 1973
6. मजूमदार, आर० सी० – *दि क्लासिकल एज,* बम्बई, 1954
7. मजूमदार, आर० सी० एवं – *द* वाकाटका–*गुप्ता एज,* बनारस, 1954,अल्तेकर, ए० एस०
8. मिश्र, आर० एन० – *भारतीय मूर्तिकला का इतिहास,* नई दिल्ली, 2002
9. रैप्सन (संपा०) – *कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वो०1,* कैम्ब्रिज, 1922
10. रायचौधुरी, एच० सी० – *पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंश्येन्ट इण्डिया,* कलकत्ता, बी. एन. मुखर्जी द्वारा सम्पादित, कलकत्ता, 1997
11. शर्मा, रामशरण – *प्रारंभिक भारत का परिचय,* नई दिल्ली, 2009
    – *Materical Culture and Social Formations in ancient India, Delhi, 1983*
12. स्मिथ, वी. एस. – *अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,* ऑक्सफोर्ड, 1924
13. त्रिपाठी, आर० एस० – *प्राचीन भारत का इतिहास,* बनारस, 1998
14. थापर, रोमिला – *कल्चरल पास्ट्स : ऐसेज इन अर्ली इंडियन हिस्ट्री,* नई दिल्ली, 2000
    – *एशियन्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री,* नई दिल्ली, 1983
    – *भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, 1989
15. वाजपेयी, कृष्णदत्त – *भारतीय वास्तुकला का इतिहास,* लखनऊ, 1990

3.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ओमप्रकाश – *प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास,* नई दिल्ली, 1986
2. महाजन, विद्याधर – *प्राचीन भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, 2008
3. मिश्र, जयशंकर – *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,* पटना, 2006
4. श्रीवास्तव, के० सी० – *प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति,* इलाहबाद, 2007
5. शर्मा, आनन्द कुमार – *भारतीय संस्कृति एवं कला,* नई दिल्ली, 2011

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. गुप्तकालीन संस्कृति का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 2. गुप्तकालीन कला का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 3. गुप्तकालीन धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालिये ?

प्रश्न 4. गुप्तकालीन आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालिये ?

इकाई एकः पल्लवकालीन संस्कृति

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 सामाजिक जीवन
1.4 शैक्षिक स्थिति
1.5 साहित्य
1.6 शासन प्रबन्ध
1.7 पल्लवकालीन धार्मिक दशा
1.8 पल्लवकालीन कला तथा स्थापत्य कला
1.9 महेन्द्र शैली
1.10 मामल्ल शैली
1.11 रथ मंदिर महाबलिपुरम
1.12 राज सिंह शैली
1.13 नन्दीवर्मन शैली
1.14 सारांश
1.15 अभ्यासार्थ प्रश्न
1.16 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

चौथीं शताब्दी से नवीं शताब्दी के लगभग छः सौ वर्षों तक पल्लवों का प्रशासन दक्षिण भाग में रहा। इस दीर्घकालीन प्रशासन में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में अदभुत प्रगति हुई। इस वंश के नरेशों ने राजनीतिक दायित्व को भली–भांति निर्वहन के साथ ही साथ कला और साहित्य में भी यथोचित रूचि दिखाई। शिल्पकला और मंदिर निर्माण की दृष्टि से भी पल्लवों का शासनकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। चट्टानों को काटकर बड़े पैमाने पर मंदिर निर्मित किये गये। पल्लवों द्वारा प्रचलित मंदिर निर्माण की कला–शैली दक्षिण की सभी शैलियों का आधार बन गई।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि–

- पल्लवकालीन सामाजिक जीवन व पल्लवों का शासन प्रबन्ध की रूपरेखा।
- पल्लव काल में हुए धार्मिक आन्दोलन।
- साहित्य के क्षेत्र में प्रगति।
- कला और स्थापत्यकला के क्षेत्र में विकास।
- इस युग में मंदिर निर्माण कला के चार शैलियों का उदय और विकास।

1.3 सामाजिक जीवन

पल्लव काल में वर्ण व्यवस्था और जाति प्रथा समाज का आधार था। जाति–प्रथा में जटिलता और अपरिवर्तनशीलता आ गई थी। समाज में अनेक कुप्रथाएं और परम्पराएं थीं, जिनके निवारण के लिए धार्मिक जीवन में आन्दोलन हुए। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने तत्कालीन दशा का वर्णन अपने यात्रा वृत्तान्त में किया है। उसके अनुसार पल्लव राज्य की राजधानी कांची समृद्ध नगर था और वह लगभग छः मील की परिधि में बसा हुआ था। वह नगर विद्वानों का केन्द्र था। नालन्दा विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध आचार्य धर्मपाल कांची के थे। पल्लव राज्य बड़ा विस्तृत था, भूमि उपजाऊ थी एवं कृषि की दशा अच्छी थी। उपज की अधिकता थी। लोग सुखी और सदाचारी प्रवृति के थे। पल्लवों के अनुदानों से विदित होता है कि छठी सदी के अन्त तक दक्षिण भारत में आर्य पद्धति के समाज ने अपना स्थान पक्का कर लिया था। धर्म सूत्रों के अनुसार सामाजिक जीवन गठित हो गया था। राज्य के करों की विविधता के कारण जनता पर आर्थिक बोझ अधिक था, परन्तु फिर भी उनका आर्थिक स्तर समुन्नत था। आवागमन के पर्याप्त साधनों के कारण व्यापार भी उन्नत दशा में था। उनके भारतीय व्यापारी दक्षिण–पूर्वी एशिया और सुदूर पूर्व के देशों को धनोपार्जन के लिए आते–जाते थे। इनका अनुकरण अनेक विद्वानों और कलाकारों ने किया।

इस काल में राजा का कर्त्तव्य वर्ण की शुद्धता को कायम रखना एवं वर्ण संकरता को रोकना था, परन्तु थोड़ी मात्रा में इन नियमों का उल्लंघन सदा होता रहा। इसकाल में यद्यपि अपनी जाति में ही विवाह करना अच्छा समझा जाता था, परन्तु अन्तर्जातीय विवाह भी कभी–कभी हो जाते थे। ये विवाह अनुलोम (उच्च वर्ण का लड़का और निम्न वर्ण की लड़की) कहलाते थे। 'याज्ञवलक्य स्मृति' में इस प्रकार के विवाहों की आज्ञा दे दी गई है। वास्तव में अन्तर्जातीय विवाह विदेशी कबीलों को हिन्दू समाज में विलीन करने का अच्छा तरीका था।

अन्तर्जातीय विवाहों की तरह अन्तर्जातीय भोजन भी चलता रहा। स्मृति लेखकों ने शूद्रों के साथ भोजन करने की मनाही की है, परन्तु कृषक, नाई, दूधवाले व खानदानी मित्रों के साथ सहभोज की आज्ञा दे दी है। पल्लवकाल में जातियों के आम सम्बन्ध प्रेमपूर्ण थे। अपने सम्पूर्ण प्रदेश में पाठशालाएं, गोशालाएं, अस्पताल व धर्मशालाएं उन्होंने लोगों के लाभ के लिए चलाई थी।

पूर्वयुग की भांति इस युग में भी संयुक्त परिवार प्रथा जारी था। सम्पत्ति पिता के नाम रहती थी। यद्यपि भाई व पुत्रों का सम्पत्ति में बराबर का भाग रहता था। गोद लेने की प्रथा प्रचलित थी। प्रायः जिन व्यक्तियों की सन्तान नहीं होती थी वे अपनी पुत्री को गोद लेते थे। विधवा पुनर्विवाह का प्रचलन नहीं था, परन्तु उन्हें पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति का भाग प्राप्त था। यद्यपि स्त्रियों में शिक्षा का विशेष प्रचलन नहीं था, फिर भी इस युग में बड़े घराने की लड़कियों के वेदों तथ अन्य ललित कलाओं का अध्ययन काफी चलता रहा। इसकाल में कई विदूषी नारियां लेखिका तथा कवियित्री हुई। इस युग में सती प्रथा का भी प्रचलन था परन्तु कुछ विद्वानों ने विधवाओं के शुद्ध जीवन यापन के लिए विस्तृत नियम बनाये थे। इससे

स्पष्ट होता है कि इस युग में सती प्रथा सर्वप्रिय नहीं हुई थी। इस युग की चित्रकारी से स्पष्ट होता है कि नारियां समाज में स्वतंत्रता पूर्वक घूम सकती थी और उन्हें केवल घर की चाहर–दिवारी में बन्द नहीं रखा जाता था। उच्च घराने की स्त्रियां जब सार्वजनिक स्थानों पर जाती थी तो थोड़ा पर्दा करती थी।

पल्लव काल में सामिष तथा निरामिष दोनों प्रकार के भोजन करने वाले होते थे। बौद्ध, ब्राह्मण व वैश्य मांस नहीं खाते थे, किन्तु क्षत्रिय व निम्न वर्ग के लोग मांस का प्रयोग करते थे। आमोद–प्रमोद के प्रमुख साधनों में शतरंज, चौपड़, शिकार, पशुओं की लड़ाई, नाटक, मेला आदि थे। सरकारी, दफ्तरों, मठों वे ऊँचे घरानों में समय का पता लगाने के लिए नादिकाएं (पानी की घड़ियाँ) होती थी।

1.4 शैक्षिक स्थिति

जनता में विद्या एवं विद्वत्ता के प्रति यथोचित लगाव था। शिक्षा प्रसार का अधिकांश कार्य ब्राह्मण करते थे। बौद्ध विहार और हिन्दू मंदिर शिक्षा के केन्द्र थे। पल्लवों की राजधानी कांचीपुरम शिक्षा और साहित्य का प्रसिद्ध केन्द्र था। कांची के समीप एक विशाल विस्तृत विहार था, जहां देश के विभिन्न प्रकाण्ड विद्वान आते–जाते थे और परस्पर भेंट कर विचारों का आदान–प्रदान करते थे। कांची नगर अनेकानेक विद्वान व्यक्तियों का निवास स्थान था। वहां एक प्रसिद्ध हिन्दू विश्वविद्यालय था जहां अनेक लोग विद्याध्ययन के लिए आया करते थे। नालन्दा विश्वविद्यालय का प्रसिद्ध विद्वान आचार्य धर्मपाल कांची से सम्बधित था। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान दिग्नाग की शिक्षा कांची में हुई थी। कदम्ब वंशी राजकुमार मयूर वर्मा शिक्षा के लिए वहां गया था। कांची ही नहीं ग्रामों में भी अनेक विद्वान निवास करते थे। एक ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि कांची के समीप कुर्रम (ग्राम) में एक सौ आठ ब्राह्मण परिवार वेदपाठी थे तथा महाभारत को कण्ठस्थल सुनाने पर पल्लव सम्राट परमेश्वर वर्मन ने विद्वान को पुरूस्कृत किया था।

1.5 साहित्य

पल्लव नरेशों का शासन संस्कृत तथा तमिल दोनों ही भाषाओं के साहित्य की उन्नति का काल रहा। कुछ पल्लव नरेश उच्चकोटि के विद्वान थे तथा उनकी राज्य सभा में प्रसिद्ध विद्वान एवं लेखक निवास करते थे। महेन्द्र वर्मा प्रथम ने 'मुत्तविलासप्रहसन' नाम हास्य ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें कापालिकों एवं बौद्ध भिक्षुओं की हंसी उड़ाई गयी है। कुछ विद्वानों के मतानुसार किरातार्जुनीय महाकाव्य के रचियता भाटवि उसी की राजसभा में निवास करते थे। महेन्द्र वर्मा का उत्तराधिकारी नरसिंह वर्मा भी महान विद्या–प्रेमी था। उसकी राजसभा में 'दशकुमारचरित' एवं काव्यादर्श के लेखक दण्डी निवास करते थे। पल्लव शासकों के अधिकांश लेख विशुद्ध संस्कृत में लिखे गये हैं। संस्कृत के साथ–साथ इस समय तमिल भाषा की भी उन्नति हुई। शैव तथा वैष्णव सन्तों द्वारा तमिल भाषा एवं साहित्य का प्रचार–प्रसार हुआ। पल्लवों की राजधानी कांच्ची विद्या का प्रमुख केन्द्र था जहां एक संस्कृत महाविद्यालय (घटिका) थी। इसी के समीप एक मण्डप में महाभारत का नियमित पाठ होता था तथा ब्राह्मण परिवार वेदाध्यन किया करते थे। कदम्ब नरेश मयूर शर्मा विद्याध्यन के लिए काच्ची के विद्यालय (घटिका) में ही गया था।

1.6 शासन–प्रबन्ध

काच्ची के पल्लव नरेश ब्राह्मण धर्मानुयायी थे। अतः उन्होंने धर्म महाराजाधिराज अथवा धर्ममहाराज की उपाधि धारण की। उनकी शासन पद्धति के अनेक तत्व मौर्यों तथा गुप्तों की शासन पद्धतियों से लिए गए प्रतीत होते हैं। शासन का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था। उसकी उत्पत्ति दैवी मानी जाती थी। पल्लव नरेश अत्यन्त कला–प्रेमी एवं साहित्य के संरक्षक थे। युवराज का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण होता था। और वह अपने अधिकार से भूमि दान दे सकता था। पल्लव सम्राट के पास अपनी मंत्रिपरिषद थी। जिसकी सलाह से वह शासन करता था। पल्लव लेखों में 'अमात्य' शब्द का उल्लेख मिलता है। बैकुण्ठपेरूमल लेख में

नन्दिवर्मन की मंत्रिपरिषद का उल्लेख मिलता है। किन्तु मंत्रियों के विभागों अथवा कार्यों के विषय में हमें कोई सूचना नहीं मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रमुख विषयों पर मन्त्रणा करने के लिए राजा के पास कुछ खास मंत्री होते थे जिन्हें 'रहस्यादिकद' कहा जाता था। पल्लव लेखों में शासन के कुछ प्रमुख अधिकारियों के नाम इस प्रकार मिलते है—सेनापति, राष्ट्रिक, देशाधिकृत, ग्रामभोजक, अमात्य, आरक्षाधिकृत, गौत्मिक, तैर्थिक, नैयोजिक, भट्टमनुष्य, संचरन्तक आदि। विशाल पल्लव साम्राज्य विभिन्न प्रान्तों में विभाजित किया गया था। प्रान्त की संज्ञा थी राष्ट्र या मण्डल। राष्ट्रिक नामक पदाधिकारी इसका प्रधान होता था। यह पद युवराज, वरिष्ठ अधिकारियों अथवा कभी—कभी पराजित राजाओं को भी प्रदान किया जाता था। राष्ट्रिक, अधीन सामन्तों के ऊपर भी नियन्त्रण रखता था। मण्डल के शासक अपने पास सेना रखते थे तथा उनकी अपनी अदालतें भी होती थी। कालान्तर में उनका पद आनुवांशिक हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकारियों को वेतन के बदले में भूमि का अनुदान ही दिया जाता था। दक्षिण भारतीय प्रशासन की प्रमुख तत्व ग्रामसभा या समिति होती थी और यह पल्लव काल में ही रही होगी। प्राचीन पल्लव लेखों से पता चलता है कि ग्रामों का संगठन 'ग्रामकोय' अथवा 'मुटक' के नेतृत्व में किया गया था। राजकीय आदेश उसी को सम्बोधित करके भेजे जाते थे। ग्रामसभा की बैठक एक विशाल वृक्ष के नीचे होती थी। इस स्थान को 'मन्रम' कहा जाता था। ग्राम प्रायः दो प्रकार के होते थे—ब्रह्मदेय तथा सामान्य। ग्रामों में ब्राह्मणों की आबादी अधिक होती थी तथा इनसे कोई कर नहीं लिया जाता था। सामान्य ग्रामों में विभिन्न जातियों के लोग रहते थे। तथा भूराजस्व के रूप में उन्हें राजा को भी कर देना पड़ता था। यह छठे से दसवें भाग तक होता था। इसके अतिरिक्त कुछ स्थानीय कर भी लगते थे तथा इनकी वसूली भी ग्राम सभा द्वारा ही की जाती थी। लेखों में 18 पारम्परिक करों का उल्लेख मिलता है। पल्लवों के पास एक शक्तिशाली सेना भी थी। इसमें पैदल अश्वरोही तथा हाथी होते थे। उनके पास नौ सेना भी थी। महाबलिपुरम तथा नेगपत्तन नौ सेना के केन्द्र थे। नौ सैनिक युद्ध के अतिरिक्त अन्य कार्य भी करते थे तथा दक्षिण पूर्व एशिया व्यापार में इनसे सहायता जी जाती थी।

1.7 पल्लव कालीन धार्मिक दशा

हिन्दू धर्म में मोक्ष अथवा ईश्वर प्राप्ति के तीन साधन बताये गये हैं—कर्म, ज्ञान तथा भक्ति। वेद कर्मकाण्डी हैं। उपनिषदों में ज्ञान की प्रतिपादन है तथा गीता में इन तीनों के समन्वय की चर्चा है। कालान्तर में इन तीनों साधनों के आधार पर विभिन्न सम्प्रदायों का अविर्भाव हुआ। अनेक विचारकों तथा सुधारकों ने भक्ति को साधन बनाकर सामाजिक—धार्मिक जीवन में सुधार लाने के लिए एक आन्दोलन का सूत्रपात किया। भारतीय जन—जीवन में इस आन्दोलन ने एक नवीन शक्ति तथा गतिशीलता का संचार किया। सर्वप्रथम भक्ति आन्दोलनों का अविर्भाव द्रविड़ देश में हुआ। भागवत पुराण में स्पष्टतः कहा गया है कि भक्ति द्रविड़ देश में जन्मी कर्नाटक में विकसित हुई तथा कुछ काल तक महाराष्ट्र में रहने के बाद गुजरात में पहुँचकर जीर्ण हो गयी। द्रविड़ देश में भक्ति आन्दोलन पल्लव तथा चोल राजाओं के संरक्षण में चलाया गया। इसके सूत्रधार नायनार, आलवार एवं आचार्य थे। शिव तथा विष्णु इस आन्दोलन के आराध्य देव थे।

पल्लव राजाओं का शासन काल दक्षिण भारत के इतिहास में ब्राह्मण धर्म की उन्नति का काल रहा। इस काल के प्रारम्भ में ब्राह्मण धर्म के साथ—साथ बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म की तमिल प्रदेश में लोकप्रिय थे। स्वयं ब्राह्मण धर्मावलम्बी होते हुए भी पल्लव शासकों में सहिष्णुता दिखाई है। उन्होंने अपने राज्य में जैनियों अथवा बौद्धों के ऊपर किसी भी प्रकार के अत्याचार नहीं किये। पल्लव नरेश नरसिंह वर्मा प्रथम के समय में चीन यात्री ह्वेनसांग कांच्ची में कुछ समय ठहरा था। उसके अनुसार यहां सौ से अधिक बौद्ध विहार थे जिनमें दस हजार बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। उन्हें राज्य की ओर से सारी सुविधाएं प्रदान की गयी थी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि धीरे—धीरे तमिल समाज में शैव तथा वैष्णव धर्मों का प्रचलन हो गया और

दोनों धर्मों के आचार्यों—शैवनायर तथा वैष्णव आलवर ने जैन एवं बौद्ध आचार्यों को शास्त्रार्थ में पराजित कर इन धर्मों की जड़ों का तमिल देश से उखाड़ फेंका। नायनारों तथा आलवरों ने दक्षिण में भक्ति आन्दोलनों को सूत्रपात किया। उनके प्रयासों का फल अच्छा निकला तथा दक्षिण के शासकों तथा सामान्य जनता ने धीरे—धीरे जैन एवं बौद्ध धर्मों का परित्याग कर भक्तिपरक शैव एवं वैष्णव धर्मों को ग्रहण कर लिया। इस प्रकार तमिल देश से जैन एवं बौद्ध धर्मों का विलोप हो गया।

पल्लव राजाओं का शासन काल नायनारों तथा आलवरों के भक्ति आन्दोलनों के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह आन्दोलन ईसा की छठीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर नवीं शताब्दी तक चलता रहा। इस काल में दोनों सम्प्रदायों के अनेक संतों का अविर्भाव हुआ जिन्होंने अपने—अपने प्रवचनों द्वारा जनता के दिलों में भक्ति की लहर दौड़ा दी। इनके प्रभाव में आकार पल्लव शासकों ने शैव तथा वैष्णव धर्मों को ग्रहण किया तथा शिव और विष्णु के सम्मान में मंदिर एवं मूर्तियों का निर्माण करवाया। भक्ति आन्दोलनों के फलस्वरूप सुदूर दक्षिण में मूर्तिपूजा, अवतारवाद, यज्ञ कर्मकाण्ड आदि का व्यापक रूप से प्रचार—प्रसार हुआ। पल्लव काल में शैव धर्म का प्रचार नायनारों द्वारा ही किया गया। नायनार सन्तों की संख्या 63 बतायी गयी है। जिनके अप्पार, तिरूज्ञान, सम्बन्दर, सुन्दरमूर्ति मणिककवाचगर आदि के नाम उल्लेखनीय है। इनके भक्तिगीतों को एक साथ 'देवरम' में संकलित किया गया है। इनमें अप्पार जिसका दूसरा नाम तिरूनाबुक्करशु भी मिलता है, पल्लप नरेश महेन्द्र वर्मन का समकालीन था। उसका जन्म तिरूगमूर के बेल्लाल परिवार में हुआ था। बताया जाता है कि पहले वह एक जैन मठ में रहते हुए भिक्षु जीवन व्यतीत करता था। बाद में शिव की कृपा से उसका एक असाध्य रोग ठीक हो गया जिसके फलस्वरूप जैन मत का परित्याग कर वह निष्ठावान शैव बन गया। अप्पार ने दास भाव, शिव की भक्ति की तथा उसका प्रचार जनसाधारण में किया।

निरूज्ञान सम्वन्दर शियाली (तन्जोर जिला) के एक ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुआ था। उसके विषय में एक कथा में बताया गया है कि तीन वर्ष की आयु में ही पार्वती की कृपा से उसे दैवीज्ञान प्राप्त हो गया था। उसके पिता ने उसे सभी तीर्थों का भ्रमण कराया। कहा जाता है कि पाण्ड्य देश की यात्राकर उसने वहीं के राज तथा प्रजा को जैन धर्म से शैव धर्म में दीक्षित किया था। सम्बन्दर का बौद्ध आचार्यों के साथ भी वाद—विवाद हुआ तथा उसने शास्त्रार्थ में पराजित किया। उसने कई भक्ति गीत गाये तथा इस प्रकार उसकी मान्यता सबसे पवित्र सन्त के रूप में हो गयी। आज भी तमिल देश के अधिकांश शैव मंदिरों में उसकी पूजा की जाती है। सुन्दरमूर्ति का जन्म नावलूर के एक निर्धन ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। उसका पालन—पोषण नर सिंह मुवैयदरेयन नामक सेनापति ने किया। यद्यपि उसका जीवन काल मात्र 18 वर्षों का रहा फिर भी वह अपने समय का अनन्य शैव भक्त बन गया। उसने लगभग एक सहस्त्र भक्तिगीत लिखे। सुन्दरमूर्ति को 'ईश्वरमित्र' की उपाधि से सम्बोधित किया गया।

इसी प्रकार मणिककवाचगर मदुरा के समीप एक गांव के ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुआ था। चिदम्बरम् में उसने लंक के बौद्धों को वाद—विवाद में परास्त कर ख्याति प्राप्त किया। उसने भी अनेक भक्तिगीत लिखे जिन्हें 'तिरूवाशगम्' में संग्रहित किया गया है। उसके गीतों में प्रेम तत्व की प्रधानता है। उसके द्वारा विचरित एक भक्तिगीत बहुत प्रसिद्ध हुआ। इन सभी शैव सन्तों ने भजन् कीर्तन, शास्त्रार्थ एवं उपदेशों आदि के माध्यम से तमिल समाज में शैवभक्ति का जोरदार प्रचार किया तथा भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र साधन बताया। ये जाति—पाति के विरोधी थे तथा उन्होंने समाज के सभी वर्गों के बीच जाकर अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। नायनार सन्तों ने पल्लव शासकों तथा अन्य राजकुल के सदस्यों को भी प्रभावित किया। परिणामस्वरूप न केवल शैव बने अपितु इस धर्म के प्रचार—प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान भी दिया। महेन्द्र वर्मन प्रथम ने जैन धर्म का परित्याग कर सन्त अप्पार के प्रभाव से शैव धर्म ग्रहण किया। उसके

उत्तराधिकारी नरसिंह वर्मन प्रथम ने शिव की उपासना में कई मंदिर बनवाये थे। परमेश्वर वर्मन प्रथम शिव का अनन्य उपासक था जिसकी उपाधि 'माहेश्वर' की थी। नरसिंह वर्मन द्वितीय ने भी शैव धर्म ग्रहण किया तथा उसने शिव का विशाल मंदिर बनवाया था। इन शासकों के अनुकरण पर सामान्य जनता भी शैव धर्म की ओर आकर्षित हो गयी। इस धर्म के सामान्य सिद्धान्तों के साथ–साथ कालान्तर में शैव दर्शन का भी तमिल समाज में प्रचार हो गया।

शैव धर्म के साथ–साथ पल्लव कालीन समाज में वैष्णव धर्म का भी प्रचार हुआ। तमिल देश में इस धर्म का प्रचार मुख्यतया 'आलवर' सन्तों द्वारा किया गया। आलबर शब्द का अर्थ अर्न्तज्ञान रखने वाला वह व्यक्ति जो चिन्तन में पूर्णतया विलीन हो गया हो, इनकी संख्या 12 बतायी गयी है। 1. भूतयोगी, 2. सरोयोगी, 3. महायोगी, 4. भक्तिसार, 5. परांकुश मुनि या शठकोप, 6. मधुरकवि, 7. कुलशेखर, 8. विष्णुचित, 9. गोदा, 10. भक्तिध्रिरेण, 11. योगिवाह तथा 12. परकाल। इनका आविर्भाव सातवीं से नवीं शताब्दी के मध्य हुआ। प्रारम्भिक आलवर सन्तों में पोयगई पोडिय तथा पेय के नाम मिलते है जो क्रमशः कोपी, मल्लई तथा मयलापुरम के निवासी थे। इन्होंने सीधे तथा सरल ढ़ग से भक्ति का उपदेश दिया। इनके विचार संकीर्णता अथवा साम्प्रदायिक तनाव से रहित थे। इनके बाद तिरूमलिशई का नाम मिलता है जो सम्भवतः पल्लव नरेश महेन्द्र वर्मन प्रथम के समय में हुआ। तिरूमंगई अत्यन्त प्रसिद्ध आलवर सन्त हुआ। अपनी भक्तिगीतों के माध्यम से जैन तथा बौद्ध धर्मों पर आक्रमण करते हुए उसने वैष्णव धर्म का जोरदार प्रचार किया। कहा जाता है कि श्रीरंगम् के मठ की मरम्मत के लिए उसने नेगपट्टम के बौद्ध विहार से एक स्वर्ण मूर्ति चुरायी थी। शैवों के प्रति उसका दृष्टिकोण अपेक्षाकृत उदार था। आलवरों में एकमात्र महिला साध्वी आण्डाल का नाम मिलता है जिसके भक्तिगीतों में कृष्ण–कथायें अधिक मिलती हैं। मध्ययुगीन कवियित्री मीराबाई की कृष्ण भक्ति के समान आण्डाल भी कृष्ण की प्रेम दीवानी थी। आलवर सन्तों की अंतिम कड़ी के रूप में नाम्मालवार तथा उसके प्रिय शिष्य मधुर कवि के नाम उल्लेखनीय है। नाम्मालवार का जन्म तिनेवेली जिले के एक बेल्लाल कुल में हुआ था। उसने बड़ी संख्या में भक्तिगीत लिखे विष्णु को अनन्त एवं सर्वव्यापी मानते हुए उसने बताया कि उसकी प्राप्ति एक मात्र भक्ति से ही संभव है।

नाम्मालवार के शिष्य मधुर कवि ने अपने गीतों के माध्यम से गुरू महिमा का बखान किया। आलवर सन्तों ने ईश्वर के प्रति अपनी उत्कट भक्ति भावना के कारण अपने को पूर्णरूपेण उसमें समर्पित कर दिया। उनकी मान्यता थी कि समस्त संसार ईश्वर का शरीर है तथा वास्तविक आनन्द उसकी सेवा करने में ही है। आलवर की तुलना उस बिरहणी युवती के साथ की गयी है जो अपने प्रियतम के विरह वेदना में अपने प्राण खो देती है। आलवरों ने भजन, कीर्तन, नामोच्चारण, मूर्तिदर्शन आदि के माध्यम से वैष्णव धर्म का प्रचार किया। वे गोपीभाव को सर्वोच्च मानते हैं तथा भगवान के प्रति विरह में तन्मय हो जाते हैं। भगवान के प्रति उत्कट प्रेम ही भक्ति है। अज्ञानी व्यक्तियों की जिस प्रकार विषयभोगों में उत्कट प्रीति होती है उसी प्रकार उत्कट प्रीति जब नित्य भगवान में होती है, तब भक्ति का उदय होता है। जैसे कोई प्रेमिका अपने प्रियतम के विरह में निरन्तर उसका चिन्तन किया करती है या उत्कट प्रेम में लीन होकर प्रियतम से मिलने को आतुर रहती हैं वैसे ही भक्त की मनोदशा अपने प्रियतम परमात्मा के मिलन के लिए होती है। आलवर सन्त भक्ति को 'काम' कहते हैं किन्तु यह लौकिक काम से भिन्न सच्चिदानन्द भगवान के प्रति दिव्य प्रेम है। जिस प्रकार कालिदास के यज्ञ ने मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रियतमा के पास भेजा था, उसी प्रकार आलवर सन्त भी उड़ते हुए हंसों तथा पक्षियों को दूत बनाकर उनसे निवेदन करते हैं कि यदि उन्हें कहीं उनके प्रियतम कृष्ण दिखाई पड़े तो उनसे कहें कि वे क्यों उन्हें भूल गये और उनके पास नहीं आते।

आलवर सन्त नश्वर संसार के विषयों से उसी प्रकार संपृक्त नहीं होते जैसे कीचड़ में से कमल। इस प्रकार आलवर सच्चे विष्णु भक्त थे। श्रीमदभागवत में आत्मनिवेदन अर्थात ईश्वर में पूर्ण समर्पण की सर्वोच्च भक्ति

माना गया है। आलवर सन्तों ने प्रेमभक्ति द्वारा आत्म सर्म्पण को ही सर्वाधिक महत्व प्रदान किया। लगता है कि वैष्णव आन्दोलन का प्रारम्भ सर्वप्रथम पल्लवों के राज्य से ही हुआ तथा उसके बाद यह दक्षिण के अन्य भागों में पहुँचा। आलवर सन्तों के प्रभाव में आकर कई पल्लव राजाओं ने वैष्णव धर्म को ग्रहण कर उसे राजधर्म बनाया तथा विष्णु के सम्मान में मंदिरों में आदिबाराह मंदिर का निर्माण कराया था। नरसिंह वर्मन द्वितीय के समय में काच्ची में वैकुण्ठपेरूमल मंदिर का निर्माण करवाया गया। दन्तिवर्मा भी विष्णु का महान उपासक था। लेखों में उसे विष्णु का अवतार बताया गया है। इस प्रकार पल्लवकालीन समाज में नायनार तथा आलवर सन्तों द्वारा प्रवर्तित भक्ति आन्दोलन बड़े वेग से प्रचलित हुआ। सन्तों ने अनेक भक्तिगीत लिखे जिन्हें मंदिरों में गाया जाता था। वस्तुतः मंदिर इस काल की धार्मिक गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र थे।

1.8 पल्लवकालीन कला तथा स्थापत्य कला

पल्लव नरेशों का शासनकाल कला एवं स्थापत्य की उन्नति के लिए प्रसिद्ध है। वस्तुतः उनकी वास्तु एवं तक्षण कला दक्षिण भारतीय कला के इतिहास में सर्वाधिक गौरवशाली अध्याय है। पल्लव वास्तु कला ही दक्षिण के द्रविड़ कला शैली का आधार बनी। उसी से दक्षिण भारतीय स्थापत्य की तीन प्रमुख अंगों का जन्म हुआ। 1–मण्डप, 2–रथ, 3–विशाल मंदिर। प्रसिद्ध कलाविद् पर्सी ब्राउन ने 'पल्लव' वास्तुकला के विकास की शैलियों को चार भागों में विभक्त किया है। इनका विवरण निम्न है।

1.9 महेन्द्र शैली

पल्लव वास्तु का प्रारम्भ महेन्द्रवर्मन प्रथम के समय से हुआ जिसकी उपाधि 'विचित–चित्र' की थी। मण्डग पट्ट लेख में वह दावा करता है कि उसने ईंट, लकड़ी, लोहा, चूना आदि के प्रयोग के बिना एक नयी वास्तु शैली को जन्म दिया। यह नयी शैली 'मण्डप वास्तु' की थी जिसके अन्तर्गत गुहा मंदिरों के निर्माण की परम्परा प्रारम्भ हुई। तोण्डामण्डलम् की प्रकृत शिलाओं को उत्कीर्ण कर मंदिर बनाये गये जिन्हें 'मण्डप' कहा जाता है। ये मण्डप साधारण स्तम्भयुक्त बरामदे है जिनकी पिछली दीवार में एक या अधिक कक्ष बनाये गये हैं। इनके पार्श्व भाग में गर्भगृह रहता है। शैव मण्डप के गर्भगृह में लिंग तथा वैष्णव मण्डप के गर्भगृह में विष्णु प्रतिमा स्थापित रहती थी। मण्डप के बाहर बने मुख्य द्वार पर द्वारपालों की मूर्तियाँ मिलती हैं जो कि कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। मण्डप के सामने स्तम्भों की एक पंक्ति मिलती है। प्रत्येक स्तम्भ सात फीट ऊँचा है। स्तम्भ संतुलित ढंग से नियोजित किये गये हैं तथा दो स्तम्भों के बीच समान दूरी बड़ी कुशलतापूर्वक रखी गयी है। स्तम्भों के तीन भाग दिखाई देते हैं। आधार तथा शीर्ष भाग पर दो फीट का आयत प्रायः चौकोर है जिनके ऊपर के शीर्ष सिंहाकार बनाये गये हैं। महेन्द्र शैली के मण्डपों में मण्डगपट्टु का त्रिमूर्ति मण्डप, पल्लवरम का पच्चपाण्डव मण्डप, महेन्द्रवाड़ी का महेन्द्रविष्णु गृहमण्डप, मामण्डूर का विष्णु मण्डप त्रिचनापल्ली का ललितांकुर पल्लेश्वर गृहमण्डप आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस शैली के प्रारम्भिक मण्डप सादे तथा अलंकरण रहित हैं किन्तु बाद के मण्डपों को अलंकृत करने की प्रवृति दिखाई देती है। पच्चपाण्डव मण्डप में छः अलंकृत स्तम्भ लगाये गये हैं। इन पर कमल फुल्लक, मकर तोरण, तरंग मंजरी आदि के अभिप्राय अंकित हैं। महेन्द्रवर्मा प्रथम के बाद भी कुछ समय तक इस शैली का विकास होता रहा।

1.10 मामल्ल शैली

इस शैली का विकास नरसिंह वर्मा प्रथम महामल्ल के काल में हुआ। इसके अन्तर्गत दो प्रकार के स्मारक बने–मण्डप तथा एकाश्मक मंदिर जिन्हें रथ कहा गया है। इस शैली में निर्मित सभी स्मारक मामल्लपुरम या महाबलिपुरम में विद्यमान हैं। यहां मुख्य पर्वत पर दस मण्डप बनाये गये हैं। इनमें आदिबाराह मण्डप, महिषमर्दिनी मण्डप, पच्चपाण्डव मण्डप, रामानुज मण्डप आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। इन्हें विविध प्रकार से

अलंकृत किया गया है। मण्डपों का आकार प्रकार बड़ा नहीं है। मण्डपों के स्तम्भ पहले की अपेक्षा पतले तथा लम्बे हैं। इनके ऊपर पघ, कुम्भ, फलक आदि का अलंकरण बने हुए हैं। स्तम्भों को मण्डपों में अत्यन्त अलंकृत ढंग से नियोजित किया गया है। मण्डप अपनी मूर्तिकारी के लिए प्रसिद्ध है। इनमें उत्कीर्ण महिषमर्दिनी, अनन्तशायी विष्णु, त्रिविक्रम, ब्रह्मा, गजलक्ष्मी, हरिहर आदि की मूर्तियां कलात्मक दृष्टि से उत्युत्कृष्ट हैं। पच्चपाण्डव मण्डप में कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत धारण किये जाने का दृश्य अत्यन्त सुन्दर है। आदिबाराह मण्डप में राज परिवार के दो दृश्यों का अंकन मिलता है। पहली मूर्ति में राजा सुखासन मुद्रा में बैठा है जिसके दोनों ओर उसकी दो रानियां खड़ी हैं। इसकी पहचान सिंहविष्णु से की गयी है। दूसरी मुद्रा में राजा महेन्द्र (महेन्द्र वर्मन द्वितीय) अपनी दो पत्नियों के साथ खड़ा दिखाया गया है। मामल्लशैली के मण्डप महेन्द्र शैली के विकसित रूप को प्रकट करते हैं। इनकी कलात्मकता बराह, महिष तथा पच्चपाण्डव मण्डपों में स्पष्टतः दर्शनीय है।

1.11 रथ मंदिर महाबलिपुरम

मामल्ल शैली की दूसरी रचना रथ अथवा एकाश्मक मंदिर है। पल्लव वास्तुकारों ने विशाल प्रकृत चट्टानों को काटकर जिन एकाश्य पूजागृहों की रचना की उन्हीं को रथ कहा जाता है। इनके निर्माण की परम्परा नरसिंह वर्मन के समय से ही प्रारम्भ हुई। इसके लिये उस समय तक प्रचलित समाज वास्तु नमूनों से प्रेरणा ली गयी। इन्हें देखने से पता चलता है कि शिला के अनावश्यक भाग को अलग कर अपेक्षित स्वरूप को ऊपर से नीचे की ओर उत्कीर्ण किया जाता था। रथ मंदिरों का आकार–प्रकार अन्य कृतियों की अपेक्षा छोटा है। ये अधिक से अधिक 42 फुट लम्बे, 35 फुट चौड़े तथा 40 फुट ऊँचे हैं तथा पूर्ववर्ती गुहा विहारों अथवा चैत्यों की अनुकृति पर निर्मित प्रतीत होते हैं।

प्रमुख रथ द्रोपदी रथ, नकुल–सहदेव रथ, अर्जुनरथ, भीमरथ, धर्मराज रथ, गणेशरथ, जिडारिरथ तथा वलैयेकुटटे रथ। प्रथम पांच दक्षिण में तथा अंतिम तीन उत्तर और उत्तर–पश्चिम में स्थित है। ये सभी शैव मंदिर प्रतीत होते हैं। द्रोपदी रथ सबसे छोटा है। यह सचल देवायतन की अनुकृति है जिसका प्रयोग उत्सव और शोभा यात्रा के समय किया जात है, जैसे पुरी का रथ। इसका आकार झोपड़ी जैसा है। इसमें किसी प्रकार का अलंकरण नहीं मिलता तथा यह एक सामान्य कक्ष की भांति खोदा गया है। यह सिहं जैसे पशुओं के आधार पर टिका हुआ है। अन्य सभी रथ बौद्ध विहारों के समान समचतुस आयताकार हैं तथा इनके शिखर नागर अथवा द्रविड़ शैली में बनाये गये हैं। विमान के विविध तत्वों–अधिष्ठान, पादभित्ति, प्रस्तर, ग्रीवार शिखर तथा स्तूप इनमें स्पष्टतः दिखाई देते हैं। गणेश रथ का शिखर वेसर शैली में निर्मित है। धर्मराज रथ सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसके ऊपर पिरामिड के आकार का शिखर बनाया गया है। मध्य में वर्गाकार कक्ष तथा नीचे स्तम्भयुक्त बरामदा है। कुर्सी में गढ़े हुए सुदृढ़ टुकड़ों तथा सिंह स्तम्भयुक्त अपनी डयोढ़ियों से यह और भी सुन्दर प्रतीत होता है। पर्सी ब्राउन के शब्दों में 'इस प्रकार की योजना न केवल अपने में एक प्रभावपूर्ण निर्माण है अपितु शक्तियों से परिपूर्ण होने के साथ–साथ सुप्पद रूपों तथा अभिप्रायों का भण्गर है। इसे द्रविड़ मंदिर शैली का अग्रदूत कहा जा सकता है। भीम, सहदेव तथा गणेश रथों का निर्माण चैत्यग्रहों जैसा है। ये दीर्घाकार हैं तथा इनमें दो या अधिक मंजिल है, और तिकोने किनारों वाली पीपे जैसी छतें हैं सहदेव रथ 'अर्धवृत' के आकार का है। पिंडारी तथा वलेयंकु है रथों का निर्माण अधूरा है। नीलकण्ठ शास्त्री के अनुसार 'इन रथों की दीर्धाकार आयोजना छोटी होती जाने वाली मंजिलों और कलशों तथा नुकीले किनारों के साथ पीपे के आकार वाली छतों के आधार पर ही बाद के गोपुरों अथवा मंदिरों की प्रवेश बुर्जियों की डिजाइन तैयार की गयी होगी।

मामल्लशैली के रथ अपनी मूर्तिकला के लिए भी प्रसिद्ध हैं। नकुल–सहदेव रथ के अतिरिक्त अन्य सभी रथों पर विभिन्न देवी–देवताओं जैसे–दुर्गा, इन्द्र, शिव, गंगा, पार्वती, हरिहर, ब्रह्मा, स्कन्द आदि की मूर्तियां

उत्कीर्ण मिलती हैं। द्रोपदी रथ की दीवारों में तक्षित दुर्गा तथा अर्जुन रथ की दीवारों में बनी शिव की मूर्तियां विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। धर्मराज रथ पर नरसिंह वर्मा की मूर्ति अंकित है। इन रथों को 'सात पगोडा' कहा जाता है। दुर्भाग्यवश इनकी रचना अपूर्ण रह गयी है।

1.12 राजसिंह शैली

इस शैली का प्रारम्भ पल्लव नरेश नरसिंह वर्मन द्वितीय 'राजसिंह' ने किया। इसके अन्तर्गत गुहा मंदिरों के स्थान पर पाषाणविद आदि की सहायता से इमारती मंदिरों का निर्माण करवाया गया। इस शैली के मंदिरों में से तीन महाबलीपुरम से प्राप्त होते हैं। शोर मंदिर (तटीय शिव मंदिर) ईश्वर मंदिर तथा मुकुन्द मंदिर। शोर मंदिर इस शैली का प्रथम उदाहरण है। उनके अतिरिक्त पनमलाई (उत्तरी अकिट) मंदिर तथा काच्ची के कैलाशनाथ एवं वैकुण्ठपेरूमल मंदिर भी उल्लेखनीय है। महाबलीपुरम के समुद्र तट पर स्थित शोर मंदिर पल्लव कलाकारों की अदभुत कारीगरी का नमूना है। मंदिर का निर्माण एक विशाल प्रांगण में हुआ जिसका प्रवेश द्वार पश्चिम की ओर है। इसका गर्भगृह धर्मराज रथ के समान वर्गाकार है जिसके ऊपर अष्ठकोणिक शुंडाकार विमान कई तल्लों वाला है। ऊपरी किनारे पर बाद में दो और मंदिर जोड़ दिये गये। इनमें से एक छोटा विमान है। बड़े हुए भागों के कारण मुख्य मंदिर की शोभा में कोई कमी नही आने पाई है। इसका शिखर सीढ़ीदार है तथा उसके शीर्ष पर स्तूपिका बनी हुई है। यह अत्यन्त मनोहर है। दीवारों पर गणेश, स्कन्द, गज, शार्दूल आदि की मूर्तियां उत्कीर्ण मिलती है। इसमें सिंह की आकृति को विशेष रूप से खोद कर बनाया गया है। घेरे की अन्य दीवार के मुडेर पर उँकडू बैठे हुए बैलों की मूर्तियां बनी है। तथा बाहरी भाग के चारों ओर थोड़ी–थोड़ी अन्तराल पर सिंह–भित्ति–स्तम्भ बने हैं। इस प्रकार यह द्रविड़ वास्तु की एक सुन्दर रचना है। शताब्दियों की प्राकृतिक आपदाओं की उपेक्षा करते हुए यह आज भी अपनी सुन्दरता को बनाये हुए है।

कांची स्थित कैलाशनाथ मंदिर राजसिंह शैली के चरम उत्कीर्ण को व्यक्त करता है। इसका निर्माण नरसिंह वर्मन द्वितीय 'राजसिंह' के समय से प्रारम्भ हुआ तथा उसके उत्तराधिकारी महेन्द्रवर्मन द्वितीय के समय में इसकी रचना पूर्ण हुई द्रविड़ शैली की सभी विशेषताओं जैसे–परिवेष्हित प्रांगण, गोपुरम, स्तम्भयुक्त मण्डप विमान आदि का इस मंदिर में एक साथ प्राप्त हो जाती है। इसके निर्माण में ग्रेनाइट तथा बलुआ पत्थरों का उपयोग किया गया है। इसका गर्भगृह आयताकार है। जिसकी प्रत्येक भुजा 9 फुट है। इसमें पिरामिडनुमा विमान तथा स्तम्भयुक्त मण्डप है। मुख्य विमान के चारों ओर प्रदक्षिणापथ है। स्तम्भों पर आधारित मण्डप मुख्य विमान से कुछ दूरी पर है। पूर्वी दिशा में गोपुरम दुतल्ला है। सम्पूर्ण मंदिर ऊँचे परकोटों से घिरा हुआ है। मंदिर में शैव सम्प्रदाय एवं शिव–लीलाओं से सम्बन्धित अनके सुन्दर–सुन्दर मूर्तियां अंकित हैं जो उसकी शोभा को द्विगुणित करती हैं। कैलाशनाथ मंदिर के कुछ बाद का बना वैकुण्ठपेरूमल का मंदिर है। उसका निर्माण परमेश्वरवर्मन द्वितीय के समय में हुआ था। यह भगवान विष्णु का मंदिर है जिसमें प्रदक्षिणापथयुक्त गर्भगृह एवं सोपानयुक्त मण्डप है। मंदिर का विमान वर्गाकार एवं चारतल्ला है। प्रथम तल्ले में विष्णु की अनेक मुद्राओं में मूर्तियां बनी है। साथ ही साथ मंदिर की भीतरी दीवारों पर युद्ध, राज्याभिषेक, अश्वमेघ, उत्तराधिकार चयन, नगर–जीवन, आदि के दृश्यों को भी अत्यन्त सजीवता एवं कलात्मकता के साथ उत्कीर्ण किया गया है। ये विविध चित्र रिलीफ स्थापत्य के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

1.13 नन्दिवर्मन शैली

इस शैली के अन्तर्गत अपेक्षाकृत छोटे मंदिरों का निर्माण हुआ। इसके उदाहरण काच्ची के मुक्तेश्वर एवं मातंगेश्वर मंदिर, ओरगड्म का वड़मल्लिश्वर मंदिर, तिरूवैन का वीरट्टानेश्वर मंदिर, गडिडमल्ल का परभुरामेश्वर मंदिर आदि हैं। काच्ची के मंदिर इस शैली के प्राचीनतम नमूने है। इनमें प्रवेश द्वार पर स्तम्भ

युक्त मण्डप बने हैं। शिखर वृताकार अर्थात वेसर शैली का है। विमान तथा मण्डप एक ऊँची चौकी पर स्थित हैं। छत चिपटी है। शैली की दृष्टि से ये धर्मराज रथ की अनुकृति प्रतीत होती है। इसके बाद के मंदिर चोल–शैली से प्रभावित एवं उसके निकट है। इस प्रकार पल्लव राजाओं का शासन काल कला एवं स्थापत्य की उन्नति के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध रहा। पल्लव कला का प्रभाव कालान्तर में चोल तथा पाण्डय कला पर पड़ा तथा यह दक्षिण पूर्व एशिया में भी पहुँची।

1.14 सारांश

पल्लव शासकों ने (550 से 980 ई.) तक शासन किया। इस शासन के अन्तर्गत उन्होंने प्रशासनिक, धार्मिक, राजनैतिक, तथा साहित्यक क्षेत्रों में अपूर्व योगदान प्रदान किया। उनकी शासन व्यवस्था का स्वरूप मौर्यों तथा गुप्तों की शासन पद्धति से मेल खाता प्रतीत होता है। उन्होंने शासन संचालन के लिए उसको कई भागों में बांट रखा था। धर्म के क्षेत्र में हम देखते है कि पल्लव काल में जैन व बौद्ध धर्म के स्थान पर शैव धर्म वैष्णव धर्म का ज्यादा विकास हुआ तथा इसी के अनुसार मंदिरों का निर्माण भी हुआ। स्थापत्य कला के क्षेत्र में नयी–नयी कला शैलियों का विकास हुआ। जिसका प्रभाव चोल कला में अधिक दिखाई देता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र0 1– पल्लव शासकों की कलात्मक रूचि का वर्णन कीजिए ?

प्र0 2– पल्लव कालीन धार्मिक आन्दोलनों की व्याख्या कीजिए ?

प्र0 3– पल्लव कालीन शासन प्रबन्ध की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए ?

प्र0 4– पल्लव कालीन विभिन्न शैलियों का वर्णन कीजिए ?

प्र0 5– पल्लव कालीन स्थापत्य कला का मूल्यांकन कीजिए ?

1.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नीलकंठ, शास्त्री, दक्षिण भारत का इतिहास
2. के.सी. श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति
3. बी.बी. सिंन्हा, भारत का इतिहास
4. बी.एन. लूनिया, प्राचीन भारतीय संस्कृति

इकाई दोः चोलकालीन संस्कृति

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 चोलकालीन सामाजिक दशा

2.4 चोलकालीन आर्थिक व्यवस्था

2.5 चोल प्रशासन

2.5:1 सम्राट

2.5:2 अधिकारी तंत्र

2.6 स्थानीय प्रशासन

2.6:1 ग्राम शासन

2.6:2 उर

2.6:3 सभा या महासभा

2.6:4 अन्य समुदाय तथा निगम

2.7 न्याय व्यवस्था

2.8 भूमि तथा राजस्व

2.9 अन्य कर

2.10 सैन्य संगठन

2.11 धार्मिक दशा

2.12 साहित्य

2.13 कला और स्थापत्य कला

2.14 शिल्पकला

2.15 चित्रकला

2.16 सारांश

2.17 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.18 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.1 प्रस्तावना

दक्षिण भारत के राज्यों में नवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक चोल राज्य विशेष महत्वशाली रहा है। चोल राज्य का प्रधान केन्द्र वर्तमान तंजाऊर और तिरूच्चिनापल्ली के जिले थे और यहीं क्षेत्र चोल मण्डलम या चोल देश नाम से विख्यात हुआ। चोल नरेश महान कला प्रेमी और निर्माता थे। उन्होंने अनेक बड़े भवन, राजप्रसाद, एवं भव्य मंदिर निर्मित किये सुन्दर नगर और सैनिक बस्तियाँ योजना पूर्वक बनायी। नदियों पर बाँध, कत्रिम झीलें निमार्ण की, सिंचाई के लिए छोटी–बड़ी नहरें निकाली तथा विस्तृत सड़कों और राजमार्ग बनवाये। चोल नरेश अपने विशाल भव्य भवनों, मंदिरों के निर्माण तथा धातु एवं पाषाण की बनी हुई देवी–देवताओं की मूर्तियों के लिए विशेष रूप से विख्यात हैं। परन्तु चोल संस्कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष उसकी शासन व्यवस्था है। चोल सम्राटों ने एक विशिष्ट शासन व्यवस्था का निर्माण किया जिसमें प्रबल केन्द्रीय नियंत्रण के साथ ही बहुत अधिक मात्रा में स्थानीय स्वयत्तता (सवबंस ंनजवदवउल) भी थी।

2.3 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि–

- चोलकालीन सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था।
- चोलों का शासन–प्रबन्ध एवं स्थानीय–स्वशासन।
- चोलों के राजस्व एवं न्याय व्यवस्था।
- चोल कालीन धार्मिक दशा।
- चोलकाल में शिक्षा और साहित्य की प्रगति।
- चोलकालीन कला और स्थापत्यकला।

2.3 चोलकालीन सामाजिक दशा

चोलकाल में सामाजिक जीवन सुखी, सम्पन्न एवं संतोषजनक था। लोगों का आपस में प्रेम था। तथा सभी जातियाँ एक दूसरे के साथ सहयोगपूर्ण रहती थी। मद्यपि समाज वर्ण–व्यवस्था पर आधारित था। पर अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाहों का प्रचलन था, परिणामस्वरूप समाज में अनेक उपजातियों का प्रादुर्भाव हो चुका था। समाज में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। पर्दा–प्रथा का प्रचलन नहीं था। स्त्रियों के सामाजिक जीवन तथा कार्यों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया था। उन्हें सम्पत्ति पर भी अधिकार था। वे अपनी इच्छानुसार सम्पत्ति बेच भी सकती थी। सती प्रथा का प्रचलन कम था, पर परान्तक द्वितीय की रानी वन्तन महादेवी अपने पति की मृत्यु पर चिता में जलकर भष्म हो गयी थी। समाज में नर्तकियों/द्वेवदासियों भी रहती थी। वे नृत्यगान में निपुण होती थी। अपने रूप एवं लावण्य से वे नवयुवकों को पथभ्रष्ट भी करती थी। अधिकांश देवदासियाँ मंदिर में रहती थी, और विशेष अवसरों पर नृत्य द्वारा देवताओं को प्रसन्न करती थी। कुछ देवदासियाँ विवाह कर कुशल गृहिणी बन जाती थी।

2.4 चोलकालीन आर्थिक व्यवस्था

चोलकाल में कृषि और उद्योग धंधे जीविका के मुख्य साधन थे अधिकांश लोग ग्रामों में बसे हुए थे और कृषि कार्यों में लगे हुए थे। कृषक भूमि का स्वामी होता था और भूमि का स्वामित्व समाज में सम्मान का काम माना जाता था। भूमि पर व्यक्तियों और समुदायों का अधिकार रहता था। कृषि की उन्नति के लिए राज्य सचेष्ट रहता था। कावेरी नदी से अनेक नहरें निकाली गई थी। करिकाल चोल के समय में कावेरी नदी पर बाँध बंधवाया गया था। सिंचाई के लिए कुँए, तालाब और जलाश खुदवाए गये थे। उत्तरमेररूर में वैरूमेघतड़ाग का निर्माण किया गया था। परान्तक ने वीरचोलन नामक तालाब खुदवाया था। ग्राम सभाएँ

सिंचाई का प्रबन्ध भी करती थी। राज्य की ओर से समय–समय पर भूमि का माप तथा वर्गीकरण कराया जाता था। चोल नरेश दुर्भिक्ष के रोकथाम के लिए भी सचेष्ट रहते थे, फसल नष्ट होने पर भू–राजस्व की वसूली नहीं होती थी। कुछ लोग पशुपालन में लगे हुए थे। पशुपालन का व्यवसाय करने वाले मंचादि कहलाते थे। मंचादियों का एक व्यवसायिक वर्ग बन गया था।

चोल शासक अपने साम्राज्य में राजमार्गों का प्रयोग कराते थे, जिससे आंतरिक व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन मिला। पेरूबलि या राजमार्गों द्वारा आन्द्र, पश्चिमी चालुक्य और कोंगू देश एक दूसरे से मिलते थे। व्यापारियों की अनेक श्रेणियाँ रहती थी जो व्यापार का निरीक्षण करती थी। नाना देश तिसैयारित्तु अयन्नुरूवर नामक एक विशाल व्यापारिक श्रेणी का उल्लेख मिलता है। इस व्यापारिक श्रेणी के सदस्य समुद्र पार के देशों से व्यापार करते थे। चीन, मलाया, पूर्वीद्वीप समूह तथा फारस की खाड़ी इत्यादि देशों से दक्षिण भारत के निवासियों का व्यापारिक सम्बन्ध था। 1077 ई. में कुलोतुंग ने 72 सौदागरों का एक दूत मण्डल चीन में भेजा। महाबलिपुरम, कावेरीपट्टनम, शालपुर, कोरकोय तथा क्वीलान बड़े–बड़े बंदरगाहों में परिवर्तित हो गये और चोलों की नौसैनिक शक्ति काफी मजबूत हो गयी।

2.5 चोल प्रशासन

चोल प्रशासन संगठित, दृढ़ एवं अत्यन्त कार्यकुशल था। चोल प्रशासन के अध्ययन के लिए हमें मुख्यतः लेखों पर निर्भर रहना पड़ता है। साथ ही साथ इस काल के साहित्य तथा विदेशी यात्रियों के विचरण से भी यथोचित जानकारी मिलती है चोल प्रशासन में अधोलिखित विभिन्न अंग थे।

2.5:1 सम्राट

चोल साम्राज्य अपने उत्कर्ष काल में सम्पूर्ण दक्षिण भारत में फैला हुआ था। अन्य युगों की भांति इस समय भी शासन का स्वरूप राजतंत्रात्मक ही था, किन्तु राजा के अधिकारों, आचरण एवं उनकी शान–शौकत में पहले से अधिक वृद्धि हो गयी। उसका अभिषेक एक भव्य राजप्रसाद में होता था और यह एक प्रभावशाली उत्सव हुआ करता था। शासक 'चक्रवर्तिगल', त्रिलोक सम्राट जैसे उच्च सम्मानपरक उपाधियां ग्रहण करते थे। मंदिरों में सम्राट की प्रतिमा भी स्थापित की जाती थी तथा मृत्यु के बाद दैव रूप में उनकी पूजा होती थी। तंजोर के मंदिर में सुन्दर चोल (परान्तक द्वितीय) तथा राजेन्द्र चोल की प्रतिमायें स्थापित की गयी थी। सम्राट का आदेश अक्सर मौखिक होता था जो उसके पदाधिकारियों द्वारा विभिन्न प्रान्तों में सावधानीपूर्वक लिखकर पहुँचा दिये जाते थे। सम्राट प्रायः अपने जीवनकाल में ही युवराज का चुनाव कर लेता था जो उसके बाद उसका उत्तराधिकारी बनाता था। सम्राट के कार्यों में सहायता देने के लिए परिचारकों तथा शासन के प्रमुख विभागों का प्रतिनिधित्व करने वाले मंत्रियों का एक वर्ग होता था। चोल सम्राट निरंकुश नहीं होता था तथा धर्म तथा आचार के विरूद्ध कार्य नहीं करता था। वह कानून का निर्माता न होकर सामाजिक नियमों एवं व्यवस्था का प्रतिपालक होता था। सार्वजनिक हित के कार्यों, जैसे–मंदिर निर्माण, कृषि योग्य भूमि तथा सिंचाई के साधनों की व्यवस्था, विद्यालयों तथा औषधालयों की स्थापना आदि में उसकी विशेष रूचि होती थी।

2.5:2 अधिकारी तंत्र

चोल प्रशासन एक सुविस्तृत अधिकारी तंत्र था जिसमें विभिन्न दर्जे के पदाधिकारी होते थे। केन्द्रीय अधिकारियों की कई श्रेणियां होती थी। सबसे ऊपर की श्रेणी को 'पेरून्दनम' तथा नीचे की श्रेणी को 'शिरूदनम्' कहा जाता था। लेखों में कुछ उच्चाधिकारियों के 'उछन्कूट्टम' कहा गया है जिसका अर्थ है–सदा राजा के पास रहने वाला अधिकारी। नीलकंठ शास्त्री के अनुसार ये राजा के निजी सहायक थे जो राजा तथा नियमित कर्मचारी तंत्र के बीच सम्पर्क का कार्य करते थे। उनका कार्य सम्बन्धित विभागों के

कर्मचारियों को राज्य की नीति बताना तथा राजा को प्रान्तों की आवश्कता से अवगत कराना था। राज्य के प्रबन्ध में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। पदाधिकारियों को नकद वेतन के स्थान पर भूमिखण्ड दिये जाते थे। चोल लेखों से प्राधिकारियों की कार्यप्रणाली पर प्रकाश पड़ता है। और पता चलता है कि सम्राट जब किसी विषय पर निर्णय देता था तो उससे सम्बन्धित सभी अधिकारी उपस्थित रहते थे। सर्वप्रथम ''औले'' नामक पदाधिकारी राजा के आदेश का कच्चा मसौदा तैयार करता था। इसकी जांच ''औलेनायगम्'' नामक वरिष्ठ पदाधिकारी द्वारा तैयार की जाती थी। तत्पश्चात् इन आदेशों को अस्थायी पंजियों में लिपिबद्ध कर संबन्धित विभाग तक पहुँचा दिया जाता था।

2.6 स्थानीय प्रशासन

प्रशासन की सुविधा के लिए विशाल चोल साम्राज्य छः प्रान्तों में विभाजित था। प्रान्त को ''मण्डलम'' कहा जाता था जिसका शासन एक वायसराय के हाथ में होता था। इस पद पर प्रायः राजकुमारों की ही नियुक्ति की जाती थी, किन्तु कभी–कभी इस पद पर वरिष्ठ पदाधिकारियों अथवा पराजित किये गए राजाओं की भी नियुक्ति की जाती थी। ''मण्डलम्'' के शासकों के पास अपनी सेना तथा न्यायालय होते थे। कालांतर में यह पद अनुवांशिक हो गया। प्रत्येक 'मण्डलम्' में केन्द्रीय सरकार का एक प्रतिनिधि रहता था जो मण्डलीय शासक के गतिविधियों पर दृष्टि रखता था। 'मण्डलम्' का विभाजन कई 'कोट्टम' अथवा 'वलनाडु' में हुआ था जो आजकल की कमिश्नरियों के बराबर होते थे। प्रत्येक 'कोट्टम' में कई जिले होते थे। जिले की संज्ञा 'नाडु' थी। 'नाडु' की सभी को 'नाट्टार' कहा जाता था। जिसमें सभी गांव तथा नगरों के प्रतिनिधि होते थे। इसका मुख्या कार्य भू–राजस्व का प्रबन्ध करना था। इसे किसी भू–राजस्व में छूट दिलाने का भी अधिकार था। 'नाडु' अपने नाम से दान देते तथा 'अक्षयनिधियां' प्राप्त करते थे। 'नाट्टार' को भूमि का वर्गीकरण करने तथा तदनुसार राजस्व निर्धारित करने का भी काम सौंपा गया था। इसे किसी भू–राजस्व में छूट दिलाने का भी अधिकार था। कभी–कभी यह मंदिर का प्रबन्ध भी करती थी।

कुलोतुंग के शासनकाल के दसवें वर्ष पुरमलेनाडु के नाट्टार ने तीर्थमलै मंदिर (सेलम जिला) का प्रबन्ध देखने के लिए पुजारियों की नियुक्ति की थी। करिकाल कालीन जंबै लेख से पता चलता है कि वाणगप्पाडि के नाडु को वालैयूरनक्कर योगवाणर के मंदिर का प्रबन्ध सौंपा गया था। कुछ स्थानों में हम नाट्टार को अन्य संघटनों तथा राजकीय पदाधिकारियों के साथ मिलकर न्याय प्रशासन एवं अन्य कार्यों में सहयोग करते हुए पाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शांति व्यवस्था कायम करने अथवा भूमि का प्रबन्ध करने के उद्देश्य से विभिन्न नाडुओं को मिलाकर संगठन बनाए जाते थे। कुलोतुंग तृतीय के समय में तिरूवारंगलुम मंदिर के एक लेख में सम्पूर्ण नाडु के एक संगठन का उल्लेख मिलता है। राजराज प्रथम के एक लेख में 12 नाडुओं की सभा की चर्चा है। नाडु के खर्च के लिए 'नाडुविनियोगम्' नामक कर लिया जाता था, नाडु के अन्तर्गत अनेक ग्राम संघ थे जिन्हें 'कुर्रम' कहा जाता था, व्यापारिक नगरों में 'नगरम्' नामक व्यापारियों की एक सभा होती थी। व्यापारियों की संस्थाओं (श्रेणियों) को सरकार की ओर से मान्यता प्राप्त थी। उनके पास अपनी सेना भी थी जिससे वे अपनी सुरक्षा भी करते थे। बड़े नगरों में अलग कुर्रम गठित किये जाते थे। जिन्हें 'तनियूर' अथवा 'तंकुर्रम' कहा जाता था। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम सभा होती थी।

2.6:1 ग्राम–शासन

चोल शासन की सबसे उल्लेखनीय विशेषता वह असाधारण शक्ति तथा क्षमता है जो स्वायत्त शासी ग्रामीण संस्थाओं के संचालन में परिलक्षित होती हैं। वस्तुतः स्वायत्त शासन पूर्णतया ग्रामों में ही क्रियान्वित किया गया। उत्तरमेरूर से प्राप्त 919 तथा 929 ई. के दो लेखों के आधार पर हम ग्राम सभा की कार्यकारिणी समिति की कार्य–प्रणाली का विस्तृत विवरण प्राप्त करते है। प्रत्येक ग्राम में अपनी सभा होती थी जो प्रायः

केन्द्रीय नियंत्रण से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से ग्राम शासन का संचालन करती थी। उस उद्‌देश्य से उसे व्यापक अधिकार प्राप्त थे।

2.6:2 उर

नीलकंठ शास्त्री के अनुसार इससे तात्पर्य 'पुर' से है जो गांव और नगर दोनों के लिए प्रयुक्त होता था। कुछ लेखों में 'ऊराय–इशैन्दु–उरोम' अर्थात ग्रामवासी उर के रूप में मिले, उल्लेखित मिलता है। इससे सूचित होता है कि उर की बैठकों में सभी ग्रामवासी सम्मिलित होते थे और यह सामान्य मनुष्यों की संख्या थी। उर की कार्य–समिति को आलुंगणम (शासक–गण) अथवा 'गणम' कहा जाता था। समिति के सदस्यों की संख्या अथवा उनके चुनाव की विधि के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती। ऐसा लगता है कि कुछ सभाओं के लिए एक ही कार्य समिति होती थी जो सभी विषयों की देख–रेख करने के लिए उत्तरदायी थे क्योंकि कुछ कार्य समितियों में हम विद्वान ब्राह्मणों को भी सदस्य के रूप में देखते हैं। कहीं–कहीं एक ही ग्राम में दो उर संगठन भी कार्य करते थे। 1227 ई. में शात्तमंगलम में दो उर थे–पहला हिन्दू देवदान भाग के निवासियों का तथा दूसरा जैन पल्लिच्चन्देम लोगों का। दोनों ने मिलकर कुछ भूमि एक तालाब तथा पुष्पवाटिका के लिए दान में दिया तथा उसे करमुक्त घोषित कर दिया। 1245 ई. में 'उत्तरकुर्रम' तथा अमणकुंडि नामक ग्रामों में दो–दो उर कार्य कर रहे थे।

2.6:3 सभा या महासभा

अग्रहार ग्रामों में मुख्यतः विद्वान ब्राह्मण निवास करते थे। इनमें शासन के लिए 'महाजन' नामक संस्था थी। जिसमें ब्राह्मणों के प्रतिनिधि शामिल थे। तोंडमण्डलम् तथा चोलमण्डलम् के लेखों से अग्रहार के विषय में सूचना मिलती है। इनसे स्पष्ट है कि कांची तथा मद्रास क्षेत्रों में ऐसी कई सभायें थी। सभा मुख्यतः अपनी समितियों के माध्यम से कार्य करती थी। इन्हें 'वारियम' कहा गया है। इस शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है। तमिल में इसका अर्थ आय तथा कन्नड़ में 'कड़ी माँग' है। नीलकंठ शास्त्री इसे संस्कृत 'वार्य' का तमिलरूप मानते हैं जिसका अर्थ है चुना हुआ। एक लेख में सभा की कार्यसमिति को 'वरणम्' कहा गया है। सभा द्वारा किसी कार्य विशेष के लिए नियुक्त व्यक्तियों को 'वारियर' कहा जाता था। स्पष्ट है कि 'वारियम' को कोई न कोई विशेष कार्य सौंपा जाता था। कहीं मंदिर का प्रबन्ध करने तथा कहीं देवदान भूमि का प्रमाणिक विवरण देने और उसकी सीमा लिखने का कार्य 'वारियम' को दिया गया है। ज्ञात होता है कि जब शुचीन्द्रम के मूलपरूडै (एक धार्मिक संगठन) ने मंदिर का प्रबन्ध छोड़ दिया तो सभा ने इस कार्य के लिए दो वारियों को नियुक्त किया। वारियम के सदस्यों को कोई पारिश्रमिक अथवा पुरूस्कार नहीं दिया जाता था।

तोंडमण्डलम तथा चोलमण्डलम् के लेखों से अग्रहार के विषय में सूचना मिलती है। इससे स्पष्ट है कि कांची तथ मद्रास क्षेत्रों में ऐसी कई सभायें थी। कभी–कभी ये दोनों ही संस्थाएं एक ही ग्राम में कार्य करती थी जिन स्थानों में पहले से कोई बस्ती होती थी तथा वे बाद में ब्राह्मणों को दान में दे दिये जाते थे वहां 'उर' तथा 'सभा' साथ–साथ कार्य करती थी। ऐसे गांवों के मूल निवासी 'उर' में मिलते थे जबकि नावागंतुक ब्राह्मण अपनी सभा गठित कर लेते थे। ग्राम सभा के सदस्यों की संख्या भिन्न–भिन्न स्थानों पर अलग–अलग होती थी। कहीं–कहीं सभी व्यस्क पुरूष इसके सदस्य होते थे जबकि कुछ स्थानों में यह एक निवार्चित संस्था थी, ऐसी स्थिति में इसके सदस्यों का चुनाव ग्राम वासियों द्वारा किया जाता था तथा सदस्यों के लिए कुछ निर्धारित योग्यताएं भी होती थी। ग्राम सभा की बैठकें प्रायः मंदिरों एवं मण्डपों में होती थी, बैठक के लिए निर्धारित स्थान को 'ब्रह्मस्थान' कहा जाता था। कभी–कभी गांव के बाहर वृक्षों के नीचे अथवा किसी तालाब के तट पर भी ग्रामसभा की बैठकें होती थी। इस बैठक के लिए लोगों को ढोल पीटकर आहूत किया जाता था। प्रत्येक सभा अथवा महासभा के अन्तर्गत कई सीमितियां होती थी जिन्हें

'वारियम' कहा जाता था। ये समितियां अलग–अलग कहा जाता था। ये समितियां अलम–अलग विभागों का काम देखती थी।

उत्तरमेरूर से प्राप्त परान्तक प्रथमकालीन दो अभिलेखों से समिति के सदस्यों के निर्वाचन के सम्बन्ध में भी कुछ सूचनाएं दी गई हैं। तदानुसार समिति के सदस्यों को चुनने के लिए तीस वार्डों (कुटुम्बस) में बांटा जाता था। ग्राम के लोग जो 35 से 70 वर्ष की आयु के होते थे जिनके पास 1/4 वेलि अर्थात डेढ़ एकड़ भूमि होती थी जो एक वेद तथा उसके भाष्य के ज्ञाता थे और जिनके पास निजी आवास होता था वे ही समिति के सदस्य निर्वाचित हो सकते थे। अपराधी चरित्रहीन समिति की आय व्यय में घोटाला करने वाला तथा शूद्रों के सम्पर्क से दूषित हुआ व्यक्ति समिति का सदस्य नहीं बन सकता था। प्रत्येक वार्ड से एक व्यक्ति का चुनाव लॉट्री निकालकर (कुडुवौले पद्धति) किया जाता था। प्रत्येक उम्मीदवार का नाम अलग–अलग पत्रों पर लिखकर एक बर्तन में रखा जाता था और उसे हिलाकर मिला दिया जाता था। तत्पश्चात् किसी अबोध बच्चे से एक पत्र उठाने को कहा जाता था, वह जिस व्यक्ति नाम पर पत्र उठा लेता था वह समिति का सदस्य चयनित हो जाता था। इस प्रकार कुल 30 व्यक्ति चुने जाते थे जिन्हें विभिन्न समितियों में रखा जाता था इनमें से 12 सदस्य जो वयोवृद्ध विद्वान एवं उद्यान तथा तटाक् समितियों में कार्य कर चुके होते थे। वार्षिक समिति में 12 उद्यान समिति में तथा 6 तटाक् समिति में रखे जाते थे। समिति के सदस्य 360 दिनों तक अपने पद पर बने रहते थे, शेष 5 दिनों में अपना हिसाब–किताब प्रस्तुत करते थे तत्पश्चात् वे अवकाश ग्रहण करते थे। यदि कोई सदस्य किसी अपराध का दोषी होता था तो उसे तत्काल पद्च्यूत कर दिया जाता था।

अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् समिति नियुक्त करने के लिए बारह विभागों के न्याय निरीक्षण की समिति के सदस्य की मध्यस्थ की सहायता से बैठक बुलाकर चुनाव करते थे। एक वर्ष बाद पुनः मतदान होता था। ऐसी व्यवस्था थी कि केवल वह व्यक्ति जो पिछले तीन वर्षों से किसी समिति का सदस्य नहीं रहा है, ही नया सदस्य चुना जाय। इस प्रकार प्रत्येक ग्रामवासी को समिति का सदस्य बनने का अवसर मिल जाता था। इसके अलावा एक सामान्य समिति होती थी। जिसका कार्य सभी समितियों के कार्यों की देख–रेख करना होता था। इस समिति का एक सदस्य पहले किसी समिति के सदस्य जो पर्याप्त अनुभवी होता था, उसे ही बनाया जाता था।

ग्रामसभा को राज्य के प्रायः सभी अधिकार मिले हुये थे। गांव की न्याय व्यवस्था से लेकर वित्तीय कार्यों जैसे बैंक, धन, भूमि तथा धान्य के रूप में जमा करती तथा फिर ब्याज पर उन्हें लौटा देती थी। गांव की सभी अक्षयनिधियां ग्रामसभा के अधीन होती थी। सभा की ग्रामवासियों पर कर लगाने, वसूलने तथा उनसे बेगार लेने का भी अधिकार था। शिक्षण संस्थानों, मंदिरों व दानगृहों का प्रबन्ध, पीने के पानी, उपवनों, सिंचाई तथा आवागमन के साधनों की व्यवस्था, ग्रामवासियों के स्वास्थ्य, जीवन एवं सम्पत्ति की रक्षा करना तथा अकाल एवं संकट के समय ग्रामवासियों की उदारपूर्वक मदद करना इसके मुख्य कार्य थे।

इस प्रकार ग्रामसभा के अधिकार विस्तृत एवं व्यापक थे। केन्द्रीय सरकार को वार्षिक कर देना उनकी प्रमुख जिम्मेदारी थी। ग्राम सभा में 'मध्यस्थ' नामक वेतनभोगी कर्मचारी होते थे जिनके माध्यम से उसके निर्णय कार्यान्वित किये जाते थे। उन्हें प्रतिदिन चार नाली धान, प्रतिवर्ष सात कलंजु सोना तथा एक जोड़ा वस्त्र दिया जाता था। जबतक ग्रामसभा अपने कर्तव्यों का पालन करती रहती तथा राज्य को नियमित कर पहुंचाती रहती, राज्य उसके शासन में हस्तक्षेप नहीं करता था। ऐसे उदाहरण मिलते हैं। जब दो सभाओं में परस्पर विवाद की स्थिति में उन्होंने ही मध्यस्थता के लिए तीसरी सभा को मामला सौंपा तथा राज्य को सूचना नहीं दी, इससे स्पष्ट है कि ग्राम सभायें अपना कार्य करने के लिए स्वतंत्र होती थी, किन्तु ऐसे भी उदाहरण मिले हैं जिसमें राज्य का हस्तक्षेप रहा हो उदाहरण के लिए परवर्ती चोल युग में जब सभा के

सदस्यों की आपसी गुटबन्दी तथा अर्न्तकलह से अव्यवस्था उत्पन्न हुई तो राजा ने अपने अधिकारियों की सूचना पर सभा में सुधार के लिए आदेश निर्गत किये।

ग्रामसभा के आय–व्यय का निरीक्षण समय–समय पर केन्द्रीय पदाधिकारी किया करते थे। इन कार्यों में सहायता देने वाले कर्मचारियों का वर्ग 'आयगार' कहलाता था। यदि राज्य कोई ऐसा नियम बनाता जो किसी ग्राम की स्थिति को प्रभावित करता तो वह नियम ग्राम सभा की स्वीकृति से ही होता था। ग्राम सामान्य कार्यों मे नियुक्त कर्मचारियों के अतिरिक्त विशेष क्षेत्रों में शांति व्यवस्था कायम करने के लिए सरदरों या शक्तिशाली सामंत नियुक्त किये जाते थे तथा इन्हें 'पडिकावलकूलि' नामक अलग कर दिया जाता था। इस प्रकार समस्त साम्राज्य में ग्राम संस्थाओं का विस्तार था।

2.6.4 अन्य समुदाय तथा निगम

ग्राम सभा के अतिरिक्त गांव में कई समुदाय और निगम होते थे जो सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक प्रकृति के थे। इनका अधिकार क्षेत्र किसी विशेष कार्य तक ही सीमित था। उदाहरण के लिए किसी मंदिर का प्रबन्ध देखने या संचालन हेतु समुदाय गठित किये जाते थे, इन समुदायों के सदस्य सभा के भी सदस्य थे। धार्मिक समुदायों की संख्या अधिक थी। 'मूलपरूडैयार' नामक धार्मिक संगठन का उल्लेख मिलता है जिसका मुख्य कार्य मंदिर प्रबन्ध करना था। प्रत्येक गांव शेरियों (पुरवा या पल्ली), सड़कों और खण्डों में विभाजित किया गया था जो विभिन्न कार्य करते थे जैसे मंदिर प्रबन्ध कार्य आदि।

नगरों में व्यापारियों के विभिन्न संगठन थे। 'बाणांज' शब्द का उल्लेख अनेक लेखों में मिलता है जो व्यापारियों के एक व्यापक संगठन का सूचक है। 'नागरम्' भी व्यापारिक क्षेत्र को कहा जाता था जिसका मुख्य कार्य व्यापार–व्यवसाय प्रोत्साहन था, तमिल देश में 'बाणन्ज' व्यापारियों की बस्तियों को 'वीर पत्तन' कहा जाता था। इस प्रकार यह समुदाय आपसी सद्भाव पर आधारित थे। धर्म तथा प्राचीन परम्परायें इन्हें जोड़ने का कार्य करती थी। वस्तुतः चोल काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई स्थानीय प्रशासन थी जो गांव, नगर तथा मण्डल द्वारा संचालित थी। इन्हें अपने कार्यों में इतना अधिक स्वायत्ता प्राप्त थी कि उच्चस्तरीय प्रशासनिक व राजनैतिक परिवर्तनों से अप्रभावित थी। ग्राम राजनैतिक व आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर थे।

2.7 न्याय व्यवस्था

चोल साम्राज्य में न्याय के लिए नियमित न्यायालय का गठन किया था। लेखों में 'धर्मासन' तथा 'धर्मासन–भट्ट का उल्लेख मिलता है। धर्मासन से तात्पर्य सम्राट के न्यायालय से है। न्यायालय के पंडितों को 'धर्मभट्ट' कहा गया है। जिनकी परामर्श से विवादों का निर्णय लिया जाता था। अपराधों के सामान्यतः जुर्माने अदा किये जाते थे। नरवध तथा हत्या के लिए व्यवस्था थी कि अपराधी को मृत्युदण्ड के साथ ही साथ उसकी सम्पत्ति भी जब्त कर ली जाती थी। तेरहवी शताब्दी के चीनी लेखक चाऊ–जू–कुआ ने चोलदण्ड व्यवस्था का वर्णन करते हुए बताया है कि अग्नि तथा जल द्वारा दिव्य परीक्षाओं का भी विधान था। पशुओं की चोरी के अपराध में व्यक्ति की सम्पत्ति जब्त कर मंदिर को दिये जाने के उदाहरण मिलते हैं। इस प्रकार चोल न्याय–प्रशासन सुसंगठित एवं निष्पक्ष था।

2.8 भूमि तथा राजस्व

चोल राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमिकर था। भूमिकर ग्राम सभायें एकत्र करके सरकारी खजाने में जमा करती थी। इसके लिए शासक भूमि की माप कराया करते थे तथा उसकी उत्पादकतानुसार पर कर निर्धारण करते थे। यह आधे से लेकर चौथाई भाग तक होता था। राजराज प्रथम तथा कुलोत्तुंग प्रथम के समय में क्रमशः एक और दो बार भूमि की माप कराई गयी थी। प्रत्येक ग्राम तथा नगर में रहने के स्थान,

मंदिर, तालाब, कारीगर, आवास, श्मशान आदि सभी प्रकार के करों से मुक्त थे। कृषकों को यह सुविधा थी कि वे भूमिकर नकद अथवा द्रव्य के रूप में चुकायें, चोलों के स्वर्ण सिक्के 'कलंजु' या 'पोन्' कहे जाते थे। भूमि की बारह से अधिक किस्मों का उल्लेख मिलता है। राजस्व विभाग की पंजिका को 'वरित्पोत्तगककणक्क' कहा जाता था जिसमें सभी प्रकार के भूमि के ब्योरे रखे जाते थे। इसके प्रमुख अधिकारी 'वरित्पोत्तागकक' कहलाते थे जो अपने–अपने अधिकार क्षेत्र के आय–व्यय का हिसाब रखते थे। भू–स्वामी के भूमिकर अदा न करने पर कुछ समय बाद उसकी भूमि दूसरे के हाथ बेच दी जाती थी। चोल इतिहास के परवर्ती युग में केन्द्रीय शक्ति के निर्बल होने पर स्थानीय पदाधिकारी के मनमाने ढंग से प्रजा का उत्पीड़न होने लगे थे। जिससे जनता के विद्रोह के उदाहरण भी मिलते हैं। राजराज तृतीय तथा कुलोत्तुंग प्रथम के काल में इस प्रकार के विद्रोह किये गये।

2.9 अन्य कर

भूमिकर के अतिरिक्त व्यापारिक वस्तुओं, विभिन्न व्यवसायों, खानों, वनों, उत्सवों आदि पर भी कर लगते थे। नगरों में बेची जाने वाली वस्तुओं पर कर वसूल करने का काम 'नगरम्' द्वारा किया जाता था। तट्टोपाट्टम (स्वर्णकारों), नमक (उप्पायम्), दुकानों (इंगाडिपाट्टम) आदि मुख्य करों का उल्लेख मिलता है। राज्य की आय का व्यय अधिकारीतंत्र, निर्माण कार्यों, दान, यज्ञ महोत्सव आदि पर होता था।

2.10 सैन्य संगठन

चोल राजाओं ने एक विशाल सेना का निर्माण किया था। उसके पास अश्व, गज एवं पैदल सैनिकों के साथ ही साथ एक अत्यन्त शक्तिशाली नौसेना भी थी, इसी नौसेना की सहायता से उन्होंने श्रीविजय, सिंहल, मालदीव आदि द्वीपों की विजय की थी। चोल शासक स्वयं कुशल योद्धा थे और वे अधिकतर व्यक्तिगत रूप से युद्धों भाग लिया करते थे, सेना के कई दल थे लेखों में बडपेर्र (पद्धति सैनिक), बिल्लिगल (धर्नुधारी सैनिक) आदि का उल्लेख मितला है। कुछ सैनिक सम्राट की सेवा में निरंतर उपस्थित रहते थे तथा उसकी रक्षा के लिए अपने प्राण तक न्योछावर कर सकते थे। ऐसे सैनिकों को 'वैलेक्कारर' कहा गया है। सैनिक सेवाओं के बदले में राजस्व का एक भाग अथवा भूमि देने की प्रथा थी। चोल सैनिक अत्यधिक अनुशासित एवं प्रशिक्षित होते थे। साथ ही साथ क्रूर तथा निर्दयी भी होते थे। विजय पाने के बाद शत्रुओं की हत्या कर देते थे। पाण्ड्य तथा पश्चिमी चालुक्य राज्यों में उनका व्यवहार इसी प्रकार रहा।

इस प्रकार चोल शासन व्यवस्था के वर्णन से स्पष्ट है कि प्राचीन युग की यह उत्कृष्ट शासन प्रणाली भी जिसमें केन्द्रीय नियंत्रण तथा स्थानीय स्वायत्ता साथ–साथ वर्तमान रही चोलों की शासन व्यवस्था का मूल्यांकन करते हुये इतिहासकार नीलकण्ठ शास्त्री लिखते हैं कि 'एक योग्य नौकरशाही तथा सक्रिय स्थानीय संस्थाओं के बीच, जो विविध प्रकार से नागरिकता की भावना का पोषण करती थी, शासन निपुणता तथा शुद्धता का एक उच्च स्तर प्राप्त कर लिया गया था, जो सम्भवतः किसी हिन्दू राज्य द्वारा प्राप्त सर्वोच्च स्तर था।'

2.11 धार्मिक दशा

चोल राजाओं के समय में तमिल प्रदेश में शैव तथा वैष्णव धर्मों का बोलबाला रहा। शैव नायनारों तथा वैष्णव आचार्यों ने इन धर्मों के प्रचार–प्रसार के लिए व्यापक आंदोलन चलाया। इन में भी शैव धर्म अधिक लोकप्रिय था। शिव की उपासना के लिए भक्तिगीत लिखे गये थे। जिनका संकलनकर्ता नम्बि आण्डार नम्बि को माना जाता है जो राजराज तथा राजेन्द्र चोल के समय में हुए चोलवंश के अधिकांश शासक उत्साही शैव थे जिन्होंने भगवान शिव के अनेक मंदिरों का निर्माण करावाया था। प्रसिद्ध चोल सम्राट ने 'शिवपादशेखर' नाम से शिव का प्रसिद्ध मंदिर बनवाया। उत्तराधिकारी राजेन्द्र चोल के समय निर्माण कार्य

पूरा हुआ। शासक कुलोत्तुंग प्रथम शिव अनन्य उपासक था। कुलोत्तुंग द्वितीय के बारे में कहा जाता है कि शिव के प्रति अतिशय भक्ति के कारण उसने चिदम्बरम् मंदिर में रखी गयी गोविन्दराज विष्णु की मूर्ति उखाड़कर समुद्र में फिंकवा दिया था। चोल शासकों के उत्साह को देखकर उनके राज्य की प्रजा ने भी शैव धर्म को ग्रहण किया। चोल शासकों ने शैव संतों को ही अपना राजगुरू मनोनित किया था। इस प्रकार इस धर्म ने व्यापक जनाधार प्राप्त कर लिया। राजराज प्रथम के समय में ईशानशिव राजगुरू नियुक्त किये गये थे। प्रशासन पर इनका व्यापक प्रभाव था।

शैव धर्म के साथ चोलकालीन समाज में वैष्णव धर्म का प्रचार हुआ। इस समय वैष्णव आलवरों का स्थान आचार्यों ने ग्रहण कर लिया। आचार्य तमिल तथा संस्कृत दोनों ही भाषाओं के विद्वान थे उन्होंने दोनों ही भाषाओं में वैष्णव सिद्धान्तों का प्रचार किया। आचार्य परम्परा में सबसे पहला नाम नाथमुनि का लिया जाता है। उन्होंने अलवरों के भक्तिगीतों को व्यवस्थित किया। न्यायतत्व की रचना का श्रेय उन्हें दिया जाता है। प्रेममार्ग के दार्शनिक औचित्य का प्रतिपादन किया। आचार्य परम्परा में रामानुज का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है। उनका समय 1016–1137 ई. माना गया है। कांची के पास श्रीपेरूम्बुन्दर में जन्मे इस आचार्य को तिरूकोट्टियूर में महात्मा नाम्बि में इन्हें 'ऊँ नमो नारायण' नामक अष्टाक्षर मंत्र दिया। उन्होंने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा जिसे 'श्रीभाष्य' कहा जाता है। शंकर के अद्वैतवाद का खण्डन करते हुए रामानुज ने प्रतिपादित किया कि ब्रह्म अद्वैत होते हुए भी चित् (जीव) तथा अचित् (प्रकृति) शक्ति द्वारा विशिष्ट होता है। मोक्ष के लिए ज्ञान के स्थान पर भक्ति को तथा प्रपत्ति को आवश्यक बताया जिससे प्रसन्न होकर ईश्वर मोक्ष प्रदान करता है। वह सगुण ईश्वर में विश्वास करते थे।

यद्यपि चोल काल में शैव व वैष्णव धर्मों का ही व्यापक प्रचार था तथापि इस काल को धार्मिक असहिष्णुता का काल नहीं कह सकते। चोल शासक धर्म सहिष्णु थे उनके राज्य में बौद्ध एवं जैन भी निवास करते थे। कुलोत्तुंग प्रथम ने नेगपत्तम् के विहार को दान दिया था। जैन मंदिरों की भूमिकर माफ किये गये। बाद में आस्तिक धर्मों के प्रचलन के कारण वैदिक यज्ञों, कर्मकाण्डों का स्थान मूर्तिपूजा ने ले लिया। मंदिरों में मूर्तियां स्थापित की गयी जहां भक्तगण देवी–देवताओं की उपासना किया करते थे। तीर्थ यात्रा पर जाते, दान देते आदि। पौराणिक धर्मों के साथ इस समय तांत्रिक, शक्ति इस प्रकार चोल राजाओं की व्यक्तिगत रूचि तथा संतों व आचार्यों के परिणामस्वरूप चोलकाल में शैव व वैष्णव धर्मों का पुनरूत्थान हुआ तथा नास्तिक संप्रदायों का प्रभाव समाप्त हो गया। यह काल धार्मिक सहिष्णुता काल रहा।

2.12 साहित्य

चोल काल तमिल भाषा एवं साहित्य के विकास हेतु प्रसिद्ध है। तमिल लेखकों में सर्वाधिक प्रसिद्ध जयन्गोन्दार था। वह कुलोत्तुंग प्रथम का राजकवि था और उसने 'कलिंगत्तुपणि' नामक ग्रंथ की रचना की जिसने कलिंग व कुलोत्तुंग की युद्ध घटनाएं वर्णित हैं। कुलोत्तुंग तृतीय के काल में प्रसिद्ध कवि कम्बन् हुआ जिसने 'तमिल रामायण' अथवा 'रामावतारम्' की रचना की। यह तमिल साहित्य का महाकाव्य है। अन्य गंन्थों में शेक्किल्लार का 'पेरियपुराणम्' तोलामल्लि का शूलामणि आदि विशेष है। चोल शासकों ने अमृतसागर तथा बुद्धमित्र जैसे प्रसिद्ध जैन तथा बौद्ध विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया था। बुद्धमित्र की प्रमुख कृति 'वीर–शोल्लियम्' है तथा अमृतसागर ने 'याप्परंगलम्' तथा 'याप्परूंगलक्कारिगै' नामक प्रमाणिक गंथ लिखे। वैष्णवों के लेखकों में नाथमुनि, यमुनाचार्य तथा रामानुज के नाम उल्लेखनीय है तथा इन्होंने अपने ग्रंथ संस्कृत में लिखे।

2.13 कला और स्थापत्य

चोलवंशी शासक उत्साही निर्माता थे। और उनके समय में कला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुइ। चोलयुगीन कलाकारों ने अपनी कुशलता का प्रदर्शन पाषाण मंदिर एवं मूर्तियां बनाने में किया है।

द्रविड़ वास्तुशैली का प्रारम्भ पल्लव काल में हुआ इसका चरमोत्कर्ष चोल काल में परिलक्षित होता है। इस काल को दक्षिण भारतीय कला का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। कलाविद् फर्ग्युसन के अनुसार चोल कलाकारों ने 'दैत्यों के समान कल्पना की तथा जौहरियों के समान उसे पूर्ण किया'।

चोलकालीन मंदिरों के दो रूप दिखाई देते हैं। प्रथम के अन्तर्गत प्रारम्भिक काल के वे मंदिर है जो पल्लव शैली से प्रभावित है तथा बाद के मंदिरों की अपेक्षा छोटे आकार के हैं। दूसरे रूप के मंदिर अत्यन्त विशाल तथा भव्य हैं। इन सभी में द्रविड़ शैली का पूर्ण परिपक्वता पाते हैं। चोलकाल के प्रारम्भिक स्मारक, पुडुक्कोट्टै जिले से प्राप्त होते हैं। इसमें विजयालय द्वारा नात्तमिलाई में बनवाया गया चोलेश्वर मंदिर सर्वाधिक प्रसिद्ध है। चोलकालीन इस सुन्दर नमूने में एक वर्गाकार प्रकार के अन्तर्गत एक वृत्ताकार गर्भगृह बना हुआ है। प्रकार तथा गर्भगृह के ऊपर विमान हैं। यह चार मंजिला है। यह क्रमशः एक दूसरे के ऊपर छोटी होती हुई बनायी गयी है। नीचे की तीन मंजिल वर्गाकार तथा सर्वोच्च ऊपरी गोलाकार है। इसके ऊपर गुम्बदाकार शिखर तथा सबसे ऊपरी भाग में गोल कलश स्थापित है। सामने की ओर घिरा हुआ मण्डप है। मुख्य द्वार के दोनों ताख में दो द्वारपालों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं मुख्य मंदिर के चारों ओर खुले हुए बरामदे में सात छोटे देवस्थान हैं जो मंदिर ही प्रतीत होते हैं। ये सभी पाषाण निर्मित हैं। इस प्रकार का अन्य उदाहरण कन्नूर का बालसुब्रह्मण्य मंदिर है जिसे आदित्य प्रथम ने बनवाया था। इसकी समाधियों की छतों के चारों कोनों में हाथियों की मूर्तियां हैं। आदित्य प्रथम के समय ही तिरूक्कट्लै के सुंदरेश्वर मंदिर का निर्माण हुआ। इसके परकोटे में गोपुरम बना हुआ है। इसी समय कुम्बकोनम् में बना नागेश्वर मंदिर है जिसके गर्भगृह के चारों ओर सुन्दर कलाएं, मानवमूर्तियां बनी हैं अत्यधिक सुन्दर है। इस काल में मंदिर निर्माण का द्वितीय चरण परान्तक प्रथम के राज्यकाल में निर्मित श्रीनिवासनल्लूर का कोरंगनाथ मंदिर द्वारा प्रत्यक्ष होता है। यह कुल 50 फीट लम्बा है। इसका वर्गाकार 25 फीट का है तथा सामने की ओर मण्डप 25'×20' के आकार है। भीतर चार स्तम्भ पर आधारित लघुकक्ष है। मण्डप तथा गर्भगृह को जोड़ते हुए अन्तराल बनाया गया है। शिखर 50 फीट ऊँचा है, गर्भगृह के बाहरी दीवार में विभिन्न आकृतियां, विष्णु एवं ब्रह्मा की खड़ी हुई मूर्तियां उत्कीर्ण मिलती हैं। इस प्रकार वास्तु तथा तक्षण दोनों ही दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट कलाकृति है।

चोल स्थापत्य कला का चरमोत्कर्ष त्रिचनापल्ली जिले में निर्मित दो मंदिरों–तंजौर तथा 'गंगैकोण्डचोलपुरम' के निर्माण में परिलक्षित होता है। भारत के मंदिरों में से सबसे बड़ा तथा लम्बा बृहदेश्वर था तंजौर के इस मंदिर की उत्कृष्ट कलाकृति का निर्माण राजराज प्रथम के काल में हुआ था। इसे द्रविड़ शैली का सर्वोच्चतम नमूना माना जा सकता है। इसका विशाल प्रांगण 500×250 के आकार का है ग्रेनाइट पत्थरों के प्रयोग से निर्मित यह चारों ओर एक ऊँची दीवार से घिरा है। आकर्षण गर्भगृह के ऊपर पश्चिम में बना हुआ लगभग 200 फीट ऊँचा विमान है। इसका आधार 84 वर्ग फुट है। आधार के ऊपर तेरह मंजिलों वाला पिरामिड़ के आकार का शिखर 190 फुट ऊँचा है। गर्भगृह के भीतर विशाल शिवलिंग है जिसे अब बृहदीश्वर कहते हैं। दीवारों पर अनेक देवी–देवताओं की मूर्तियां बनी हैं। इस प्रकार भव्यता तथा कलात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से यह दक्षिण भारत का सर्वश्रेष्ठ हिन्दु स्मारक है।

'गंगैकोण्डचोलपुरम्' मंदिर का निर्माण राजराज के पुत्र राजेन्द्र चोल के शासनकाल में हुआ। यह भी बृहदीश्वर के समान निर्मित है किन्तु यह 340 फीट लम्बा तथा 110 फीट चौड़ा है। मण्डप के स्तम्भ अलंकृत व आकर्षक हैं, मंदिर की बाहरी दीवारों पर देवी–देवताओं की मूर्तियां एवं विविध प्रकार के अंलकरण उत्कीर्ण हैं जो तंजौर की तुलना में अधिक सुंदर है। राजेन्द्र चोल के उत्तराधिकारियों के समय भी मंदिर निर्माण जारी रहा इसमें राजराज द्वितीय तथा कुलोत्तुंग तृतीय द्वारा बनवाये गये दारासुरम का ऐरावतेश्वर तथा त्रिभुवनम् का काम्पहरेश्वर मंदिर अत्यन्त भव्य व सुन्दर है।

परवर्ती चोल कला पर चालुक्य, होयसल तथा पाण्ड्य कला का प्रभाव भी प्रत्यक्ष रूप से पड़ा परिणामस्वरूप अब विमान के पास शाला प्रकार का अम्मन मंदिर बनाया जाने लगा जो इस काल की नई विशेषता है। इस प्रकार वास्तुकला में चोलकाल सर्वश्रेष्ठ व निपुण सिद्ध हुआ।

2.14 तक्षण कला/शिल्प कला

शिल्पकला में भी चोल कलाकारों ने सफलता प्राप्त की। उन्होंने पत्थर तथा धातु की बहुसंख्यक मूर्तियों का निर्माण किया, प्रारंभिक मूर्तियां पल्लव शैली से प्रभावित हैं किन्तु दसवीं शताब्दी में इनमें विशिष्टता दिखाई देती है। आकृतियां इतने उभार के साथ बनाई गयी हैं कि वे दीवाल के सहारे सजीव प्रतीत होती हैं। उनके अंग–प्रत्यंग को अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ गढ़ा हुआ है। इस काल में पाषाण मूर्तियों से अधिक धातु (कांस्य) की मूर्तियां निर्मित हुई, इसमें सर्वाधिक सुन्दर मूर्ति नटराज (शिव) अत्यधिक मात्रा में मिली हैं। त्रिचनापल्ली के तिरूभंरगकुलम से नटराज की एक विशाल कांस्य प्रतिमा मिली है जो इस समय दिल्ली संग्रहालय में है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी, भूदेवी, राम–सीता, कालियानाग पर नृत्य करते हुए बालक कृष्ण तथा कुछ शैव संतों की मूर्तियां भी प्राप्त होती हैं जो कलात्मक दृष्टि से भव्य एवं सुन्दर हैं। चोल मूर्तिकला वास्तुकला की सहायक थी और यही कारण है कि अधिकांश मूर्तियों का उपयोग मंदिरों को सजाने में किया गया। त्रिपुरान्त मूर्ति के माध्यम से शिल्पी राजराज के पराक्रम को उद्घाटित करता हुआ जान पड़ता है। 'गंगैकोण्डचोलपुरम' स्थित मूर्तियां बृहदीश्वर मंदिर की मूर्तियों से कम हैं फिर भी अधिक कलात्मक एवं भावपूर्ण है। इस प्रकार शिल्पकला की उत्कृष्ट आकृतियां चोलकाल की शिल्पकला को श्रेष्ठ बनाती हैं।

2.15 चित्रकला

इस युग के कलाकारों ने मंदिरों की दीवारों पर अनेक सुन्दर चित्र बनाये हैं। अधिकांश चित्र बृहदीश्वर मंदिर की दीवारों पर उत्कीर्ण मिलते हैं। चित्र प्रमुखतः पौराणिक धर्म से सम्बन्धित है। यहां शिव की विविध लीलाओं से सम्बन्धित चित्रकारियां प्राप्त होती हैं। एक चित्र में राक्षस का वध करती हुई दुर्गा तथा दूसरे में राजराज को सपरिवार शिव की पूजा करते हुए प्रदर्शित किया गया है।

इस प्रकार चोल राजाओं के शासन काल में राजनैतिक और सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से तमिल देश की महती उन्नति हुई। वस्तुतः स्थानीय प्रशासन, कला, धर्म तथा साहित्य के क्षेत्र में इस समय तमिल देश जितना अधिक उत्कर्ष पर पहुंचा बाद के कालों में कभी भी नहीं पहुंच सका।

2.16 सारांश

दक्षिण भारतीय इतिहास में चोलकालीन संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। चोल शासकों ने शासन व्यवस्था के साथ–साथ कला और संस्कृति के क्षेत्र में भी काफी रूचि दिखाई। कालात्मक दृष्टि से भी चोलों का युग अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। बड़े–बड़े देवालय, मंदिर तथा राजप्रसाद इत्यादि बनवाए गये। चोलों का काल द्रविड़ शैली के लिए चरमोत्कर्ष का काल माना जाता है। कला और स्थापत्य कला के अलावा शिक्षा और साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ।

2.17 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. चोलकालीन सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था का वर्णन कीजिये।
2. चोलों के प्रशासनिक व्यवस्था की व्याख्या कीजिये।
3. चोलों के स्थानीय स्वशासन पर एक लेख लिखिये।
4. चोलकालीन कला और साहित्य का संक्षिप्त परिचय दें।
5. चोलकालीन स्थापत्य कला का वर्णन कीजिये।

6. दक्षिण भारतीय इतिहास में चोलों के स्थान निर्धारित कीजिये।

2.18 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नील कंठ शास्त्री—दक्षिण भारत का इतिहास
2. के.सी. श्रीवास्तव—प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति
3. बी.एन. लूनिया—प्राचीन भारतीय संस्कृति
4. बी.बी. सिन्हा—भारत का इतिहास

इकाई तीनः राजपूतकालीन संस्कृति

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 राजपूतकालीन शासन व्यवस्था

3.4 सामन्तों का वर्चस्व

3.5 निरंकुश राजतंत्र

3.6 ग्राम शासन

3.7 सैन्य संगठन

3.8 राजस्व व्यवस्था

3.9 सामाजिक जीवन

3.10 राजपूत जाति

3.11 राजपूत स्त्रियाँ

3.12 वर्ण व्यवस्था

3.13 आम स्त्रियों की दशा

3.14 वैवाहिक व्यवस्था

3.15 राजपूतकलीन आर्थिक अवस्था

3.16 राजपूतकालीन धार्मिक जीवन

3.17 राजपूतकालीन साहित्यिक दशा

3.18 राजपूतकालीन कला एवं स्थापत्य

3.18:1 मूर्तिकला

3.18:2 गुहा मंदिर कला

3.18:3 मंदिर कला

3.19 गुर्जर प्रतिहार स्थापत्य

3.20 चालुक्य कालीन स्थापत्य

3.21 बुन्देलखण्ड के चन्देलकालीन मंदिर

3.22 राजपूत कालीन चित्रकला

3.23 सारांश

3.24 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.25 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

राजपूत संस्कृति भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है जिसने भारतीय धर्म एवं संस्कृति को एक नई दिशा प्रदान की है। इसने प्राचीनकाल से चली आ रही संस्कृति की गति को आगे बढ़ाने में अपूर्व योगदान दिया। राजपूतों ने दीर्घकाल तक हिन्दू धर्म और उसके विभिन्न मतों के संरक्षण में तथा साहित्य और ललित कला के प्रसार में काफी उल्लेखनीय योगदान दिया। दुर्ग, भवन और मंदिर निर्माण की कलाओं ने राजपूतों के राज्याश्रय में विशिष्ट प्रगति की। वास्तव में राजपूत भारतीय धर्म, साहित्य, संस्कृति एवं कला के द्योतक रहे। सातवीं से बारहवीं शताब्दी तक राजपूत उत्तरी भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर छाये रहे, इसी कारण इस काल को राजपूत युग के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि–

1. राजपूतों का शासन व्यवस्था कैसा था।
2. राजपूतकाल में भारतीय समाजिक जीवन और महिलाओं की स्थिति।
3. राजपूतकालीन अर्थव्यवस्था एवं साहित्यिक स्थिति
4. राजपूतकालीन कला एवं स्थापत्यकला

3.3 राजपूतकालीन शासन व्यवस्था

राजपूतकालीन भारत में राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अनेक परिवर्तन दिखाई देते हैं। शासन के क्षेत्र में सामन्तवाद का पूर्ण विकास इसी युग में दिखाई देता है। राजपूतों का सम्पूर्ण राज्य अनेक छोटी–छोटी जागिरों में विभक्त था। प्रत्येक जागीर का प्रशासन एक सामन्त के हाथ में होता था जो प्रायः राजा के कुल से ही सम्बन्धित होता था। सामन्त महाराज, महासामन्त, महासामन्त पति, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर आदि उपाधि धारण करते थे। 12 वीं शताब्दी की रचना अपराजितपृच्छा में महामण्डलेश्वर, माण्डलिक महासामन्त, लघु सामन्त चतुरंशिक आदि जैसे विविध सामन्तों का उल्लेख मिलता है जो क्रमशः एक लाख, पचास हजार, बीस हजार, दस हजार, तथा एक हजार गाँवों के स्वामी थे। चाहमान शासक पृथ्वीराज, कलचुरी शासक कर्ण तथा चालुक्य शासक कुमारपाल के शासन में क्रमशः 150, 136 तथा 72 सामन्तों के अस्तित्व का पता लगता है। इस प्रकार राजपूत शासक अपना प्रजा पर प्रत्यक्ष शासन न करके सामन्तों पर ही शासन करते थे। सामन्तों के पास अपने न्यायालय तथा अपनी मंत्रीपरिषद होती थी। अपने लेखों में वे सम्राट का उल्लेख करते थे तथा समय–समय पर राजदरबार में उपस्थित होकर भेंट–उपहार आदि दिया करते थे। राज्याभिषेक के अवसर पर उनकी उपस्थिति विशेष रूप से आवश्यक पायी जाती थी।

3.4 सामन्तों का वर्चस्व

प्रान्तीय शासन पर सामन्तों का अधिकार था जो प्रायः स्वतंत्रता से शासन करते थे। सामन्तों के पास अपनी सेना होती थी जो आवश्यकता पड़ने पर उनके नेतृत्व में राज्य की सेना सम्मिलित होती थी। कुछ शक्तिशाली सामन्त अपने अधीन कई उपसामन्त भी रखते थे। छोटे–छोटे सामन्त राजा, ठाकुर, भोक्ता आदि उपाधि ग्रहण करते थे। इस प्रकार राज्य की वास्तविक शक्ति और सुरक्षा की जिम्मेदारी सामन्तों पर ही

होती थी। सामन्तों में राजभक्ति की भावना बड़ी प्रबल होती थी। वे अपने स्वामी के लिए सर्वस्व बलिदान करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। सामन्तों की संख्या में वृद्धि से सामान्य जनता का जीवन कष्टमय हो गया था। वे जनता को मनमाने ढंग से शोषण करते थे और उनपर किसी प्रकार का अंकुश नहीं था।

3.5 निरंकुश राजतंत्र

प्राचीन इतिहास के अन्य युगों की भांति राजपूत युग में भी वंशानुगत राजतंत्र शासन पद्धति थी। इस युग के राजा निरंकुश ही नहीं स्वेच्छावादी भी होते थे। प्राचीनकाल जैसी कोई सभा, समिति या कोई अन्य जन प्रतिनिधि सभा नहीं थी। ग्राम पंचायतों का महत्व भी कम हो गया था, क्योंकि उनपर अब सामन्तों का एकाधिकार था राजा की स्थिति सर्वोपरि होती थी। न्याय तथा सेना का भी वह सर्वोच्च अधिकारी था। महाराजाधिराज, परमभट्टारक, परमेश्वर जैसी उच्च सम्मानपरक उपाधि धारण कर अपनी महत्ता को ज्ञापित करता था। राजा देवता का प्रतीक समझा जाता था। मनु का अनुकरण करते हुए लक्ष्मीधर ने अपने ग्रन्थ कृत्यकल्पतरू में राजा को लोकपालों–इन्द्र, वरूण, अग्नि, मित्र, वायु, सूर्य आदि के अंश से निर्मित बताया है। इस प्रकार सिद्धान्ततः शासक की स्थिति निरंकुश थी, किन्तु व्यवहार में धर्म तथा लोक–परम्पराओं द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करता था। सैनिक–बल तथा शासक के निजी साहस, शूरतत्व और प्रतिष्ठा पर टिका रहता था।

3.6 ग्राम–शासन

ग्राम, शासन की सबसे छोटी इकाई होती थी। ग्रामसभा जनता की समस्याओं को सुलझायी तथा ग्राम का शासन सुचारू रूप से चलाती थी। ग्रामसभा छोटी–मोटी समितियों में विभक्त रहती थी ये समितियाँ अलग–अलग निश्चित कार्य को सम्पन्न करती थी। बाजार का प्रबन्ध, कर वसूलना, जलाशयों, उद्यानों तथा चरागाहों की देखभाल करना, व्यक्तियों के पारस्परिक झगड़ों को सुलझाना आदि कार्य समितियाँ ही सम्पन्न करती थी। हर एक समिति अपने कार्य का लेखा–जोखा ग्रामसभा के समक्ष पेश करती थी। ग्राम पंचायतें केन्द्रीय शासन से प्रायः स्वतंत्र होकर अपना कार्य करती थी। दीवानी तथा फौजदारी के मुकदमों के फैसले भी ग्राम पंचायत द्वारा ही किये जाते थे।

3.7 सैन्य संगठन

राजपूतों का सैन्य संगठन काफी दोषपूर्ण था इनमें पैदल सैनिकों की संख्या अधिक रहती थी और अच्छी नस्ल के घोड़ों का उसमें सर्वथा अभाव था। राजपूत प्रायः भाले, बल्लम, तलवार आदि से युद्ध करते थे। वे कुशल तीरन्दाज भी नहीं होते थे। राजपूत लोग प्रायः अपनी हस्ति सेना को सबसे आगे रखते थे जो बिगड़ जाने पर कभी–कभी अपनी ही सेना को रौंद देती थी। राजपूतों की सैन्य संगठन पुरानी थी तथा प्राचीन रण पद्धति का ही प्रयोग किया जाता था। लेकिन राजपूतों के रण–सम्बन्धि आदर्श बड़े ही ऊँचे थे। वे कूटनीति तथा धोखेबाजी में कतई विश्वास नहीं करते थे। वे निशस्त्र तथा भागते हुए शत्रु पर कभी प्रहार नहीं करते थे। स्त्रियों एवं बच्चों पर भी वे हथियार नहीं उठाते थे।

3.8 राजस्व व्यवस्था

राज्य की आय का मुख्य स्त्रोत भूमिकर था। यह भूमि की स्थिति के अनुसार तीसरे से लेकर बारहवें भाग तक लिया जाता था। उद्योग एवं वाणिज्य व्यापार से भी राजस्व की प्राप्ति होती थी। अपातकाल में राजा, प्रजा से अतिरिक्त कर वसूलता था। कुलीनों तथा सामन्तों द्वारा प्रदत्त उपहार तथा युद्ध में लूट के धन से भी राजकोष में पर्याप्त वृद्धि होती थी। पड़ोसी राज्यों को लूटकर धन प्राप्त करना भी राजा लोग अपना कर्त्तव्य समझते थे। भूमिकर ग्राम पंचायतों द्वारा एकत्रित किया जाता था।

3.9 सामाजिक जीवन

राजपूत युगीन समाज वर्णों एवं जातियों के जटिल नियमों से बंधा हुआ था। उस समय जाति–प्रथा की कठोरता थी और समाज में सहिष्णुता की भावना का अभाव था। समाज परम्परा चार वर्णों–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के अतिरिक्त अनेक जातियों एवं उपजातियों में बंटी हुई थी। राजतरंगिणी में 64 उपजातियों का उल्लेख मिलता है। अनेक जातियाँ अछूत समझी जाती थी। जिन्हें गाँवों एवं नगरों के बाहर निवास करना पड़ता था। ब्राह्मणों का सदा की तरह इस युग में भी प्रतिष्ठित एवं सर्वोच्च स्थान था। वे राजपूत शासकों के मंत्री एवं सलाहकार नियुक्त किए जाते थे। उनका मुख्य पेशा अध्ययन, यज्ञ, तप एवं धार्मिक कर्मकाण्ड कराना था। उनका जीवन पवित्र और पापरहित माना जाता था। वे मांस–मदिरा का प्रयोग नहीं करते थे। वैश्य जाति के लोग वाणिज्य व्यापार का काम करते थे जबकि शूद्र जाति के लोग कृषि, शिल्पकारी तथा अन्य वर्णों की सेवा का काम करते थे। वैश्य तथा शूद्र जाति के लोगों को वेदाध्ययन एवं मंत्रोच्चारण का अधिकार नही था। इन दोनों जातियों के लोगों की सामाजिक स्थिति अच्छी एवं सन्तोषजनक नहीं थी। इनके साथ प्रायः समाज में भेद–भाव किया जाता था।

क्षत्रिय जाति के लोग युद्ध तथा शासन संचालन का काम करते थे। इस काल के राजपूत उच्चकोटि के योद्धा होते थे। उनमें साहस, आत्मसम्मान, वीरता एवं देशभक्ति की भावनाऐं कूट–कूट कर भरी थी। वे अपने जीवन के अंतिम क्षण तक प्रतिज्ञा का पालन करते तथा शरणागत की रक्षा करना–भले ही वह जघन्य अपराधी ही हो–अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। परन्तु इन गुणों के साथ–साथ उनमें मिथ्याभिमान, अंहकार, व्यक्तिगत द्वेष–भाव, संकीर्णता आदि दुर्गुण भी विद्यमान थे।

3.10 राजपूत जाति

राजपूत अपने को शुद्ध रक्त का मानते थे। उन्होंने अपने वंशों की उत्पत्ति किसी न किसी देवी, देवता अथवा ऋषि से जोड़ रखी थी। राजपूत अपने को चन्द्रवंशीय एवं सूर्य वंशीय भी करते थे। इनके वंश के आधार पर राजाओं ने अपने लिए अनेक प्रकार के विशेषाधिकार प्राप्त कर लिए थे। वंश तथा जाति का अभियान उनमें कूट–कूट कर भरा हुआ था। वीरता की भावना का इन्होंने एक ऐसा आदर्श स्थापित किया था जैसाकि विश्व इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है। हँसते–हँसते मृत्यु के मुख में चला जाना इनकी राजपूती शान थी। इन्हें अपने वचन और प्रतिज्ञा का भारी ध्यान रहता था और कभी भी अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं करते थे।

3.11 राजपूत स्त्रियाँ

राजपूत स्त्रियाँ बड़ी पतिभक्त, धर्मपरायण और बहादुर होती थी। वे अपने सतीत्व की रक्षार्थ चिता में जीवित भष्म हो जाती थी। अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ पर आक्रमण करने पर जब राजदूतों ने जान लिया कि उनकी हार निश्चित है तो राजपूत केसरी बाना पहनकर हाथ में नंगी तलवार लिए शत्रु सेना पर टूट पड़े और एक–एक करके अनेक शत्रुओं को मार कर मर गए। उधर वीर राजपूत स्त्रियाँ अपने वस्त्राभूषण पहन कर, महारानी पदमिनी के साथ विशाल जलती हुई चिता में कूद कर भष्म हो गई। राजपूत स्त्रियाँ भी युद्ध कला में पारंगत होती थी और युद्ध भूमि में भूखी सिंहनी की भांति शत्रुओं पर कूद पड़ती और उनका बुरी तरह संहार करती थी। पति की मृत्यु पर वे अपने स्वामी के शव के साथ चिता में बैठकर सती हो जाती थी। राजपूतों में बाल–विवाह की प्रथा भी चल पड़ी थी और विधवाओं को हीन दृष्टि से देखा जाने लगा था।

3.12 वर्ण व्यवस्था

राजपूतों की एक अलग जाति बनने के अतिरिक्त हिन्दुओं की वर्ण–व्यवस्था में और भी गहरे परिवर्तन हुए। जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध पहले से भी अधिक जटिल हो गये। अन्तर्जातीय विवाह केवल राजघरानों तक ही सीमित रह गये। इसी युग में जातियों के विभाजन हुए और अनेक उपजातियाँ बन गई। जिनकी संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती गई। इस युग के अन्त तक हिन्दू समाज में काफी अनुदारता, असहिष्णुता और रूढ़िवादिता आ गई। इसका मुख्य कारण बौद्ध धर्म का पतन तथा पौराणिक, हिन्दू धर्म की पूर्ण विजय थी। शंकराचार्य आदि हिन्दू नेताओं ने वर्ण व्यवस्था को और अधिक बनाया और उसे दार्शनिक आधार पर खड़ा करने का प्रयत्न किया।

3.13 स्त्रियों की दशा

राजपूतकालीन भारतीय समाज में महिलाओं को सम्मानित स्थान प्राप्त था। राजपूत अपनी स्त्रियों को अत्याधिक सम्मान करते थे तथा उनकी मान–मर्यादा एवं सतीत्व की रक्षा के लिए सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहते थे। राजपूत कुलों में विवाह स्वयंवर प्रथा द्वारा होते थे जिसमें कन्याऐं अपना वर स्वयं ही चुनती थी। धनी और निर्धन सभी राजपूतों में यह प्रथा प्रचलित थी। राजपूत स्त्रियाँ शिक्षित एवं कला के क्षेत्र में पारंगत होती थी। अलबरूनी के अनुसार ''सभी स्त्रियाँ शिक्षित थी और सार्वजनिक कार्यों में प्रमुखता से भाग लेती थी। कन्याऐं संस्कृत पढ़ती, लिखती और समझती थी। वे खेल, नृत्य और चित्र बनाना सीखती थी।'' कुछ स्त्रियाँ इतनी विदुषी थी कि वे किसी को भी विवाद एवं शास्त्रार्थ में हरा सकती थी। ब्राह्मण दार्शनिक शंकराचार्य को मण्डनमिश्र की ब्राह्मण पत्नी भारती ने परास्त किया था सुप्रसिद्ध संस्कृत कवि, राजशेखर की पत्नी अवन्ति सुन्दरी अपनी विद्वता के लिए विख्यात थी। इन्दूलेखा, मरूला, शीला, सुभद्रा, लक्ष्मी, विज्जिका, मोरिका, पदिमश्री और मदालसा राजपूतकाल में संस्कृत की प्रसिद्ध कवयित्रियाँ थी। सोलंकी राजा विक्रमादित्य की बहन अक्का देवी एक महान योद्धा एवं प्रशासिका थी। वह चार प्रान्तों की गर्वनर थी। उसने बेलगाँव जिले के दुर्ग के विरूद्ध चढ़ाई की और वहाँ घेरा डाला चालुक्यवंशी विजय भट्टारिका (7 वीं शताब्दी ई.) तथा कश्मीर की दो महिलाएं सुगन्धा तथ दिद्दा (10 वीं शताब्दी) ने कुशलतापूर्वक शासन का संचालन किया। समाज के उच्च वर्गों की स्त्रियों में संगीत और नृत्य सर्वप्रिय

विनोद थे। राजाओं और योद्धाओं की पुत्रियां भी अश्वारोहण में प्रशिक्षण लेती थी। उन्हें घुड़सवारी और हाथियों की सवारी का विशेष शौक होता था। वे आखेट में भी रूचि रखती थी।

3.14 वैवाहिक व्यवस्था

यद्यपि स्वजातीय विवाह अच्छा समझा जाता था, परन्तु अन्तर्जातीय तथा अन्तर्धार्मिक विवाह भी प्रचलित थे। अनुलोम विवाह के अनेक उदाहरण मिलते हैं। पश्चिमी भारत में ब्राह्मण, क्षत्रिय कन्या के साथ विवाह करते थे। ब्राह्मण कवि रामेश्वर ने चौहान राजकुमारी अवन्ति सुन्दरी से विवाह किया था। इस काल के धर्म शास्त्र में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख मिलता है। क्षत्रियों में राक्षस विवाह अर्थात कन्या को बलात् अपहरण कर ले जाना प्रचलित था। राजकुलों में स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी। राजपूत कन्यायें स्वयंवर में अपनी इच्छानुसार मनचाहे पति को वरण करती थी। कन्नौज के राज राजचन्द्र की पुत्री संयोगिता ने स्वयंवर में अपने पिता के शत्रु, पथ्वीराज चौहान की स्वर्ण प्रतिमा के गले में जयमाला डालकर उन्हें वरण किया था। साधारण समाज में लड़कियाँ अपने माता–पिता द्वारा निश्चित किए गए वर के साथ ही विवाह करती थी।

3.15 राजपूतकालीन आर्थिक अवस्था

इसकाल में कृषि जनता की जीविका का प्रमुख साधन थी। इस समय तक कृषि का पूर्ण विकास हो चुका था। विभिन्न प्रकार के अन्न पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न किए जा रहे थे। हेम चन्द्र कृत प्रबन्ध चिन्तामणि में सत्रह प्रकार के धान्यों का उल्लेख मिलता है। शून्य पुराण से पता चलता है कि बंगाल में पचास से भी अधिक प्रकार के चावल का उत्पादन किया जाता था। इसके अतिरिक्त गेहूँ, जौं, मक्का, कोदो, मसूर, तिल, विविध प्रकार की दालें, गन्ना आदि के प्रचूर उत्पादन का उल्लेख भी साहित्य तथा लेखों में मिलता है। अरब लेखक भी भूमि की उर्वरता का उल्लेख करते हैं।

कृषकों को नाना प्रकार के कर देने पड़ते थे। पूर्वमध्यकाल के लेखों में भाग, बलि, धान्य, हिरण्य उपरिकर, उद्रंग उदकभाग आदि करों का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें भाग, कृषकों से उपज के अंश के रूप में लिया जाता था। भोग, राज के उपभोग के लिए समय–समय पर प्रजा द्वारा दिया जाता था। बलि, राजा के उपहार के रूप में मिलता था। हिरण्य, नकद वसूल किया जाने वाला कर था। कृषकों से राज्य जलकर भी वसूलता था जिसे उदक भाग कहा जाता था।

कृषि के साथ–साथ वाणिज्य व्यापार भी उन्नत अवस्था में था। यातायात की सुविधा के लिए देश के प्रमुख नगरों को सड़कों के द्वारा जोड़ दिया गया था। तत्कालीन साहित्य तथा लेखों में विभिन्न प्रकार के उद्यमियों एवं दस्तकारों का उल्लेख है। अलबरूनी जूते बनाने, टोकरी बनाने, ढाल तैयार करने, मत्स्य–पालन, कताई–बुनाई आदि का उल्लेख करता है। व्यावसायियों के अलग–अलग संगठन एवं श्रेणियाँ भी होती थी। जिसका मुख्य कार्य उत्पादन में वृद्धि करना एवं वितरण पर पर्याप्त ध्यान देना था। इस युग में आतंरिक एवं बाह्य व्यापार उन्नत अवस्था में था। भारतीय मालवाहक जहाज अरब, फारस, मिश्र, चीन पूर्वी द्वीपसमूह आदि को जाया करते थे। भारतीय समानों का विश्व बाजार में काफी मांग थी।

राजपूत युग में देश की अधिकांश सम्पत्ति मंदिरों में जमा थी। इसकी कारण मुस्लिम विजेताओं ने मंदिरों को लूटा तथा अपने साथ बहुत अधिक सम्पत्ति एवं बहुमूल्य सामग्रियाँ ले गये। कहा जाता है कि महमूद

गजनवीं अकेले सोमनाथ मंदिर से ही बीस लाख दीनार मूल्य का माल ले गया था। इसी प्रकार मथुरा की लूट में भी उसे अतुल सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। नगरकोट की लूट में प्राप्त सिक्कों का मूल्य सत्तर हजार दिरहम (दीनार) था।

3.16 राजपूतकालीन धार्मिक जीवन

राजपूतकाल में हिन्दू तथा जैन धर्म देश में अत्यन्त लोकप्रिय थे। बौद्ध धर्म का अपेक्षाकृत कम प्रचलन था और वह अपने पतन की अन्तिम अवस्था में पहुँच गया था। हिन्दूधर्म के अन्तर्गत भक्तिमार्ग एवं अवतारवाद का व्यापक प्रचलन था। विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा आदि देवी–देवताओं की उपासना होती थी। इनकी पूजा में मंदिर तथा मूर्तियाँ बनाई जाती थी। भक्ति सम्प्रदाय के आचार्यों में माधवाचार्य का नाम उल्लेखनीय हैं। शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रसार किया जिसके अनुसार ब्राह्म ही एकमात्र सत्ता है, संसार मिथ्य है तथा आत्मा और ब्राह्म मे कोई भेद नहीं है। इसके विपरीत रामानुज ने विशिष्टाद्वैत का प्रचार किया, जिसके अनुसार ब्राह्म एकमात्र सत्ता होते हुए भी सगुण है और वह चित्त और अचित्त शक्तियों से युक्त हैं। उन्होंने ईश्वर की प्राप्ति के लिए भक्ति को आवश्यक बताया। हिन्दू धर्म में बहुदेववाद की प्रतिष्ठा थी और अनेक देवी–देवताओं की उपासना की जाती थी।

हिन्दू धर्म की उन्नति के साथ ही राजपूताना तथा पश्चिमी और दक्षिणी भारत में जैन धर्म भी उन्नति कर रहा था। राजपूताना में गुर्जर–प्रतिहार तथा दक्षिणी–पश्चिमी भारत के चालुक्य नरेशों ने इस धर्म की उन्नति में योगदान दिया। प्रतिहार नरेश भोज के समय एक जैन मंदिर का निर्माण करवाया गया था। आबू पर्वत पर भी जैन मंदिर का निर्माण हुआ। चन्देल शासकों के समय खुजराहों में जैन तिर्थंकरों के पॉच मंदिरों का निर्माण कराया गया। गुजरात के चालुक्य (सोलंकी) शासकों ने तो इसे राजधर्म बनाया। इस वंश के शासक कुमार पाल के समय में जैन धर्म की अत्यधिक उन्नति हुई। उसने प्रसिद्ध जैन विद्वान हेमचन्द्र को राजकीय संरक्षण प्रदान किया था। राजपूत युग में बौद्ध धर्म अवनति की ओर अग्रसर था।

3.17 राजपूत काल में साहित्यिक दशा

राजपूत राजाओं का शासनकाल साहित्य की उन्नति के लिए विख्यात है। कुछ राजपूत नरेश स्वयं उच्चकोटि के विद्वान थे। इनमें परमारवंशी मुंज तथा भोज का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। मुंज एक उच्च कोटि का कवि था जिसकी राजसभा में 'नवसाहसांकचरित' के रचियता पदमागुप्त तथा 'दशरूपक' के रचियता धनंजय निवास करते थे। भोज की विद्वता तथा काव्य–प्रतिभा लोक विख्यात है। उसने स्वयं ही चिकित्सा, ज्योतिष, व्याकरण, वास्तुकला आदि विविध विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे थे। इनमें श्रृंगार प्रकाश, प्राकृत व्याकरण, सरस्वतीकण्ठाभरण, कूर्मशतक, चम्पूरामायण, श्रंगारमंजरी, समरांगणसूत्रधार, तत्व–प्रकाश, भुजवलनिबनध, राजमृगांक, नाममालिका तथा शब्दानुशासन उल्लेखनीय हैं। उसकी राजसभा विद्वानों एवं पण्डितों से परिपूर्ण थी। भोज के समय में धार नगर शिक्षा एवं साहित्य का प्रमुख केन्द्र था। चालुक्य नरेश कुमारपाल विद्वानों का महान संरक्षक था। उसने हजारों ग्रंथो की प्रतिलिपियां तैयार करवायी तथा पुस्तकालयों की स्थापना करवायी। राजा भोज ने धार में एक विश्वविद्यालय की भी स्थापना की।

इस काल में संस्कृत तथा लोकभाषा के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। इनमें राजशेखर की कर्पूरमंजरी, काव्य मिमांशा, बालरामायण, श्रीहर्ष का नैषधचरित, जयदेव का गीतगोविन्द, सोमदेव का

कथासरितसागर तथा कल्हण की राजतरंगिणी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लोकभाषा के कवियों में चन्दवरदाई का नाम प्रसिद्ध है जो चौहान शासक पृथ्वीराज तृतीय का राजकवि था। उसने प्रसिद्ध काव्य 'पृथ्वीराजरासो' लिखा जिसे हिन्दी भाषा का प्रथम महाकाव्य कहा जा सकता है। पश्चिमी चालुक्य नरेश सोमेश्वरकृत मानसोल्लास राजधर्म सम्बन्धी विविध विषयों का सार संग्रह हैं। विधिशास्त्र के ग्रंथों में विज्ञानेश्वर द्वारा याज्ञावल्क्य स्मृति पर लिखी गयी टीका मिताक्षर तथा बंगाल के जीमूतवाहन द्वारा रचित दायभाग का उल्लेख किया जा सकता है।

3.18 राजपूतकालीन कला एवं स्थापत्यकला

इस काल में कला एवं स्थापत्य कला के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। बड़े पैमाने पर देवालय, मंदिर, दुर्ग, भवन इत्यादि बनाए गये जो कलात्मक दृष्टि से अदभुत और बेमिसाल हैं। इसकाल में तीनों शैलियों नागर, द्रविड एवं वेसर शैली में मंदिरों, मूर्ति एवं भवनों का निर्माण किया गया।

3.18:1 मूर्तिकला

इस युग में मूर्तिकारों ने मूर्ति–निर्माण और तक्षणकला से अद्‌भुत चमत्कार प्रदर्शित किया है। उन्होंने अपनी कृतियों में गुप्तकाल जैसी कोमलता, अंगों का सौष्ठव, यौवन का उभार एवं लालित्य और भावनाओं का ज्वार प्रदर्शित किया तथा दुर्गा, लक्ष्मी, पार्वती, उमा, सरस्वती, चण्डी काली और सिंहवाहिनी आदि देवियों की मूर्तियाँ बनाई गई। शिव, विष्णु, ब्राह्मा, कार्तिकेय, गणेश आदि देवताओं, नर्तकी, विरहिणी, कामातुरा, पुजारिन, भिक्षुणी आदि साधारण स्त्रियों, व्यापारी, सामन्त, राजा, चर्मकार, कलाकार, कलाल आदि पुरूषों और पशु–पक्षियों की मूर्तियाँ बनाई गई। इन मूर्तियों में से अनेक आज भी पूर्ण या खण्डित रूप में तत्कालीन मंदिरों, महलों, दुर्गों और स्मारकों आदि में विद्यमान हैं। इन मूर्तियों में शिल्प कौशल की प्रचुरता के साथ प्रदर्शन किया गया है। कलाकार इन मूर्तियों को मिट्‌टी, पत्थर और धातु तीनों ही प्रकार की बनाते थे।

इस युग की सर्वोतम मूर्तियाँ उड़ीसा में पुरी भुवनेश्वर और कोणार्क के मंदिर में आज भी देखी जा सकती हैं। ये उस काल की तक्षण कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

मध्यम भारत में खुजराहों के मंदिरों तथा अजन्ता, एलीफेन्टा, एलोरा, बाघ आदि गुहा मंदिरों की मूर्तियाँ कमनीयता, कोमलता, भाव प्रदर्शन और सजीवता में अद्वितीय हैं। एलीफेन्टा गुफा में स्थित शिव की विशाल त्रिमूर्ति जो आठवीं शताब्दी में बनाई गई थी। इस युग की सर्वाधिक ख्याति प्राप्त मूर्ति है। दक्षिण भारत में तांबे की बनी हुई नटराज शिव की मूर्तियाँ यथेष्ट संख्या में पाई गई हैं। ये भी उस युग की मूर्तिकला की अति सुन्दर और प्रशंसनीय नमूने हैं।

3.18:2 गुहामंदिर

इस काल में साहित्य के भांति कला के क्षेत्र में भी प्रगति जारी रही। इस युग के शासकों को भवन–निर्माण का बहुत शौक था। मंदिर निर्माण कला तो इस युग में पराकाष्ठा पर पहुँच गई। चट्‌टानों को काटकर गुहामंदिर बनाने की कला भारत में बहुत लोकप्रिय थी और प्राचीनकाल से चली आ रही थी। गुप्तकाल में उनकी विशेष उन्नति हुई थी और राजपूतकाल तक यह प्रक्रिया जारी रही। एलोरा के गुहामंदिर के निर्माण

में कैलाशनाथ के मंदिर का भी श्रेष्ठ स्थान है। इसका निर्माण राष्ट्रकूटनरेश कृष्ण प्रथम (756–773) ने कराया था। मंदिर के कलात्मक वैभव का अनुभव उसे देखकर ही किया जा सकता है। सम्पूर्ण भारत में इतनी विशाल और सुन्दर कलाकृति अन्यत्र देखने को नहीं मिलती।

3.18:3 मंदिर कला

मंदिर निर्माण कला का इस युग में विशेष रूप से विकास हुआ। शिल्पशास्त्र पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये। प्रायः मंदिर उन ग्रंथों में प्रतिपादित सिद्धान्तों और शैली के अनुसार ही बनाये जाते थे। मंदिर का मुख्य भाग जिसमें देवमूर्ति प्रतिष्ठित होती थी, गर्भगृह कहलाता था। उसके सामने एक विशाल कक्ष होता था। जिसमें भक्त लोग एकत्र होते थे। उसे मण्डप कहते थे। मण्डप और गर्भगृह को जोड़ने वाला भाग अन्तराल कहलाता था। मण्डप के आगे एक डयोढ़ी होती थी जिसे अर्द्ध–मण्डप कहते थे। गर्भगृह के ऊपर ऊँची मीनार बनी होती थी। मंदिर के अन्य भागों के ऊपर भी छोटी–छोटी मीनारें बनाई जाती थी।

जोधपुर से 32 मील दूर ओसिया में सोलह ब्राह्म तथा जैन मंदिर हैं। चित्तौड़गढ़ में कालिका माता का मंदिर और उदयपुर से कुछ मील दूर एकलिंग मंदिर है। आबू पर्वत के जैन मंदिरों में सफेद संगमरमर के हाल,ग्यारह संकेन्द्रिक चक्रों का केन्द्रीय गुम्बज और कढ़ाईदार, मेहराबदार छतें और स्तम्भ है। इन सब में उच्चकोटि की कला दिखाई देती है। प्रत्येक स्थान पर सुन्दर मूर्तियाँ हैं। गुम्बज के विषय में फर्गुसन ने कहाः ''यह एक अधखिले कमल की भांति दिखाई देता है जिसके पंख इतने पतले, पारदर्शक और इतनी अच्छी तरह बनाए गए हैं कि सराहना करते आंखें टिकी रह जाती हैं।'' ग्वालियर में सास–बहु मंदिर सुनाक में नीलकण्ठ मंदिर और पाटन से कुछ मील दूर मोढेरा में सूर्य मंदिर है। स्तम्भों वाले और नोकदार मेहराबों वाले प्रवेश स्थानों, परिणाम की सुन्दरता और आध्यात्मिक शोभा के वातावरण के लिए मंदिर विशिष्ट है। मंदिर की सारी रचना ही प्रेरणा की ज्वलन्त शिखा से उद्दीप्त है।

छटीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक दक्षिणी भारत में द्रविड़ शैली के मंदिर भारी संख्या में बनाये गये। इन मंदिरों में तीन विशिष्टता होती है। प्रथम इनके प्रवेश द्वार अति विशाल और भव्य बनाये जाते हैं जो 'गोपुरम' कहलाते हैं, दूसरी विशिष्टता इनके मण्डपों में दृष्टिगोचर होती है। इनके विस्तार युक्त अलंकृत मण्डप अनेक विशाल स्तम्भों पर टिके होते हैं। तीसरी विशिष्टता इनके विमानों में पायी जाती है जो पिरामिडों जैसी आकृति के बने हैं। सरल रेखाओं द्वारा अनेक पट्टियों में विभक्त हैं। इन पट्टियों पर बेल, बूटे, हाथी, देवी–देवता तथा भक्त स्त्री–पुरूषों की आकृतियाँ इतने कलापूर्ण ढंग से उत्कीर्ण की हुई हैं कि वे राजमेमारों के बजाए हाथी दांत की कलात्मक, रूचिपूर्ण एवं आकर्षक बारीक काम की वस्तुएँ वाले कुशल कारीगरों के हाथ से तैयार की हुई प्रतीत होती हैं। सम्पूर्ण विमान बेल, बूटों, प्रतिमाओं और मूर्तियों से इतना अधिक भरा होता है कि प्रयत्न करने पर भी सारी विमानों में एक छोटा सा भाग तक खाली नहीं दिखाई देता।

इस युग में सहस्त्रों छोटे–बड़े मंदिर भारत के हर भाग में बनाए गये। अनेक राजपूत राजाओं ने शानदार महल, भव्य दुर्ग पक्के घाट, जलाशय, झील, बांध और नहरें तैयार कराई जिनमें अनेक अभी तक स्थापत्य कला के भव्य स्मारकों प्रतिवर्ष सहस्त्र 'देशी–विदेशी यात्रियों को आकृषित करते रहते हैं। ग्वालियर, चित्तौड़, रणथम्भौर, कालिंजर और मांडू के विशाल दुर्ग आज भी अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर रहे हैं। मथुरा के

मंदिर की भव्यता और सोमनाथ के मंदिर की अभेद्य दृढ़ता देखकर महमूद गजनवी और उसके साथी आश्चर्यचकित और स्तम्भित रह गये थे।

मंदिरों के निर्माण में ईंट, पत्थर और शिलाखण्ड़ों का प्रयोग किया जाता था। पर्वतों को काटकर भी गुहा मंदिर बनवाये गये थे। जैन, बुद्ध और ब्राह्मणों के संरक्षण में ये मंदिर तैयार किये गये थे। मंदिरों के निचले भाग विमान और ऊपरी भाग शिखर कहलाते थे। इन्हें विमान इस भावना को लेकर कहा जाने लगा कि जिस प्रकार देवता विमानों में बैठकर आकाश में विचरण करते माने जाते हैं वैसे ही पृथ्वी पर बनाये गये इन विमान रूपी भव्य मंदिर में निवास करते हैं। बौद्ध स्तूपों पर चैत्यों के शिखरों को देखकर ही मंदिरों में भी शिखर बनाए जाने लगे। दक्षिण के कुछ मंदिरों को रथ भी कहा जाता है। राजपूत शासकों ने मंदिर बनाने के लिए अपार धन दान दिया। कला समालोचकों ने उनकी खूब प्रशंसा की है।

राजपूत कला के कुछ महत्वपूर्ण स्थल राजस्थान के चित्तौड़गढ़, रणथम्भौर और कुम्भलगढ़ के किले, मध्यप्रदेश में माण्डु, ग्वालियर, चन्देरी और असीरगढ़ के किले हैं। राजपूत घरेलू शिल्पकला के उदाहरण, ग्वालियर में मान सिंह के महल, अम्बर (जयपुर) के स्मारक और उदयपुर में झील में महल है। अनेक राजपूत नगर और प्रासाद किलों में, पहाड़ियों के बीच या सुन्दर कत्रिम झीलों के किनारे पर स्थित हैं। राजस्थान में जोधपुर दुर्ग एक ऊँची और अगम्य पहाड़ी पर बना हुआ है और उसके उठते हुए बुर्ज और मोर्चे है। बाबर ने भी उन्हें ''चमकदार ताँबे की पट्टियों से ढंके गुम्बज'' कहकर उनकी प्रशंसा की है। राजपूतकालीन कला एवं स्थापत्य कला से शासकों की अभिरूचि एवं इस युग की कलात्मक सफलताओं का आभास होता है।

सातवीं शताब्दी से सम्पूर्ण भारत में स्थापना कला में एक नया मोड़ मोड़ आया तथा उत्तर, मध्य एवं दक्षिण दक्षिण की कला कृतियां अपनी निजी विशेषताओं के साथ प्रस्तुत की गयी। अनेक शास्त्रीय ग्रन्थों—मानसोल्लास मानसार, समरांगणसूत्रधार अपराजितपृच्छा, शिल्पकला, सुप्रभेवदागम, कमिनिकागम आदि की रचना हुई तथा इनमें मंदिर वास्तु के मानक निर्धारित किये गये। इनके अनुपालन में कलाकारों ने अपनी कृतियां प्रस्तुत की। शिल्पग्रन्थों में स्थापत्य कला के क्षेत्र में तीन प्रकार के शिखरों का उल्लेख मिलता है, जिनके आधार पर मंदिर निर्माण की तीन शैलियों का विकास हुआ—

1—नागर शैली

2—द्रविड़ शैली

3—वेसर शैली

उपर्युक्त सभी नाम भौगोलिक आधार पर दिये गये प्रतीत होते हैं। नागर शैली उत्तर भारत की शैली थी जिसका विस्तार हिमालय से विन्ध्य पर्वत तक दिखाई पड़ता है। द्रविड़ शैली का प्रयोग कृष्णा नदी से कन्याकुमारी तक मिलता है। विन्ध्य तथा कृष्णा नदी के बीच के क्षेत्र में वेसर शैली प्रचलित हुई। चूँकि इस क्षेत्र में चालुक्य वंश का आधिपत्य रहा, अतः इस शैली को चालुक्य शैली भी कहा जाता है। वेसर का शाब्दिक अर्थ ''खच्चर'' होता है जिसमें घोड़े तथा गधे दोनों का मिला—जुला रूप है। इसी प्रकार वेसर शैली के तत्व नागर तथा द्रविड़ दोनों से लिए गये हैं। पी.के. आचार्य 'वेसर' का अर्थ नाक में पहनने वाला आभूषण मानते हुए यह प्रतिपादित करते हैं कि चूँकि इसका आकार आधार से शिखर तक वृत्त के आकार का गोल होता था, अतः इसकी संज्ञा 'वेसर' हुई। इसी प्रकार वास्तुशास्त्र के अनुसार नागर मंदिर आधार से सर्वोच्च अंश तक, चतुरस (चौकोर) तथा द्रविड़ अष्ठकोण (अष्ठास) होने चाहिए।

नागर तथा द्रविड़ शैलियों का मुख्य अन्तर शिखर सम्बन्धी है, जिसे 'विमान' कहा जाता है। शिल्पशास्त्र के ग्रन्थों में विमान को सात तलों वाला बताया गया है। नागर शैली में आयताकार गर्भगृह के ऊपर ऊँची मीनार के समान गोल या चौकोर शिखर बनाये जाते थे। जो त्रिकोण की भांति ऊपर पतले होते थे। द्रविड़ शैली के शिखर वर्गाकार तथा अलंकृत गर्भगृह के ऊपर बनते हैं। ये कई मंजिलों से युक्त पिरामिड़ाकार हैं। बाद में द्रविड़ मंदिरों को घेरने वाली प्राचीर में चार दिशाओं में विशाल तोरण द्वार बनाये गये। इनके ऊपर बहुमंजिले भवन बनने लगे जिन्हें देवी–देवताओं की प्रतिमाओं से अलंकृत किया गया। ये कभी–कभी विमान से भी ऊँचे होते थे। तोरण द्वार पर बनी इन अलंकृत एवं बहुमंजिली रचनाओं को 'गोपुरम' नाम दिया गया है।

पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में सर्वत्र नागर शैली के मंदिर बनाये गये हैं। इनमें दो प्रमुख लक्षण है। अनुप्रस्थिका (योजना) तथा उत्थापन (ऊपर की दिशा में उत्कर्ष या उँचाई) छटीं शताब्दी के मंदिरों में स्वस्तिकाकार योजना सर्वत्र दिखाई देती हैं। अपनी ऊँचाई के क्रम में शिखर उत्तरोत्तर ऊपर की ओर पतला होता गया है। दोनों पार्श्वों में क्रमिक रूप से निकला हुआ बाहरी भाग होता है जिसे 'अस्र' कहते हैं। इनकी ऊँचाई शिखर तक जाती है। आयताकार मंदिर के प्रत्येक ओर रथिका पर आमलक स्थापित किया जाता है, वैसे सम्पूर्ण रचना को अत्यन्त आकर्षक बनाता है।

राजपूत शासक बड़े उत्साही निर्माता थे। अतः इस काल में अनेक भव्य मंदिर, मूर्तियाँ एवं सुदृढ़ दुर्गों का निर्माण किया गया जो कलाकृति एवं सुन्दरता के लिए काफी प्रसिद्ध हैं। 8 वीं शताब्दी से 13 वीं शताब्दी के मध्य बड़े पैमाने पर मंदिरों का निर्माण हुआ। उड़ीसा राज्य में स्थित भुवनेश्वर, पुरी तथा कोणार्क के मंदिर इसी काल के निर्मित हैं। भुवनेश्वर के प्रमुख मंदिर हैं–परशुरामेश्वर मंदिर, मुक्तेश्वर तथा लिंगराज मंदिर इत्यादि। लिंगराज मंदिर उड़ीसा शैली का सबसे अच्छा उदाहरण है। इसका निर्माण दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ था। लिंगराज मंदिर के ही अनुकरण पर बना भुवनेश्वर का अनन्तवासुदेव मंदिर है जो यहाँ का एक मात्र वैष्णव मंदिर है। वर्तमान में भुवनेश्वर में लगभग पाँच सौ मंदिर है जो गौरव तथा विशिष्टता की दृष्टि से अनुपम हैं। लिंगराज मंदिर के अतिरिक्त पुरी का जगन्नाथ मंदिर तथा कोणार्क स्थित सूर्यमंदिर भी उड़ीसा शैली के श्रेष्ठ उदाहरण है। जगन्नाथ मंदिर दोहरी दीवारों वाले प्रांगण में स्थित है चारों दिशाओं में चार विशाल द्वार बने हैं। मंदिर का मुख्य द्वार पूर्व की ओर स्थित है तथा उसके सामने स्तम्भ हैं। मंदिर की 400×350 वर्गफुट की परिधि में छोटे–छोटे कई मंदिर बनाये गये हैं। पुरी का जगन्नाथ मंदिर हिन्दू धर्म के पवित्रतम तीर्थ स्थलों में गिना जाता है।

पुरी से लगभग बीस मील दूरी पर स्थित कोणार्क का सूर्य मंदिर वास्तुकला की एक अनुपम रचना है। इसका निर्माण गंगवंशी शासक नर सिंह प्रथम (1238–1264 ई.) ने करवाया था। एक आयताकार प्रांगण में यह मंदिर रथ के आकार पर बनाया गया है। गर्भगृह तथा मुखमण्डप को इस तरह नियोजित किया गया है कि वे सूर्य रथ प्रतीत होते हैं। नीचे एक बहुत ऊँची कुर्सी है जिस पर सुन्दर अलंकरण मिलता है। उसके नीचे चारों ओर गज पंक्तियां उत्कीर्ण की गयी हैं। प्रवेश द्वार पर जाने के लिए सीढ़ियां बनायी गयी हैं। इसके दोनों ओर उछलती हुई अश्व प्रतिमायें उस रथ का अभास करती हैं जिस पर चढ़कर भगवान सूर्य आकाश में विचरण करते हैं। मंदिर के बाहरी भाग पर विविध प्रकार की प्रतिमायें उत्कीर्ण की गयी हैं। प्रतिमा में रथ के पहियों पर भी उत्कीर्ण हैं। कुछ मूर्तियां अत्यन्त अश्लील हैं जिन पर तांत्रिक विचारधारा का प्रभाव माना जा सकता है। संभोग तथा सौन्दर्य मुक्त प्रदर्शन यहां दिखाई देता हैं। अनेक मूर्तियों के सुस्पष्ट श्रृंगारिक चित्रण के कारण इस मंदिर को 'काला पगोडा' (इसंबा चंहवकं) कहा गया है।

3.19 गुर्जर–प्रतिहार स्थापत्य

गुर्जर–प्रतिहार शासकों के निर्माण कार्यों का कुछ संकेत उनके लेखों में हुआ है। वाउक की जोधपुर प्रशस्ति से पता चलता है कि उसने वहां सिद्धेश्वर महादेव का मंदिर बनवाया था। इसी प्रकार मिहिर भोज की ग्वालियर प्रशस्ति से सूचित होता है कि उसने अपने अन्तःपुर में भगवान विष्णु के मंदिर का निर्माण करवाया था। इन उल्लेखों से प्रकट होता है कि प्रतिहार शासकों की निर्माण कार्यों में गहरी अभिरूचि थी। प्राचीन मंदिरों में शिव, विष्णु, सूर्य, ब्राह्मा, अर्धनारिश्वर, हरिहर, नवग्रह, कृष्ण तथा महिषमर्दिनी दुर्गा के मंदिर उल्लेखनीय हैं। इन पर गुप्त स्थापत्य का भी प्रभाव देखने को मिलता है।

ओसिया के मंदिरों की दो कोटियां दिखाई देती हैं। प्रथम कोटि के मंदिर जिनकी संख्या लगभग बारह हैं, आठवीं–नवीं सदी में बनवाए गये थे। इनमें शिखरों का विकास दिखाई पड़ता है तथा स्थानीय लक्षणों का अभाव है। दूसरी कोटि के मंदिरों में स्थानीय विशेषतायें मुख्य हो गयी हैं। प्रत्येक का आकार एक दूसरे से भिन्न है अर्थात किन्हीं दो मंदिरों में परस्पर समानता नहीं है। नागभट्ट द्वितीय के समय झालरपाटन मंदिर का निर्माण हुआ। इसी प्रकार ओसिया ग्राम के भीतर तीर्थंकर महावीर का एक सुन्दर मंदिर है जिसे वत्सराज के समय (770–800 ई.) में बनवाया गया था। इसमें भव्य तोरण लगे हैं तथा स्तम्भों पर तीर्थंकर की प्रतिमायें खुदी हुई हैं।

ओसिया के मंदिरों में सूर्य मंदिर सर्वाधिक उल्लेखनीय है इस मंदिर की प्रमुख विशेषता इसके अनुभाग में है। शिखर का आकार तथा अलंकरण प्रशंसनीय है। स्तम्भों के आधार तथा शीर्ष पर मंगलकलश स्थापित है। यह ओसिया मंदिर का सिरमौर माना जाता है तथा अपनी भव्यता के लिए प्रसिद्ध है। इस मंदिर के उपरान्त सचियमाता तथा पिपला माता के मंदिर का उल्लेख किया जा सकता है जिन में राजपूताना शैली का क्रमिक विकास दिखाई देता है। मंदिर के केन्द्रीय मण्डप में अष्टकोणीय स्तम्भ है जो गुम्बदाकार छत का भार वहन करते हैं। पिपला माता मंदिर में तीस स्तम्भ हैं। ओसिया मंदिर का प्रवेश द्वार सीधे गर्भगृह में खुलता था। अतः कलाकारों ने उसकी नक्काशी पर विशेष ध्यान दिया। गर्भगृह के द्वार पर प्रतीक मूर्तियां तथा पौराणिक कथा में उत्कीर्ण हैं। ओसिया के मंदिर मूर्तिकारी के लिए भी प्रसिद्ध है। सूर्य मंदिर के बाहर अर्धनारीश्वर शिव, सभामण्डप की छत में वंशी बजाते तथा गोवर्धन धारण किए हुए कृष्ण की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। गोवर्धन लीला की यह मूर्ति राजस्थानी कला की अनुपम कृति मानी जाती है।

3.20 चालुक्य कालीन स्थापत्य

चालुक्य शासक भी उत्साही निर्माता थे तथा उनके काल में अनेक मंदिर एवं धार्मिक स्मारक बनवाये गये। मंदिर निर्माण के पुनीत कार्य में उनके राज्यपालों, मन्त्रियों एवं धनाढ़य व्यापारियों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण समुदाय की कार्यनिष्ठा एवं प्रत्येक व्यक्ति की लगन के फलस्वरूप इस समय गुजरात के अन्हिलवाड़ा तथा राजस्थान के आबू पर्वत पर कई भव्य मंदिर का निर्माण करवाया गया। ये मुख्यतः जैन धर्म से सम्बन्धित हैं।

गुजरात के प्रमुख मंदिरों में मेहसाना जिले में स्थित 'मोडेहरा' का सूर्य मंदिर विशेष उल्लेखनीय है। इसका निर्माण ग्यारहवीं सदी में हुआ था। अब यह मंदिर नष्ट हो गया है, केवल इसके ध्वंशावशेष ही विद्यमान हैं। निर्माण में सुनहरे बलुए पत्थर लगे हैं। इसमें स्तम्भों पर आधारित खुला द्वार मण्डप है। इसक्रम में पाटन

स्थित सोमनाथ के मंदिर का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसका निर्माण इसी काल में हुआ था। इस वंश के शासक कर्ण ने अन्हिलवाड़ा में कर्णमेरू नामक मंदिर बनवाया था। सिद्धपुर स्थित रूद्रमहाकाल का मंदिर भी वास्तुकला का सुन्दर उदाहरण है। अन्हिलवाड़ा के निकट सुनक स्थित नीलकंठ महादेव मंदिर भी एक विशिष्ट रचना है। इसी का समकालीन काठियावाड़ का नवलाखा मंदिर कलात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट है। सोलंकी नरेश भीमदेव प्रथम के मंत्री विमल शाह ने ग्यारहवीं शती में विमलशाही नामक मंदिर बनवाया था।

विमलशाही मंदिर के समीप ही दूसरा मंदिर स्थित है इसे तेजपाल ने बनवाया था। निर्माता के नाम पर ही इसे 'तेजपाल मंदिर' कहा जाता है। यह भी अत्यन्त भव्य एवं सुन्दर है। मंदिर में ठोस संगमरमर की लटकन है जो स्फटिकमणि से बनी प्रतीत होती है। उसके चारों ओर गोलाई में खोदकर कमल पुष्प बनाया गया है। लम्बवत पाषाण पर खुदी हुई अनेक आकृतियां मनोहर हैं। गर्भगृह में नेमिनाथ की प्रतिमा स्थापित हैं तथा कक्ष के द्वार मण्डपों पर उनके जीवन से ली गयी अनेक गाथायें उत्कीर्ण हैं।

3.21 बुन्देलखण्ड के चन्देलकालीन मंदिर

बुन्देलखण्ड का प्रमुख स्थल मध्य प्रदेश के छतरपुर में स्थित खुजराहो नामक स्थान है। जहां चन्देल राजाओं के समय में नवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक अनेक सुन्दर तथा भव्य मंदिरों का निर्माण करवाया गया। ये पूर्वमध्ययुगीन वास्तु एवं तक्षणकला के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। खुजराहों में 25 मंदिर आज भी विद्यमान हैं जिनका निर्माण ग्रेनाइट तथा लाल बलुआ पत्थर से किया गया है। ये शैव, वैष्णव एवं जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। मंदिरों का निर्माण ऊँची चौकी पर हुआ है जिसके ऊपरी भाग को अनेक अलंकारों से सजाया गया है। चौकी या चबूतरे पर गर्भगृह, अन्तराल, मण्डप तथा अर्धमण्डप हैं। शिखरों पर छोटे–छोटे शिखर संलग्न है जिन्हें उरूश्रृंग कहा जाता है। ये छोटे आकार के मंदिर के ही प्रतिरूप हैं। प्रत्येक मंदिर में मण्डप, अर्धमण्डप तथा अन्तराल मिलते है। कुछ मंदिरों में विशाल मण्डप बने हैं जिसे उन्हें 'महामण्डप' कहा जाता है। मंदिरों के प्रवेश–द्वार को मकर–तोरण कहा गया है क्योंकि उनके ऊपर मकर मुख की आकृति बनी हुई है।

विकास क्रम की दृष्टि से खुजराहो मंदिरों के कई समूहों में बांटा जा सकता है। वामन तथा आदिनाथ मंदिर प्रारम्भिक अवस्था के सूचक हैं। दोनों की बनावट एक जैसी है। दूसरे समूह के मंदिर जगदम्बा, चतुर्भुज, पार्श्वनाथ, विश्वनाथ तथा अंतिम सीढ़ी पर कन्डारिया महादेव मंदिर है। इनकी बनावट और रचना शैली मूलतः समान है। अन्तिम चार के गर्भागृह की परिधि में प्रदक्षिणापथ से जुड़ा हुआ मण्डप है विश्वनाथ तथा चतुर्भुज मंदिर एक जैसे हैं। खुजराहो के मंदिरों में कन्डारिया महादेव मंदिर सर्वश्रेष्ठ है। इसमें चौकोर अर्धमण्डप तथा वर्गाकार मण्डप है। मण्डप के बाजू का भाग गर्भगृह के चारों ओर विस्तृत है तथा बारजे के वातायन से जुड़ा हुआ है। गर्भगृह के ऊपर एक ऊँचा शिखर तथा कई छोटे–छोटे शिखन बनाये गये हैं। उनकी दीवारों पर बहुसंख्यक मूर्तियां उत्कीर्ण मिलती हैं। एक सामान्य गणना के अनुसार यहां खुदे हुए रूप चित्रों की संख्या 900 के लगभग है। इसके प्रवेश द्वार भी काफी अलंकृत हैं। इस प्रकार कन्डारिया महादेव मंदिर खुजराहो के मंदिरों का सिरमौर है।

खुजराहो मंदिर में देवी–देवताओं की मूर्तियों के साथ–साथ कई दिग्पालों, गणों, अप्सराओं, पशु–पक्षियों आदि की बहुसंख्यक मूर्तियां भी प्राप्त होती हैं। अप्सराओं या सुन्दर स्त्रियों की मूर्तियों ने यहां की कला को अमर बना दिया है। ये मंदिर के जंघाओं, रथिकाओं, स्तम्भों दीवारों आदि पर उत्कीर्ण हैं। उन्हें अनेक

मुद्राओं और हाव–भावों में प्रदर्शित किया गया है। कहीं वे देवताओं के पार्श्व में तथा कहीं हाथों में दर्पण, कलश आदि के लिए हुए दिखाई गयी हैं। कहीं अप्सराओं के रूप में वे विभिन्न मुद्राओं में नृत्य कर रही हैं। पैर से कांटा निकालती हुई नायिका, अलस नायिका, माता और पुत्र सहित बहुसंख्यक मिथुन आकृतियां खोदकर बनायी गयी है जो अत्यन्त कलापूर्ण एवं आकर्षक हैं। कुछ मूर्तियां अत्यन्त अश्लील हो गयी है जिन पर सम्भवतः तांत्रिक विचारधारा का प्रभाव लगता है। इस प्रकार समग्र रूप से खुजराहो के मंदिर अपनी वास्तु तथा तक्षण दोनों के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। प्रकृति और मानव जीवन की ऐहिक सौन्दर्यराशि को यहां के मंदिरों में शाश्वत रूप प्रदान कर दिया गया है। शिल्प श्रृंगार का इतना प्रचुर तथा व्यापक आयाम भारत के अन्य किसी कलाकेन्द्र में शायद ही देखने को मिले।

3.22 राजपूतकालीन चित्रकला

चित्रकला का सम्बन्ध मानव के भावनात्मक दैनिक जीवन से है। मनुष्य ने विभिन्न प्रकार के सुन्दर चित्र बनाकर अपनी भावनाओं और हर्ष को व्यक्त किया है। गुप्तकाल में चित्रकला की असाधारण प्रगति और उन्नति हुई। उसके पश्चात् राजपूत युग के प्रारम्भ में अजन्ता और बाघ के कतिपय भित्तिचित्र बनाये गये। इस युग की चित्रकला में मानव स्वभावों के चित्रण में नुकीलापन और तीखापन आ गया था। क्षेत्रीय प्रवृत्ति का भी प्रभाव पड़ा। मालवा, गुजरात और राजस्थान में चित्रकला की विशिष्ट परम्पराएँ प्रारम्भ हुई। फलतः चित्रकला की विविध शैलियों का विकास हुआ है। विशेषकर राजपूत युग उत्तरार्ध में और मुगलकाल में ये शैलियां अत्यधिक विकशित हुई। इन शैलियों में राजपूत शैली और गुजरात या जैन शैली और मालवा शैली थी। आगे चलकर राजपूत शैली में राजस्थानी, कश्मीरी और कांगड़ा शैली का विकास हुआ।

गुजरात शैली में जैन मतावलम्बियों के जीवन और धर्म से सम्बन्धित चित्र हैं। राजपूत और मालवा शैली में हिन्दू धर्मशास्त्रों में वर्णित कथानकों व घटनाओं के दृश्य, रासलीला, राग–रागिनी, नायक–नायिका भेद सम्बन्धी विषय तथ जन–जीवन के दृश्य चित्रित हैं। सजावट के लिए पत्रावली पुष्पावली और पशु–पक्षियों के चित्र भी अंकित किये जाते थे।

3.23 सारांश

राजपूतकालीन संस्कृति अनेक युगों एवं विशेषता से परिपूर्ण थी। इस काल में सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। राजपूत राजाओं ने शासन व्यवस्था के क्षेत्र में अनुकरणीय उदाहरण पेश की। उन्होंने शिक्षा एवं साहित्य की प्रगति में भी विशेष रूचि ली और राजकीय संरक्षण प्रदान की इस काल में अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये जो कि एक अनमोल धरोहर के समान है। राजपूत काल में सर्वाधिक प्रगति कला और स्थापत्य कला के क्षेत्र में हुई। इनमें मंदिर निर्माण कला विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वास्तव में राजपूत काल भारतीय कला एवं संस्कृति का पुनरूत्थान काल था।

3.24 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. राजपूतों के शासन व्यवस्था का वर्णन कीजिये।
2. राजपूतकालीन सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति की व्याख्या कीजिये।
3. राजपूत काल में शिक्षा एवं साहित्यिक प्रगति का उल्लेख कीजिये।

4. राजपूतकालीन कला एवं स्थापत्यकला का वर्णन कीजिये।
5. राजपूत कला में मंदिर निर्माण के विभिन्न शैलियों का उल्लेख किजिये।

3.25 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. के.सी.श्रीवास्तव– प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति
2. बी.एन.सिंह लूनिया–प्राचीन भारतीय संस्कृति
3. बी.बी.सिन्हा–भारतीय इतिहास
4. के.एल.खुराना–भारत का सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक इतिहास

इकाई एक : सल्तनत कालीन संस्कृति

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 वास्तुकला

1.3.1 संरचनात्मक स्वरुप

1.3.1.1 मेहराब और गुम्बद

1.3.1.2 भवन निर्माण सामग्री

1.3.1.3 साज-सज्जा

4.3.2 शैलीगत विकास

4.2.2.1 प्रारंभिक स्वरुप

4.2.2.2 खल्जी काल

4.2.2.3 तुगलक़ काल

4.2.2.4 अंतिम चरण

4.4 चित्रकला

4.4.1 भित्ति चित्र

4.4.2 पाण्डुलिपि चित्रण

4.4.3 सुलेख कला

4.5 संगीत

4.6 सूफीवाद एवं भक्ति

4.6.1 सूफीवाद

4.6.2 भारत में सूफी मत का विकास

4.6.3 चिश्ती सिलसिला

4.6.4 सुहरावर्दी सिलसिला

4.6.5 भक्ति आन्दोलन

4.7 विशेष शब्दावली

4.8 प्रस्तावित अध्ययन सामग्री

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संस्कृति शब्द की उत्पत्ति अंग्रेजी शब्द के कल्चर (Culture) से लिया गया है| जिसक अर्थ फसलों एवं पशुओं की उत्पत्ति तथा धार्मिक उपासना के कार्य से सम्बंधित था, क्योकि मानव जीवन के आरंभिक समय में मनुष्य ये ही कार्य करता था| सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि संस्कृति स्वाभाव का भाग नहीं बल्कि यह मनुष्य या समाज के अधिग्रहण से सम्बंधित है| और इतिहासकार प्रायः संस्कृति को एक ऐसे तत्व के रूप में परिभाषित करते हैं जो किसी क्षेत्र या काल के समाज के बारे में बताती है| यदि संस्कृति उपलब्धियों के सन्दर्भ में सोची जाय तो उपलब्धियों की परिभाषा भी उतनी ही आवश्यक हो जाती है, जितनी संस्कृति की| संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों का समग्र रूप से एक नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने कार्य करने, बोलने, साहित्य, कला, वास्तुकला, चित्रकला इत्यादि में परिलक्षित होती है| इतिहासकार इसे किसी क्षेत्र काल के समाज की थाती कहते हैं| इस तरह संस्कृति किसी समाज की सामाजिक परंपरा का प्रतीत होती है|

यदि हम भारत की बात करें तो यहाँ की सांस्कृतिक परंपरा अत्यंत संपन्न रही है| भारतीय सभ्यता की एक अन्य विशेषता आत्मसात करने की प्रवृत्ति है| इसी विशेषता के कारण विभिन्न जातियों के रूप में यूनानी, शक, कुषाण, हुण, तुर्क, अफगान, मंगोल, आदि भारत की ओर आये| ये लोग अपने साथ अपनी सांस्कृतिक परम्पराएँ भी लाये| इन सभी ने मिल जुल कर कालांतर में एक समग्र संस्कृति का विकास किया है, और भारतीय संस्कृति को अत्यधिक विविधता प्रदान की है| इस मेलजोल से अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिसमे इस मिलीजुली संस्कृति के विकास को बढाया| आज ये तत्व भारत की अवधारणा का आधार बन गए हैं| इसी कड़ी में यहाँ हम भारत में तुर्कों के आगमन के पश्चात् सल्तनत कालीन संस्कृति को समझने और मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे|

सल्तनत काल के सांस्कृतिक विकास को विकास के एक नए चरण के रूप में देखा जा सकता है| जब ये तुर्क भारत आये तब उनकी आस्था केवल इस्लाम में ही नहीं थी, बल्कि शासन, कला, वास्तुकला, धार्मिक विश्वासों, साहित्य इत्यादि के बारे में उनके विचार भी इस्लामी थे| यहाँ आने पे उनके इन विचारों का समन्वय भारतीय कला, वास्तुकला, धार्मिक विश्वास साहित्य इत्यादी के साथ हुआ, जिससे एक नयी समन्वित संस्कृति का जन्म हुआ| परन्तु यह समन्वय की प्रक्रिया काफी लम्बी थी, जिसमे मंदिरों इमारतों की तोड़-फोड़ के साथ-साथ निर्माण की प्रक्रिया सतत रूप से चलती रही| इसके साथ ही अन्य क्षेत्रों में भी आपसी लेन देन की प्रक्रिया शुरू हुई| जैसे कला, वास्तुकला, संगीत, साहित्य, धार्मिक विश्वास, रीती-रिवाज़, और समारोहों में हमें देखने को मिलता है| इस प्रक्रिया में अनेक उतार चढ़ाव भी आये जिनका स्वरुप अलग-अलग कालों में अलग-अलग रहा|

4.2 उद्देश्य

इस अध्याय में हमें मध्यकालीन भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को समझ सकेगे जो निम्न हैं—

- मध्यकाल में वास्तुकला के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तन को समझने का प्रयास करेंगे|
- कुछ चुने हुए उदाहरण के माध्यम से इमारतों पर की गयी कलात्मकता को समझेंगे|
- मध्यकालीन संस्कृति के अंतर्गत चित्रकला एवं उसकी विभिन्न कलात्मकता का निरिक्षण कर सकेंगे|

- संगीत के क्षेत्र में सल्तनत कालीन सुल्तानों की रूचि एवं अन्य संगीत की चर्चा करेंगे|
- सल्तनत कालीन संस्कृति के अंतर्गत साहित्य एवं मध्यकालीन धार्मिक विश्वासों में सूफीवाद एवं भक्ति आन्दोलन को समझेंगे|

4.3 वास्तुकला

हिंदुस्तान में नए शासक वर्ग के आगमन और दिल्ली सल्तनत की स्थापना ने उत्तरी भारत की सांस्कृतिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये| नए संरचनात्मक स्वरुप मेहराब और गुम्बद इमारतों के निर्माण की सामग्री, दीवारों पर की गयी कलाकारी का प्रयोग किया गया| तुर्की शासकों ने फारसी परम्पराओं से परिचित कराया जो सामान रूप से विकसित थीं| इसके अतिरिक्त अनेक क्षेत्रीय शैली का भी विकास हुआ| यह सत्य है की ये फारसी परम्पराएँ उस समय भारत में प्रचलित सांस्कृतिक परम्पराओं के बिलकुल भिन्न थीं, परंतु मध्य एशिया में प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्रों से विद्वानों, कलाकारों और गायकों के आगमन से ये परम्पराए मिलकर एक नयी संस्कृति को जन्म दे रही थीं|

4.3.1. संरचनात्मक स्वरुप

4.3.1.1 मेहराब और गुम्बद

उत्तर भारत में 13वीं सदी के बाद इमारतों के निर्माण में पक्की इंटों का प्रयोग आरम्भ हो गया था, और अब भवनों के निर्माण में तेज़ी आ रही थी| इसका मुख्य कारण चुने-गारे का सीमेंट के रूप में प्रयोग आरम्भ हो चूका था| इसके साथ ही वैज्ञानिक तरीके से मेहराबों को बनाने के लिए ईंटो को वक्राकार रूप में लगाया जाने लगा| इन इंटों को इस रूप में जोड़ने के लिए अच्छे सीमेंट की आवश्यकता थी, जोकि चुने और गारे के रूप में मौजूद था| इन वैज्ञानिक तरीके से बने मेहराब की छतों और शिखरों का स्थान गुम्बद ने ले लिया| मेहराब को विभिन्न रूप में बनाया गया, परन्तु उसके नुकीले स्वरुप के यथावत रहने दिया गया| मेहराब में एक अन्य प्रयोग चार कोनों वाला मेहराब जो तुगलक सुल्तानों द्वारा अपनाया गया, यह अंत तक प्रचलन में रहा|

गुम्बद निर्माण में भी विशेष तकनीक की अवश्यकता थी| एक ऐसे तकनीक की अवश्यकता थी जो गोलाकार गुम्बद के निर्माण के लिए कमरे की वर्गाकार अथवा आयताकार दीवारों को गोलाकार गुम्बद के रूप में परिवर्तित कर सके| इसके लिए एक चोर से दूसरी चोर तक वर्ग विन्यास को बगली डाट की मदद से बहुभुजीय योजना में बदल दिया गया| बाद में 15वीं सदी में इसमें और परिवर्तन किये गए|

4.3.1.2 भवन निर्माण सामग्री

तुर्कों के आगमन के बाद पहली बार खान से निकले हुए पदार्थों का प्रयोग इमारतों के निर्माण में किया गया| पक्की इमारतों में पत्थरों मा अत्यधिक प्रयोग हुआ| नीव में खुरदुरे एवं छोटे पत्थरों का प्रयोग किया गया, और उपरी इमारतों के लिए उबड़-खाबड़ पत्थरों का प्रयोग हुआ| प्लास्टर के लिए खड़िया (जिप्सम) का प्रयोग हुआ| और चूने के प्लास्टर का प्रयोग पानी रिसने वाले स्थान पर किया गया|

4.3.1.3 साज-सज्जा

इस्लामी भवनों में साज सज्जा केवल सुलेख, ज्यामिति, और फूल-पत्तियों या बेल तक ही सिमित थे| सुलेख के लिए जिस लिपि का प्रयोग किया जाता उसे कूफी कहा जाता है| इसके साथ ही पत्थरों पर गचकारी और चित्रकला का भी प्रयोग किया गया है|

4.3.2. शैलीगत विकास

4.3.2.1 आरम्भिक स्वरुप

यह काल स्थापत्य कला के विकास की प्रथम अवस्था माना जाता है। इस काल की इमारतें हिन्दू शैली के प्रत्यक्ष प्रभाव में बनी है, जिनकी दीवारें चिकनी एवं मज़बूत हैं। इस काल में बने स्तम्भ, मंदिरों के प्रतीक होते हैं। पहली बार हिन्दू कारीगरों द्वारा बरामदों में मेहराबदार दरवाज़े बनाये गये। मुसलमानों द्वारा निर्मित मस्जिदों के चारों तरफ़ मीनारें उनके उच्च विचारों का प्रतीक के रूप में प्रयोग किये गए| शासकों की आरंभिक आवश्यकताओं में रहने के लिए आवास तथा मस्जिद की अवश्यकता थी| जिसके लिए अनेक मंदिरों और अन्य स्थानों को अपने हिसाब से बदल डाला और अनेक को नष्ट करके उसकी सामग्री को नए भवनों के निर्माण कार्य में इस्तेमाल किया| आरंभिक सल्तनत काल में बनी कुछ प्रमुख इमारतों का वर्णन इस प्रकार है-

क़ुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद

1192 ई. में तराइन के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के हारने पर उनके क़िले 'रायपिथौरा' पर अधिकार कर वहाँ पर 'क़ुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद' का निर्माण कुतुबुद्दीन ऐबक ने करवाया। वस्तुतः कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली विजय के उपलक्ष्य में 1192 ई. में 'कुत्ब' अथवा 'क़ुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद' का निर्माण कराया।

क़ुतुबमीनार

यह मीनार दिल्ली से 12 मील की दूरी पर मेहरौली गाँव में स्थित है। प्रारम्भ में इस मस्जिद का प्रयोग अजान (नमाज़ के लिए बुलाना) के लिए होता था, पर कालान्तर में इसे 'कीर्ति स्तम्भ' के रूप में माना जाने लगा। 1206 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक ने इसका निर्माण कार्य प्रारम्भ करवाया। ऐबक इस इमारत में चार मंज़िलों का निर्माण कराना चाहता था, परन्तु एक मंज़िल के निर्माण के बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। बाद में इसकी शेष मंज़िलों का निर्माण इल्तुतमिश ने 1231 ई. में करवाया।

अढ़ाई दिन का झोपड़ा

कुतुबुद्दीन ऐबक ने अढ़ाई दिन का झोपड़ा, जो वास्तव में एक मस्जिद है, का निर्माण अजमेर में करवाया। इसके नाम के विषय में जॉन मार्शल का कहना है कि, चूँकि इस मस्जिद का निमार्ण मात्र ढाई दिन में किया गया था, इसलिए इस मस्जिद को 'अढ़ाई दिन का झोपड़ा' कहा जाता है। पर्सी ब्राउन का कहना है कि, यहाँ एक झोपड़ी के पास अढ़ाई दिन का मेला लगता था, इस कारण इस स्थान को अढाई दिन का झोपड़ा कहा गया है।

विग्रहराज बीसलदेव ने इस स्थान पर एक सरस्वती मन्दिर बनवाया था। बीसलदेव द्वारा रचित 'हरिकेलि' नामक नाटक तथा सोमदेव कृत 'ललित विग्रहराज' की कुछ पंक्तियाँ आज भी इसकी दीवारों पर मौजूद है। कुतुबुद्दीन ऐबक ने इसे तुड़वाकर मस्जिद बनवायी। यह मस्जिद क़ुब्बत मस्जिद की तुलना में अधिक बड़े आकार की एवं आकर्षक है। इस मस्जिद के आकार को कालान्तर में इल्तुतमिश द्वारा विस्तार दिया गया। इस मस्जिद में तीन स्तम्भों

का प्रयोग किया गया, जिसके ऊपर 20 फुट ऊँची छत का निर्माण किया गया है। इसमें पाँच मेहराबदार दरवाज़े भी बनाये गये हैं। मुख्य दरवाज़ा सर्वाधिक ऊँचा है। मस्जिद के प्रत्येक कोने में चक्रकार एवं बांसुरी के आकार की मीनारें निर्मित हैं।

नासिरुद्दीन महमूद का मक़बरा या सुल्तानगढ़ी

स्थापत्य कला के क्षेत्र में इस मक़बरे के निर्माण को एक नवीन प्रयोग के रूप में माना जाता है। चूँकि तुर्क सुल्तानों द्वारा भारत में निर्मित यह पहला मक़बरा था, इसलिए इल्तुतमिश को मक़बरा निर्माण शैली का जन्मदाता कहा जा सकता है। सुल्तानगढ़ी मक़बरे का निर्माण इल्तुतमिश ने अपने ज्येष्ठ पुत्र नासिरुद्दीन महमूद की याद में कुतुबमीनार से लगभग 3 मील की दूरी पर स्थित मलकापुर में 1231 ई. में करवाया था। पर्सी ब्राउन के शब्दों में सुल्तानगढ़ी का शाब्दिक अर्थ है- 'गुफा का सुल्तान'। यह मक़बरा आकार में दुर्ग के समान ही प्रतीत होता है। मक़बरे की चाहरदीवारी के मध्य में लगभग 66 फुट का आंगन है। आंगन के बीच में अष्टकोणीय चबूतरा निर्मित है, जो धरातल में मक़बरे की छत का काम करता है। आंगन में कही भूरे रंगका पत्थर तो कही संगमरमर का प्रयोग किया गया है। मस्जिद के पूर्वी छोर पर एक खम्बा स्थित है, जिसकी ऊँचाई चहारदीवारी से अधिक है। स्तम्भयुक्त मस्जिद के बरामदे में एक छोटी मस्जिद का निर्माण किया गया था, जिसमें राज परिवार के लोग नमाज़ पढ़ा करते थे। मस्जिद में एक तहखाना भी बना था, जहाँ राज-परिवार के लोग एकान्तिक क्षण व्यतीत किया करते थे। मस्जिद में निर्मित मेहराबों में मुस्लिम कला एवं पूजास्थान तथा गुम्बद के आकार की छत में हिन्दू कला शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

इल्तुतमिश का मक़बरा

इस मक़बरे का निर्माण इल्तुतमिश द्वारा क़ुव्वत मस्जिद के समीप लगभग 1235 ई. में करवाया गया था। 42 फुट वर्गाकार इस इमारत के तीन तरफ़ पूर्व, दक्षिण एवं उत्तर में प्रवेश द्वार बना है। पश्चिम की ओर का प्रवेश द्वार बंद हे। 30 घन फीट का बना आन्तरिक कक्ष अपनी सुन्दरता के कारण हिन्दू तथा जैन मन्दिरों के समकक्ष ठहरता है। मक़बरे की दीवारों पर क़ुरान की आयतें खुदी हैं। मक़बरे में बने गुम्बदों में घुमावदार पत्थर के टुकड़ों का प्रयोग किया गया है। गुम्बद के चोकोर कोने में गोलाई लाने के लिए जिस शैली का प्रयोग किया गया है, उसे गुम्बद निर्माण के इतिहास में 'स्क्रीच शैली' के नाम से जाना जाता है। यह मक़बरा एक कक्षीय है।

इल्तुतमिश के अन्य निर्माण कार्यों में बदायूँ में निर्मित 'हौज-ए-शम्सी', 'शम्सी' ईदगाह' एवं जामा मस्जिद प्रमुख है। जामा मस्जिद, जिसका निर्माण 1223 ई में हुआ, यह अपने समय की सर्वाधिक बड़ी एवं मज़बूत मस्जिद है। इसका पुन:र्निमाण मुहम्मद बिन तुग़लक़ एवं अकबर ने करवाया था। जोधपुर राज्य के नागौर स्थान पर इल्तुतमिश ने 1230 ई. में 'अतारिकिन' नामक एक विशाल दरवाज़े का निर्माण करवाया। कालान्तर में मुहम्मद बिन तुग़लक़ ने इसका जीर्णोद्वार करवाया। मुग़ल सम्राट अकबर ने इसी दरवाज़े से प्रेरित होकर बुलन्द दरवाज़े का निर्माण करवाया था।

सुल्तान बलबन का मक़बरा

सुल्तान बलबन का मक़बरा वास्तुकला की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इस मक़बरे का कक्ष वर्गाकार है। सर्वप्रथम वास्तविक मेहराब का रूप इसी मक़बरे में दिखाई देता है।

मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह

इस दरगाह या ख़ानक़ाह का निर्माण इल्तुतमिश ने करवाया था। कालान्तर में अलाउद्दीन ख़िलजी ने इसे विस्तृत करवाया। बलबन ने रायपिथौरा क़िले के समीप स्वयं का मक़बरा एवं लाल महल नामक मकान का निर्माण करवाया। दिल्ली में बना उसका मक़बरा शुद्ध इस्लामी शैली में निर्मित है।

4.3.2.2 ख़िलजी कालीन वास्तुकला

इल्ततुमिश की मुत्यृ के बाद ख़िलजी सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी ने अनेक निर्माण कार्य शुद्ध इस्लामी शैली के अन्तर्गत करवाये। अलाउद्दीन ने सीरी नामक गाँव में एक नगर की स्थापना की। जियाउद्दीन बरनी ने इस नगर को 'नौ' अथवा 'नया नगर' कहा। इस नगर के बाहर अलाउद्दीन ख़िलजी ने एक तालाब एवं उसके किनारे कुछ भवनों का निर्माण करवाया था, आज 'हौज-ए-रानी' के नाम से प्रसिद्ध यह स्थान काफ़ी जीर्ण-शीर्ण स्थिति में है। अमीर ख़ुसरो ने इसकी प्रशंसा में लिखा है- 'पानी के बीच गुम्बद समुद्र की सतह पर बुलबुले के समान है।"

अलाई दरवाज़ा

इसका निर्माण कार्य अलाउद्दीन ख़िलजी द्वारा 1310-1311 ई. में आरम्भ करवाया गया। इसके निर्माण का उद्देश्य क़ुव्वत मस्जिद में चार प्रवेश द्वार बनाना था- दो पूर्व में, एक दक्षिण में और एक उत्तर में। इसका निर्माण ऊँची कुर्सी पर किया गया है। कुर्सी पर सुन्दर बेल-बूटे बने थे। दरवाज़े में लाल पत्थर एवं संगमरमर का सुन्दर संयोग दिखता है, साथ ही आकर्षक ढंग से क़ुरान की आयतों को लिखा गया है। इस मस्जिद में बनी एक गुम्बद में पहली बार विशुद्ध वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया गया है। अलाई दरवाज़ा की साज-सज्जा में बौद्ध तत्वों के मिश्रण का आभास होता है। अलंकरण में इतनी सघनता है कि, कहीं पर इंच भर भी जगह रिक्त नहीं है। द्वारों के अन्दर पुष्पमालानुमा झालर अत्यधिक आकर्षक है। पर्सी ब्राउन ने अलाई दरवाज़े के विषय में कहा है कि- 'अलाई दरवाज़ा इस्लामी स्थापत्य कला के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।' जॉन मार्शल ने अलाई दरवाज़े के विषय में कहा है कि- "अलाई दरवाज़ा इस्लामी स्थापत्य कला के ख़ज़ाने का सबसे बड़ा हीरा है।" पहली बार वास्तविक गुम्बद का स्वरूप अलाई दरवाज़ा में ही दिखाई देता है।

जमात ख़ाँ मस्जिद

जमात ख़ाँ मस्जिद का निर्माण अलाउद्दीन ख़िलजी ने निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह के समीप करवाया। पूर्णतः इस्लामी शैली में निर्मित इस मस्जिद में लाल पत्थर का प्रयोग किया गया है। इसके डाटों के कोने में कमल के पुष्प से इस मस्जिद में हिन्दू शैली के प्रभाव का आभास होता है। डाटों पर क़ुरान की आयतें भी उत्कीर्ण हैं। इस मस्जिद में तीन कमरे बने हैं, जिनमें दो कमरे आयताकार हैं तथा मस्जिद के मध्य भाग में निर्मित कमरा चोकोर है। पूर्णरूप से इस्लामी परम्परा में निर्मित यह भारत की पहली मस्जिद है।

ख़िलजी काल में पूर्णत निर्मित अन्य निर्माण कार्यों में कुतुबुद्दीन मुबारक ख़िलजी द्वारा भरतपुर में निर्मित 'ऊखा मस्जिद' एवं ख़िज़्र ख़ाँ द्वारा निर्मित निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह विशेष उल्लेखनीय है।

4.3.2.3 तुग़लक़ काल में वास्तुकला

तुग़लक़ वंश के शासकों ने ख़िलजी कालीन इमारतों की भव्यता एवं सुन्दरता के स्थान पर इमारतों की सादगी एवं विशालता पर अधिक ज़ोर दिया। अपने पूर्व शासकों के विरुद्ध ग़यासुद्दीन तुग़लक़ ने सादगी एवं मितव्ययिता की

नीति अपनाई। मुहम्मद बिन तुग़लक़ की प्रशासनिक समस्याओं एवं धनाभाव के कारण फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ ने पुरानी विचारधारा के कारण साज-सज्जा पर अधिक ध्यान नहीं दिया। इस काल की प्रमुख इमारतें निम्नलिखित हैं-

तुग़लक़ाबाद

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ ने दिल्ली के समीप स्थित पहाड़ियों पर तुग़लक़ाबाद नाम का एक नया नगर स्थापित किया। रोमन शैली में निर्मित इस नगर में एक दुर्ग का निर्माण भी हुआ है। इस दुर्ग को 'छप्पन कोट' के नाम से भी जाना जाता है। दुर्ग की दीवारें मिस्र के पिरामिड की तरह अन्दर की ओर झुकी हुई हैं। इसकी नींव गहरी तथा दीवारें मोटी हैं। क़िले के अन्दर निर्मित सुल्तान के राजमहल के विषय में इब्न बतूता ने कहा कि, 'राजमहल सूर्य के प्रकाश में इतना चमकता था कि, कोई भी व्यक्ति उसे टकटकी बाँधकर नहीं देख पाता था।' राजमहल में शाही दरबार तथा जनान खाने का भी निर्माण किया गया था। तुग़लक़ाबाद नगर में प्रवेश के लिए 52 द्वार बनाये गये थे। राजमहल के निर्माण में टाइलों का उपयोग किया गया था। सर जॉन मार्शल ने इस निर्माण कार्य के विषय में कहा है कि, 'इसकी सुदृढ़ता की व्यवस्था धोखा है, क्योंकि निर्माण निम्नकोटि का है। सम्भवतः मंगोलों के आक्रमण के भय से इसका निर्माण इतनी शीघ्रता से किया गया कि, इसमें विशिष्ट शैली तथा कला का अभाव सर्वत्र दिखाई देता है।

ग़यासुद्दीन का मक़बरा

कृत्रिम झील के अन्दर निर्मित इस मक़बरे की दीवारें चौड़ी एवं मिस्र के पिरामिडों की तरह भीतर की ओर झुकी हैं। यह मक़बरा चर्तुर्भुज के आकार के आधार पर स्थित है, मक़बरे की ऊँचाई लगभग 81 फीट है। मक़बरें में ऊपर संगमरमर का सुन्दर गुम्बद बना है, गुम्बद की छत कई डाटों पर आधारित है। मक़बरे में आमलक और कलश का प्रयोग हिन्दू मंदिरों की शैली पर किया गया है। लाल पत्थर से निर्मित इस मक़बरे के चारों ओर मज़बूत मीनार का निर्माण किया गया है। फर्ग्युसन के शब्दों में- 'मक़बरे की ढालू दीवारें एवं क़रीब-क़रीब मिस्र के ढंग की दृढ़ता, विशाल एवं सुदृढ़ दीवारें एक योद्धा की समाधि के नमूने का निर्माण कर रही हैं। इस मक़बरे का पंचभुजीय होना इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। जॉन मार्शल के शब्दों में- 'इस मक़बरे की दृढ़ता तथा सादगी के आधार पर हम कह सकते हैं कि, उस महान् योद्धा की समाधि के लिए इससे उपयुक्त स्थान और कोई नहीं हो सकता था।' मुहम्मद तुग़लक़ ने तुग़लक़ाबाद के समीप ही आदिलाबाद नामक क़िले का निर्माण करवाया था।

जहाँपनाह नगर

मुहम्मद तुग़लक़ ने इस नगर की स्थापना रायपिथौरा एवं सीरी के मध्य करवाई थी। नगर के चारों तरफ़ 12 गज़ मोटी दीवार सुरक्षा के दृष्टिकोण से बनाई गई थी। इस नगर के अवशेषों में 'सतपुत्र' अर्थात् 'सात मेहराबों का पुत्र' आज भी वर्तमान में है। अवशेष के रूप में बचा 'विजय मंडल' सम्भवतः महल का एक भाग था। पर्सी ब्राउन ने इस निर्माण कार्य के विषय में कहा है कि- 'इसकी स्थापत्य शैली से स्पष्ट हो जाता है कि, इसके कारीगर सुन्दर भवन निर्माण शैली से पूर्व परिचित थे।

सतपुलाह

मुहम्मद तुग़लक़ द्वारा सात मेहराबों वाला एक दो मंज़िला पुल की स्थापना की गयी। इसका निर्माण एक कृत्रिम झील में पानी पहुँचाने के लिए किया गया था।

बारह खम्भा

धर्मनिरपेक्ष इमारतों में तुग़लक़ कालीन सामंत निवास के लिए बनी इस इमारत का विशिष्ट स्थान है। इस इमारत की महत्त्वपूर्ण विशेषता सुरक्षा तथा गुप्त निवास है। फ़िरोज़शाह तुग़लक़ की स्थापत्य कला में रुचि के विषय में फ़रिश्ता ने कहा है कि- 'सुल्तान फ़िरोज़शाह तुग़लक़ वास्तुकला का महान् प्रेमी था। उसने 200 नगर, 20 महल, 30 पाठशालायें, 40 मस्जिदें, 100 अस्पताल, 100 स्नानगृह, 5 मक़बरे एवं 150 पुलों का निर्माण करवाया। फ़िरोज़ ने फ़िरोज़ाबाद, फ़तेहाबाद, हिसार, जौनपुर आदि नगरों का निर्माण करवाया। यमुना नदी पर निर्मित नहर इसका महत्त्वपूर्ण निर्माण कार्य हैं।

कोटला फ़िरोज़शाह

सुल्तान फ़िरोज़शाह तुग़लक़ ने पाँचवी दिल्ली बसायी, जिसमें एक महल की स्थापना की। यह 'कोटला फ़िरोज़शाह' के नाम से विख्यात है। सुल्तान फ़िरोज़शाह तुग़लक़ ने दिल्ली में कोटला फ़िरोज़शाह दुर्ग का निर्माण करवाया। इसका क्षेत्रफल शाहजहाँबाद से दो-गुना है। दुर्ग के अन्दर निर्मित इमारतों में जन सामान्य के लिए आठ मस्जिदें एवं व्यक्तिगत प्रयोग के लिए निर्मित एक मस्जिद उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त दुर्ग के अन्दर तीन राजमहल एवं अनेक शिकार खेलने के स्थानों का निर्माण किया गया है। दुर्ग के अन्दर निर्मित जामा मस्जिद के सामने सम्राट अशोक का टोपरा गाँव से लाया गया स्तम्भ गड़ा है। मेरठ से लाया गया अशोक का दूसरा स्तम्भ 'कुश्क-ए-शिकार' महल के सामने गड़ा है। इसके साथ ही दुर्ग के अन्दर एक दो मज़िली इमारत के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिसका उपयोग विद्यालय के रूप में किया जाता था।

फ़िरोज़शाह का मक़बरा

यह मक़बरा एक वर्गाकार इमारत है। इसका प्रधान दरवाज़ा दक्षिण की तरफ़ है। मक़बरे की मज़बूत दीवारों को फूल-पत्तियों एवं बेल-बूटों से सजाया गया है। मक़बरें में संगमरमर का भी प्रयोग किया गया है। संगमरमर तथा लाल पत्थर के संयोग से निर्मित इस मक़बरे का गुम्बद अष्टकोणीय ड्रम पर निर्मित है।

ख़ान-ए-जहाँ तेलंगानी का मक़बरा

ख़ानेजहाँ जूनाशाह ने इस मक़बरे का निर्माण अपने पिता एवं फ़िरोज़ के प्रधानमंत्री ख़ान-ए-जहाँ तेलंगानी की याद में कराया था। यह मक़बरा अष्टभुज के आकार में निर्मित है। इस मक़बरे की तुलना जेरुसलम में निर्मित उमर की मस्जिद से की जाती है।

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया का मक़बरा

इस मक़बरें में संगमरमर का अच्छा प्रयोग किया गया है।

खिड़की मस्जिद

ख़ानेजहाँ जूनाशाह द्वारा जहाँपनाह नगर में निर्मित यह मस्जिद वर्गाकार रूप में है। तहखाने के ऊपर बनी यह मस्जिद दुर्ग के समान दिखती है। इसकी तुलना इल्तुतमिश के 'सुल्तानगढ़ी' से की जाती है।

काली मस्जिद

फ़िरोज़शाह तुग़लक़ के काल में निर्मित यह मस्जिद दो मंज़िली है। इसमें अर्धवृतीय मेहराबों का प्रयोग हुआ है। मस्जिद का विशाल आँगन चार भागों में बँटा है। इस मस्जिद का निर्माण ख़ानेजहाँ जूनाशाह ने करवाया था।

बेगमपुरी मस्जिद

जहाँपनाह नगर में निर्मित यह मस्जिद अपने गुम्बदों एवं मेहराबों के प्रयोग से काफ़ी प्रभावशाली दिखती है। इसमें संगमरमर का प्रयोग किया गया है।

कलां मस्जिद

'ख़ान-ए-जौनाशाह' द्वारा निर्मित यह मस्जिद शाहजहाँबाद में स्थित है। इसकी छत पर गुम्बद तथा चारों कोनों में बुर्ज बने हैं। इस मस्जिद का निर्माण भी तहखाने के ऊपर हुआ है।

कबीरुद्दीन औलिया का मक़बरा

ग़यासुद्दीन द्वितीय के समय में इस मक़बरे का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। नासिरुद्दीन मुहम्मद के समय में यह कार्य पूरा हुआ। इस मस्जिद को 'लाल गुम्बद' भी कहा जाता है। आयताकार रूप में बनी इस मस्जिद में लाल पत्थर एवं सफ़ेद संगमरमर का प्रयोग किया गया है।

4.3.2.4 अंतिम चरण

सैय्यद कालीन वास्तुकला

इस समय तक स्थापत्य कला का पतन आरम्भ हो चुका था। सैय्यद कालीन इमारतों को ख़िलजी कालीन इमारतों की नकल भर माना जा सकता है। सैय्यदों एवं लोदियों के समय में ख़िलजी युग की प्राणवंत शैली को पुन:जीवित करने के प्रयास किये गये। किन्तु ये सीमित अंशों में ही सफल हुए तथा यह शैली "तुग़लक़ युग के मृत्युकारी परिणाम को हटा नहीं सकी।" इस काल में ख़िज्र ख़ाँ द्वारा स्थापित 'ख़िज्राबाद' एवं मुबारक शाह द्वारा स्थापित नगर 'मुबारकाबाद' का निर्माण हुआ।

सुल्तान मुबारक शाह का मक़बरा

यह मक़बरा मुबारकपुर नामक गाँव में स्थित है। मक़बरे के चारों ओर बने बरामदों की ऊँचाई अधिक है। गुम्बद के शिखर को डाटदार दीपक से सुसज्जित करने का प्रयास किया गया है। जॉन मार्शल के अनुसार- "इस मस्जिद का सबसे बड़ा दोष यह है कि, निर्माणकर्ताओं ने इसे इतना ऊँचा बना दिया है कि, दर्शक सरलता से इसे देख नहीं सकते।" यह मक़बरा अष्टभुजीय है।

मुहम्मद शाह का मक़बरा

इस अष्टभुजीय मक़बरे में अत्यधिक ऊँचाई होने के दोष को दूर किया गया है। मक़बरे में कमल आदि प्रतिरूपों की साज-सज्जा हेतु चीनी टाइलों का उपयोग किया गया है।

लोदी काल में वास्तुकला

लोदी काल में किये गए कुछ महत्त्वपूर्ण निर्माण कार्य निम्नलिखित हैं-

बहलोल लोदी का मक़बरा

यह मक़बरा 1418 ई. में सिकन्दर शाह लोदी द्वारा बनवाया गया था। 5 गुम्बदों वाले इस मक़बरें के बीच में स्थित गुम्बद की ऊँअचाई सर्वाधिक है। इसके निर्माण में लाल पत्थर का प्रयोग हुआ है।

सिकन्दर लोदी का मक़बरा

इब्राहीम लोदी द्वारा यह मक़बरा 1517 ई. में बनवाया गया। मक़बरे में निर्मित गुम्बद के चारों तरफ़ आठ खम्भों की छतरी निर्मित है। यह मक़बरा एक ऐसी बड़ी चहारदीवारी के प्रांगण में स्थित है, जिसके चारों किनारे पर काफ़ी लम्बे बुर्ज है। इसकी छत पर दोहरे गुम्बद की व्यवस्था है। जॉन मार्शल के अनुसार सम्भवतः इस शैली ने मुग़ल सम्राटों के विशाल उद्यान युक्त मक़बरे का पथ प्रदर्शन किया। मुग़ल शैली को अपने विकास में इस मक़बरे से महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ।

मोठ की मस्जिद

इस मस्जिद का निर्माण 'सिकन्दर लोदी' के वज़ीर मियाँ भुआ द्वारा करवाया गया। मस्जिद की प्रशंसा में सर सैय्यद अहमद ने कहा कि, "यह लोदी स्थापत्य आकार में सुन्दर एवं एक उपहार कृति है। जॉन मार्शल के अनुसार लोदियों की स्थापत्य कला में जो भी सबसे सुन्दर है, उसका संक्षिप्त रूप मोठी मस्जिद में विद्यमान है।

सैय्यद एवं लोदी काल में कुछ अन्य मक़बरों का भी निर्माण किया गया, जैसे- 'बड़ा ख़ाँ एवं छोटे ख़ाँ का मक़बरा', 'शीश गुम्बद', 'दादी का गुम्बद', 'पोली का गुम्बद' एवं 'ताज ख़ाँ का गुम्बद' आदि। पर्सी ब्राउन ने इस युग को 'मक़बरों के युग' के नाम से सम्बोधित किया है। बड़े ख़ाँ और छोटे ख़ाँ के मक़बरे का निर्माण सिकन्दर लोदी ने करवाया था।

4.4 सल्तनत काल में चित्रकला

मुस्लिम आक्रमण के पूर्व भारत में चित्रकारी का हिन्दू, बौद्ध एवं जैन चित्रकला के अन्तर्गत काफ़ी विकास हुआ था, अजन्ता चित्रकला के बाद भारतीय चित्रकला का प्रभाव कम हो गया। और ऐसा माना जाता है कि सल्तनत काल में तो चित्रकला का क्षेत्र बहुत ही संकुचित रहा| रूसी विद्वान एफ. रोसेनवर्ग के अनुसार- "7वीं सदी से 16वीं सदी तक भारतीय चित्रकला का विकास अवरुद्ध था।" पर्सी ब्राउन के अनुसार "650 ई. के बाद अकबर के शासन काल तक भारतवर्ष में चित्रकला का विकास नहीं हुआ।" सामान्यतः सल्तनत काल को भारतीय चित्रकला के पतन का काल भी माना जाता है। क़ुरान की दी गई व्यवस्था के अनुसार- 'किसी मनुष्य, पशु, पक्षी या फिर जीवधारी का चित्र बनाना पूर्णतः प्रतिबन्धित था। सम्भवतः सल्तनत काल में चित्रकारी के विकास के अवरुद्ध होने का यही कारण बना। फिर भी इस काल में चित्रकारी के कुछ प्रमाण मिले हैं। 19 वीं सदी के बाद के वर्षों में सर्वप्रथम 'मुहम्मद अब्दुल्ला चग़ताई' ने यह विचार प्रस्तुत किया कि दिल्ली सल्तनत काल में चित्रकला का अस्तित्व था। 1947 ई. में हरमन गोइट्ज ने 'दी जनरल ऑफ़ दी इण्डियन सोसाइटी ऑफ़ ओरियण्टल आर्ट' में लिखे एक लेख के जरिये यह विचार व्यक्त किया कि, दिल्ली सल्तनत काल में चित्रकला का अस्तित्व था।

1353 ई. में मुहम्मद तुग़लक़ के समय का एक ऐसा चित्र प्राप्त हुआ है, जिसमें एक संगीत गोष्ठी का चित्रण किया गया है तथा स्त्रियाँ सुल्तान के समक्ष वीणा और सितार बजा रही हैं। उनमें से एक स्त्री शराब का प्याला सुल्तान को पकड़ा रही है। सम्भवतः यह चित्रकार 'शाहपुर' द्वारा बनवाया गया था। इसके अतिरिक्त चित्रकारी के कुछ अवशेष

सल्तनतकालीन कुर्सी, मेज, अस्त्र-शस्त्र, बर्तन, पताका, कढ़ाई के वस्त्रों आदि पर दिखाई पड़ते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, सल्तनतकालीन शासकों के हृदय में चित्रकला के प्रति घृणा की भावना नहीं थी। यह अवश्य सही बात है की सल्तनत कालीन शासकों ने चित्रकारों को संरक्षण नहीं दिया| फिर भी इतिहासकारों द्वारा किये गए नए शोध इस ओर इशारा करते हैं की सल्तनत काल में चित्रकला आवश्यक रूप से मौजूद थी, जो भित्ति चित्रों की परंपरा के रूप में हमें दिखाई देती है| जिसे हम तीन भागों में विभाजित कर समझ सकतें हैं|

4.4.1. भित्तिचित्र

भित्तिचित्र चित्रकला की सबसे पुरानी विधि है| जो दीवारों पर मिट्टी की सहायता से बनायीं जाती थी| और समय के साथ साथ इसमें उपयोग में लायी जाने वाली वस्तुएं बदलती रही| आपको याद होगा अजंता एलोरा की गुफाओं की दीवारों पर की गयी चित्रकारी| यह उसका ही विकसित रूप है| आज हमें सल्तनत कालीन भित्ति चित्रकला दिखाई तो नहीं देते, परन्तु समकालीन साहित्यिक स्त्रोतों से इसकी जानकारी अवश्य प्राप्त होती है| जिसे साइमन डिग्बी ने 'द लिटरेरी एविडेंस फॉर पेंटिंग इन द दिल्ली सल्तनत' में संकलित ओर विश्लेषित किया है|

सल्तनत कालीन एतिहासिक साहित्य तबकात ए नसीरी में लिखित एक कसीदा जिसमे सुल्तान इल्तुतमिश को खलीफा द्वारा सम्मानित खिलअत का उल्लेख है| इसी कसीदे में खलीफा के दूत के स्वागत के लिए मेहराब पर उकेरित या चित्रित जानवरों एवं मानव आकृतियों का उल्लेख भी किया गया है| चित्रकला की यह परम्परा सिर्फ भित्ति चित्र तक ही नहीं रही बल्कि नुह सिपहर में तम्बुओं पर की गयी चित्रकारी का भी वर्णन मिलता है| इससे कपड़ों पर की गयी चित्रकारी का पता चलता है|

एक अन्य प्रमाण अफीफ द्वारा लिखित तारीख-ए-फिरोजशाही से भी प्राप्त होता है| जिसमे महल की दीवारों पर सजावट के लिए आकृति चित्रण की परंपरा का पता चलता है, जिसे फिरोजशाह ने गैर इस्लामी मानते हुए प्रतिबंधित करने की घोषणा की थी| इसके साथ ही आम लोगों के मुख्य रूप से गैर मुस्लिमों के घरों में भित्ति चित्र चित्रण के भी साक्ष्य मिलते हैं| मुल्ला दाउद द्वारा लिखित चंदायन की नायिका के उपरी कक्ष की सजावट का वर्णन मिलता है| 15वीं शताब्दी के अन्य पाण्डुलिपि में नायिका के कक्ष की दीवारों पर चित्रित रामायण के दृश्य को दर्शाया गया है|

एक अन्य चित्र जो मिफ्ता-उल-फौज्ला में दर्ज है, जिसमे कोई आमिर वर्ग का व्यक्ति पाककला को देख रहा है| सल्तनत काल में मालवा चित्रकला का भी अपना एक अलग स्थान है|

4.4.2 पाण्डुलिपि चित्रण

सल्तनत काल में पाण्डुलिपि चित्रण के विषय के सन्दर्भ में विवाद है, इसके बावजूद 15वों शताब्दी से मुगलों के आने तक एवं उसके बाद भी ग्रन्थ चित्रण के साक्ष्य प्राप्त होते हैं| जिनमे से कुछ का विषय प्रांतीय दरबारों से सम्बंधित है, परन्तु ऐसे भी ग्रन्थ चित्र हैं जिनका किसी दरबार से कोई सम्बन्ध नहीं है| ये स्वतंत्र रूप से और सल्तनत काल में ही तैयार की हुई मालूम पड़ती हैं| जिनमे से दो प्रमुख हैं-

- हमज़ानामा- इसमें अमीर हमज़ा जोकि पैगम्बर के साथियों में से थे, उनकी शौर्यगाथाओं का वर्णन है| यह लगभग 1450 ई० के आस-पास तैयार की गयी है|
- दूसरा चंदायन- जो मुल्ला दाउद की रचना है, यह लौर और चंदा की प्रेम कथा है|

4.4.3 सुलेखकला (कुरान की आयतों को सजावट के साथ प्रस्तुत करना)

इस्लाम में सुलेखन कला को एक अलग महत्व प्राप्त है| मुख्य रूप से इसका प्रयोग पुस्तकों और इमारतों के अलंकरण में किया जाता था| लेकिन कुरआन का सुलेखन पुस्तक कला का एक महत्वपूर्ण रूप बन गया था| हस्त शिल्प में सुलेखन कला को एक मत्वपूर्ण स्थान दिया गया| समय समय पर इसकी लेखन कला में भी परिवर्तन होते रहे नस्क, शिकस्ता, तलिख, कूफी तथा नस्तालिक प्रमुख हैं| कुतुबमीनार पर की गयी सुलेखन कला नस्तालिख रूप में की गयी है, जोकि आधुनिकतम लिपि है|

4.5. सल्तनल काल में संगीत

जब तुर्क भारत में आये तो वे अपने साथ ईरान एवं मध्य एशिया के समृद्ध अरबी संगीत परम्परा को भी लाए। उनके पास कई नये वाद्ययंत्र थे, जैसे 'रबाब', और 'सारंगी'। तुर्क अपने साथ 'सारंगी' जैसे वाद्य को लाए, परन्तु यहाँ आकर उन्होंने 'सितार' और 'तबला' जैसे वाद्यों को भी अपनाया। दिल्ली सल्तनत के कुछ शासक, जैसे- बलबन, जलालुद्दीन ख़िलजी, अलाउद्दीन ख़िलजी एवं मुहम्मद तुग़लक़ ने संगीत के प्रति रुचि होने के कारण राज दरबारों में संगीत सभाओं का आयोजन करवाया। ग़यासुद्दीन तुग़लक़ संगीत का विरोधी था। सिकन्दर लोदी शहनाई सुनने का शौक़ीन था। इस काल में सूफ़ी सन्तों ने भी संगीत के विकास में योगदान किया। शेख़ मुइनुद्दीन चिश्ती के अनुसार- "संगीत आत्मा के लिए पौष्टिक आहार है"। बलबन का पुत्र 'बुगरा ख़ाँ' महान् संगीत प्रेमी था। बलबन का पौत्र कैकुबाद सर्वाधिक संगीत प्रेमी सुल्तान था। बर्नी ने इसके बारे में लिखा है कि- 'कैकूबाद ने संगीतकारों एवं गजल गायकों को इतनी अधिक संख्या में संरक्षण प्रदान किया कि, राजधानी की गलियाँ तथा सड़कें इनसें भरी हुई थीं। आरंभिक मध्य काल में संगीत की दो धाराएँ दृष्टिगत होती हैं-

उत्तर भारत की संगीत धारा

दक्षिण भारत की संगीत धारा

उत्तर भारत में तुर्कों के अधिपत्य के बाद संगीत के क्षेत्र में परिवर्तन साफ़ दिखाई देने लगे| जिसे समझने की दृष्टि से मोटे तौर पर हम दो भागों में बाँट सकते हैं-- दरबारी संगीत एवं सूफी संगीत

संगीत को संरक्षण

बरनी ने इस समय के मशहूर संगीतकारों 'शाहचंगी', 'नुसरत ख़ातून' एवं 'मेहर अफ़रोज का उल्लेख किया है। अलाउद्दीन ख़िलजी के दरबार में तत्कालीन महान् कवि एवं संगीतज्ञ अमीर ख़ुसरो को संरक्षण प्राप्त था। अमीर ख़ुसरो ने भारतीय एवं इस्लामी संगीत शैली के समन्वय से अनेक यमन-उसाक, मुआफिक, धनय, मुंजिर, ज़िलाफ, सजगिरी और सरपदा जैसे राग-रागनियों को जन्म दिया। उसने दक्षिण के महान् गायक 'गोपाल नायक' को अपने दरबार में आमंत्रित किया था। इस काल में प्रचलित 'ख्याल गायकी' के अविष्कार का श्रेय जौनपुर के सुल्तान हुसैन शाह

शर्की को दिया जाता है। संगीत के क्षेत्र में उपलब्धि के कारण इसे ‘नायक’ की उपाधि प्राप्त हुई थी। मालवा का शासक बाज बहादुर संगीत में रुचि रखता था। कव्वाली गायन शैली का प्रचलन भी सल्तनत काल में ही प्रारम्भ हुआ। सल्तनत काल में अनेक वाद्ययंत्र जैसे 'रबाब', 'सारंगी', 'सितार' तथा 'तबला' का प्रचलन था।

अमीर ख़ुसरो ने भारतीय वीणा ओर ईरानी तम्बूरा के मिश्रण से सितार का अविष्कार किया| इसी काल में मृदंग को दो हिस्सों में बाँट कर तबले को जन्म दिया गया| मध्यकालीन संगीत परम्परा के आदि संस्थापक अमीर ख़ुसरों थे। सर्वप्रथम उन्होंने भारतीय संगीत में कव्वाली गायन को प्रचलित किया। अमीर ख़ुसरों को ‘तूतिये हिन्द’ अर्थात् 'भारत का तोता' आदि नाम से भी जाना जाता था। इस समय दक्षिण भारत में संगीत पर आधारित कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की रचना हुई, जैसे- संगीत रत्नाकर, संगीत समयसार, संगीत शिरोमणि, संगीत कौमुदी, संगीत नारायण आदि। सल्तनत काल में इल्तुतमिश व ग़यासुद्दीन तुग़लक़ द्वारा संगीत के विकास के क्षेत्र में कोई काम नहीं किया गया। मुहम्मद बिन तुग़लक़ संगीत का बहुत बड़ा प्रेमी था। उसके बारे में कहा जाता है कि, जब वह सिंहासन पर बैठा तो, जन-साधारण के लिए 21 दिनों तक संगीत गोष्ठी का प्रबन्ध किया जाता था। इसी तरह सिकंदर लोदी भी संगीत प्रेमी एवं उसका समर्थक था|

4.6 सल्तनत काल में सूफीवाद और भक्ति आन्दोलन

4.6.1 सूफीवाद

इस्लाम में विभिन्न रहस्यात्मक प्रवृत्तियों को सूफीमत या तसव्वुफ़ के नाम से जाना जाता है| इस्लाम में व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित रहस्यवादिता के माध्यम से इश्वर और व्यक्ति के मध्य सीधा संपर्क स्थापित करने की बात की जाती है| प्रत्येक धर्म अपने विकास के क्रम में रहस्यवाद का सहारा लेता है| अतः हम यह कह सकते हैं कि सूफी मत कुरान की पवित्र भावना पर आधारित इस्लाम का स्वाभाविक विकास है| सूफी संत शरियत को स्वीकार करते थे परन्तु वे परम्पराओं में बंध कर नहीं रहे, बल्कि एसी पद्यति विकसित करी, जिसका उद्देश्य इश्वर से सीधा संपर्क स्थापित करना था|

सूफी कहलाने वाले रहस्यवादियों का जन्म इस्लाम के आरंभिक काल में ही हो गया था| हसन बसरी तथा राबिया बसरी जैसे आरंभिक सूफियों ने प्रार्थना उपवास एवं इश्वर के प्रति भय के स्थान पर प्रेम को अधिक महत्व दिया| उस समय तक सूफियों ने ऊन से बना मोटा वस्त्र धारण करना आरम्भ कर दिया था, जो आरंभिक संतो की विरासत थी| वे धन की उपलब्द्धता के होते हुए निर्धनता का जीवन को सूफी जीवन बताते हैं| इन सूफियों में शिक्षा की तलाश में अरब एवं सीरिया का व्यापक भ्रमण किया, और चिंतन-मनन करके ईश्वर से मिलन अर्थात आत्मा की परमात्मा से मिलन की संकल्पना प्रस्तुत की| लेकिन सूफी संत मंसूर-अल-हल्लाज को उनके इस दृष्टिकोण के कारण रुढ़िवादी तत्वों से उनका टकराव आरम्भ हुआ, और उन्हें फासी दे दी गयी| इसके बावजूद जनता ने इन सूफियों के प्रति श्रद्धा और विश्वास में कोई कमी नहीं आयी| एक अन्य सूफी अल-गजाली ने सूफीवाद को इस्लामी रूढ़ीवाद से समन्वित करने प्रयास किया, और सफल भी रहे| बाद के वर्षों में सूफीवाद कई सिलसिलों में विभक्त हो गया, और प्रत्येक सिलसिला किसी प्रमुख सूफी संत से जुदा होता था| इसी समय खानकाहों की स्थापना हुई, जहाँ सूफी अपने शिष्यों के

साथ रहते थे| पीर अपने शिष्यों (मुरीद) में से किसी एक को वाली चुनता है, जो उसके धार्मिक सामाजिक और वैचारिक कार्यो को आगे बाधा सके| इस तरह पीरी और मुरीदी का सिलसिला आरम्भ ही गया|

4.6.2 भारत में सूफी मत का विकास

जैसा की हम सब जानते हैं की तुर्कों के आगमन एवं सल्तनत स्थापित करने से पूर्व भी भारत के लिए इस्लाम धर्म नया नहीं था| सिंध, पंजाब के क्षेत्र में आठवीं से दसवीं सदी से ही इस्लाम का प्रचार होना आरम्भ हो गया था| देश में अरब व्यापारियों और सूफी संतों का आगमन होने लगा| अलबरूनी द्वारा लिखित किताब-उल-हिन्द की रचना से अरबों के लिए भारतीय और हिन्दू दर्शन अपरिचित नहीं था| इतना ही नहीं अब तक अनेक बौद्ध जातकों, हिन्दू कथाओं, खगोलीय पुस्तकों तथा आयुर्विज्ञान इत्यादि का अरबी अनुवाद हो चुका था| भारत आकर बसने वाले आरंभिक सूफियों में अल हुजविरी (लगभग 1088 ई.) प्रमुख हैं| उनके द्वारा लिखित कशफ़-उल-महजूब सूफियों के लिए महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसे सूफी मत का एक मानक दस्तावेज़ भी माना जाता है| तुर्कों के आगमन के पश्चात भारत में अनेक सूफी सम्प्रदायों की स्थापना हुई| 13वीं सदी में मध्य एशियाई देशों में मंगोलों के आक्रमण के कारण अनेक सूफी संत भारत की ओर शांति की तलाश में आये और यही बस गए| 13वीं-14वीं सदी में भारत में जगह-जगह खानकाह स्थापित हो गए| भारत में स्थापित सूफी मत का आधार इस्लाम, खासकर ईरान और मध्य एशिया में स्थापित सूफी सिद्धांत और मान्यताएं थीं| परन्तु भारत में स्थापित होने के बाद इसके विकास में भारतीय तत्वों की ही भूमिका रही है| एक बार भारत में स्थापित हो जाने के बाद उनका विकास अलग ढंग से हुआ| जबकि यह सत्य है कि इसका जन्म बहार हुआ और उसके प्रभाव को नाकारा नहीं जा सकता , पर यह पूर्ण रूपेण भारतीय परिवेश में ही विकसित हुआ|

सल्तनत काल के दौरान कई सिलसिले लोकप्रिय थे, जिनमे दो प्रमुख थे: चिश्ती और सुहरावर्दी| सुहरावर्दी सिलसिले के लोग मुख्यतः पंजाब और सिंध में रह रहे थे, जबकि चिश्ती लोग दिल्ली और इसके आसपास के क्षेत्रों जैसे- राजस्थान, पंजाब के कुछ भाग और आधुनिक उत्तर प्रदेश में सक्रीय थे| इसके अतिरिक्त ये सिलसिले बंगाल, बिहार, मालवा, गुजरात, और बाद में दक्कन तक फ़ैल गए| कुब्रिया नमक सिलसिला कश्मीर में था|अतः इनमे से कुछ प्रमुख की चर्चा हम यहाँ करेंगे|

4.6.3 चिश्ती सिलसिला

भारत में मुईनुद्दीन चिश्ती द्वारा स्थापित चिश्ती सिलसिला मूलतः भारतीय था| मुईनुद्दीन के आरंभिक जीवन और उनकी गतिविधियों के बारे में जानकारी बहुत कम प्राप्त होती है| और न ह उनके उपदेशों या शिक्षा का कोई संकलित ग्रन्थ उपलब्ध है| जो भी विवरण हमें प्राप्त होता है वह उनकी मृत्यु के डेढ़ सौ वर्ष बाद लिखे गए| आधुनिक शोधों से पता चलता है कि मुईनुद्दीन चिश्ती का भारत आगमन पृथ्वीराज चौहान पर गौरी की विजय के पश्चात हुआ था, न की उससे पहले | 1206 के लगभग ही उनका अजमेर जाना हुआ, और उस समय तक वहां तुर्की शासन मजबूती से स्थापित हो चुका था| इन्होने अजमेर में बसना इसलिए पसंद किया क्योंकि यह दिल्ली की राजनैतिक गतिविधियों से दूर एवं आध्यात्म के लिए बेहतर स्थान था| ख्वाजा मुईनुद्दीन विवाहित थे और ईश्वर में उन्हें सच्ची श्रद्धा थी| सदा एवं सन्यासी जीवन जीते थे| उनका मुख्य उद्देश्य ईश्वर के प्रति भक्ति का जीवन जीने में लोगों की

सहायता करना था | वे धर्मान्तरण को उचित नहीं मानते थे, क्योकि उनका मानना था की प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनने का अधिकार होना चाहिए| एक संत के रूप में मुईनुद्दीन की ख्याति उनकी मृत्यु के बाद धीरे-धीरे फैली| बाद में अनेक सुल्तान उनकी मजार पर ज़ियरत के लिए पहुंचे|

दिल्ली में चिश्ती सिलसिले को ख्याति कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की देन है| 1221 ई० में मावरा-उन-नहर से दिल्ली को आये और मुईनुद्दीन के आदेश पर यहीं बस गए| बख्तियार काकी ने उलेमा और सुह्रावार्दियों की चुनौती का सामना करते हुए दिल्ली में चिश्ती सिलसिले को मुख्य सूफी सिलसिले के रूप में स्थापित किया| इनके उत्तराधिकारी और शिष्य बाबा फरीदुद्दीन गंज-ए-शकर हुए, जिन्होंने अजोधन चले गए| वहां उन्होंने लोगो को गरीबी, सांसारिक सुखों का त्याग, मोह का त्याग, उपवास एवं अन्य कठोर आचरणों के ज़रिये इन्द्रियों पर नियंत्रण तथा विनम्रता पूर्वक वयवहार पर जोर दिया|

बाबा फरीद के उत्तराधिकारी निजामुद्दीन औलिया बनाये गए| ये दिल्ली के प्रसिद्द सूफी संतो में से हैं, जिनके नेतृत्व में चिश्ती सिलसिले ने काफी उन्नति की| ये लगभग पचास वर्षों तक दिल्ली में रहे, यह काल काफी उथल पुथल का रहा | बलबन के राजवंश के बाद दिल्ली पर खल्जियों ने अपनी सत्ता क़ायम करी| चिश्ती दर्शन आरम्भ से ही राजनीती से अलग रहने व शासकों और अमीरों की संगती से दूर रहने की सलाह देता रहा है| जिसका पालन निजामुद्दीन औलिया और आरंभिक चिश्ती सूफियों ने बखूबी किया है| नसीरुद्दीन चीराग देहली को दिल्ली का अंतिम महान सूफी कहा जाता है| जो निजामुद्दीन के शिष्य एवं उनके उत्तराधिकारी रहे| 1326 ई० में उनकी मृत्यु हो गयी थी| नसीरुद्दीन के पश्चात दिल्ली में चिश्तिया सिलसिले का कोई प्रभावशाली पीर नहीं रहा| अतः अब ये भारत के पूर्वी और दक्षिणी भागों में भी अपना सन्देश देने लगे|

4.6.4 सुहरावर्दी सिलसिला

यह सिलसिला भी लगभग चिश्तियों के आस-पास ही आया, पर उसका क्षेत्र पंजाब और मुल्तान तक ही सीमित रहा| शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दी तथा हमीदुद्दीन नागौरी इस सिलसिले के महत्वपूर्ण सूफी संतो में शामिल हैं| इनके क्रिया कलाप मुख्यतः चिश्तियों से अलग थे| ये गरीबी में जीवन व्यतीत करने में विश्वास नहीं रखते थे| उन्होंने राज्य की सेवा स्वीकार की तथा कुछ ने तो धर्म से सम्बंधित पदों को भी स्वीकार किया शेख बहाउद्दीन ज़कारिया ने इल्तुतमिश का खुलकर समर्थन किया|

4.6.5 भक्ति आन्दोलन

इस्लाम में सूफीवाद के विकास एवं भारत में इसके आगमन से बहुत पहले से ही भारत में भक्ति आन्दोलन चला आ रहा है| लेकिन भक्ति का वास्तविक विकास सातवीं और बारहवीं सदी के मध्य में हुआ था| इसके पूर्व बौद्ध एवं जैन का उदय भी स्वयं में भक्ति आन्दोलन का ही स्वरुप है| नयनारों एवं अल्वारों ने जैन और बौद्ध के प्रचारित कठोर जीवन को नहीं माना तथा मुक्ति के लिए वैक्तिक भक्ति पर जोर दिया| उन्होंने जातिप्रथा का विरोध किया तथा स्थानीय भाषाओँ के प्रयोग से ईश्वर से प्रेम का सन्देश दिया| परन्तु दक्षिण से उत्तर भारत की ओर उन संतों के विच्स्रों को आने में काफी समय लग गया| इन विचारों को उत्तर भारत की ओर लेन का कार्य विद्वानों एवं संतों ने किया जिसमे नामदेव एवं रामानन्द का नाम प्रमुख है|रामानंद ने विष्णु के स्थान पर राम की आराधना पर बल दिया| यह भी महत्वपूर्ण

है की उन्होंने चरों वर्गों के लोगों को भक्ति के मार्ग का उपदेश दिया| इन्होने सभी जातियों के लोगों को अपना शिष्य बनाया| इनके शिष्यों में रविदास, कबीर, सेन, और साधना का नाम प्रमुख है| ये लोग धार्मिक कर्मकांडों तीर्थयात्रा वाले पुराने धर्म से संतुष्ट नहीं थे, वे ऐसा धर्म चाहते थे जो उनकी बुद्धि और भावना दोनों को संतुष्ट कर सके| 15वीं-16वीं सदी में उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन इन्ही कारणों से लोकप्रिय हुआ|

4.7. विशेष शब्दावली

अरबेस्क : कुरान की सुलेखन कला

गचकारी : दीवारों पर नक्काशी

कूफी : सुकेखन की एक लिपि

भित्तिचित्र : दीवारों पर की गयी चित्रकला

कसीदा : उर्दू कविता का एक रूप जो प्रंशसा में लिखा जाता है|

समां : सूफी संगीत

4.8. प्रस्तावित अध्ययन सामग्री

पर्सी ब्राउन, इंडियन आर्किटेक्चर: इस्लामिक पीरियड, बम्बई, 1968.

के० एम्० अशरफ, सम आस्पेक्ट ऑफ़ द पीपल ऑफ़ हिंदुस्तान, पुनः प्रकाशन, जीवन प्रकाशन.

ए० एल० बाशम, ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत राजनीति, समाज और संस्कृति, ओरिएंट ब्लैकस्वान.

एन० आर० फारुकी, सूफीवाद, ओरिएंट ब्लैकस्वान.

सय्यद अतहर अब्बास रिज़वी, ए हिस्ट्री ऑफ़ सुफिस्म इन इंडिया

इक्तिदार हुसैन सिद्दीक़ी, कंपोजिट कल्चर ऑफ़ सल्तनत ऑफ़ डेल्ही, प्राइम्स बुक्स.

4.9. निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न1. सल्तनत कालीन वास्तुकला की विशेषताओं का वर्णन करें? खल्जी काल में हुए विकास को भी रेखांकित करने का प्रयास करें?

प्रश्न2. ललित कलाओं से क्या तात्पर्य है? सल्तनत कालीन ललितकला और उसकी विशेषताओं को उल्लेखित करें?

प्रश्न3. सूफीवाद किसे कहते हैं? भारत में चिश्तिया सिलसिले के सूफी संतों की प्रमुख शिक्षाओं का वर्णन करें?

प्रश्न4. आरंभिक चिश्ती एवं सुहरावर्दी सिलसिले की विशेषताओं का आलिच्नात्मक मूल्यांकन करें?

इकाई – 2 : विजयनगर साम्राज्य की संस्कृति

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 सामाजिक दशा
2.3.1 वर्णाश्रम व्यवस्था
2.3.2 स्त्रियों की स्थिति
1.3.3 परिवार एवं विवाह
2.3.3 सती प्रथा
2.3.4 दास प्रथा
2.3.5 वस्त्राभूषण
2.3.6 क्रीड़ा एवं मनोरंजन
2.3.7 शिक्षा
2.4 साहित्य
2.5 धार्मिक दशा
2.6 आर्थिक दशा
2.6.1 कृषि एवं सिंचाई
2.6.2 व्यवसाय
2.6.3 व्यापार
2.6.4 मुद्रा व्यवस्था
2.7 कला
2.7.1 स्थापत्य कला
2.7.2 चित्रकला एवं संगीतकला
2.8 सारांश
9.9 तकनीकी शब्दावली
2.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.13 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना 1336 ई0 में हरिहर एवं बुक्का नामक दो भाईयों ने की थी। विजयनगर साम्राज्य का प्रथम शासक हरिहर (1336–1356 ई0) था। हरिहर ने 1336 ई0 में ''हम्पी हस्तिनावती'' नामक राज्य की नींव डाली। उसकी प्रारंभिक राजधानी अनेगोण्डी थी। 1336 ई0 में ही हरिहर ने तुंगभद्रा नदी के तट पर अनेगोण्डी के सामने 'विजयनगर' (विद्यानगर) नामक नवीन नगर की नींव रखी। जो सात वर्षो बाद नवीन राजधानी बनी और इसी राजधानी के नाम पर कालान्तर में ''हम्पी

हस्तिनावती'' नामक राज्य 'विजयनगर साम्राज्य' कहलाया। वस्तुतः विजयनगर की स्थापना से पूर्व हरिहर एवं बुक्का कंपिली राज्य में मंत्री थे। जब मोहम्मद तुगलक ने कंपिली को जीता तब हरिहर और बुक्का को दिल्ली लाकर मुसलमान बना दिया। इसी बीच कुछ समय बाद दक्षिण में विद्रोह हो गया और हरिहर और बुक्का को विद्रोह दबाने के लिए भेजा गया। तभी हरिहर एवं बुक्का हिन्दू संत विद्यारण्य के प्रभाव में आए और विद्यारण्य ने उन्हें पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित कर दिया। इतिहासविदों का मत है कि, दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के पुनरूत्थान का साकार रूप था। हेवेल महोद्य ने सत्य ही कहा है कि, मुसलमानों ने हिन्दुओं के धर्म एवं संस्कृति को कुलच दिया था। हिन्दुओं ने अपनी आत्म रक्षा, धर्म और संस्कृति की रक्षार्थ सशस्त्र संगठित प्रयास से दक्षिण में मुसलमानों के अत्याचारों से मुक्ति पायी।

वस्तुतः विजयनगर साम्राज्य की स्थापना हिन्दू चेतना के राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन का परिणाम था। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना के मूल में हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा करना था। विजयनगर साम्राज्य में चार राजवंशों संगम, सालुव, तुलुव एवं अरविंदु वंश ने 1336 ई0 से 1652 ई0 तक शासन किया। विजयनगर साम्राज्य का प्रथम शासक हरिहर प्रथम (1336–1356 ई0) तथा अंतिम शासक श्रीरंग तृतीय (1642–52 ई0) था। 23 जनवरी, 1565 ई0 के 'तालीकोटा युद्ध' में विजयनगर साम्राज्य की हार के साथ ही इसका वैभव नष्ट हो गया और इसके बाद के शासकों ने एक छोटे भौगोलिक क्षेत्र पर अपना शासन 1652 ई0 तक कायम रखा था। इस प्रकार 1336 से 1652 ई0 तक के लगभग 316 वर्षों के सुदीर्घ शासनकाल में विजयनगर हिन्दू धर्म, संस्कृति, साहित्य एवं कला का बड़ा केन्द्र बन गया था। विजयनगर साम्राज्य के लगभग तीन शताब्दियों के शासनकाल ने सांस्कृतिक क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति की थी।

2.2 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है –

1. विद्यार्थी विजयनगर साम्राज्य की संस्कृति को समझ सकेगें।
2. विद्यार्थी विजयनगर साम्राज्य की सामाजिक स्थिति को जान सकेंगे।
3. विद्यार्थी विजयनगर साम्राज्य की आर्थिक स्थिति को समझेंगें।
4. विद्यार्थी विजयनगर साम्राज्य की धार्मिक स्थिति को समझ सकेगें।
5. विद्यार्थी विजयनगर साम्राज्य की स्थापत्य कला को समझ सकेगें।
6. विद्यार्थी विजयनगर साम्राज्य की शिक्षा एवं साहित्य को जान सकेंगे

2.3 सामाजिक दशा :

विजयनगर कालीन समाज में परंपरागत चातुर्यवर्णिय व्यवस्था के साथ ही, सुदृढ़ वर्ग व्यवस्था के प्रमाण भी मिलते हैं। समाज में कामगारों, व्यवसायियों एवं शिल्पियों का महत्वपूर्ण स्थान था। समाज में ऊँच–नीच और विभेदीकरण जैसे तत्व अधिक सुदृढ़ नहीं थे। मुस्लिम, जैन, बौद्ध, ईसाई आदि धर्मो की

सामाजिक व्यवस्था एक साथ विद्यमान थी। राज्य सभी धर्मो के मध्य सामाजिक समरसता बनाये रखने का पूर्ण प्रयास करता था।

2.3.1 वर्णाश्रम व्यवस्था :

विजयनगर साम्राज्य मध्यकालीन भारत में हिन्दू धर्म और समाज की रक्षा के लिए संगठित हुआ था। अतः स्वाभाविक था कि, विजयनगर साम्राज्य कालीन समाज हिन्दू धर्म द्वारा विहित सामाजिक पृष्ठभूमि पर आधारित था। विजयनगर साम्राज्य के शासकों के कर्तव्यों में यह कहा गया था कि, वे समाज के सभी वर्णो की समानता के साथ विकास एवं रक्षा करेगें। अर्थात् वर्णों के मध्य कोई भेदभाव नहीं करेगें। ऐसा प्रतीत होता है कि, वर्णों की समानता के साथ रक्षा और प्रगति की धारणा के पीछे तत्कलीन भक्ति आन्दोलन का निश्चित रूप से प्रभाव रहा होगा। विजयनगर साम्राज्य की वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था। ब्राह्मण विजयनगर के प्रशासन एवं सैन्य व्यवस्था में उच्च पदों पर पदासीन थे। विजयनगर कालीन अनेक ऐसे साक्ष्यों में वीर और सफल ब्राह्मण सेनापतियों का विवरण मिलता है। विजयनगर साम्राज्य के महान शासक कृष्णदेव राय (1509–1529 ई0) को ब्राह्मणों की राजभक्ति पर बड़ा विश्वास था। कृष्णदेव राय का मानना था कि, समस्त सामरिक महत्व के स्थानों एवं प्रमुख किलों का दायित्व ब्राह्मणों के हाथों में रहना चाहिए। ब्राह्मणों के बारे में सर चार्ल्स इलियट ने लिखा है कि, 'एक वर्ण के रूप में ब्राह्मणों की बौद्धिक श्रेष्ठता उनको मान्यता दिलाने के लिए सचमुच पर्याप्त थी और उनमें इतना विवेक था कि, वे राजाओं के रूप में नहीं, बल्कि मंत्रियों के रूप में नियुक्त होकर शासन करते थे।' लेकिन यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि, निश्चित रूप से ब्राह्मणों का एक छोटा रूप वर्ग सेना एवं प्रशासन के उच्च पदों पर आसीन था किन्तु सामान्यतः ब्राह्मणों का बहुत बड़ा वर्ग धार्मिक और साहित्यिक कार्यो में संलग्न था और अपने भरण–पोषण के लिए राजा से लेकर निम्न श्रेणी तक के सभी वर्गों के लोगों से प्राप्त दान पर निर्भर था।

विजयनगर कालीन समाज में दूसरा स्थान क्षत्रियों का था। इन्हें 'राजुलु' कहा जाता था, जिनका संबंध अधिकतर राजकुलों से था तत्कालीन अभिलेखों एवं साहित्यिक साक्ष्यों में आश्चर्यजनक रूप में क्षत्रियों के बारें में उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु यह निश्चित था कि, क्षत्रिय वर्ण समाज में विद्यमान था और सैन्य एवं राजकीय कार्यों में संलग्न रहता था। कृष्णदेव राय के शासनकाल में आये पुर्तगाली यात्री बारबोसा लिखता है कि, क्षत्रियों का प्रशासन में प्रमुख स्थान था। क्षत्रिय उच्च सरकारी पदों एवं विभागों के प्रमुखों के पदों पर नियुक्त होते थे। क्षत्रिय बहुत धनाढ्य और युद्धप्रिय होते थे। स्वयं राजा क्षत्रिय परिवार का होता था। इस प्रकार परम्परागत वैदिक सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप राजा के क्षत्रिय होने की परम्परा विजयनगर में भी विद्यमान थी। विजयनगर समाज का तीसरा वर्ण वैश्यों का था। इन्हें 'मोतिकिरतलु' कहा जाता था। वैश्यों का विजयनगर कालीन समाज में बहुत सम्मान था। वैश्यों की अनेक शाखाऐं एवं उपशाखाऐं थी। वैश्य विविध प्रकार के व्यापार में लगे हुए थे और व्यापार के प्रकार के आधार पर भी उनमें विभाजन था। विजयनगर साम्राज्य का व्यापार एवं वाणिज्य प्रमुखतः वैश्यों के हाथों में ही केन्द्रित था। विजयनगर कालीन वैश्यों के समूहों में चेट्टियों का बहुत प्रभाव था। साथ ही, दस्तकारी करने वाले 'वीर पांचाल' वर्ग का भी समाज में बहुत सम्मान था।

वैश्यों के बारे में विदेशी यात्रियों ने लिखा है कि, उनका जीवनस्तर बहुत

ऊँचा था, वे बहुत धनी होते थे तथा बहुत ही संभ्रात तरीके से रहते थे। विजयनगर कालीन समाज का चतुर्थ वर्ग 'शूद्र' था। विजयनगर कालीन समाज में शूद्रों की स्थिति अच्छी थी। उत्तर भारत की तरह यहाँ शूद्रों के साथ विभेदीकरण के तत्व अधिक विद्यमान नहीं थे। विजयनगर कालीन समाज में जाति बंधनों को तोड़कर निम्न जातियों के लोगों के उच्च जाति के अधिकारों को प्राप्त करने के प्रमाण मिलते हैं। जिन निचली जातियों ने उच्च जातियों के विशेषाधिकार प्राप्त कराने में सफलता पायी, उन्हें शत् 'शूद्र' कहा गया। उन्हें बिना प्रस्तावित संस्कार कर्म के यज्ञोपवीत धारण करने की अनुमति प्रदान की गई थी। इस प्रकार यह तो तय है कि, विजयनगर काल में समाज के सभी वर्गो के मध्य समानता का भाव विद्यमान था।

2.3.2 स्त्रियों की स्थिति :

विजयनगर काल में स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक थी। राजपरिवार, नायकों एवं उच्च वर्ग की स्त्रियों का जीवन बहुत ही ऐश्वर्यमय होता था। विदेशी यात्रियों के वृतांतों से विदित है कि, विजयनगर साम्राज्य की रानियों का जीवन अत्यन्त ऐश्वर्यमय एवं खर्चीला होता था, उनकी सेवा सुश्रुसा के लिए अनेक परिचारिकाएँ होती थी। वे बहुत ही मूल्यवान वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रहती थी। राजसत्ता से जुड़े परिवारों एवं उच्च वर्गीय धनाढ्य वर्ग की स्त्रियाँ विविध प्रकार की शिक्षा से पारंगत होती थीं। उच्च समाज की स्त्रियाँ विविध भाषाओं की ज्ञाता एवं अनेक साँस्कृतिक–धार्मिक ग्रंथों की ज्ञाता होती थी। अनेक विदुषी कवियत्री एवं साहित्य रचना की धनी स्त्रियों का उल्लेख विजयनगर कालीन ऐतिहासिक स्त्रोतों से मिलता है। विजयनगर कालीन स्त्रियाँ उच्च शिक्षित, संगीत एवं नृत्य में पारंगत, मल्लयोद्धा, अंगरक्षिकाएँ, सुरक्षाकर्मी, ज्योतिष विशेषज्ञ, लेखाधिकारी, लिपिक एवं युद्ध सैनिक आदि भूमिकाओं का निर्वहन करती थीं। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि, सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में विजयनगर राज्य एकमात्र साम्राज्य था, जिसने बड़ी संख्या में स्त्रियों को विभिन्न राजकीय पदों पर नियुक्त किया था। अंगरक्षिकाओं के रूप में स्त्रियों पर बहुत विश्वास किया जाता था। महान शासक कृष्णदेवराय के दरबार में स्त्रियाँ अंगरक्षिकाओं के रूप में तैनात थी। दूसरी तरफ सामान्य जन–जीवन और निम्न वर्गीय समाज की स्त्रियों पर शिक्षा और विविध कलाओं की प्राप्ति पर किसी प्रकार के प्रतिबंध का उल्लेख हमें नहीं मिलता है। यह तो निश्चित है कि, राजकीय– उच्च वर्गीय स्त्रियों के अतिरिक्त समाज की अन्य स्त्रियाँ भी उच्च शिक्षित एवं विविध कलाओं को पारंगत रही होगी। समाज के अन्य वर्गो की स्त्रियाँ विविध व्यवसायों एवं हस्तकलाओं में दक्ष होती थीं।

विजयनगर कालीन समाज में देवदासी प्रथा विद्यमान थी। मंदिरों में देवदासियों का वृतांत हमें प्राचीनकाल से ही मिलने लगता है। देवदासियाँ समाज के सभी वर्णो और वर्गों से होती थीं और माता–पिता अपनी कन्या को स्वेच्छा से देवदासी बनाने के लिए प्रस्तुत कर देते थे। ये देवदासियाँ उच्च शिक्षित एवं विविध कलाओं में पारंगत होती थी। समाज में देवदासियों को बड़े ही सम्मान के साथ देखा जाता था। गायन, नृत्य–संगीत कला में तो ये सिद्धहस्त होती थीं। इनका सामाजिक जीवन बड़ा ही वैभवपूर्ण होता था, ये बहुत धनाढ्य होती थी और अपनी सेवा के लिए अनेक परिचारिकाओं को रखती थी। इन देवदासियों को धनार्जन भूमिदानों से या नियमित वेतन से होता था। वस्तुतः देवदासियाँ मंदिरों में देवताओं की सेवा के लिए नियुक्त होती थी। ये मंदिर में भगवान की सेवा–सुरक्षा करती थी।

विजयनगर कालीन समाज में गणिकाएँ विद्‌यमान थी। गणिकाओं को समाज एवं शासन से मान्यता प्राप्त थी। समाज का हर वर्ग राजा से लेकर रंक तक गणिकाओं से निशंकोच रूप से संपर्क में रहता था। समाज में गणिकाओं को भी सम्मान से देखा जाता था। किसी भी समुदाय की स्त्रियाँ गणिकाएँ बन सकती थी। विजयनगर कालीन गणिकाएँ सुशिक्षित एवं विविध कलाओं में प्रवीण होती थी। नगर जीवन के आमोद–प्रमोद एवं उल्लास में इस वर्ग की उल्लेखनीय भूमिका थी। गणिकाएँ सार्वजनिक उत्सवों में भाग लेती थी। पिट्राडेल्ला वेली ने लिखा है कि, 'विशिष्ट वस्त्राभूषणों से सुसज्जित नवयुवतियाँ ढोल एवं अन्य वाद्य यंत्रों की सुरताल पर नृत्य–गायन करती हुई उत्सवों में भाग लेती थीं।'

समाज में बाल–विवाह, बहुविवाह प्रचलित था। पर्दाप्रथा नहीं थी। राजपरिवार एवं सामन्तों वर्ग में बहुविवाह कुप्रथा विकराल रूप ले चुकी थी, उनकी अनेक पत्नियों के साथ ही अनेक रखैले भी होती थीं।

2.3.3 सती प्रथा :

विजयनगर कालीन समाज में 'सती प्रथा' का प्रचलन था। समाज एवं राज्य 'सती प्रथा' को प्रश्रय नहीं देता था। यह स्वैच्छिक थी, अर्थात् स्वयं स्त्री अपनी इच्छा से सती होती थी। सती या सहगमन को सम्मान देते हुए स्त्रियों की स्मृति में 'सती स्मारक' या 'सती स्तंभ' स्थापित किये जाते थे, जिन्हें सतीकल, महासतीकल, महासतीगल्लु आदि नामों से जाना जाता था। सती प्रथा के साक्ष्य विजयनगर कालीन अनेक अभिलेखों और विदेशी यात्रियों के विवरणों से बड़ी संख्या में प्राप्त होते है। विदेशी यात्री डुआर्त बार्बोसा का कथन है कि, सती प्रथा ब्राह्मणों, लिंगायतों एवं चेट्टियों में प्रचलित नहीं थी। सती प्रथा राजपरिवार, सामंतों, नायकों में ही प्रचलित थी। समाज की सामान्य प्रजा इस प्रथा से दूर थी। राज्य विधवा विवाहों को प्रोत्साहन देता था। विधवा–विवाह को राज्य ने 'विवाह कर' से छूट प्रदान कर रखी थी। इससे यह तो स्पष्ट है कि, राज्य एवं समाज दोनों विधवा–विवाह को वैधानिकता प्रदान करते थे।

2.3.4 दास प्रथा :

विजयनगर कालीन समाज में दास प्रथा विद्‌यमान थी। स्त्री और पुरूष दोनों प्रकार के दासों का उल्लेख मिलता है। समाज में मनुष्य का क्रय–विक्रय भी होता था, जिसे 'वेस–वग' कहा जाता था। अधिकांश दास–दासियाँ युद्ध में जीते गये स्त्री–पुरूष होते थे। विदेशों से सुन्दर स्त्रियों के आयात के भी प्रमाण मिलते थे। राजमहलों में बड़ी संख्या में दासियाँ परिचारक का कार्य करती थी। साथ ही सुन्दर स्त्रियाँ राजाओं, सामन्तों, नायकों की रखैलों के रूप में रहती थी। यदि कोई स्त्री या पुरूष अपना ऋण नहीं चुका पाता था, तो उसे ऋणदाता का दास बनना पड़ता था।

2.3.5 वस्त्राभूषण :

विजयनगर कालीन समाज के लोग वस्त्र–आभूषण एवं श्रृंगार के प्रसाधनों के शौकीन थे। विदेशी यात्री वार्थेमा ने अपने उद्धरण में लिखा है कि, ''सम्पन्न व्यक्ति एक छोटी कमीज और सिर पर सुनहले या रूपहले रंग का कपड़ा पहनते थे, किन्तु पैरों में कुछ नहीं पहनते थे। आम जनता कमर में में एक कपड़ा पहनती थी और समस्त बदन नंगा रहता था। राजा सुनहली जड़ीदार टोपी पहनता था, उसकी पोषाक में हीरे–मोती जड़े होते थे।'' विजयनगर कालीन समाज में पैरों में जूते सामान्य प्रजा और

सम्पन्न वर्ग के लोग भी नहीं पहनते थे। पैरों में जूते राजपरिवार और राजसत्ता से जुड़े अभिजात वर्गीय परिवारों के लोग ही पहनते थे। आम प्रजा से संबंधित स्त्रियाँ साड़ी एवं चोली पहनती थी। राजपरिवार और राजसत्ता से जुड़े परिवारों के स्त्री एवं पुरूष दोनों कीमती रत्नाभूषणों से जड़ित वस्त्र पहनते थे। स्त्रियाँ विशेष प्रकार पेटीकोट, दुपट्टा और चोली पहनती थीं। विजयनगर कालीन समाज में स्त्री एवं पुरूष दोनों ही आभूषणों के शौकीन थे। स्त्री एवं पुरूष दोनों ही गले में हार, पैरों में कड़े और बाजुओं में भुजबंध एवं कानों में कुण्डल पहनते थे। विजयनगर कालीन समाज में पुरूष दाँये पैर में चाँदी का एक विशेष कड़ा पहनते थे, जिसे 'गंडपेंद्र' कहा जाता था। यह बड़ा ही सम्मान सूचक माना जाता था। वस्तुतः राज्य युद्ध में विशेष वीरता दिखाने वाले योद्धाओं और विशेष व्यक्तियों को 'गंडपेन्द्र' देकर पुरस्कृत करता था। कालान्तर में आम जनता द्वारा ऐसा ही कड़ा पहनना सम्मान का प्रतीक माना जाने लगा था।

2.3.6 क्रीड़ा एवं मनोरंजन :

विजयनगर कालीन समाज में क्रीड़ा एवं मनोरंजन के विविध साधन प्रचलित थे। मनोरंजन के लिए संगीत–गीत–नृत्य, नाटक, जुआ, घुड़दौड़, जानवरों की आपस में लड़ाई, कुश्ती, लोकनृत्य, शतरंज एवं पासा, सामाजिक एवं राजकीय उत्सव, मेलों आदि में मनोरंजन एवं क्रीड़ा के विविध रूप प्रस्तुत होते थे। सपेरे एवं नटों की मण्डलियाँ भी घूम–घूमकर मनोरंजन करती थी। पायस ने लिखा है कि, कृष्णदेव राय प्रतिदिन पहलवानों के साथ कुश्ती लड़ता था तथा घुड़सवारी करता था। विजयनगर के राजमहल के अंदर अखाड़े होते थे, जिसमें मनोरंजन के लए कुश्तियाँ होती थी। महिलाओं के मध्य कुश्ती और मल्लयुद्ध के भी प्रमाण मिलते हैं। पिट्रा डेल्ला वेली किसी सामाजिक साँस्कृतिक उत्सव का उल्लेख करते हुए लिखता है कि, सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित नवयुवतियाँ ढोल, नगाड़ों आदि वाद्य यंत्रों पर नृत्य–संगीत–गान करती हुई मण्डलियों में गलियों से गुजरती थीं। विजयनगर कालीन समाज में नाटकों एवं यक्षगान की बहुत लोकप्रियता थी। विजय नगर काल में ही सर्वप्रथम 'यक्षज्ञान' नृत्य परम्परा का विकास दक्षिण भारत में हुआ था। 'बोमलाट' नामक छाया नाटक की भी लोकप्रियता समाज में बहुत थी। विजयनगर काल में अनेक सामाजिक एवं राजकीय उत्सवों का आयोजन किया जाता था। जिसमें 'महानवमी' राज्य का राजकीय त्यौहार था। महानवमी का त्यौहार बड़ी ही धूमधाम से आयोजित किया जाता था, जिसमें विजयनगर का सम्राट स्वयं उपस्थित रहता था।

2.3.7 शिक्षा :

विजयनगर साम्राज्य में शिक्षा उन्नत अवस्था थी। हालाँकि, राज्य का आधिकारिक कोई शिक्षा विभाग नहीं था, तथापि राज्य शिक्षा और शिक्षकों को पर्याप्त प्रश्रय प्रदान करता था राज्य में शिक्षा मंदिर, मठों और अग्रहारों में दी जाती थी। विजयनगर कालीन शासक एवं नायक शिक्षा की वृद्धि के लिए मंदिर, मठों एवं अग्रहारों को मुक्तहस्त धनदान करते थे। अग्रहार ब्राह्मण शिक्षा के विशेष केन्द्र होते थे, जहाँ ब्राह्मण वैदिक एवं धार्मिक शिक्षा प्रदान करते थे। विजयनगर कालीन शिक्षा के पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा, वैदिक एवं पुराणों, आयुर्वेद एवं व्यवहारिक शिक्षा दी जाती थी। संगीत एवं नृत्य की शिक्षा के प्रमाण भी मिलते हैं। डॉ0 नीलकंठ शास्त्री लिखते है कि, प्राविधिक या व्यावसायिक शिक्षा वंशानुगत रूप से बच्चा अपने परिवार से सीखता था। उत्तम श्रेणी के प्रशिक्षित कारीगरों एवं कलाकारों की कोई

कमी नहीं थी। अभिलेखों की सुन्दरता तथा परिशुद्धता खुदाई करने वालों की उच्चकोटि की साक्षरता और कुशलता को प्रगट करती हैं। विजयनगर काल में जैन पल्लियों और बौद्ध विहारों में भी शिक्षा प्रदान की जाती थी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. अग्रहार केन्द्र थे ?
   (क) संगीत के (ख) नृत्य के
   (ग) शिक्षा के (घ) इनमें से कोई नहीं
2. चेट्टि कौन थे?
   (क) ब्राह्मण (ख) वैश्य
   (ग) क्षत्रिय़ (घ) शूद्र
3. किसके दरबार में स्त्रियाँ अंगरक्षिकाओं के रूप में तैनात थी ?
   (क) हरिहर (ख) बुक्का
   (ग) कृष्णदेव राय (घ) इनमें से कोई नहीं
4. विजयनगर का कौनसा शासक प्रतिदिन पहलवानों के साथ कुश्ती लड़ता था?
   (क) हरिहर (ख) बुक्का
   (ग) कृष्णदेव राय (घ) इनमें से कोई नहीं
5. विजयनगर में कौनसा का त्यौहार बड़ी ही धूमधाम से आयोजित किया जाता था?
   (क) दशहरा (ख) होली
   (ग) महानवमी (घ) इनमें से कोई नहीं

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) सती प्रथा ।
   (ख) स्त्रियों की स्थिति।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः
   (अ) विजयनगर कालीन वर्ण व्यवस्था का विवरण दीजि

2.4 साहित्य :

विजयनगर साम्राज्य के शासक साहित्य एवं ज्ञान के महान संरक्षक थे। वे न केवल साहित्य एवं साहित्यकारों के संरक्षक थे, अपितु स्वयं भी ज्ञानवान विद्वान साहित्यकार थे। उनके शासन काल में वैदिक साहित्य तथा दक्षिण भारतीय भाषाओं के साहित्य का भरपूर विकास हुआ। तमिल, तेलगू, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं के विकास में विजयनगर काल में अभूतपूर्व प्रगति हुई। विजयनगर के शासकों ने किसी भी भाषा और साहित्यकार को उपेक्षित नहीं किया था। विजयनगर साम्राज्य में 'नन्दिनागढ़ी लिपि' का प्रयोग होता था। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना में प्रसिद्ध विद्वान माधव एवं सायण की प्रमुख भूमिका थी। ये दोनों वैदिक ग्रंथों और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे, जिनके कारण विजयनगर में संस्कृत भाषा और साहित्य का तेजी से विकास हुआ। सायण के नेतृत्व में संस्कृत में चारों वेदों, अनेक ब्राह्मण ग्रंथों तथा आरण्यकों पर भाष्य लिखे गये। सायण के भाई माधव ने पाराशर स्मृति पर

'पाराशर माधवीय' नामक टीका लिखी। विजयनगर सम्राट देवराज द्वितीय ने 'सुधानिधि' तथा 'बादरायण' के ब्रह्मसूत्र पर संस्कृत में टीका लिखी। कृष्णदेव राय ने संस्कृत भाषा में 'जाम्बती कल्याणम्' तथा 'ऊषा परिणय' नामक ग्रंथों की रचना की।

विजयनगर कालीन साहित्य में सर्वाधिक विकास तेलगू भाषा के साहित्य का हुआ। कृष्णदेव राय ने 'आमुक्तमाल्यद' की तेलगू भाषा में रचना की। जिसे तेलगू भाषा के पाँच महाकाव्यों में स्थान प्राप्त है। कृष्णदेव राय के दरबार में तेलगू भाषा के महान् साहित्यकार, विद्वान एवं कवि रहते थे, जिन्हें 'अष्टदिग्गज' के नाम से जाना जाता था। अष्टदिग्गज मण्डली का सर्व प्रमुख एवं प्रथम विद्वान 'अल्लसनिपेद्दन' था, जिसे तेलगू कविता का पितामह एवं आन्ध्र कविता का पितामह की उपाधि प्राप्त थी। उसकी प्रमुख रचना 'स्वरोचितसम्भव' या मनुचरित है अष्टदिग्गज समूह का दूसरा कवि 'नंदी तिम्मन' था, जिसने 'पारिजातहरण' नामक ग्रंथ लिखा। तीसरा विद्वान भट्टमूर्ति (रामराज भूषण) था, जिसने 'नरसभूपालीयम' एवं 'हरिश्चन्द्र नलोपारण्यानम्' की रचना की। चौथे विद्वान धूर्जटि ने 'कलहस्तिमहात्म्य', पाँचवे विद्वान मल्लन ने 'राजशेखरचरित', छठवें विद्वान अच्चतुराज रामचन्द्र ने 'सकलकथासार संग्रह' और 'रामाम्युदयम', सातवें विद्वान पिंगली सूत्र ने 'राघवपाण्डीय' तथा आठवे विद्वान तेनाली रामकृष्ण ने 'पाण्डुरंग महात्म्य' की रचना की। इनके अतिरिक्त भी अनेक विद्वानों ने तेलगू भाषा में साहित्य रचना की थी। कन्नड़ भाषा के विकास विजयनगर काल में जैनों और वीर शैवों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। कन्नड़ रचनाओं में भीमक की 'वासवपुराण', चामरस की प्रभुलिंग–लील, लक्कन्न दण्डदेश की 'शिवतत्व चिंतामणि' एवं जक्कनार्य नुरोन्दुस्थल, राजनाथ की सालूवाभियुद्य एवं भागवत चंपू प्रमुख रचनाएँ हैं। बुक्का प्रथम की पौत्रवधु गंगादेवी की 'मदुरा विजयम', तथा तिरूवलाम्बा देवी की वरदाम्बिका परिणय भी प्रमुख कन्नड़ साहित्य की रचनाएँ है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. अष्टदिग्गज संबंधित थे ?
   (क) हरिहर (ख) बुक्का
   (ग) कृष्णदेव राय (घ) इनमें से कोई नहीं
2. अष्टदिग्गज किस भाषा से संबंधित थे?
   (क) तमिल (ख) तेलगू
   (ग) कन्नड़ (घ) इनमें से कोई नहीं
3. आमुक्तमाल्यद किसकी रचना है?
   (क) हरिहर (ख) बुक्का
   (ग) कृष्णदेव राय (घ) इनमें से कोई नहीं
4. तेलगू कविता का पितामह कहा जाता है ?
   (क) अल्लसनिपेद्दन (ख) भट्टमूर्ति
   (ग) नंदी तिम्मन (घ) इनमें से कोई नहीं
5. पारिजातहरण किसकी रचना है ?
   (क) अल्लसनिपेद्दन (ख) भट्टमूर्ति
   (ग) नंदी तिम्मन (घ) इनमें से कोई नहीं

(ii) नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) विजयनगर कालीन साहित्य का विवरण दीजिये ?

2.5 धार्मिक दशा :

मध्यकालीन इस्लामिक धर्मान्ध के मध्य विजयनगर धार्मिक सहिष्णुता का जीता–जागता उद्धरण था। विजयनगर साम्राज्य के शासक धर्मान्ध मध्यकाल के इस्लामिक शासकों से घिरे होने बावजूद महान् सहिष्णुता के पालक थे। उन्होंने सभी धर्मों को अपने राज्य में फलने–फूलने की पूर्ण छूट दे रखी थी। विजयनगर के शासकों ने किसी भी धर्म के अनुयायियों को प्रताड़ित नहीं किया था। विदेशी यात्री बारबोसा कृष्णदेव राय की प्रशंसा करते हुए लिखता है कि, ''राजा धार्मिक दृष्टि से बहुत उदार है, उसके राज्य में ईसाई, यहूदी, मुसलमान आदि बिना किसी रोक–टोक के आ जा सकते है, निवास कर सकते हैं और स्वेच्छा से अपने धर्म का पालन कर सकते हैं।'' विजयनगर साम्राज्य हिन्दू धर्म का पुनरूत्थान काल था। विजयनगर शासक प्रारंभ में हिन्दू धर्म के शैवमत के अनुयायी थे, किन्तु कालान्तर में वे शनैः–शनैः वैष्णवमत के अनुयायी हो गये। फिर भी संपूर्ण विजयनगर शासनकाल में शैव एवं वैष्णव दोनों मतों का आदर एवं अनुसरण विजयनगर के शासकों ने किया। विजयनगर शासक प्रारम्भ में शिव के 'विरूपाक्ष' रूप के उपासक थे। शिव के विरूपाक्ष रूप में उनकी अगाध श्रद्धा थी और इसी श्रद्धा और भक्ति के परिणामस्वरूप विजयनगर शासक अपने को विरूपाक्ष का प्रतिनिधि मानकर शासन करते थे, उन्होंने विरूपाक्ष को नगर देवता एवं राज्य देवता के रूप में मान्यता प्रदान की थी। शैव सम्प्रदाय में इस काल में लिंगायत सम्प्रदाय का भी विकास हुआ। अधिकांश प्रजा लिंगायत सम्प्रदाय की अनुयायी थी।

कृष्णदेवराय के शासनकाल में वैष्णव धर्म का प्रभाव अधिक बढ़ने लगा। इसमें भक्ति आंदोलन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। वैष्णवों में रामानुज के द्वैतवादी अनुयायियों की संख्या अधिक थी। कृष्णदेव राय विष्णु के विठोवा (विट्ठल) रूप के उपासक हो गये थे। वैंकट द्वितीय के शासनकाल में विरूपाक्ष का स्थान भगवान वैंकटेश्वर ने लिया था। 1556 ई0 में रामराय के आदेश पर सदाशिव ने श्री पेरम्बदूर में रामानुज मंदिर को इक्तीस ग्राम दान दिये थे। विजयनगर के शासकों ने वैष्णव होते हुए भी शैव धर्म का सदा सम्मान किया। कृष्णदेव राय के शासनकाल में वैष्णव एवं शैव मंदिरों के निर्माण तथा भूमिदान का उल्लेख मिलता है। विजयनगर शासकों के समय वैष्णव एवं शैव मतों के मध्य विवाद के उल्लेख भी मिले हैं, किन्तु शासकों ने दोनों मतों के मध्य आपसी वाद–विवाद को समाप्त कर दिया था। विजयनगर साम्राज्य का सबसे बड़ा धार्मिक राज्योत्सव महानवमी था। यह देवी–दुर्गा को समर्पित त्यौहार था, यह त्यौहार बड़ी ही धूमधाम और भव्य तरीके से मनाया जाता था, जिसे देखने देश–विदेश के लोग आते थे। विदेशी यात्रियों ने महानवमी का उल्लेख एक बड़े राज्य उत्सव के रूप में किया है। इस उत्सव में विजयनगर सम्राट स्वयं उपस्थित रहता था।

विजयनगर साम्राज्य में बौद्ध एवं जैन धर्म के अनुयायी भी थे। जिन्हें अपने धर्म के प्रसार–प्रचार की पूरी स्वतंत्रता प्राप्त थी। विजयनगर काल में वैष्णव एवं जैन धर्म के मध्य–विवाद का उल्लेख श्रवणवेलगोला के अभिलेखों में मिलता है। शासकों ने निष्पक्ष निर्णय लेते हुए जैन धर्म के हितों की रक्षा की और उनके पक्ष में निर्णय दिया। इससे स्पष्ट है कि, शासक जैन धर्म के प्रति सहिष्णु थे तथा जैन धर्म का आदर करते थे। विजयनगर शासनकाल में इस्लाम धर्म के अनुयायी भी निवास करते थे।

इस्लाम धर्म के अनुयायियों को मुसलमान कहा जाता था। विजयनगर के शासकों ने मुसलमानों को अपने धर्म के पालन की पूरी छूट दे रखी थी। विजयनगर की सेना में भी मुसलमानों को नियुक्ति दी गयी थी और उन्हें जागीरें भी प्रदान की गयी थी। देवराय द्वितीय ने तुर्की धनुर्धरों को अपनी सेना में नियुक्त किया और उनके लिए राज्यकोष के धन से मस्जिदों का निर्माण करवाया। उसके सिंहासन में एक तरफ 'वेद' और दूसरी तरफ 'कुरान' रखी रहती थी। संपूर्ण विजयनगर साम्राज्य में मुसलमानों को मस्जिदें बनवाने की स्वतंत्रता थी। वे पूर्ण स्वतंत्रता के साथ अपना धर्म कार्य करते थे तथा उन्हें हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन कराने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। ईसाई धर्म के मानने वालों को भी विजयनगर साम्राज्य में स्वतंत्रता प्राप्त थी। अनेक ईसाई धर्म प्रचारक अपने धर्म के प्रचार–प्रसार का कार्य साम्राज्य में स्वतंत्र रूप से करते रहे।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. विजयनगर काल में किस धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त था ?
   (क) वैष्णव धर्म (ख) बौद्ध धर्म
   (ग) जैन धर्म (घ) इनमें से कोई नहीं
2. श्रवणवेलगोला संबंधित है ?
   (क) वैष्णव धर्म (ख) बौद्ध धर्म
   (ग) जैन धर्म (घ) इनमें से कोई नहीं
3. विठोवा (विट्ठल) स्वरूप किसका है ?
   (क) विष्णु (ख) शिव
   (ग) कृष्ण (घ) इनमें से कोई नहीं
4. विरूपाक्ष स्वरूप किसका है ?
   (क) कृष्ण (ख) विष्णु
   (ग) शिव (घ) इनमें से कोई नहीं
5. विजयनगर काल में कौनसा विदेशी यात्री आया था ?
   (क) बारबोसा (ख) पेरीप्लस
   (ग) इत्सिंग (घ) इनमें से कोई नहीं

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) इस्लाम धर्म की स्थिति।
   (ख) शैवमत की स्थिति।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) विजयनगर कालीन वैष्णव धर्म का विवरण दीजिये ?

2.6 आर्थिक दशा :

विजयनगर साम्राज्य कुशल सम्राटों के नेतृत्व में आर्थिक रूप से सुसंमृद्ध था। विजयनगर राज्य की संमृद्धि और वैभव का वृतान्त विदेशी यात्रियों निकोलोकोन्टी, पायस, बारबोसा, नूनिज, अब्दुर्रज्जाक आदि ने दिया है। विजयनगर साम्राज्य की आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी थी। लोगों का जीवन स्तर

बहुत ऊँचा था। साधारण प्रजा भी सुखी जीवन निर्वहन कर रही थी। कृषि उद्योग धंधे, व्यापार एवं वाणिज्य उन्नत अवस्था में था। प्रजा के जीवन निर्वहन की आवश्यक वस्तुओं की कोई कमी नहीं थी। अधिकांश जनता अपना जीवन–यापन सुखी, सम्पन्न, संतुष्ट एवं शान्तचित होकर व्यतीत कर रही थी। विजयनगर की समृद्धि और ऐश्वर्य का वृतान्त करते हुए विदेशी यात्रियों ने लिखा है कि, विजयनगर विश्व के संमृद्ध साम्राज्यों में से एक है।

2.6.1 कृषि एवं सिंचाई :

विजयनगर साम्राज्य की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि व्यवस्था पर आधारित थी। प्रजा का मुख्य व्यवसाय कृषि था। अधिकांश जनता को रोजगार कृषि एवं कृषि आधारित कार्यों से मिला हुआ था। शासन एवं व्यक्तिगत प्रयासों से कृषि भूमि के विस्तार के अनेक उल्लेख विजयनगर कालीन साक्ष्यों से मिलते थे। बंजर एवं जंगली भूमि को कृषि योग्य बनाने को राज्य प्रदाय देता था। राज्य कृषि की पैंदावार बढ़ाने के लिए कृषि सिंचाई हेतु तालाबों, बाँधों एवं नहरों का प्रबंध करता था। हालाँकि विजयनगर प्रशासन में सिंचाई का कोई विभाग नहीं था, फिर भी राज्य सिंचाई व्यवस्था करने के प्रति उदासीन नहीं था। विजयनगर साम्राज्य में नदियों पर बाँध बनाकर नहरों के निर्माण के अनेक प्रमाण मिले हैं। जिसका सबसे उत्तम प्रमाण राजधानी विजयनगर में तुंगभद्रा नदी पर बाँध बनाकर नहरों के निर्माण में पाते हैं। विजयनगर शासक, उनके प्रांतीय प्रशासक, नायक एवं अनेक सार्वजनिक संस्थान जैसे मंदिर, मठ, अग्रहार तथा सर्वजन के द्वारा तालाबों के निर्माण के साक्ष्य मिले हैं। प्रशासन ने अनेक बड़े–बड़े तालाबों का निर्माण कराया एवं पुराने तालाबों का विस्तार किया था। विजयनगर कालीन अभिलेखों में पुराने तालाबों के विस्तार, उनकी मरम्मत एवं नवीन तालाबों के निर्माण के अनेक साक्ष्य मिले हैं। वस्तुतः विजयनगर काल में सिंचाई –प्रबंध की उत्तम व्यवस्था थी, राज्य सिंचाई साधनों के प्रबंध, उनकी सुरक्षा एवं विस्तार पर पूरा ध्यान देता था। सिंचाई के साधनों की सुरक्षा में समुदाय का भी सहयोग लिया जाता था। ऐसे लोगों को कर मुक्त भूमि दी जाती थी, जो सिंचाई के साधनों की देखभाल एवं सुरक्षा करते थे। विजयनगर काल में भूमि प्रबंधन एवं सर्वेक्षण की सुव्यवस्था थी। कृषि भूमि का नियमित सर्वेक्षण किया जाता था एवं उसके सीमांकन के लिए पत्थर लगाए जाते थे। भूमि को कर प्रणाली हेतु सिंचित और असिंचित दो भागों में बांटा गया था।

विजयनगर साम्राज्य की प्रमुख फसल 'चावल' (धान) थी। धान, दाले, चना, जौ, तिलहन, नील, कपास, मसाले, काली मिर्च, अदरक, इलायची, नारियल आदि की होती थी। अब्दुर्रज्जाक ने विजयनगर में बड़ी संख्या में गुलाब की खेती देखी थी। अतः बागवनी का व्यवसाय भी उन्नत अवस्था में था। विजयनगर साम्राज्य में 'अट्ठावन' नामक विभाग कृषि कर को एकत्रित करता था। विजयनगर साम्राज्य का भूमि कर 'शिष्ट' नाम से जाना जाता था। विजयनगर साम्राज्य में विभेदकारी 'कर' पद्धति लागू थी। कृषि कर निर्धारण के लिए भूमि को चार भागों सिंचित, शुष्क, उद्यान एवं वन भूमि में विभाजित किया गया था। विजयनगर शासक कृषि भूमि पर उपज का 1/3 से लेकर 1/6 भाग लेते थे। भूमि कर का निर्धारण भूमि की श्रेणी एवं फसल की उपज के आधार पर किया जाता था। ब्राह्मणों की भूमि अग्रहारों पर उपज का 1/20 भाग तथा देवालयों की भूमि पर 1/30 भाग कृषि कर लिया जाता था। कृषि कर नगद एवं अन्न दोनों रूपों में कृषकों को देने की छूट थी। कृषि के साथ पशुपालन भी ग्रामीणों एवं कृषकों की आय का प्रमुख व्यवसाय था। कृषि में पशुओं की आवश्यकता अनिवार्यतः होती

थी, अतः पशुपालन प्रत्येक कृषक परिवार द्वारा निश्चित रूप से किया जाता था। प्रसिद्ध इतिहासविद् नीलकण्ठ शास्त्री का मत है कि, पशुपालन एवं दुग्धपालक उद्योग कृषि से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। प्रत्येक ग्राम में चारागाह के लिए भूमि अलग से छोड़ी जाती थी। इस उद्योग का सर्वदा बड़ा प्रचार–प्रसार रहा होगा। तत्कालीन साक्ष्यों में मंदिरों, भोजनालयों के पशुओं, चारवाहों तथा मंदिर एवं उनके स्वामियों के उत्तरदायित्वों का उल्लेख पाते हैं। मवेशियों से प्राप्त घी का प्रयोग मंदिरों में दीपक जलाने के साथ ही, सर्वसाधारण द्वारा भोजन में भी किया जाता था मवेशियों से दूध, दही, मक्खन एवं घी प्राप्त होता था।

2.6.2 व्यवसाय :

विजयनगर काल में प्रशासनिक सुव्यवस्था एवं राजकीय इच्छा शक्ति के कारण व्यवसायों की प्रतिष्ठा, सुरक्षा एवं उन्नति पर समुचित ध्यान दिया जता था। विजयनगर काल में वस्त्र उद्योग उन्नत अवस्था थी। कटाई एवं बुनाई एक प्रमुख उद्योग था। बुनकरों की मण्डलियाँ संगठित होकर व्यवसाय करती थी। विजयनगर प्रशासन बुनकरों, दस्तकारों, शिल्पियों आदि को संरक्षण प्रदान करता था। श्री रंग के शासनकाल के 1632 ई0 के एक अभिलेख से बढ़ई, लोहार, स्वर्णकार के साथ दुर्व्यवहार एवं उनके विशेषाधिकार के हनन पर 12 पण अर्थदण्ड का उल्लेख है। इस प्रकार स्पष्ट है कि, राज्य शिल्पियों और कामगारों को अपना सक्रिय सहयोग देता था। विजयनगर काल में धातु उद्योग एवं जौहरियों की कला की परिपक्वता उत्कृष्ट स्तर की थी। खान–खनन एवं धातु शोधन विजयनगर साम्राज्य का प्रमुख व्यवसाय बन गया था। इत्र का व्यवसाय भी विजयनगर साम्राज्य में उन्नत अवस्था में था। समुद्र किनारे मोती–सीप पकड़ने एवं मछली पकड़ने का व्यवसाय भी किया जाता था। वास्तुकला विशेषज्ञों, शिल्पकारों एवं चित्रकारों का भी व्यवसाय था। विजयनगर कालीन व्यवसायी एवं व्यापारी व्यापारिक संघों, श्रेणियों और समूहों में संगठित होकर कार्य करते थे। व्यापारी वर्ग में चेट्टी समुदाय विशेष प्रभावशाली था और राजदरबार में भी इसका सम्मान एवं प्रभाव था।

2.6.3 व्यापार :

विजयनगर कालीन अर्थव्यवस्था में व्यापार की महत्वपूर्ण भूमिका थी। विजयनगर साम्राज्य के आंतरिक एवं बाह्य व्यापार ने अभूतपूर्व प्रगति की। विजयनगर काल में व्यापार जल – थल दोनों ही मार्गों से होता था। विदेशी व्यापार अधिकांशतः विदेशियों के हाथों में था। विजयनगर साम्राज्य में विदेशी व्यापार के लिए अनेक बंदरगाह थे, विदेशी यात्री अब्दुर्रज्जाक विजयनगर साम्राज्य में 300 बंदरगाहों का उल्लेख करता है। अब्दुर्रज्जाक विजयनगर साम्राज्य के हिन्द महासागर के द्वीपों से व्यापारिक सम्बन्धों का भी उल्लेख करता है। विजयनगर साम्राज्य का आंतरिक व्यापार विकसित अवस्था में था। राज्य व्यापार एवं व्यापारियों की सुरक्षा की पूरा व्यवस्था करता था। राज्य के आंतरिक व्यापार में व्यापारियों की मार्ग में सुरक्षा का प्रबंध भी राज्य करता था। विजयनगर शासक व्यापार एवं व्यापारियों के स्थानीय व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए नगरों में नियमित रूप से मेलों का आयोजन करवाता था। मेलों का आयोजन समीप के कस्बों के व्यापार संघों द्वारा किया जाता था। इसकी देखभाल और व्यवस्था भी व्यापार संघ के अध्यक्ष द्वारा की जाती थी जिसे 'पट्टनस्वामी' कहते थे। वस्त्रों की बुनाई, खान–खनन एवं धातु शोधन विजयनगर साम्राज्य के प्रमुख व्यवसाय थे। धातु कर्म व्यवसाय सर्वाधिक विकसित

अवस्था में था। छोटे व्यवसायों में सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय 'गन्धी' (इत्र) का था। व्यापारी अपने व्यापार की उन्नति और सुरक्षा के लिए संघों और श्रेणियों में संगठित थे।विदेशी यात्रियों के वृतांतों से ज्ञात है कि, विजयनगर साम्राज्य का विदेशी व्यापार बहुत विकसित स्थिति में था। विजयनगर साम्राज्य का विदेशी व्यापार श्रीलंका, पेगू, मलाया, चीन, अफ्रीकी देशों, अरब देशों, फारस, इटली, पुर्तगाल आदि देशों से था। विजयनगर साम्राज्य विदेशों से हाथी, घोड़े, रेशमी, जरीदार एवं बूटेदार वस्त्र, मखमल, मूल्यवान पत्थर, पारा, तांबा, कोयला आदि वस्तुओं का आयात करता था। विजयनगर साम्राज्य में सबसे महत्वपूर्ण आयातित वस्तु घोड़े थे। जबकि, विजयनगर साम्राज्य से विदेशों को हीरे, कपड़ा, शोरा, चीनी, चावल, मसाले, काली मिर्च, अदरक, इत्र आदि वस्तुओं का निर्यात होता था।

2.6.4 मुद्रा व्यवस्था :

विजयनगर कालीन अर्थव्यवस्था के विकास में ठोस मुद्रा प्रणाली की महत्वपूर्ण भूमिका थी। विजयनगर साम्राज्य की 'मुद्रा' देशी एवं विदेशी व्यापारियों के बीच बहुत ही विश्वसनीय थी। विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने सोने, चाँदी आदि धातुओं के सिक्के जारी किये। विजयनगर कालीन 'मुद्रा' को हूण, परदौस (पगोड़ा), वाराह, प्रताप, फणम्, तार आदि कहा गया है। सोने के सिक्कों को वाराह, प्रताप तथा फणम् कहा जाता था। चाँदी के छोटे सिक्के को 'तार' कहा जाता था। विजयनगर का सर्वाधिक प्रसिद्ध सिक्का सोने का 'वाराह' था। सोने का सिक्का 'वाराह' सम्पूर्ण भारत तथा विश्व के प्रमुख व्यापारिक नगरों में स्वीकार किया जाता था। विजयनगर साम्राज्य के सिक्कों पर हनुमान, लक्ष्मी नारायण, उमामहेश्वर, वेंकटेश और बालकृष्ण बैल, गरूड़, वाराह, शंख, चक्र आदि आकृतियाँ अंकित मिलती है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. विजयनगर साम्राज्य में 'शिष्ट' था। ?
   (क) भूमि कर (ख) सिंचाई कर
   (ग) व्यवसाय कर (घ) इनमें से कोई नहीं
2. देवालयों की भूमि पर कृषि कर लिया जाता था ?
   (क) 1/10 भाग (ख) 1/20 भाग
   (ग) 1/30 भाग (घ) इनमें से कोई नहीं
3. विजयनगर कालीन स्वर्ण मुद्रा थी ?
   (क) दीनार (ख) कार्षापण
   (ग) वाराह (घ) इनमें से कोई नहीं
4. 'गन्धी' का व्यवसाय संबंधित था?
   (क) वस्त्रों का (ख) इत्र का
   (ग) हाथीदाँत का (घ) इनमें से कोई नहीं
5. विजयनगर साम्राज्य में सबसे महत्वपूर्ण आयातित वस्तु थी ?
   (क) हाथी (ख) खच्चर

(ग) घोड़े (घ) इनमें से कोई नहीं

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) व्यवसाय ।

(ख) मुद्रा ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) विजयनगर कालीन कृषि एवं सिंचाई का विवरण दीजिये ?

2.7 कला :

विजयनगर साम्राज्य के शासक कला के महान संरक्षक थे। वे न केवल कला एवं कलाकारों के संरक्षक थे, अपितु स्वयं भी कला के अच्छे पारिखी भी थे। विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने स्थापत्य, चित्रकला, संगीतकला आदि के विकास में सक्रिय भूमिका निभायी। उन्होंने चित्रकला एवं संगीतकला के कलाकारों को संरक्षण दिया तथा स्थापत्य कला के साक्षात स्वरूप अनेक भवनों एवं मंदिरों का निर्माण करवाया।

2.7.1 स्थापत्य कला :

विजयनगर साम्राज्य के शासनकाल में स्थापत्य कला के अंग अनेक भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ। पुरातत्वविद् के० आर० श्रीनिवासन ने लिखा है कि, मंदिरों के निर्माण में कठोर पाषाण का प्रयोग विजयनगर कालीन मंदिर स्थापत्य कला की प्रमुख विशेषता है। प्रसिद्ध इतिहासविद् नीलकण्ठ शास्त्री ने विजयनगर कालीन मंदिर स्थापत्य कला की प्रमुख विशेषताओं के विषय में लिखा है कि, गर्भगृह, अर्धमंडप, मंडप, महामंडप, कल्याण मंडप, गरूड़ मंडप, अन्य मंडप, समूह प्रकार, गोपुरम्, सहस्त्र स्तम्भ मंडप आदि प्रमुख विशेषताएँ थी। विजयनगर कालीन मंदिर स्थापत्य कला में गोपुरम् का निर्माण और स्तम्भों के अलंकरण पर विशेष ध्यान दिया गया है। स्तम्भ की विविध एवं जटिल सजावट विजयनगर शैली की सबसे बड़ी विशेषता है। स्तम्भ के चारों ओर बड़े–बड़े तथा गोलाकार मूर्तियों के काफी समूह हैं, जिसमें सर्वाधिक सगोचर तत्व है। पिछले पैर के बल पर खड़े कुछ घोड़े या कोई अलौकिक जानवर। सभी स्तम्भ व मूर्तियाँ एक ही ठोस पत्थर को काट कर निर्मित होती थी। विजयनगर वास्तुकला की अन्तिम शैली को मदुरा शैली कहा जाता है। विजयनगर के महान शासक कृष्णदेव राय ने हजारा राम एवं विट्ठलस्वामी मंदिर का निर्माण कराया। कृष्णदेव राय ने चिदम्बरम् मंदिर, अम्बारम में तदाप्ति और पार्वती का मंदिर, कांचीपुरम में बरदराज और एकम्बरनाथ मंदिर का निर्माण करवाया था। अच्युत राय (1530–1542 ई०) ने हम्पी में पट्टाभिराम मंदिर का निर्माण करवाया ।

2.7.2 चित्रकला एवं संगीतकला :

विजयनगर साम्राज्य के शासनकाल में चित्रकला एवं संगीतकला का भी विकास हुआ। के अंग अनेक भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ। विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने चित्रकला एवं संगीतकला के कलाकारों को संरक्षण दिया। विजयनगर काल में चित्रकला की स्वतंत्र शैली का विकास हुआ। यह चित्रकला शैली 'लिपाक्षी कला' के नाम से जानी जाती है। लिपाक्षी चित्रकला शैली के विषय रामायण एवं महाभारत के पात्रों, दृष्टांतों एवं घटनाओं पर आधारित होते थे। विजयनगर साम्राज्य के शासनकाल

में संगीतकला का भी पर्याप्त विकास हुआ। विजयनगर काल में संगीतकला की स्वतंत्र शैली, 'यक्षणी शैली' का विकास हुआ। यक्षणी शैली का विकास नृत्य और संगीत के सम्मिलियन से हुआ था। वीणा विजयनगर साम्राज्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय संगीत वाद्य था। विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने संगीतकला के विकास एवं संगीतकला के कलाकारों के संरक्षण में अपना पूर्ण योगदान प्रदान किया। विजयनगर साम्राज्य के शासक कृष्णदेव राय एवं रामराय स्वयं भी अच्छे संगीतज्ञ थे। अतः उन्हें संगीतकला की अच्छी परख भी थी। कृष्णदेव राय का दरबारी संगीतकार लक्ष्मी नारायण था, उसने 'संगीत सूर्योदय' नामक संगीत ग्रन्थ की रचना की थी। संत विधारणय ने संगीत ग्रन्थ 'संगीतसार' की रचना की। संगीत ग्रन्थों के लेखक कल्लिनाथ को मल्लिकार्जुन का संरक्षण प्राप्त था। मल्लिनाथ के पौत्र राम अमात्य को रामराय ने संरक्षण दिया था। राम अमात्य ने 'स्वरमेलकलानिधि' नामक संगीत ग्रन्थ की रचना की थी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(i) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) चित्रकला ।
   (ख) संगीतकला ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) विजयनगर कालीन कला का विवरण दीजिये ?

2.8 सारांश :

विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने अपने लगभग तीन शताब्दियों के शासनकाल ने सांस्कृतिक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की। मध्यकालीन इस्लामिक धर्मान्धता के काल में विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने महान् धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया। विजयनगर साम्राज्य कुशल सम्राटों ने आर्थिक तत्वों का महत्व समझते हुए, कृषि उद्योग धंधे, व्यापार एवं वाणिज्य आदि क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति की। विजयनगर साम्राज्य के शासकों के शासनकाल में राज्य की संमृद्धि और वैभव का जीवंत उदाहरण बन गया था। प्रजा जीवन सुखी, सम्पन्न, संतुष्ट एवं संपन्न था। विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने विजयनगर को हिन्दू धर्म, संस्कृति, साहित्य एवं कला का बड़ा केन्द्र बना दिया था।

2.9 तकनीकी शब्दावली :

अग्रहार : ब्राह्मण शिक्षा के केन्द्र, कर मुक्त ग्राम

बौद्ध विहार : बौद्ध भिक्षुओं के रहने का भवन

क्रीड़ा : खेलकूद

यज्ञोपवीत : पवित्र जनेऊ

पुनरूत्थान : फिर से उत्थान होना

स्थापत्य कला : भवन निर्माण कला

वाराह : सुअर

2.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर :

इकाई 2.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए **2.3.7** शिक्षा
2. देखिए 2.3.1 वर्णाश्रम व्यवस्था
3. देखिए 2.3.2 स्त्रियों की स्थिति
4. देखिए 2.3.6 क्रीड़ा एवं मनोरंजन
5. देखिए 2.3.6 क्रीड़ा एवं मनोरंजन

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 2.3.3 सती प्रथा
   (ख) देखिए 2.3.2 स्त्रियों की स्थिति
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) देखिए 2.3.1 वर्णाश्रम व्यवस्था

इकाई 2.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 2.4 साहित्य
2. देखिए 2.4 साहित्य
3. देखिए 2.4 साहित्य
4. देखिए 2.4 साहित्य

5 देखिए 2.4 साहित्य

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) देखिए 2.4 साहित्य

इकाई 2.5 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 2.5 धार्मिक दशा
2. देखिए 2.5 धार्मिक दशा
3. देखिए 2.5 धार्मिक दशा
4. देखिए 2.5 धार्मिक दशा

5 देखिए 2.5 धार्मिक दशा

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 2.5 धार्मिक दशा
   (ख) देखिए 2.5 धार्मिक दशा
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) देखिए 2.5 धार्मिक दशा

इकाई 2.6 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 2.6.1 कृषि एवं सिंचाई
2. देखिए 2.6.1 कृषि एवं सिंचाई
3. देखिए 2.6.4 मुद्रा व्यवस्था
4. देखिए 2.6.2 व्यवसाय
5 देखिए 2.6.3 व्यापार

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 2.6.2 व्यवसाय
   (ख) देखिए 2.6.4 मुद्रा व्यवस्था
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) देखिए 2.6.1 कृषि एवं सिंचाई

इकाई 2.7 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(i) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 2.7.2 चित्रकला एवं संगीतकला
   (ख) देखिए 2.7.2 चित्रकला एवं संगीतकला
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) देखिए 2.7 कला

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भण्डारकर, आर० जी० – *वैष्णाविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजियस सिस्टम्स्,* स्टॉसबर्ग, 1913 (हिन्दी संस्करण, डॉ० महेश्वरी प्रसाद, बनारस, 1967)
2. महालिंगन, टी.वी.–*एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड सोशल लाइफ अण्डर विजयनगर,*मद्रास, 1940
   – *इकोनोमिक लाइफ अण्डर विजयनगर,* मद्रास, 1951
   – *साउथ इण्डिया पोलिटी,* मद्रास, 1955
3. रमनैय्या, एन० वेंकट – *स्टडीज इन द हिस्ट्री ऑफ द थर्ड डायनेस्टी विजयनगर,* मद्रास, 1935
4. शास्त्री, के० ए० नीलकंठ –*द न्यू हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन पिपुल, बनारस,* 1954
   – *फॉरेन नोटिसेज ऑफ साउथ इण्डिया,* मद्रास, 1939
   – *दक्षिण भारत का इतिहास,* पटना, 2006
5. श्रीनिवासन, के० आर० – *दक्षिण भारत के मंदिर,* नई दिल्ली, 2016
6. सेवेल, आर० – *ए फारगौटेन एम्पायर,* लंदन, 1924

2.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री :

1. शर्मा, एल० पी० – *मध्यकालीन भारत,* आगरा,1998
2. सिन्हा, वी० बी० – *दिल्ली सल्तनत,* नई दिल्ली, 1994

3. शर्मा, आनन्द कुमार – *दक्षिण भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, 2011
4. वर्मा, एच० सी० – *मध्यकालीन भारत,* भाग 1, दिल्ली,1999

2.13 निबंधात्मक प्रश्न :

प्रश्न 1. विजयनगर कालीन संस्कृति का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 2. विजयनगर कालीन सामाजिक स्थिति का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 3. विजयनगर कालीन धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालिये ?

प्रश्न 4. विजयनगर कालीन आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालिये ?

इकाई तीनः मुगलकालीन संस्कृति

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मुगलकालीन समाज

3.3.1 मुस्लिम समाज

3.3.2 स्तर की दृष्टि से मुस्लिम समाज का वर्गीकरण

3.3.3 सम्राट तथा सामन्तों का वर्ग

3.3.4 उलेमा अथवा धर्मतत्वज्ञों का वर्ग

3.3.5 सर्वसाधारण वर्ग

3.3.6 मुसलमानों का शहरी जीवन

3.3.7 मुस्लिम समाज पर हिन्दु जाति व्यवस्था का प्रभाव

3.4 मुगलकालीन हिन्दू समाज

3.4.1 हिन्दू समाज का आधार वर्ग एवं जाति व्यवस्था

3.4.2 जाति व्यवस्था की जटिलताएँ

3.5 भारतीयों का सामाजिक जीवन स्तर

3.6 उच्च वर्ग

3.7 अमीर–उमरा तथा हिन्दू सामन्तों का रहन–सहन

3.8 मध्य वर्ग का जीवन स्तर

3.9 निम्नवर्ग का रहन–सहन

3.10 दास–प्रथा की लोकप्रियता

3.11 मुगलकाल में महिलाओं की स्थिति

3.11:1 हरम

3.11:2 शाही घराने की स्त्रियों की स्थिति

3.11:3 उच्च वर्ग की स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा

3.11:4 उच्चवर्ग की स्त्रियों की कलात्मक अभिरूचि

3.12 सामाजिक दोष

3.12:1 तिलक–दहेज की प्रथा

3.12:2 पर्दे की प्रथा

3.12:3 सती और जौहर की प्रथा

3.13 स्त्रियों का जीवन–स्तर

3.14 खान–पान

3.15 पोशाक तथा प्रसाधन

3.16 आभूषण

3.17 मनोरंजन के विभिन्न साधन

3.18 पर्व–त्यौहार

3.19 खेल–कूद

3.20 हिन्दु–मुस्लिम समन्वय

3.21 परस्पर सामंजस्य, सहयोग एवं सहिस्णुता की भावना का विकास

3.22 सारांश

3.23 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.24 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

16वीं शताब्दी में भारत में मुगलों का आगमन एक महत्वपूर्ण एवं युगान्तकारी घटना थी। इसने भारत के राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को काफी प्रभावित किया। इस्लाम के आगमन के पश्चात् एक नये धर्म, एक नयी जाति, एक नयी राजनीति और एक नयी सभ्यता एक संस्कृति की शुभारम्भ हुई जो अनेक अर्थों में परम्परागत भारतीय सभ्यता–संस्कृति से भिन्न थी। वह वे शक्तिशाली होने के वाबजूद भारतीय संस्कृति के क्षेत्रों में मौलिक परिवर्तन लाने में असफल रहे। मुस्लिम और हिन्दू सभ्यताएँ उस नदी के दो तटों की तरह सदियों इस देश में प्रवाहित होती रहीं, जो कभी भी आपस में एक–दूसरे से नहीं मिलती है। परन्तु एक दूसरे से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पायी। इतिहास साक्षी है कि जहां कहीं और जब कभी भी दो भिन्न सभ्यताओं का मिलन हुआ है, उन्होंने इच्छा या अनिच्छा से एक–दूसरे को प्रभावित किया ही है। अस्तु, भारतवर्ष में हिन्दू एवं इस्लाम के संगम से स्वाभाविक रूप से इस देश की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन आये। तुर्क अफगान काल में धीरे–धीरे ये परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे और मुगलकाल में इनमें परिपक्वता आ गई। आज भी हम उसी धारे के साथ प्रभावित हो रहे हैं।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगें कि–

- मुगलकालीन भारत की सामाजिक स्थिति कैसी थी।
- हिन्दू एवं मुस्लिम समाज किस प्रकार एक दूसरे से भिन्न था।
- समाज में महिलाओं की स्थिति कैसी थी।
- दो भिन्न धर्म एवं संस्कृति के लोग किस प्रकार एक दूसरे के निकट आए और सांस्कृतिक समन्वय हुआ।
- भारतीय संस्कृति एवं इस्लाम ने किस प्रकार एवं कितनी मात्रा में एक दूसरे को प्रभावित किया।
- भारतीय संस्कृति ने किस प्रकार एक नई और विदेशी संस्कृति को भी अन्दर समाहित कर लिया।

3.3 मुगलकालीन समाज

मुगल शासक भारत में लगभग तीन शताब्दियों तक शासन करते रहे। इनमें से अधिकांश अपनी उदारता के कारण सामाजिक–सांस्कृतिक समन्वयवादी नीति के पोषक थे जिससे भारतीय जीवन शैली पर गहरा प्रभाव पड़ा और मुगल संस्कृति विकास की ओर उन्मुख हुई। दिल्ली–सल्तनत के समान मुगलकालीन समाज भी दो भागों में विभाजित था। 1–मुस्लिम समाज 2–हिन्दु समाज

3.3:1 मुस्लिम समाज

मुगलकालीन मुस्लिम समाज का आधार सामन्तवादी ढाँचा था जिसमें सर्वोच्च स्थान पर बादशाह स्वयं आसीन था। तत्पश्चात् शाही परिवार और अभिजात वर्ग स्थित थे जो राज्य के सभी वर्ग महत्वपूर्ण पदों पर एकाधिकार जमाए हुए थे। मुगलकाल में भी सल्तनत काल के समान विदेशी मुसलमानों को कई विशेषाधिकार प्राप्त थे। कुछ विदेशी मुसलमानों ने भारत में विदेशी व्यापार पर भी अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया था। अतः अत्यधिक सम्पन्नता के कारण वे आरामदायक और विलासमय जीवन व्यतीत करते थे।

3.3:2 स्तर की दृष्टि से मुस्लिम समाज का वर्गीकरण

जीवन स्तर के दृष्टि से मुस्लिम समाज को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। 1–सम्राट तथा सामन्तों का वर्ग 2–उलेमा अथवा धर्मत्वज्ञों का वर्ग 3–सर्वसाधारण वर्ग

3.3:3 सम्राट तथा सामन्तों का वर्ग

मुगल सम्राट एवं उसके परिवार के सदस्यों का समाज में श्रेष्ठतम स्थान था। सम्राट के राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकार असीम थे। सामन्तों का स्थान समाज में सम्राट के बाद ही आता था। इस वर्ग में विदेशी मुसलमानों को ही प्रधानता थी और मुगल राजनीति एवं प्रशासन में वे अत्यन्त प्रभावशाली थे, किन्तु उनका पद वंशानुगत नहीं होता था। एक सामन्त की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति पर सरकार का अधिकार हो जाता था। इस वर्ग के सदस्यों के बीच समरूपता की नितांत कमी थी और यह वर्ग सुव्यवस्थित भी नहीं था। इन कमजोरियों के कारण यह वर्ग अत्यन्त प्रभावशाली होते हुए भी देश के लिए लाभदायक प्रमाणित नहीं हो सका।

3.3:4 उलेमा अथवा धर्मतत्वज्ञों का वर्ग

उलेमा वर्ग के लोग धर्मतत्वज्ञ होते थे और भारतीय राजनीति एवं मुस्लिम समाज पर इनका काफी प्रभाव था। सामान्तवर्ग की तुलना में यहा वर्ग अपने अधिकारों एवं प्रभावों के प्रति सचेत और सुव्यवस्थित था। देश में न्याय–सम्बन्धी पदों तथा धार्मिक एवं शैक्षणिक नौकरियों पर उनका प्रायः एकाधिकार था। इनमें से अनेक इमाम, मुहतसिब, मुफ्ती तथा काज़ी के पदों पर नियुक्त थे और धर्मप्रचार में लगे हुए थे। मुगल प्रशासन पर तुर्क–अफगान की तरह ही उलेमा वर्ग का यथेष्ट प्रभाव था और उनसे समय–समय पर सलाह लिया करते थे, किन्तु देश, राजनीति, प्रशासन अथवा धर्म पर उलेमा के प्रभाव का हानिकारक प्रभाव पड़ा। निःसंदेह उलेमा विद्वान होते थे, पर यह आवश्यक नही कि वे सफल राजनीतिज्ञ भी हों। वस्तुतः वे प्रधानरूप से सैद्धान्तिक एवं आदर्शवादी होते थे। अतः राजनीतिक समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण संकीर्ण एवं सीमित होता था। ये सम्राट के धार्मिक नीति को रूढ़िवादी एवं अनुदार बनाते और अधिक उलझा देते थे। भारत में मुस्लिम शासन को लोकप्रिय बनाने में इस वर्ग का महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

3.3:5 सर्वसाधारण वर्ग

सर्वसाधारण वर्ग में उपर्युक्त मुसलमानों को छोड़कर भारत के अन्य सभी मुसलमान आ जाते थे। इनका प्रशासन में कोई दखल नहीं था, अतः ये शासक सामन्त तथा उलेमा लोगों की दया पर जीते थे, मुस्लिम समाज का यह निम्न स्तर वर्ग मुख्यतः शिल्पी, दुकानदार, लिपिक,

छोटे–छोटे व्यापारी, नौकर–चाकर तथा मुस्लिम कृषकों द्वारा निर्मित था। इनके अति रिक्त नायित, धोबी, दर्जी, चुड़िहारे, नाव–चालक, कसाई, घसियारे, ढ़ोलकची, फकीर, भिखमंगे आदि भी इस वर्ग में आते थे। मुगलकाल तक धर्म परिवर्तित मुस्लिम जनसंख्या में काफी वृद्धि हो चुकी थी। इस वर्ग को मुगल प्रशासन में अथवा सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में कोई सुविधा प्राप्त नहीं थी। इनमें से कुछ ऐसे थे जो हिन्दु जाति की कुछ समानता अभी तक रखे हुए थे।

3.3:6 मुसलमानों का शहरी जीवन

मुसलमान ग्राम–जीवन से भय खाते थे और प्रायः शहरों में ही रहा करते थे। शहरों में वे सैनिक अथवा गैर सैनिक सरकारी नौकरियाँ करते थे। कुछ लोग वाणिज्य–व्यवसाय, दुकानदारी तथा अन्य पेशों में लगे हुए थे। ये मुख्यतः विदेशी मुसलमान थे। विदेशी मुसलमान शहरों में छोटे–मोटे व्यापार, चिकित्सक, हस्तशिल्प, शिल्पी, कसाई, हजाम, बढ़ई बुनकर, लकड़हारा, चित्रकार, लोहार, पनभरे तथा सुलेखन आदि का पेशा किया करते थे। वैसे कुछ मुसलमानों ने कृषि पेशा को भी अपना रखा था।

3.3:7 मुस्लिम समाज पर हिन्दु जाति व्यवस्था का प्रभाव

इस्लाम जो सैद्धान्तिक रूप से जाति व्यवस्था का विरोधी रहा है, हिन्दुओं की शक्तिशाली एवं व्यापक जाति व्यवस्था के सम्पर्क में आकर अछूता नहीं रह सका। विदेशी तथा भारतीय दोनों प्रकार के मुसलमानों पर हिन्दू जाति व्यवस्था का गहरा प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि इसकाल में हम अरबी, ईरानी, शैख, मुगल, पठान और सैयद सभी को जाति व्यवस्था की विशेषताओं को कुछ अंशों में अपनाते हुए तथा भारतीय मुसलमानों को अपनी पैतृक मान्यता बनाए रखते हुए पाते हैं। हिन्दुओं के समान मुसलमान भी दो सामाजिक श्रेणियों में विभक्त हो गये–उच्चवर्ग अथवा शरीफ और निम्नवर्ग अथवा अजलाफ। पहले वर्ग में सैयद, शैख, मुगल, और पठान आते थे जो विभिन्न सरकारी पदों पर नियुक्त थे अथवा सैनिक, शिक्षा एवं आर्थिक पेशों में लगे हुए थे। ये सुविधा प्राप्त वर्ग के लोग थे, दूसरे वर्ग में कृषक, शिल्पी, व्यापारी अथवा ऐसे लोग शामिल थे, जो उच्च वर्ग की सेवा किया करते थे। इस वर्ग के लोगों को शायद ही कोई सुविधा प्राप्त थी।

3.4 मुगलकालीन हिन्दू समाज

भारतीय समाज में संख्या की दृष्टि से सदा हिन्दुओं की प्रधानता रही है। मुगलकाल में उनमें से अनेक समृद्ध–प्रधान, व्यापारी–कृषक एवं नौकरी पेशे के लोग थे। इनमें कृषकों की संख्या सबसे अधिक थी। देश के अधिकांश भूक्षेत्र के वे स्वामी थे और कोई भी राजनीतिक शक्ति चाहे कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हों, हिन्दुओं के भारत में भूक्षेत्र स्वामित्व को समाप्त करने में असफल रही।

राजस्व सम्बन्धी शासन संचालन में मुसलमान शासकों को अनिवार्य रूप से हिन्दू अधिकारियों का सहयोग लेना पड़ा क्योंकि इस क्षेत्र में उनको काफी अनुभव था और चौधरी, खूत तथा मुकद्दम के पदों पर सामान्य रूप से उन्हीं की नियुक्ति की जाती थी।

अकबर के शासनकाल से लेकर औरंगजेब के शासनकाल के प्रारम्भिक दशक तक जब हिन्दुओं को धार्मिक उदारता के वातावरण में सांस लेने का अवसर मिला था, हिन्दुओं को ऊँचे मनसब पद प्रदान किए गए और उन्हें शासन में वरिष्ठ पद भी प्राप्त हुए, किन्तु इसके पूर्व अथवा इसके पश्चात् उनकी स्थिति इस दृष्टिकोण से संतोषजनक नहीं कही जा सकती है। इस युग में भी तुर्क–अफगान काल की तुलना में हिन्दुओं की स्थिति अच्छी थी, सामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि एक जाति अथवा एक राष्ट्र के रूप में राजनीतिक, सामाजिक, एवं आर्थिक दृष्टिकोण से उनका पतन ही हुआ। मुसलमानों ने सिर्फ देश की सार्वभौम सत्ता को उनके हाथों से छीन लिया था अपितु उन्हें ऊँचे प्रशासनिक एवं सैनिक पदों से हटा दिया तथा उनकी

जातीय एवं धार्मिक स्वतंत्रता पर भी प्रहार किया था। इन सभी बातों से स्वाभिमानी हिन्दुओं की भावना को अवश्य ही गहरा धक्का लगा होगा, क्योंकि वे मुसलमानों को एवं उनकी सभ्यता को हीन समझते थे।

3.4:1 हिन्दू समाज का आधार वर्ग एवं जाति व्यवस्था

हिन्दू समाज परम्परागत वर्ण व्यवस्था, वर्णाश्रम, धर्म एवं जातीय व्यवस्था पर आधारित था। यह परम्परागता चार प्रधान वर्णों में विभक्त था और जातियां अनेक उपजातियों में बंटी हुई थी। चार प्रधान वर्ण थे– ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। इन चारों में ब्राहमणों की प्रधानता थी और समाज में उनका श्रेष्ठ स्थान था। उनका मुख्य कार्य पूजा–पाठ, अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ, बली आदि के कार्यों को सम्पादित करना तथा दान प्राप्त करना था। मुगलकाल में उनकी प्रतिष्ठा एवं कार्यों में निश्चित रूप से परिवर्तन आया। इसकाल तक बली जैसे अनुष्ठान एवं यज्ञों में कमी आ गयी थी और वे अपने यजमानों के यहां शादी–ब्याह, जन्म अथवा धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न कर अपनी जीविका चलाते थे, किन्तु मात्र इससे जब उनका गुजारा नहीं होने लगा तो वे कृषि, व्यापार तथा नौकरी भी करने लगे। गुजरात के कुछ नागर ब्राहमण फारसी पढ़कर सरकारी अधिकारी भी बन गये थे।

क्षत्रियों का समाज में दूसरा स्थान था। उनके कंधों पर देश की सुरक्षा एवं सुव्यवस्था का भार था अतः वे अधिकांशतः शासक, सेनानायक एवं योद्धा के कार्यों को सम्पादित करते थे। क्षत्रियों के विषय में विद्वानों में मतभेद रहा है और य निश्चितपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि इसकाल में इस वर्ण के कौन–कौन सी जातियाँ थी। फिर भी राजपूत, जाट और मराठे स्वयं को क्षत्रिय मानते थे। क्षत्रियों के बाद सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से वैश्यों का स्थान था। वैश्य कृषि, व्यापार, उद्योग तथा रूपये की लेन–देन का काम करते थे। प्रारम्भ में इनकी गणना उच्च वर्ग में की जाती थी, किन्तु मध्यकाल में इनकी अवस्था में गिरावट आई और उन्हें निम्नवर्ग में स्थान मिला। इस वर्ग को किसी प्रकार का राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं था।

वर्ण व्यवस्था में शूद्र निम्नतम स्तर के थे और उनका कार्य अपने से उपर तीन वर्णों के लोगों की सेवा करना था। इस वर्ण में धोबी, शिल्पी, बुनकर, कुम्हार एवं कृषक आदि आते थे। जाति–बन्धन इन दिनों भी इतना कठोर था कि भक्तिकाल के अनेक उदार मस्तिष्क सन्तों के उपदेश भी इसकी जड़ को पूर्णरूप से उखाड़ फैंकने में असमर्थ रहे। स्वर्ण जातियों के अतिरिक्त हिन्दू समाज में अछूतों का भी एक वर्ग था, जिसमें डोम, चमार, चाण्डाल, कसाई तथा इसी तरह के अन्य जातियों के लोग आते थे। इनकी अवस्था अत्यन्त दयनीय एवं किसी भी रूप में दास वर्ग के लोगों से अच्छी नहीं थी। हिन्दू समाज स्पष्टतः उच्च तथा निम्न दो स्तरों में विभक्त था। उच्च वर्ग के लोगों को अनेक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक सुविधाएं थी। निम्नवर्ग के लोग यद्यपि संख्या में अधिक थे, वे अधिकांशतः आर्थिक कार्यों तथा सेवा के कार्यों में लगे रहते थे और उन्हें किसी प्रकार की सुविधा प्राप्त नहीं थी।

3.4:2 जाति व्यवस्था की जटिलताएँ

मुगलकाल तक हिन्दू जातीय व्यवस्था अत्यन्त जटिल हो गयी थी। जातियां अनेक उपजातियों में बंटी हुई थी। उपजातियां सजातीय वैवाहिक वर्ग थी और विवाह, खान–पान आदि सामाजिक अनुष्ठानों के दृष्टिकोण से ये महत्वपूर्ण समझी जाती थी। उपजातियों के अनेक गोत्र के लोग रहते थे और समान गोत्र के बीच विवाह निषिद्ध था। निम्नजातियों में जातीय पंचायत व्यवस्था थी किन्तु उच्च जातियों में इस तरह की व्यवस्था का हम अभाव पाते हैं। इस समय कुछ नयी उपजातियां भी पैदा हो गयी। मुगलकाल में कायस्थ जाति की स्थिति पहले से अच्छी हो गयीं। कायस्थ अध्ययन, अध्यापन के कार्यों में गहरी अभिरूचि रखते थे और वे अधिकतर लिपिक, सात्विक, तथा राजस्व अधिकारी के पदों पर बहाल किये जाते थे। धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया इस

काल में भी गतिमान थी और कुछ निम्नजातीय के हिन्दुओं विशेष रूप से बंगाल में इस्लाम को स्वीकार किया और पंजाब तथा कश्मीर के कुछ उच्च जातियों के हिन्दुओं ने इस धर्म को अपनाया। मुगल काल में हमें जाति–परिवर्तन के उदाहरण भी मिलते हैं अनेक जाति के लोगों का उच्च अथवा निम्न जाति में परिवर्तन हुए।

हिन्दुओं की जाति व्यवस्था इतनी व्यापक और शक्तिशाली रही हैं कि इसके सम्पर्क में जो कोई भी आया उसे प्रभावित किया है इस्लाम जो सैद्धान्तिक रूप से जाति व्यवस्था का विरोधी रहा है वह भी स्वयं को इस व्यवस्था के प्रभाव से अपने आपको पूर्णतः मुक्त रखने में असमर्थ रहा। हिन्दुओं के सम्पर्क में आने से मुसलमानों के बीच भी कुछ अशों में जाति–व्यवस्था ने अपना स्थान बना लिया।

3.5 भारतीयों का सामाजिक जीवन स्तर

सम्पूर्ण मध्यकाल में भारतीय समाज सामन्तवादी व्यवस्था पर आधारित था। समाज, जीवन–स्तर के दृष्टिकोण से तीन वर्गों में आधारित था। समाज उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, और निम्नवर्ग।

3.6 उच्च वर्ग

उच्च वर्ग में सम्राट, उसके परिवार के सदस्य, अमीर, उमरा एवं उच्च पदाधिकारी आते थे। सम्राट का स्थान समस्त भारत में सर्वोच्च था। तुर्क–अफगान काल के सुल्तानों की तुलना में इसका जीवन स्तर और रहन–सहन वैभवशाली एवं आकर्षक था। दिल्ली के सम्राटों को नगरीय जीवन प्रिय था और उनके काल में लाहौर, दिल्ली और आगरा जैसे महानगर अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गये। मुगलों पर फारसी सभ्यता का गहरा प्रभाव था। अतः मुगल दरबार में फारसी दरबार का अनुकरण किया जाता था। विदेशी मदिरा, विदेशी फल अथवा बहुमूल्य वस्तुओं का मुगल दरबार में भरमार रहता था। राजदरबार में वैभव एवं ऐश्वर्य की प्रधानता थी। उनके खेमों में जीवन के सभी सुख सुविधाएं मुहैया कराई जाती थी। औरंगजेब को छोड़कर प्रायः समस्त मुगल सम्राट वस्त्रों तथा आभूषणों का साज श्रृंगार पसंद करते थे। शाहजहाँ के शासनकाल में मुगलदरबार में हम वैभव एवं ऐश्वर्य की पराकाष्ठा पाते हैं। वास्तव में सम्राटों ने न तो इस्लाम के आदेशों को माना न ही हिन्दुओं के कार्य पद्धति को स्वीकार किया।

3.7 अमीर–उमरा तथा हिन्दू सामन्तों का रहन–सहन

सम्राटों के ठीक नीचे अमीर–उमरा, हिन्दू सामन्त तथा उच्च सरकारी अधिकारी वर्ग के लोग आते थे। इस वर्ग के लोगों ने सम्राट के जीवन का अनुकरण किया। इस वर्ग के लोग विविध श्रेणी के मनसब पद या ओहदे प्राप्त कर राज्यशासन और समाज में प्रभावशाली हो गये थे। ये भी कम विलासी और आराम तलब नहीं थे। सम्राट का अनुकरण कर ये अपने हरम में बड़ी संख्या में स्त्रियों, नर्तकियों एवं दासियों को रखते थे। इनके पास धन की कमी नहीं थी, अतः सुरा एवं सुन्दरी के प्रति इनका आसक्त होना आश्चर्य का विषय नहीं रह जाता है। सम्राट की तरह ये भी ठाट–बात से रहते थे तथा अपने खान–पान, रहन–सहन तथा वेशभूषा और महलों पर धन का अपार व्यय करते थे। इनके विषय में तत्कालीन यूरोपीय पर्यटक अपना विचार व्यक्त करते हुए कहते हे कि ''अत्यधिक ठाट–बाट से भारत के कुछ अमीर यहाँ रहते हैं'' इस वर्ग के लोग अपने फिजुलखर्ची के लिए बदनाम थे। उनकी फिजुलखर्ची का एक प्रमुख कारण यह था कि उनकी सम्पत्ति उनकी मृत्यु के पश्चात् राज्य के द्वारा छीन ली जाती थी। मनसबदारी व्यवस्था वंशानुगत नहीं थी। अतः ये मनसबदार अपने जीवनकाल से है अपनी अर्जित सम्पत्ति फूँक डालते थे। धन ऐश्वर्य की प्रचुरता ने सामन्तों को अकर्मण्य बना दिया था।

3.8 मध्य वर्ग का जीवन स्तर

मध्यवर्ग में निम्न वर्ग के सरकारी कर्मचारी, व्यापारी और समृद्ध शिल्पी आते थे। इसी वर्ग में वकील, वैध, हकीम, शिक्षक, विद्वान, पंडित तथा उलेमा भी सम्मलित थे। किन्तु वास्तविक अर्थ

में एक सशक्त मध्यम वर्ग का इस काल में विकास नहीं हो पाया। इतिहासकार मोरलैंड का मत है कि इस युग में मध्यम वर्ग, अथवा बुद्धिजीवी वर्ग प्रायः नगण्य था। बहुत अंशों में इसे ठीक ही कहा जा सकता है। वस्तुतः बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों की संख्या देश में बहुत कम थी। उनमें अधिकांशतः शासक वर्ग पर आश्रित थे। अतः वे बहुधा उच्च वर्ग के अनुयायी ही थे और उन्हें खुश रखकर अपने स्वार्थ सिद्धि में लगे रहते थे। उनकी आर्थिक स्थिति संतोषजक नहीं, फिर भी ये उच्च वर्ग के लोगों की नकल करने में प्रसन्न रहते थे। विवाह, जन्म, पर्व–त्योहार आदि के अवसरों पर जहां तक सम्भव होता था ये खुलकर खर्च करते थे। उत्तर मुगलकाल में जब सामन्तों का पतन होने लगा, भारत में मध्यवर्ग की संख्या एवं शक्ति में वृद्धि हुई। अठारहवीं सदी के पूर्वांद्ध से प्रशासन में लिपिक अथवा अधिकारी इसी वर्ग के लोग थे, जिनकी संख्या काफी होती चली गई थी।

3.9 निम्नवर्ग का रहन–सहन

निम्नवर्ग में किसान, कर्मकार या गरीब शिल्पी, मजदूर, सेवक तथा सामान्य जनता आती थी। साधारणतः अनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, किन्तु उन दिनों वस्तुओं का मूल्य कम होता था अतः कम पैसे से ही व्यक्तियों का जीवन निर्वाह संभव हो जाता था। प्रथम दो वर्गों की तुलना में खान–पान रहन–सहन, आवास अथवा पोशाक की इन्हें नितांत कमी रहती थी और कठिनाई से इनका समय व्यतीत होता था। हिन्दू अधिकांशतः गांवों में रहते थे और कृषि उनकी जीविका का मुख्य साधन था। मजदूरों के वेतन की दर काफी कम थी। वे किसी तरह से अपन जीवन निर्वाह किया करते थे।

मुसलमान शहरों में रहना पसंद करते थे और मजदूरी अथवा छोटी मोटी नौकरी के द्वारा अपना जीवन यापन किया करते थे। बुनकर, धोबी, बढ़ई, हजाम, कारीगर इत्यादि कार्य कर अपना जीवन निर्वाह किया करते थे। इस वर्ग में छोटे–छोटे व्यापारी और दुकानदार भी थे जिनकी अवस्था दूसरों से कुछ अच्छी थी। इस वर्ग के लोग सामान्यतः संतुष्ट और कष्टसहिष्णु होते थे।

3.10 दास–प्रथा की लोकप्रियता

मुगलकाल में दास प्रथा भी प्रचलित थी। यह प्रथा हिन्दू और मुसलमान दोनों के बीच समान रूप से लोकप्रिय थी। हिन्दुओं के बीच दास उपहार के रूप में सगे–सम्बन्धियों तथा मित्रों के बीच बांटे जाते थे। विजयनगर के हिन्दू साम्राज्य में इस प्रथा को मान्यता प्राप्त थी। हिन्दुओं की तुलना में मुसलमानों के बीच यह प्रथा और अधिक लोकप्रिय थी। मुस्लिम सामन्तों का जीवन युद्ध (रज्म) तथा आनन्द (बज्म़) दो भागों में विभक्त था, किन्तु वे अपना अधिकांश समय आनन्द में ही व्यतीत करते थे। सम्राट और सामन्त बड़ी संख्या में पुरूष एवं स्त्री दास रखते थे। सम्राट और सामन्त वर्ग के लोगों के द्वारा भी गृहकार्यों अथवा कारखानों आदि में काम करने के लिए रखे जाते थे, किन्तु दासों के साथ सदभावना तथा उदारता का व्यवहार किया जाता था। आसाम के दास अपने हृष्ट–पुष्ट शारीरिक गठन के कारण लोकप्रिय थे। भारत में स्त्री तथा पुरूष दास चीन, ईरान तथा टर्की से भी आयात किये जाते थे। भारत से भी दासों का विशेषतः स्त्री दासों का निर्यात चीन आदि देशों में किया जाता था और कभी–कभी मित्र देश को स्त्री–दास उपहार के रूप में भेंट की जाती थी। दास–प्रथा भारतीय समाज के लिए कोढ़ से कम नहीं थी।

3.11 मुगलकाल में महिलाओं की स्थिति

किसी भी देश, जाति अथवा काल में नारी की सामाजिक स्थिति समाज के स्तर का सूचक होता है। इस दृष्टि से प्राचीन भारत में नारी की स्थिति श्रेष्ठ कही जा सकती हैं क्योंकि वे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्रता पूर्वक हिस्सा लेती थी। उनके बीच पर्दा, बाल–विवाह, दहेज आदि जैसे कुप्रथाओं का प्रचलन नहीं हुआ था। वे स्वतंत्रता पूर्वक देश की राजनीति में हिस्सा

ले सकती थीं। उन्हें शिक्षा प्राप्त करने की भी सुविधा थी। इस काल में इनके बीच अनेक उच्चकोटी की कवयित्रियाँ आदि उत्पन्न हुई। मध्य युग में भारतवर्ष में मुसलमानों के आगमन तथा उनके साथ सम्पर्क होने के पश्चात् भारतीय नारी की स्थिति में निःसंदेह गिरावट आई। इस काल में चाँद बीबी, असमत जहाँ, नूरजहाँ, मुमताज महल, जहाँआरा, रौशनआरा और आलमआरा जैसी विद्वान और प्रभावशाली महिलाओं का प्रादुर्भाव हुआ। अतः सामान्य तौर पर महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती है।

3.11:1 हरम

इस काल तक स्त्रियाँ भोग विलास का साधन मात्र समझी जाती थीं। शाही महल में पत्नियों एवं रखैलों की भीड़ लगी रहती थी। अकबर के शासनकाल में रनवास, को हरम अथवा जैसा कि अबुल फजल लिखती है, ''सविस्तान–ए–इकबाल'' या ''सविस्तान–ए–खास'' के नाम से सम्बोधित किया जात था। जहांगीर और शाहजहां के रनवास में भी बहुत बड़ी संख्या में स्त्रियाँ रहती थी। सम्भवतः औरंगजेब के शासनकाल में शाही रनवास में स्त्रियों की संख्या घटकर दो हजार हो गई थीं। रनवासों में उनके रहने की बहुत अच्छी व्यवस्था की जाती थी और वे भोग–विलास की जीवन व्यतीत करती थी। उनकी सुविधा के लिए अलग–अलग स्नानागार, बगीचे आदि निर्मित किये जाते थे। सामन्त भी सम्राट का अनुकरण कर अपने महल में अधिक से अधिक स्त्रियों को रखने की कोशिश करते थे। सामान्यतः एक सामन्त तीन या चार स्त्रियों से विवाह करता था। इन स्त्रियों में पहली विवाहिता पत्नी की प्रधानता रहती थी और उसके साथ आदर का व्यवहार किया जाता था। सामन्तों की स्त्रियाँ भी बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषण धारण करतीं, स्वादिष्ट भोजन खाती तथा ऐश्वर्य एवं विकास का जीवन व्यतीत करती थीं। इस काल में सामन्त खुलेआम रखैल भी रखते थे।

3.11:2 शाही घराने की स्त्रियों की स्थिति

शाही परिवार में रानियों तथा राजकुमारियों को विशेष सुविधा प्राप्त थी। मुगल अपने स्त्री वर्ग का सम्मान करते थे और उन्हें उचित अधिकार दिये थे। इसकाल में शाही घराने के जिन स्त्रियों ने राजनीतिक में यथेष्ट दिलचस्पी ली, उनमें एहसान दौलत बेगम, कुतलुग निगार खानम, माहिम बेगम, बीबी मवारिका, खानजादा बेगम, हरम बेगम, लाडमल्लिका, रानी कर्णवती, माहचुचक बेगम, महम अंगा, रानी दुर्गावती, मरियम मकानी, सलिमा सुलताना, नूरजहां, मुमताज महल, जहांआरा बेगम, रौशनआरा बेगम, आलमआरा बेगम, जैबुन निंसा बेगम, जीनत निंसा बेगम, साहिब जी, लाल कुंअर, इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। औरंगजेब के पूर्व मुगल राजनीति में रानियाँ, राजकुमारियाँ या उच्च हिन्दू तथा मुस्लिम सामन्तों की स्त्रियों का महत्व था, किन्तु औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात निम्नस्तर की स्त्रियां, रखैल, नर्तकी अथवा वैश्या का प्रभाव तत्कालीन राजनीति में काफी बढ़ता गया।

शाही घराने से सम्बन्धित स्त्रियों को दरबार में उच्च स्थान प्राप्त था। उन्हें सम्राट के द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार की पदवियां प्रदान की जाती थी। विशेष अवसरों पर सम्राट उन्हें उपहार भी प्रदान करते थे। उन्हें भत्ते नगद अथवा जागीर के रूप में मिलता था। शाही रनवास में जो स्त्रियां सर्वाधिक प्रतिष्ठित थीं हमीदाबानो, मरियम–उज–जमानी, नूरजहां, जहांआरा आदि वे अपने नाम से हुकुम, सनद, निशान, तथा परवाना आदि भी निकाल सकती थी। मुगल शाही मुहर भी हरम में ही रखी जाती थी। मुगल हरम को कुछ स्त्रियां वाणिज्य–व्यापार में भी दिलचस्पी रखती थी और उनकी निजी व्यापारी जहाज विदेशों में व्यापार के उद्देश्य से भेजे जाते थे। व्यापार के उद्देश्य से नूरजहां तथा जहांआरा बेगम अपने अनेक निजी जहाज रखती थी। मुगल अपनी स्त्रियों का सम्मान करते थे और उनके साथ अदब से पेश आते थे। यह बात सिर्फ सम्राट के साथ ही नहीं, वरन, मुगल सामन्तों के साथ भी लागू थी।

3.11:3 उच्च वर्ग की स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा

उच्च वर्ग की स्त्रियाँ शिक्षा में अभिरूचि रखती थीं। बचपन से ही उनके माता–पिता के द्वारा उनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इसलिए इस वर्ग की स्त्रियों में इस काल में अनेक उच्च कोटि की लेखिका तथा कवयित्रियाँ उत्पन्न हुई। उदाहरणार्थ गुलबदन बेगम, नूरजहाँ, मुमताज महल, जहाँआरा बेगम, जैबुन निसां, गंगा, जमुना, कमलशी देवी, नवला देवी, दया बाई, शाहजोबाई, मीराबाई, सोन कुमारी, चन्द्रवती, रूपमती, तिन तरंग, चम्पा रानी, प्रियम्बदा आदि के नाम लिए जा सकते हैं। इसमें कुछ स्त्रियों ने शिक्षा–विस्तार तथा स्कूल–कालेजों की स्थापना में भी दिलचस्पी ली और शिक्षा के विकास के लिए आर्थिक अनुदान भी दिए। बेगा–बेगम ने, जो हुमांयु की पत्नी थी, अपने पति के मकबरे के पास एक कॉलेज की स्थापना करवाई थी। इसी प्रकार महमअंगा, जहांआरा बेगम तथा राजी (जौनपुर के मुहम्मद शाह की स्त्री) ने स्कूल एवं कालेजों की स्थापना की और शिक्षा के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

3.11:4 उच्चवर्ग की स्त्रियों की कलात्मक अभिरूचि

उच्चवर्ग की स्त्रियाँ भिन्न–भिन्न कलाओं में भी विशेष अभिरूचि रखती थीं तथा अवकाश काल में वे चित्रकला, संगीत, नृत्य एवं सजावट के कार्यों पर ध्यान देती थीं। नूरजहां को चित्रकला के प्रति विशेष आकर्षण था और अपने महल की साज–सज्जा में वह निरन्तर लगी रहती थीं। उसने कारपेट तथा पोशाकों के नये–नये नमूने का निर्माण भी किया था। माहीम बेगम भी आवासीय साज–सज्जा में प्रवीण थीं। इस वर्ग की स्त्रियां अनेक कलात्मक कार्यों में दक्ष होती थीं। भिन्न–भिन्न अवसरों पर ये सुपात्रों को पारितोषिक आदि भी प्रदान करती थीं। इन गुणों के इलावा शाही स्त्रियां अपने भत्ते का एक निश्चित रकम दान–भक्ति आदि में व्यय करती थीं। इस क्षेत्र में नूरजहां की उदारता असीम थीं। मुमताजमहल भी अत्यन्त उदार–प्रवृत्ति की स्त्री थी और खुलकर दान करती थीं।

3.12 सामाजिक दोष

मुगलकाल में देश के सामान्य सामाजिक जीवन में परिवर्तन के कारण स्त्रियों की अवस्था में भी यथेष्ट परिवर्तन आये। प्राचीन भारत में जो उनका सम्मानपूर्ण स्थान था, उसमें गिरावट आई और नारी समाज में बालिका–वध, बाल–विवाह, तीलक दहेज, पर्दाप्रथा, सती और जौहर जैसे दूषित प्रथाऐं घर कर गई। हिन्दु और मुसलमान दोनों जातियों में पुत्री का जन्म अपशकुन माना जाता था और पुत्र के जन्म पर आनन्द मनाये जाते थे। कुछ लोग नवजात पुत्रियों का गला भी घोंट देते थे। इस तरह की प्रथा राजस्थान, बंगाल आदि प्रान्तों में अधिक प्रचलित थीं। बाल–विवाह मुगलकाल में सामाजिक अवस्था का एक लोकप्रिय पक्ष था। सामान्यतः लड़कियों की शादी आठ से दस साल की अवस्था में ही कर दी जाती थी। हिन्दु और मुसलमान दोनों ही इस दुषित प्रथा के शिकार थे।

3.12:1 तिलक–दहेज की प्रथा

मुगलकालीन भारतीय समझ में तिलक–दहेज की कुप्रथा भी प्रचलित थी। सामन्त वर्ग के लोग दहेज के लोभ से अनेक विवाह करते थे। मुस्लिम समाज भी इस कुप्रथा से दूर नहीं था। इस कुप्रथा के कारण कभी–कभी लड़की की शादी एक कठिन समस्या बन जाती थी। दहेज की यह प्रथा परम्परा से चली आ रही थी और इन दिनों इसमें उत्तरोतर वृद्धि हो रही थी। बंगाल में इस प्रथा की बुराइयां सबसे अधिक देखने को मिलती हैं। सम्राट अकबर ने इस कुप्रथा के विरूद्ध आदेश भी जारी किये थे, किन्तु इसमें उसे विशेष सफलता नहीं मिली थी।

3.12:2 पर्दे की प्रथा

परम्परा से पर्दे का रिवाज मुस्लिम स्त्रियों के साथ रहता आया है। हिन्दुओं में यह अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय रहा है। मुगलकालीन मुस्लिम स्त्रियां बिल्कुल पर्दे में रहती थीं। भारत में मुसलमानों के आगमन के पश्चात विदेशियों से अपनी इज्जत–आबरू की रक्षा के उद्देश्य से हिन्दु स्त्रियों ने भी इस प्रथा को अपना लिया। सम्भवतः शासक वर्ग को खुश रखने के उद्देश्य से कुछ हिन्दुओं ने उनका अनुकरण करते हुए इस प्रथा को अपना लिया था, किन्तु यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि गरीब एवं निम्नवर्ग की स्त्रियां जिन्हें खेती में अथवा अन्य कार्यों में अपने पति को सक्रिय सहयोग देना पड़ता था। इस प्रथा को अपनाने में पूर्णतः असमर्थ थीं। अस्तु यह प्रथा हिन्दुओं में सिर्फ अमीर एवं सुखी–सम्पन्न परिवारों के बीच ही प्रचलित थीं।

3.12:3 सती और जौहर की प्रथा

सती प्रथा गुप्त काल से भारतीया समाज में प्रचलित था। जो स्त्री अपने मृत पति के चिता में जिंदा नहीं जलती थी अथवा सती नहीं होती थी, उन्हें समाज हेय दृष्टि से देखता था। वे न सुन्दर वस्त्र पहन सकती थी, न आभूषणों से अपने शरीर को सजा सकती थी। यहां तक कि शुभ अवसर पर उनका दर्शन भी अशुभ माना जाता था। विधवा होना स्त्री के पूर्व जन्म का अभिशाप समझा जाता था। अस्तु, अधिकांश हिन्दु विधवाऐं सती होना पसन्द करती थीं। यह प्रथा सामान्य रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के बीच अधिक प्रचलित थीं। लगभग सभी विदेशी पर्यटकों ने अपनी यात्रा के विवरण में सती प्रथाा का भयावह चित्र प्रस्तुत किया है। सती की तरह राजपूत वीरांगनाओं में सामूहिक रूप से चिता में भस्म जाने की प्रथा भी प्रचलित थी, जिसे जौहर व्रत कहा जाता है। जब कभी युद्धों में पति मारे जाते तो अपने सतित्व की रक्षा के उद्देश्य से ये जौहर व्रत धारण कर लेती थीं। कुछ मुगल शासकों ने इस प्रथा को रोकने का प्रयास भी किया था। कहा जाता है कि अकबर एवं जहांगीर ने इस कुप्रथा के विरूद्ध आदेश निकाले थे कि स्त्री के इच्छा के विरूद्ध सती हेतु किसी को बाध्य न किया जाए। 1663 ई0 मे औरंगजेब ने सती होने पर निषेध लगा दिया था, किन्तु बाल–बच्चे विहीन विधवाओं को सती होने की छूट थी। इस निषेधात्मक आदेशों के बावजूद मुगलकाल में सती प्रथा लोक प्रिय बनी रही।

3.13 स्त्रियों का जीवन–स्तर

नारियों के जीवन स्तर के आधार पर स्पष्टतः दो वर्गों में वर्गित के जा सकता है– उच्च वर्ग और निम्न वर्ग। उच्च वर्ग की नारियों का जीवन–स्तर ऊँचा था। उनके आवास, खान–पान ,वस्त्र, आभूषण, श्रंगार आदि उनकी आर्थिक अवस्था के अनुरूप उच्चकोटि का एवं कीमती होते थे। वे शौकीन और विलासप्रिय होती थी तथा ऐशोआराम की जिन्दगी बिताती थीं। किन्तु बाल–विवाह, तिलक–दहेज, एवं पर्दा की प्रथाओं के कारण उनकी स्वतंत्रता प्रायः समाप्त हो चुकी थी और उनकी स्थिति निश्चित रूप से पहले से खराब हो चुकी थी। निम्न वर्ग की स्त्रियों को वे सारी सुविधाऐं प्राप्त नहीं थीं जो उच्च वर्ग की स्त्रियों को थीं। उनका रहन–सहन, खान–पान, पोशाक, आभूषण, आवास, एवं साज–सज्जा उनकी आर्थिक जीवन के अनुरूप सीधे–साधे और आर्कषहीन होते थे। उनके बीच शिक्षा का प्रचलन प्रायः नहीं होता था। इन दृष्टिकोणों से उनकी स्थिति अपने अन्य दूसरे बहनों की अपेक्षा दयनीय थी। किन्तु कई दृष्टिकोण से उनकी स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी कही जा सकती है। उन्हें अपनी उच्च वर्ग की बहनों की तरह महल की चहारदिवारों अथवा पर्दे में नहीं रहना पड़ता था। वे अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छन्द और स्वतंत्र थीं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मुगलकाल में स्त्रियों की स्थिति पहले के अपेक्षा हीन हो गई थी, फिर भी संतोषप्रद थी।

3.14 खान–पान

मुगलकाल में व्यक्तियों के बीच खान–पान का स्तर उनके सामाजिक स्तर के अनुरूप था। उच्च वर्ग के लोग स्वादिष्ट एवं कीमती भोजन करते थे, जबकि निम्न वर्ग के किसी तरह से अपना जीवन निर्वाह करते थे। हिन्दु सामान्य रूप से शाकाहारी थे, किन्तु सामिष व्यंजनों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। उच्च वर्गों में मदिरा का प्रयोग आमतौर से किया जाता था। वैसे मध्य तथा निम्न वर्ग के लोग भी अपने सामर्थ्य के अनुरूप मदिरा सेवन किया करते थे। इस्लाम मदिरा–सेवन पर प्रतिबन्ध लगाता है किन्तु इस नियम को तोड़कर उच्चवर्ग के मुसलमान यथासंभव इसका सेवन करते थे। अमीरों के आवासगृह अपेक्षाकृत भव्य एवं सुसज्जित होते थे। उनके घरेलू बर्तन–बासन, कीमत और संख्या में अधिक होते थे। साधारण लोग कच्चे तथा खपड़ेल के मकानों में रहते थे जो साधारण स्तर के होते थे।

3.15 पोशाक तथा प्रसाधन

उच्चवर्ग के हिन्दु और मुस्लमान अपनी पोशाकों के प्रति विशेष रूप से सचेत रहते थे। हिन्दुओं के लिए प्रत्येक दिन अनिवार्य रूप से स्नान करना आवश्यक था। समाज में व्यक्तिगत स्वच्छन्दता तथा स्वास्थ्य रक्षा हेतु सदाचारों का विधिवत पालन किया जाता था। उत्तर भारत में पुरूष धोती और कुर्ते का प्रयोग करते थे। सुखी सम्पन्न लोग अंगीका का भी प्रयोग करते थे। पुरूषों के बीच पगड़ी धारण करने का रिवाज भी विशेष रू॰ से प्रचलित था। दक्षिण भारत में भी पुरूषों के बीच धोती का ही प्रचलन था, किन्तु इसके पहनने का ढंग भिन्न था सम्पन्न व्यक्ति जूते चप्पल का भी प्रयोग किया करते थे। मुसलमान पुरूष कमीज और पैजामे पहना करते थे। उनके बीच 'काबा' भी एक लोकप्रिय ऊपरी पोशाक था। सम्पन्न मुसलमान शरद ऋतु में **'दगला'** (लम्बा कोट) का प्रयोग किया करते थे। स्त्रियों की पोशाक में जाति, धर्म एवं क्षेत्र के अनुसार हम अधिक भिन्नता पाते हैं। अमीर वर्ग की स्त्रियां, सिल्क, डोरियां तथा कीमती मलमल से निर्मित पोशाकों का प्रयोग करती थीं। उच्च एवं मध्यम वर्ग की स्त्रियों की पोशाकों में कपड़े के स्तर और कीमत का फर्क होता था, उनके फैशन का नहीं। मुस्लिम स्त्रियां सामान्य रूप से पैजामे और कुर्ते का ही प्रयोग करती थीं मुगल स्त्रियां सिर के ऊपर ताजकुलाह ताकी आदि का प्रयोग करती थीं। राजपूत स्त्रियां अंगिया, लहंगा, ओढ़नी जैसे वस्त्र धारण किया करती थीं। स्त्री एवं पुरूष में लम्बे बाल रखने का भी फैशन था। सामान्य हिन्दु स्त्रियां सिर के ऊपर **'तरंग'**तथा मुस्लिम स्त्रियां **'कशावा'** धारण करती थीं।

3.16 आभूषण

भारतवर्ष के सभी स्त्री–पुरूष सामान्य रूप से आभूषण का प्रयोग किया करते थे। आभूषणप्रियता स्त्रियों की सबसे बड़ी कमजोरी थी और वे इसके प्रति विशेष रूप से आर्कषित रहती थीं। अपने व्यक्तित्व को आर्कषक एवं सुन्दर बनाने के उद्देश्य से वे विभिन्न प्रकार के आभूषणों से सजाकर अपने शरीर को रखना चाहती थी। उन दिनों प्रयोग में लाये जाने वाले आभूषणों में उल्लेखनीय हैं– नूपुर, कलवा, अंगुठी, कंगन, अंगद, हार, बेसर, खोट, टीका, शीराफल, नथ, चूड़, बिछवा, कर्णफल आदि। समृद्ध स्त्रियां सोने–चांदी जैसी कीमती धातुओं से निर्मित तथा कीमती जवाहरात एवं पत्थरों के गहनों का प्रयोग करती थीं। विदेशी यात्री मनुसी कहता है कि मुगल रनवास की स्त्रियां गहनों के रूप में बड़े हीरे, पन्ने तथा माणिक का प्रयोग करती थीं। साधारण स्तर की हिन्दु तथा मुस्लिम स्त्रियां समृद्ध स्त्रियों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले आभूषण ही धारण करती थीं, किन्तु वे कीमती धातुओं के बजाए ताम्बे, टीन, सीसे, कांसे, हाथी के दांत, कौड़ी अथवा पत्थर आदि के बने होते थे।

3.17 मनोरंजन के विभिन्न साधन

जनजीवन में मनोरंजन का महत्वपूर्ण स्थान था। लोग नृत्य, संगीत, नाटक, आदि के माध्यम से सामान्य रूप से अपना मनोरंजन करते थे। नृत्य को समाज में कला का स्थान प्राप्त नहीं था

और नर्तकियों को नीचे दृष्टि देखा जाता था। उच्च एवं आदरणीय वर्ग की स्त्रियों को इसमें कोई दिलचस्पी नहीं थीं। अस्तु सिर्फ व्यवसायिक स्त्रियां ही अपनाती थीं। इन स्त्रियों को अकबर 'कंचनी' की संज्ञा से सम्बोधित करता था। तत्कालीन यूरोपीय पर्यटक, पीटर मुंडी तथा बर्नियर आदि ने भी इनका वर्णन किया है। पिटर मुंडी नर्तकियों की श्रेणी में ललनीं, हराकिन, कंचनी तथा डोमिन आदि की चर्चा करता है। समाज में नृत्य को कला का स्थान प्राप्त नहीं था, लोग विशेष रूप से शासक वर्ग तथा सामन्त अनुष्ठानों के अवसर पर अथवा पर्व–त्योहार, मेले तथा अन्य विशेष अवसरों पर नृत्य का आयोजन किया करते थे। नृत्य की अपेक्षा संगीत को समाज में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी, और अच्छे घराने की स्त्रियां भी इस कला में दिलचस्पी लिया करती थीं। रत्नावली, मीराबाई, मृगनयनी, नूरजहां, तथा जैबुननिसां जैसी प्रतिष्ठित स्त्रियां भी इस कला में प्रवीण थीं। तत्कालीन वाद्य यंत्र में उल्लेखनीय हैं– बांसुरी, वीणा, ढ़ोलक, तबला, झांझ, उपंग, रबाब आदि। समाज में नाटकों का भी प्रचलन था। इसकी चर्चा हम भारतीय अथवा विदेशी विद्वानों की रचनाओं में पाते हैं। नृत्य, संगीत, अथवा नाटकों का पोषण सिर्फ उच्चवर्ग के लोगों के द्वारा ही नहीं किया जाता था, वरन् साधारण लोगों के बीच भी ये समान रूप से लाकप्रिय थे।

3.18 पर्व–त्योहार

हिन्दु तथा मुसलमान दोनों के सामाजिक जीवन में पर्व–त्योहार एवं मेले असाधारण रूप से हर्षोल्लास के अवसर प्रदान करते थे। हिन्दुओं के बीच आजकल के समान ही बसन्तपंचमी, होली, शिवरात्री, रामनवमी, कृष्णाष्टमी, दशहरा, दीपावली, गोवर्धन आदि पर्व अत्यन्त लोकप्रिय थे। स्त्रियां पुरूषों की अपेक्षा पर्व–त्योहारों में अधिक दिलचस्पी लेती थीं। मुस्लिम पर्व–त्योहारों में ईद–उल–फितर, ईद–उल–अजहा, मुहर्रम, चहेल्लुम, शब–ए–बारात तथा नौरोज आदि पर्व अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। मुगलदरबार में नौरोज, होली, दशहरा, ईद–उल–फितर आदि पर्व तथा सम्राट और शहजादों के जन्मदिन बड़े धूम–धाम से मनाये जाते थे। इन उत्सवों पर साधारण लोग भी सम्मलित होते थे। अकबर के द्वारा चलाई गई **'मीनाबाजार'** की परम्परा मुगल सम्राटों एवं सामंतो के मनोरंजन का विशेष साधन था। पर्व–त्योहारों के अतिरिक्त सार्वजनिक मेले, तथा उत्सवों में लोग अपने दैनिक जीवन की नीरसता को भुलाकर आनन्दोत्सव मनाते थे।

3.19 खेल–कूद

समाज में सभी वर्ग के लोग विभिन्न प्रकार के खेलकूदों के द्वारा भी मनोरंजन किया करते थे। मैदानी खेलों में शिकार, पशुयुद्ध, चौगान, गेंद, कुश्ती तथा कबड्डी आदि काफी लोकप्रिय था। शिकार तथा चौगान जैसे खेल खर्चीले थे। अस्तु, ये उच्चवर्ग के लोगों के बीच मुख्य रूप से लोकप्रिय था। शिकार खेलना मनोरंजन का एक अच्छा साधन था। मुगल सम्राट तथा सामन्त अकसर इससे अपना मनोरंजन करते थे। अकबर ने शिकार में **'कमरधा'** विधि का प्रथम प्रयोग किया, जो बाद में अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। इसमें हकवे दूर–दूर से शिकार हांक कर शिकारी के पास ला देते थे, जिससे शिकार करने में सुविधा होती थी। हाथी पकड़ना और चीते का शिकार करना सम्राट का विशेषाधिकार था। मछली मारना, नौका–विहार, आकर्षक स्थानों का भ्रमण, तीर्थयात्रा आदि से भी लोगों का अच्छा मनोरंजन हो जाता था। साधारण लोग गेंद, कुश्ती, कबड्डी, पतंगबाजी, कबूतरबाजी, बाजीगरी, जादूगरी आदि के द्वारा अपना मनोरंजन किया करते थे। घर के अंदर खेले जाने वाले खेलों में प्रधान थे– शतरंज, चौपड़, ताश, गोटी के विभिन्न खेल, पचीसी आदि। स्त्रियां भी इन खेलों में काफी दिलचस्पी दिखाती थीं विशेष अवसरों पर सभी तरह के लोग आतिशबाजी की प्रदर्शनी से भी मनोरंजन किया करते थे। सम्राट, राजा–महाराजे तथा सामन्तवर्ग के लोग बागवानी के भी शौकीन होते थे और इस पर अपने अवकाश के क्षण व्यय करते थे।

3.20 हिन्दु–मुस्लिम समन्वय

प्राचीनतम हिन्दु संस्कृति और सभ्यता में एकीकरण करने की इतनी अधिक शक्ति थी कि देश के प्रारम्भिक आक्रान्ता, जैसे यूनानी, ईरानी, हूण आदि भारतीयों में पूर्णरूपेण मिल गये और वे अपने एकात्मय व अनन्यता की सम्पूर्णतया खो बैठे। परन्तु इस्लाम के साथ ऐसा नहीं हुआ। इस्लामी आक्रमणकारियों के साथ–साथ भारत में नवीन विभिन्न और निर्टिष्ट सामाजिक और धार्मिक विचार प्रवेश कर गये और इनका सम्पूर्ण एकीकरण असम्भव था। परन्तु जब कभी दो प्रकार की सभ्यताऐं और संस्कृतियां सदियों तक परस्पर सम्पर्क में आती हैं वे परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार सुदीर्घ काल में, नवीन संसर्ग भारतीय मुसलमानों के समुदाय के विकास, मुस्लिम आक्रमणकारियों के भारत में बस जाने से हिन्दु स्त्रियों से विवाह, हिन्दु और मुस्लिम संतों और उनके अनुयायियों के पारस्परिक सम्पर्क, मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दु कलाकारों शिल्पियों और साहित्यकारों के संरक्षण और उनके उदार आन्दोलनों के प्रभाव के कारण हिन्दु और मुसलमान एक दूसरे के विचार और प्रथाओं को अपनाकर उनका समीकरण करने वाले थे और फलस्वरूप अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए। धार्मिक क्षेत्र में इस्लाम के प्रभाव से निर्गुण ईश्वर के प्रति पुनः श्रद्धा जागृत हो गई। यह सब हिन्दु धर्म के लिए ऐसा था मानो सुरा को एक पात्र से दूसरे में बदल दिया गया हो। हिन्दु के नेताओं ने इस्लाम की तरह हिन्दु धर्म को अधिक सजीव, सरल, भावुक व आकर्षक करने के लिए उसकी बाहरी रूप रेखा में परिवर्तन कर दिया।

3.21 परस्पर सामंजस्य, सहयोग एवं सहिष्णुता की भावना का विकास

हिन्दुओं और मुसलमानों के मूलभूत मतभेदों के होने पर भी आक्रमण और विप्लव की अशान्त सतह के नीचे कालान्तर में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पारस्परिक सामंजस्य और सहिष्णुता की सुखद धारा प्रवाहित होने लगी थी। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर हिन्दुओं और मुसलमानों ने युद्ध और सम्पीड़न की निष्फलता व निरर्थकता को समझ लिया था। धीरे–धीरे दोनों समुदायों में सामंजस्य और सहयोग की भावना प्रकट हो रही थी। वे परस्पर एक दूसरे को जानने और समझने की चेष्टा भी करने लगे। फलतः हिन्दू धर्म, हिन्दु कला, हिन्दु साहित्य और हिन्दुविज्ञान ने मुस्लिम तत्वों को अपनाया ही नहीं प्रत्युत हिन्दु संस्कृति की भावना और हिन्दु मनीषा की प्रेरणा में भी परिवर्तन हो गया। इसी प्रकार मुसलमानों ने भी जीवन के हर क्षेत्र के प्रति उनमुख होकर खुले ह्रदय से आदान–प्रदान किया। हिन्दुओं के धार्मिक नेताओं और संतो ने हिन्दु–मुस्लिम विचारों के समन्वय का सफल प्रयास किया तो मुसलमानों के सूफी सम्प्रदाय तथा उनके लेखकों व कवियों ने भी हिन्दु–सिद्धान्त व परम्पराओं को ग्रहण किया। प्रसिद्ध मुस्लिम विद्वान और संत भारत में इस्लाम के दार्शनिक और आध्यात्मिक विचारों के प्रचार–प्रसार के लिए कठोर परिश्रम करने लगे।

पारस्परिक सहिष्णुता की भावना की अभिव्यक्ति मुस्लमानों के संतों के प्रति, विशेषकर रहस्यवादी आध्यात्मिक संतों के लिए हिन्दुओं की बढ़ती हुई श्रद्धा और भक्ति मे हुई थी और इसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दुओं के साधु–संतो के प्रति ऐसी ही श्रद्धा और भक्ति की भावना रखने लगे। हिन्दुओं ने उदारता पूर्वक मुस्लिम पीरों की कब्रों पर हिन्दु मिठाइयां चढ़ाते और कुरान के पाठ को श्रवण करते। वे कुरान को एक देववाणी के समान मानने लगे। जीवन के बुरे प्रभावों और अपशकुनों से बचने के लिए घरों में कुरान की प्रतियां रखने लगे। भ्रातृत्व प्रदर्शित करने के लिए मुसलमानों को भोजन कराने लगे। पंजाब में अब्दुल कादिर जिलानी के मुरीदों, रावलपिण्डी के ब्राह्मणों और बहराइच में सैयद सालार मसूद गाजी की मजार के उपासक हिन्दुओं का उल्लेख है। इसी प्रकार अजमेर के शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के भक्तों में बहुसंख्यक हिन्दु भी थे। इसी भांति मुसलमान भी हिन्दु धर्म की ओर झुके। मुर्ति पूजा के कट्टर विरोधी होने पर भी

बंगाल में मुसलमानों ने हिन्दुओं को शीतला तथा काली तथा धर्मराज, वैधनाथ आदि अन्य देवी–देवताओं की पूजा को अपना लिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने सरिताओं के अधिष्ठाता ख्वाजा खिज्र, सुन्दरतम सघन वन में सिंह पर सवारी करने वाली देवी के प्रेमी व अंगरक्षक जिन्दागाजी आदि नवीनतम मुस्लिम देवताओं का निर्माण किया। सामंजस्य, सहिष्णुता, सहयोग और सानिध्य की भावनाओं के इन परिणामों के साथ–साथ सत्यपीर नामक देवता का प्रादुर्भाव हुआ जिसे हिन्दु और मुसलमान दोनों ही मानते थे। गौड़ नरेश हुसैनशाह को इसका संस्थापक माना जाता है। इस प्रकार हिन्दु धर्म और इस्लाम को पारस्परिक प्रतिक्रिया से कई विचित्र समन्वयकारी सम्प्रदायों और क्रियाओं का उदय हुआ।

सामंजस्य, सम्मिश्रण और सामीप्य की मंगलकारिणी भावना का प्रभाव इस्लाम पर भी कम न हुआ। उसमें कोमलता और सरलता आ गई। उसके स्वरूप में खूब परिवर्तन हुआ और सूफी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दु और मुसलमान दोनों ही इस सम्प्रदाय के संतों को मानने लगे। उनकी समाधियां इन दोनों ही सम्प्रदाय के लिए तीर्थस्थल बन गयी। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती जो अफगानिस्तान से 1192 ई0 में भारत आये थे और जिन्होंने अजमेर को अपना केन्द्र बना लिया था, ऐसे ही सूफी संत थे इनकी समाधि **'ख्वाजा साहब की दरगाह'** के नाम से आज भी अजमेर में प्रसिद्ध स्थान हैं। यहां **'उर्स'** के मेले पर बहुसंख्यक हिन्दु और मुसलमान आज भी आते हैं। तेरहवीं सदी में निजामुद्दीन औलिया और सोलहवीं सदी में शेख सलीम चिश्ती सुफी सम्प्रदाय के अन्य प्रसिद्ध सन्त थे। सन्तों के अन्य सम्प्रदाय सुहरावर्दी और कादरी थे। इन सम्प्रदायों का प्रभाव यह हुआ कि इस्लाम ने अपने भारतीय वातावरण में सन्त–पूजा को ग्रहण कर लिया। हिन्दु मुसलमानों में परस्पर मेल–मिलाप, सामीप्य तथा सहिष्णुता की भावनाओं का परिणाम यह हुआ कि सत्यपीर, सत्तनामी, नारायणी आदि ऐसे ग्रंथों का प्रादुर्भाव हुआ जिसके अनुयायी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे और जो परस्पर दोनों में कोई भेदभाव नहीं मानते थे। कालान्तर में मुसलमानों में पन्थी साहित्य का विकास हुआ। समन्वय की इस प्रवृत्ति ने समाज के अतिरिक्त संस्कृति, राजनीति, प्रशासन, साहित्य, धर्म, एवं कथाओं को भी गहरे रूप से प्रभावित किया। वस्तुतः हमारे आज की तमाम व्यवस्थाऐं मूलतः मध्यकाल की ही देन हैं यद्यपि पश्चिमी सम्पर्क में आने के बाद इनमें और भी परिवर्तन एवं परिवर्द्धन हुए हैं।

3.22 सारांश

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मुगलकालीन भारतीय संस्कृति एक समन्वय और सम्मिश्रण का काल था। दो भिन्न सभ्यताओं को एक दूसरे को समीप आने, परखने एवं प्रभाव ग्रहण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। दोनों वर्गों के ऊपर एक दूसरे का सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। धीरे–धीरे समय के साथ उनके बीच की दूरी भी कम होती गई और वे एक दूसरे के समीप आने लगे। हिन्दु–मुस्लिम के मध्य व्याप्त कटुता ने प्रेम–स्नेह, सहिष्णुता और सहनशीलता ने ले लिया। अब उनके मध्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदान–प्रदान के साथ ही वैवाहिक सम्बन्ध भी कायम हुआ जो भारत में मुगलों के स्थायित्व के लिए मील का पत्थर साबित हुआ।

3.23 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) मुगलकालीन भारत की सामाजिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

(2) मुगलकालीन महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण कीजिए

(3) मुगलकालीन सभ्यता एवं संस्कृति पर निबन्ध लिखिए।

(4) भारतीय संस्कृति एवं इस्लाम ने किस प्रकार एक दूसरे को प्रभावित किया। उल्लेख कीजिए।

(5) अकबर का काल सामाजिक ''सद्भाव एवं सहिष्णुता का काल था'' व्याख्या कीजिए।

3.24 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. युसूफ हूसैन, इण्डियन कल्चर
2. अतहर अली रिज्वीं, मिडिवल इण्डियन कल्चर
3. जे.एल. मेहता, मध्यकालीन भारत का बृहत इतिहास
4. बी.बी. सिन्हा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति
5. बी.एल. लोनिया, भारतीय संस्कृति
6. के.एल. खुराना, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति,
7. मीनाक्षी खन्ना, भारत का सांस्कृतिक इतिहास